निवेदन

हिन्दी साहित्य के अनेक इतिहास लिखे जा चुके हैं। इनमें कवियों का विवरण और प्रवृत्तियों का निरूपण स्पष्टता के साथ पाया जा सकता है। किन्तु इधर साहित्य के इतिहास में कई नवीन अन्वेषण हुए हैं। इतिहास लिखने के दृष्टिकोण और शैली में भी नूतन वैज्ञानिक उत्क्रान्ति हुई है। अतः हिन्दी का इतिहास-लेखन अभी पूर्ण नहीं है।

इतिहास-लेखन बहुत कठिन कार्य है। वैज्ञानिक विवेचन की गंभीरता के साथ साथ इतिहास लेखक का उत्तरदायित्व बहुत बड़ा है। इन दोनों बातों के लिए इतिहास लेखक को तैयार रहना चाहिए। फिर हिन्दी साहित्य का इतिहास तो बहुत विस्तृत और व्यापक है। वास्तव में इस इतिहास में जितनी जटिलताएँ और गुत्थियाँ हैं, शायद भारतीय साहित्य के किसी इतिहास में न पाई जावेंगी, क्योंकि हिन्दी भाषा और साहित्य का विस्तार बहुत प्राचीन काल से अखिल भारतीय रूप से बिखरा हुआ है। अभी तो समुचित रूप से इसकी खोज ही नहीं हो पाई है। खोज की बात तो अलग है—मुझे तो ऐसा लगता है कि बहुत सी सामग्री जो प्रत्यक्ष फैली पड़ी है, उसका इतिहास-ग्रन्थों में अभी तक उल्लेख भी नहीं हो सका है। इतिहास लिखने के वैज्ञानिक काल-क्रम और विधान-क्रम की तो बात ही दूर है।

पूज्य डा० धीरेन्द्र वर्मा (अध्यक्ष हिन्दी विभाग) के निर्देश के सम्बन्ध से पेरिस जाने पर मुझे एम० ए० के विद्यार्थियों को इतिहास पढ़ाने का अवसर मिला। तब हृदय में इसी सम्बन्ध में इतिहास-लेखन की इच्छा जाग्रत हुई जिसका [illegible] [illegible] [illegible]

जा सकता है। अतः ऐतिहासिक सामग्री के साथ कवियों एवं साहि-त्यिक प्रवृत्तियों की आलोचना करना मेरा दृष्टिकोण है। प्रत्येक काल-विभाग के प्रारंभ में अनुक्रमणिका के रूप में उस काल की समस्त प्रवृत्तियों का निरूपण साहित्यिक एवं दार्शनिक ढंग पर किया गया है। कवियों के वर्गीकरण में विशेष ध्यान इस बात का रक्खा गया है कि तत्कालीन राजनीतिक और साहित्यिक परिस्थितियों ने उन्हें और उनकी कृतियों को कहाँ तक प्रभावित किया है और समय की प्रवृत्तियों और उनकी कृतियो मे कितना साम्य है। अतः कवियों की आलोचना मे केवल उनके गुण दोषों की विवेचना ही नहीं है वरन् विजातीय शासकों की नीति के फल-स्वरूप उनकी शैली में जिन भावनाओं का जन्म हुआ है उनका भी स्पष्टीकरण है। धार्मिक सिद्धान्तो की आलोचना करने वाले प्रायः सभी प्रधान ग्रन्थों के दृष्टिकोण की विवे-चना और आलोचना की गई है और उसके प्रकाश मे साहित्य के इतिहास की रूपरेखा स्पष्ट की गई है। इस प्रकार एक ही स्थान पर विषय विशेष की समस्त सामग्री इतिहास के विद्यार्थियों को प्राप्त होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस ग्रन्थ मे अनेक स्थलों पर मेरी अपनी रिसर्च (खोज) भी है क्योंकि साहित्य में बहुत से स्थल ऐसे हैं जिनके विषय मे कोई निश्चित मत निर्धारित नही किया जा सका है, अथवा जो अपूर्ण हैं। ऐसे स्थलो की सामग्री मैंने खोज द्वारा पूर्ण करने की कोशिश की है। इस खोज मे मैंने अपना विवेचनात्मक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करने का साहस किया है। पृथ्वीराज रासो और आल्हखंड की विवेचना, गोरखनाथ का काल-निर्णय, वैष्णव धर्म का विकास और उसका अनेक आचार्यों द्वारा प्रचार, कबीर का काल-निर्णय और उनके ग्रन्थ, राम-काव्य का विकास, तुलसीदास के ग्रन्थो की आलोचना और उनका कवित्व, कृष्णकाव्य का विकास, पुष्टिमार्ग, सूरसागर का दृष्टिकोण, मीराबाई का जीवन वृत्त, दकनी उर्दू के रूप मे हिन्दी गद्य का विकास, गोरा बादल की कथा आदि विषय नवीन खोज और नवीन ढग द्वारा

प्रस्तुत किये गए हैं। इस प्रकार यह अध्ययन मेरी एक थीसिस का रूप हो गया है।

अब तक के समस्त इतिहासों पर दृष्टिपात कर मैंने उनके यथोचित मूल्यांकन पर विचार किया है। इस दृष्टि से अपने ग्रन्थ में मैंने इतिहास की सामग्री अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य दोनों आधार भूत प्रमाणों पर निश्चय की है। साहित्य के विविध दृष्टिकोण की सामग्री भी स्पष्ट रूप से विषय प्रवेश में रक्खी गई है। इसके अतिरिक्त भाषा के इतिहास की रूपरेखा भी इसी स्थल पर मिलेगी। मैंने साहित्य की संस्कृति का आदर्श सुरक्षित रखते हुए पश्चिम की आलोचना शैली को ग्रहण करने का प्रयत्न किया है। अब तक की समस्त उपलब्ध सामग्री का उपयोग भी मैंने आवश्यकतानुसार किया है। मैं इतिहास-लेखक के उत्तरदायित्व का निर्वाह कहाँ तक कर सका हूँ, यह आपके निर्णय की बात है। यदि मेरी खोज और आलोचना से साहित्य के विद्यार्थियों को इतिहास के वास्तविक महत्त्व को समझने में सहायता मिली तो मैं अपना परिश्रम सार्थक समझूँगा। नामानुक्रमणिका तैयार करने में मुझे मेरे विद्यार्थी श्रीउत्तमचन्द्र श्रीवास्तव एम० ए० और श्रीरामप्रसाद नायक बी० ए० (आनर्स) से विशेष सहायता मिली है।

हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय
१५ मई १९३८

रामकुमार वर्मा

हिन्दी साहित्य का

आलोचनात्मक इतिहास

विषय-प्रवेश

किसी निर्जन वन-प्रदेश की शैवालिनी की भाँति हिन्दी साहित्य की धारा अबाध रूप से तो अवश्य प्रवाहित होती रही, किन्तु उसके उद्गम और विस्तार पर आद्यन्त और विस्तृत दृष्टि डालने का प्रयास बहुत दिनों तक नहीं हुआ। अपभ्रंश के भग्नावशेषों को लेकर हिन्दी के निर्माणकाल के समय (लगभग सं० ७००) से विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक हिन्दी साहित्य का इतिहास बिखरी हुई रत्न-राशि के समान पड़ा रहा: उसके संग्रह करने का प्रयास किसी के द्वारा नहीं हुआ। किसी काल विशेष के कवि के द्वारा किये गये अपने पूर्ववर्ती कवि अथवा भक्त के विषय में उल्लेख अवश्य मिलते हैं, पर वे व्यष्टि रूप से हैं, समष्टि रूप से नहीं। जायसी के द्वारा अपने पूर्ववर्ती प्रेम-काव्य के कवियों का उल्लेख, नाभादास के द्वारा भक्तमाल में भक्तों और कवियों का विवरण, गोकुलनाथ के द्वारा चौरासी वैष्णवन की वार्ता में पुष्टि मार्ग में दीक्षित वैष्णवों का जीवन-चरित्र, कुछ लेखकों द्वारा अनेक कवियों की नामावली और काव्य-संग्रह आदि हमें अवश्य प्राप्त हैं, पर इन्हें हम इतिहास नहीं कह सकते। फिर इन कवियों का निर्देश

इतिहास

दूसरा इतिहास अवश्य हिन्दी में लिखा गया और वह श्री महेश-दत्त शुक्ल द्वारा संग्रहीत भाषा काव्य-संग्रह है। इसमें संग्रहकर्ता ने पहले

भाषा काव्य संग्रह

कुछ प्राचीन कवियों की कविता संग्रह की है, फिर उन्हीं कवियों का जीवन-चरित्र तथा समय आदि संक्षेप में दिया है और अंत में कठिन शब्दों का कोष भी है[१]। यह नवल-किशोर प्रेस लखनऊ से संवत १९३० में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह के बाद दूसरा संग्रह शिवसिंह सेंगर[२] द्वारा संग्रहीत शिवसिंह सरोज है,

शिवसिंह सरोज

जिसका रचना-काल सं० १९४० है। इसमें भी कवियों का विवरण और उनका काव्य-संग्रह है। किन्तु इसमें तासी के ग्रन्थ की अपेक्षा कवियों की संख्या में अधिक वृद्धि हो गई है। तासी के ग्रन्थ में हिन्दी कवियों की संख्या ७० से ऊपर है और सरोज ने 'भाषा कवियों' की संख्या 'उनके जीवन-चरित्र और उनकी कविताओं के उदाहरणों सहित 'एक सहस्र' हो गई है। सरोज के आधार पर सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने 'माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिन्दुस्तान'[३] लिखा। (सं० १९४६) । इसमें शिवसिंह सेंगर के 'सरोज' से यही विशेषता

माडर्न वरनाक्यूलर लिटरेचर आव् हिन्दोस्तान

है कि इसमें साहित्य के काल-विभाग के साथ समय-समय पर उठी हुई प्रवृत्तियों का भी दिग्दर्शन कराया गया है। इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि ग्रियर्सन साहब का ग्रन्थ 'सरोज' की सामग्री से ही बनाया गया

---

१ बाबू राधाकृष्णदास ना० प्र० पत्रिका भाग ५, पृष्ठ १, संवत [illegible]

२ S. S. Singh Sengar [illegible] A. D.

३ [illegible] George A. Grierson

है।[1] इसमें कवियों की संख्या ९५२ है।

संवत् १९६६ और १९७१ में बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० द्वारा सम्पादित हिन्दी कोविद रत्नमाला के दो भाग प्रकाशित हुए। इनमें ८० आधुनिक लेखकों के जीवन-चरित्र, उनकी कृतियों के निर्देश के साथ दिये गए हैं। इन जीवनियों में इतिहास का कोई सूत्र नहीं है, केवल लेखकविशेष का साहित्यिक महत्व अवश्य बतला दिया गया है।

हिन्दी कोविद रत्नमाला

इतिहास का इतिवृत्तात्मक लेखन सब से प्रथम मिश्रबन्धुओं के 'विनोद' मे पाया जाता है। 'विनोद' चार भागों मे लिखा गया है, जिसके प्रथम तीन भाग सं १९७० मे प्रकाशित हुए थे और चतुर्थ भाग जो साहित्य के वर्तमान काल से सम्बन्ध रखता है, सं०. १९९१ मे प्रकाशित हुआ। अतः मिश्रबन्धुओ ने साहित्य का अध्ययन कर लगभग २२५० पृष्ठों मे अपना विनोद लिखा है। इसमे कवियो के विवरणों के साथ-साथ साहित्य के विविध अंगो पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। अनेक कवि जो अज्ञात थे, प्रकाश मे लाए गए हैं और उनके साहित्यिक महत्व का मूल्य आँका गया है। कवियो की श्रेणियाँ बनाई गई हैं और उन श्रेणियो मे कवियो का वर्गीकरण किया गया है। विनोद के चारों भागों मे ४५९१ कवियो का वर्णन है, किन्तु बीच में अन्य कवियों का पता मिलने पर उनके नम्बर "बटे से कर दिए गए हैं।" इस प्रकार मिश्रबन्धु विनोद मे ५००० से अधिक कवियो का विवरण मिलता है। यद्यपि कवियो के काव्य की समीक्षा प्राचीन काल के आदर्शों के आधार पर की गई है, पर उनकी विवेचना मे हम आधुनिक दृष्टिकोण नहीं पाते। जीवन की आलोचना, कवि

मिश्रबन्धु विनोद

[1] He is the author of the Sib Singh Saroj, on which this work is principally founded

The Modern Vernacular Literature of Hindustan Page 12

का सन्देश, लेखक की अन्तर्दृष्टि और भावों की अनुभूति आदि के आधार पर उसमें कवियों और लेखकों की आलोचना नहीं है । भाषा भी आलोचना के ढङ्ग की नहीं है। किन्तु साहित्य के प्रथम इतिहास को विस्तारपूर्वक लिखने का श्रेय मिश्रबन्धुओं को अवश्य है। उन्होंने

नवरत्न

अपने दूसरे ग्रन्थ हिन्दी नवरत्न (सं० १९६७) में नौ कवियों[1] की विस्तृत समालोचना की है। उसमें हम कवियों का यथेष्ट निरूपण पाते हैं। इस ग्रन्थ का चौथा संस्करण जो सचित्र संशोधित और सम्वर्द्धित है, सं० १९९१ में प्रकाशित हुआ।

सम्वत् १९७४ में पं० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा लिखित कविता-

कविता-कौमुदी

कौमुदी ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पहले तक के ८९ कवियों का जीवन-विवरण, उनकी कविता के साथ दिया गया है। इसमें कवियों की आलोचना न होकर केवल परिचय मात्र है। सं० १९८३ में इसका दूसरा भाग प्रकाशित हुआ, जिसमें ४९ आधुनिक लेखकों और कवियों का विवरण है। इस प्रकार कविता-कौमुदी के दोनों भागों में १३८ कवियों का विवरण है।

सम्वत् १९७५ में एडविन ग्रीव्स महाशय ने 'ए स्केच आव् हिन्दी लिटरेचर' के नाम से हिन्दी-साहित्य का एक इतिहास लिखा। इस ११२ पृष्ठों की पुस्तिका में लेखक महोदय ने उपर्युक्त सभी पुस्तकों से पूरी सहायता ली है।[2] इन्होंने हिन्दी-साहित्य के

ए स्केच आव् हिन्दी लिटरेचर

इतिहास के पाँच विभाग किये हैं। धार्मिक काल को दो भागों में विभाजित कर दिया है और हिन्दी के

१ वे नौ कवि निम्नलिखित हैं —

तुलसीदास, सूरदास, देव, बिहारी, [illegible] केशव, कबीर, चन्द और हरिश्चन्द्र

२ [illegible]

कि शास्त्री जी ने साहित्य के महान कवियों को समझाने की अच्छी चेष्टा की है।

संवत् १९८८ में पं० रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल' ने एक बहुत बड़ा हिन्दी का इतिहास लिखा। इसमें कवियों और लेखकों की कृतियों के उदाहरण नहीं हैं। यह शायद हिन्दी के सभी इतिहासों से कलेवर में बड़ा है। इसमें हिन्दी साहित्य की सभी ज्ञातव्य बातों का परिचय दिया गया है, पर लेखक ने उन्हें वैज्ञानिक रीति से नहीं समझाया। इस इतिहास में लेखक का अपना कोई निर्णय भी नहीं है। अनेक स्थानों से उपलब्ध की गई सामग्री अवश्य विस्तारपूर्वक दी गई है।

हिन्दी-साहित्य का इतिहास

अभी हाल ही (संवत् १९९१) में श्री कृष्णशंकर शुक्ल ने आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा है। इसमें भारतेन्दु जी के पूर्व का इतिहास तो बड़े ही संक्षिप्त रूप में दिया गया है; और आधुनिक इतिहास का विवेचन विस्तारपूर्वक किया गया है। इस इतिहास में भी ग्रन्थकार की अपनी कोई धारणा नहीं है। उसने विस्तार से प्रत्येक कवि के विषय में ज्ञातव्य बातें लिख दी हैं।

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास

इसके अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे इतिहास भी लिखे गये हैं, जिनमें श्री ब्रजरत्नदास और गणेशप्रसाद द्विवेदी के इतिहास अच्छे हैं। हिन्दी गद्य-मीमांसा (रमाशङ्कर त्रिपाठी) और हिन्दी गद्य-शैलियों का विकास (जगन्नाथप्रसाद शर्मा) नामक ग्रन्थ केवल साहित्य के गद्य भाग के विकास से सम्बन्ध रखते हैं। अपने ढंग की दोनों पुस्तकें अच्छी हैं।

इस प्रकार हमारे सामने मुख्यतः निम्नलिखित इतिहास हैं—

इतिहास	लेखक	सम्वत्
१ इस्तार द ला लितेरात्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी	गार्सां द तासी	सं० १८९६, १९०३ और १९२८

होता है, अतएव पहले उसी पर विचार करना है। निम्न लिखित प्रामाणिक ग्रन्थों ने हमारे सामने साहित्य के इतिहास की सामग्री प्रस्तुत की है :—

संख्या	ग्रन्थ का नाम	लेखक	संवत्	विवरण
१	चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता	गोकुलनाथ[1]	सं० १६२५	इसमें पुष्टि मार्ग में दीक्षित वैष्णवों की जीवनी पर ढंग से प्रकाश डाला गया है, जिनमें अनेक कवि भी हैं। अष्टछाप के कवि भी इसी में परिगणित हैं।
२	भक्तमाल	नाभादास	सं १६४२	१०८ छप्पय छन्दों में भक्तों का विवरण है। इनमें अनेक भक्त कवि भी हैं। साधारणतया प्रत्येक भक्त के लिए एक छप्पय है जिसमें उसकी विशेषताओं का उल्लेख है।
३	गोसाईं चरित्र	बेनी माधव दास[2]	सं. १६८७	इसमें चौपाई, दोहा और तोटक छन्दों में गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित्र लिखा गया है। इसमें अनेक अलौकिक घटनाओं का भी समावेश किया गया है।
४	भक्तनामावली	ध्रुवदास	सं. १६९८	११६ भक्तों का संक्षिप्त चरित्र वर्णन है। अंतिम नाम नाभादास जी का है।

१ डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार दोनों ग्रन्थ एक ही लेखक के द्वारा नहीं लिखे गए। देखिए—'हिंदुस्तानी' अप्रैल १९३२, भाग २, संख्या २, पृष्ठ १८३।

२ अभी तक इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता में संदेह है।

संख्या	ग्रन्थ का नाम	लेखक	सम्वत्	विवरण
५	कविमाला	तुलसी[1]	सं. १७१२	७५ कवियोंकी कविताओं का संग्रह। इन कवियों का कविता-काल सं० १५०० से १७०० तक है।
६	कालिदास हजारा	कालिदास त्रिवेदी	सं. १७७५	२१२ कवियोंकी एक हजार कविताओं का संग्रह। इन कवियों का कविता-काल सं १४८० से लेकर १७७५ तक है। इसी के आधार पर शिवसिंहने अपना सरोज लिखा है।
७	काव्य-निर्णय	भिखारी दास	लगभग १८०२	इस ग्रंथ में काव्य के आदर्शों के साथ अनेक कवियों का भी निर्देश किया गया है। किन्तु यह निर्देश संक्षिप्त है। कवित्त नम्बर १६ और दोहा नम्बर १७।
८	सत्कवि गिरा विलास	बलदेव	१८०३	सत्रह कवियों का काव्य-संग्रह जिसमें केशव, चिन्तामणि, मतिराम, बिहारी आदि मुख्य हैं।
९	कवि नामावली	सूदन	१८१०	इसमें सूदन ने दस कवित्तों में कवियों के नाम गिना कर उन्हें प्रणाम किया है।
१०	विद्वान मोद तरंगिणी	सुब्बा सिंह	१८७४	[illegible] कवियों का काव्य-संग्रह जिसमें [illegible] आदि का [illegible]

[1] [illegible]

संख्या	ग्रन्थ का नाम	लेखक	संवत्	विवरण
११	राग सागरोद्भव राग-कल्पद्रुम	कृष्णानन्द व्यास देव	१९००	कृष्णोपासक दो सौ से अधिक कवियों का काव्य-संग्रह उनके ग्रन्थों की नामावली सहित दिया गया है। यह ग्रन्थ तीन भागों में है। इसमें हिन्दी के अतिरिक्त मराठी, तेलगू, गुजराती, बंगाली, उड़िया, अँग्रेज़ी, अरबी आदि में लिखे गए ग्रन्थों का भी उल्लेख है।
१२	शृङ्गार संग्रह	सरदार कवि	१९०५	इसमें १२१ कवियों के उद्धरण हैं। इसमें काव्य के विविध अंगों का निरूपण है।
१३	रस चन्द्रोदय	ठाकुर प्रसाद त्रिपाठी	१९२०	बुन्देलखंड के २४२ कवियों का काव्य-संग्रह।
१४	दिग्विजय भूषन	गोकुल प्रसाद	१९२५	१९२ कवियों का काव्य-संग्रह।
१५	सुन्दरी तिलक	हरिश्चन्द्र	१९२६	६९ कवियों का सवैया-संग्रह।
१६	काव्य-संग्रह	महेशदत्त	१९३२	अनेक कवियों का काव्य संग्रह।
१७	कवित्त रत्नाकर	मातादीन मिश्र	१९३३	२० कवियों का काव्य-संग्रह।
१८	शिवसिंह सरोज	शिवसिंह सेंगर	१९४०	१०१० कवियों का जीवन-वृत्त उनकी कविताओं के उदाहरण सहित दिया

संख्या	ग्रन्थ का नाम	लेखक	सम्वत्	विवरण
				गया है। इसी के आधार पर जार्ज ए० ग्रियर्सन।ने 'दि माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिन्दुस्तान' लिखा है। हिंदी भाषा में सर्व-प्रथम इतिहास का सूत्रपात यहीं से माना जाना चाहिए।
१९	विचित्रोपदेश	नकछेदी तिवारी	१९४४	अनेक कवियों का काव्य-संग्रह।
२०	कवि रत्नमाला	देवी प्रसाद मुंसफ	१९६८	राजपूताने के १०८ कवि काविदों की कविता जीवनी सहित दी गई है।
२१	हफीजुल्ला खाँ हजारा	हफी-जुल्ला खाँ	१९७२	दो भागों में अनेक कविय का कवित्त और सवैया संग्रह।
२२	संतवानी संग्रह तथा अन्य संतों की वानी	'अधम'	१९७२	जीवन चरित्र के सहित २४ संतों का काव्य-संग्रह।
२३	सूक्ति सरोवर	लाला भगवान दीन	१९७९	ब्रजभाषा के अनेक कवियों की साहित्यिक विषयों पर सूक्तियाँ।
२४	ब्रज माधुरीसार	वियोगी हरि	१९८०	ब्रज भाषा के २७ कवियों का जीवन चरित्र और उनकी चुनी हुई कविताएँ।
२५	सेलेक्सन्श फ्राम हिन्दी लिटरेचर	लाला सीताराम	१९७८ से १९८२	साहित्य के अनेक कवियों पर आलोचना और उनका काव्य-संग्रह।

वहिर्साक्ष्य के अन्तर्गत हमें अपने साहित्य के इतिहास के लिए मुख्य-मुख्य निम्नलिखित पुस्तकों से सामग्री मिलती है।

संख्या	ग्रन्थ का नाम	लेखक	सम्वत्	विवरण
				गया है। इसी के आधार पर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने 'दि माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिन्दुस्तान' लिखा है। हिंदी भाषा में सर्व-प्रथम इतिहास का सूत्रपात यहीं से माना जाना चाहिए।
१९	विचित्रोपदेश	नकछेदी तिवारी	१९४४	अनेक कवियों का काव्य-संग्रह।
२०	कवि रत्नमाला	देवी प्रसाद मुंसिफ	१९३८	राजपूताने के १०८ कवि कोविदों की कविता जीवनी सहित दी गई है।
२१	हफीजुल्ला खाँ हजारा	हफीजुल्ला खाँ	१९७२	दो भागों में अनेक कवियों का कवित्त और सवैया संग्रह।
२२	संतबानी संग्रह तथा अन्य संतों की बानी	'अधन'	१९७२	जीवन चरित्र के सहित २४ संतों का काव्य-संग्रह।
२३	सूक्ति सरोवर	लाला भगवान दीन	१९७९	ब्रजभाषा के अनेक कवियों की साहित्यिक विषयों पर सूक्तियाँ।
२४	ब्रज माधुरीसार	वियोगी हरि	१९८०	ब्रज भाषा के ८७ कवियों का जीवन चरित्र और उनकी चुनी हुई कविताएँ।
२५	सेलेक्शन्स फ्राम हिन्दी लिटरेचर	लाला सीताराम	१९७८ से १९८८	साहित्य के अनेक कवियों पर आलोचना और उनका काव्य संग्रह।

			विषय-प्रवेश
१—एन आउट लाइन आव् दि रिलीजस लिटरेचर आव् इण्डिया	फर्कुहार	१९०८	ग्रंथों के विवरण और उदाहरण धार्मिक सिद्धान्तों के प्रकाश में कवियों पर आलोचना

इन ग्रन्थों ने अधिकतर साहित्य के धार्मिक सिद्धान्तों पर ही प्रकाश डाला है। राजस्थान में अवश्य हम साहित्य की राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में कुछ जान सकते हैं। साधारणतः धर्म के आदर्शों का प्रचार करने वाले कवियों का ही बहिसाक्ष्य से हमें विवरण मिलता है। कारण यह है कि इस अङ्ग के ग्रन्थ ही धार्मिक दृष्टिकोण से लिखे गये हैं।

हमारे इतिहास की विशेषताएँ

हमारे साहित्य की सब से बड़ी विशेषता दर्शन और धर्म के उच्च आदर्शों के रूप में है। हृदय को परिष्कृत करने के साथ ही जीवन को पवित्र और सदाचारानुमोदित बनाने में हमारे साहित्य का बहुत बड़ा हाथ है. यों तो हिन्दू जीवन में दर्शन और धर्म में पार्थक्य नहीं है। हिन्दी साहित्य के भक्ति-काल में बात और भी स्पष्ट है। दर्शन ही धर्म के नियम का निर्माण करता है और धर्म ही दर्शन के लिए जीवन की पवित्रता प्रस्तुत करता है। इस प्रकार दर्शन और धर्म हमारे साहित्य के निर्माता हैं। दर्शन की जटिल विचारावली का प्रवेश तो हमारे साहित्य में संस्कृत से हुआ और धर्म की भावना का प्राधान्य राजनीतिक परिस्थिति से। एक बार धर्म की भावना के जागृत होते ही दर्शन के लिए एक उर्वर क्षेत्र मिल गया और हमारे धार्मिक काल की कविता भक्ति की आह्लादकारिणी भावना लिए अवतरित हुई। पर तुलसी और मीरा की कविता ने हमारे साहित्य को कितना गौरवान्वित किया यह समय ने प्रमाणित कर दिया है। धर्म का शासन इतने प्रधान रूप से हम साहित्य में देखते हैं कि रीतिकाल में भी भाषा को मांजने वाले कवि धर्म के वातावरण की अवहेलना

नहीं कर सके। नायक-नायिका भेद, नखशिख आदि में भी राधाकृष्ण की अनेक शृङ्गार-चेष्टाएँ—यद्यपि वे पार्थिवता के बहुत समीप थीं—प्रदर्शित हुईं। धर्म के आलोचकों ने इस राधाकृष्ण के सम्बन्ध को आत्मा और परमात्मा के मिलन का रहस्यवादमय रूप दिया है।[1] यद्यपि जीवन की भौतिकता का निरूपण इतने नग्न रूप से है कि ऐसा मानने में हमें संकोच है। जो हो, हम धर्म का अधिकारपूर्ण प्रभाव साहित्य में स्पष्टतया देखते हैं। आजकल भी ब्रजभाषा कविता के आदर्श वही राधाकृष्ण हैं। इस प्रकार चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हमारे साहित्य ने दर्शन और धर्म की भावना का संचित रूप रूपान्तर के साथ हमारे सामने रक्खा है, यही इसकी भारी विशेषता है।

साहित्य का महत्व

हमारे साहित्य ने इतिहास की बहुत रक्षा की है। चारणों के रासो और ख्यातों ने तथा राजाओं द्वारा सम्मानित राजकवियों के ऐतिहासिक काव्यों ने साहित्य के सौन्दर्य के साथ इतिहास की सामग्री भी सञ्चित कर रक्खी है। 'टाड राजस्थान' के लेखन में चारणों की रचनाओं से बहुत सहायता मिली है।[2]

इसी प्रकार निम्नलिखित कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा इतिहास के अनेक व्यक्तियों एवं घटनाओं पर प्रकाश डाला है।

संख्या	कवि	रचना	संवत्
१	नाल्ह	बीसलदेव रासो	१२१२
२	हेमचन्द्र	कुमार पाल चरित	१२१६

1 Radha Krishna literature is thus liable to be regarded as an allegory of the mystical union between God and Soul-

Preface to Love in Hindu Literature

by B. K. Sarkar [illegible]

2 Introduction to the Lays of Alha [illegible]

संख्या	कवि	रचना	संवत्
३	सोम प्रभसूरि	कुमार पाल प्रतिबोध	१२२०
४	चन्द	पृथ्वीराज रासो[1]	१२४७
५	धर्मसूरि	जम्बू स्वामी रासा	१२३६
६	मेरुतुंग	प्रबन्ध चिन्तामणि	१३६६
७	अंबदेव	संघपति समरा रासा	१३७१
८	ईश्वर सूरि	ललितांग चरित्र	१५६१
९	केशवदास	वीरसिंह देव चरित	१६६४
१०	,,	रतन बावनी	लगभग वही
११	भूषण	शिवराज भूषण	१६७४
१२	केशवदास चारण, गाडण	गुण रूपक	१६८१
१३	हेमचारण	महाराजा राजसिंह का गुण रूपक	१६८१
१४	बनारसीदास	अर्द्धकथानक	१६९८
१५	श्रीकृष्ण भट्ट	सांमर युद्ध	लगभग १७००
१६	जग्गा चारण[2]	वचनका (?)	१७१५
१७	मान	राजविलास	१७५२
१८	,,	लक्ष्मण शतक	लगभग वही
१९	,,	नीतिनिधान	लगभग वही
२०	,,	समरसार	लगभग वही
२१	गोरेलाल	छत्रप्रकाश	१७६४
२२	मुरलीधर	जङ्गनामा	१७६७
२३	हृषीकेश	जगत राज दिग्विजय	१७९६

१—प्रामाणिकता में सन्देह है।

२—राजपूताना में हिन्दी-पुस्तकों की खोज—देवीप्रसाद मुंसिफ, पृष्ठ १२

रामानन्द

रामानन्द के जीवन के विषय में बहुत कम सामग्री प्राप्त है। जो कुछ भी विवरण हमे मिलता है, उसमें रामानन्द की प्रशंसा मात्र हैं। नाभादास के भक्तमाल से भी हमे कुछ विशेष सहायता नहीं मिलती।[1] रामानन्दी सम्प्रदाय के लोग अपने सम्प्रदाय की सभी बातें गुप्त रखना चाहते हैं।[2]

रामानन्द का आविर्भाव-काल अभी भी संदिग्ध है। नाभादास के भक्तमाल के अनुसार रामानन्द श्री रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा मे चौथे शिष्य थे। यदि प्रत्येक शिष्य के लिए ७५ वर्ष का समय निर्धारित कर दिया जावे तो रामानन्द का आविर्भाव काल चौदहवीं शताब्दी का अन्त ठहरता है। रामानन्द की तिथि निर्णय मे एक साधन और है। रामानन्द पीपा और कबीर के गुरू थे, यह निर्विवाद सत्य है। मेकालिफ के अनुसार पीपा का जन्म संवत् १४८२ (सन् १४२५) मे हुआ। कबीरपंथी सन् १९३७ को ५३९ कबीराब्द मानते

---

१. श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियो ॥
अनन्तानन्द, कबीर, सुखा सुरसुरा पद्मावति नरहरि।
पीपा भवानन्द, रैदास, धना सेन, सुरसुर की घरहरि ॥
औरौ शिष्य प्रशिष्य एक ते एक उजागर।
विश्व मंगल आधार सर्वानन्द दशधा के आगर ॥
बहुत काल वपु धार कै प्रनत जनन को पार दियो।
श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियो ॥
—भक्तमाल (नाभादास), पृष्ठ २९७—२९८

२. The Ramanandis make it a special point to keep all details of their sect and its founder a profound secret
The Sikh Religion Vol V1 Page 100
M A Macauliffe.

है। इसके अनुसार कबीर का जन्म सन् १३९८ (सं० १४५५) सिद्ध होता है। रामानन्द कबीर और पीपा के गुरू होने के कारण इसी समय वर्तमान होंगे। अतः रामानन्द का समय सं० १४५५ और १४८२ के पूर्व ही होना चाहिए। भक्तमाल सटीक में रामानन्द की जन्म तिथि संवत् १३५६ दी गई है।[1] इस तिथि को वैष्णव धर्म के विशेषज्ञ सर आर. जी. भंडारकर भी मानते हैं।[2]

रामानन्द स्मार्त वैष्णव थे। उन्होंने श्री सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को स्वीकार करते हुए भी वर्णाश्रम का बन्धन दूर कर दिया था। वे इस सम्बन्ध में अपने सम्प्रदाय में बहुत स्वतन्त्र थे। उन्होंने श्री सम्प्रदाय के नारायण और लक्ष्मी के स्थान पर राम और सीता की भक्ति पर ज़ोर दिया।

रामानन्द ने शास्त्रों के आधार पर जाति-बन्धन के महत्व को व्यर्थ सिद्ध किया। उन्होंने भक्ति की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध कर प्रत्येक जाति

---

१ स्वामी श्री १०८ रामानन्द जी दयालु श्री प्रयागराज में कश्यप जी के समान भगवद्धर्म युक्त बड़भागी कान्य कुब्ज ब्राह्मण 'पुण्य सदन' के गृह में, विक्रमीय संवत् १३५६ के माघ कृष्ण सप्तमी तिथि में, सूर्य के समान सबों के सुखदाता, सात दण्ड दिन चढे चित्रा नक्षत्र सिद्धयोग कुम्भ लग्न में गुरुवार को 'श्री सुशीला देवी' जी से प्रगट हुए।

[illegible] ने निम्नलिखित [illegible] है

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] राम रिझायो ॥

सेन

ये रामानन्द के शिष्य और उनके समकालीन थे। अतः सेन का भी आविर्भाव काल विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी मानना चाहिए। सेन जाति के नाई थे और बाँधोगढ़ (रीवाँ) के अधिपति राजाराम की सेवा करते थे। सेन अपनी दिनचर्या में भक्ति के लिए भी समय पा लेते थे और संतों की सूक्तियाँ गाया करते थे। सेन के सम्बन्ध में कथा है कि एक बार साधुओं की सेवा के कारण वे राजाराम की सेवा में उचित समय पर नहीं पहुँच सके। स्वयं भगवान ने सेन का रूप रख राजा की सेवा की।[1] अवकाश मिलने पर जब सेन ने आकर राजा से

सत्य कह्यो तेहि शक्ति सुदृढ़ हरिशरण बतायो;
श्रीरामानन्द पद पाद, भयो अति भक्ति की सीवाँ।
गुण असंख्य निर्मोल, सन्त धरि राखत ग्रीवाँ॥
परस प्रणाली सरस भई, सकल विश्व मंगल कियो।
पीपा प्रताप जग वासना नाहर को उपदेश दियो॥

भक्तमाल (नाभादास) पृष्ठ ४७५

१. विदित बात जग जानिए, हरि भये सहायक सेन के॥
प्रभु दास के काज रूप नापित को कीनो।

क्षमा मांगी तो राजा ने सेन के उपयुक्त समय पर उपस्थित होने की बात कही। सेन ने समझ लिया कि ईश्वर को ही मेरे स्थान पर कष्ट करना पड़ा। सेन की भक्ति जान कर राजाराम उनके शिष्य हो गए। ग्रन्थ साहब में सेन की कई सूक्तियाँ उद्धृत है।

रैदास

इनके जीवन के सम्बन्ध मे भी अनेक अलौकिक कथाएँ कही जाती हैं, पर वे सब मान्य नहीं। इनका जन्म चमार के घर में हुआ था। रैदास इसे अनेक बार कहते है :—

> ऐसी मेरी जाति विख्यात चमारं।
> हृदय राम गोविन्द गुन सारं ॥[1]

> जाति भी ओछी करम भी ओछा, ओछा कसब हमारा।
> नीचे से प्रभु ऊँच कियो है कह रैदास चमारा ॥[2]

> तुम बिन सकल देव मुनि ढूँढ़ें कहूँ न पाऊँ जमपास छुड़इया।
> हमसे दीन, दयाल न तुमसे चरन सरन रैदास चमैया ॥[3]

ये रामानन्द के शिष्य और कबीर के समकालीन थे। अत: इनका आविर्भाव-काल कबीर के समय में ही मानना चाहिए, जो सं० [illegible]

> छिप्र नरहरी गही पानि दर्पन तहँ लीनो ॥
> तारश [illegible] तिहि काल भूप के तेल लगायो।
> उलटि राव भयो शिष्य, प्रगट परचा जब पायो
> स्याम रहत सनमुख सदा, ज्यों [illegible]
> विदित [illegible] जग जानिए [illegible] भये सद [illegible]

[illegible]

१ रैदास जी की बानी पृ० [illegible]

२ वही पृ० [illegible]

गुरु रैदास मिले मोहि पूरे, धुर से कलम भिड़ी
सतगुरु सैन दई जब आके, जोत में जोत रली ॥[1]

यदि यह पद प्रक्षिप्त नहीं है तो मीराबाई का रैदास को अपना गुरु स्वीकार करना माना जाना चाहिए।

रैदास ने अपने पूर्ववर्ती और समकालीन भक्तों के विषय में भी लिखा है। उनके निर्देश से ज्ञात होता है कि कबीर की मृत्यु उनके सामने ही हो गई थी।[2]

रैदास की आयु १२० वर्ष की मानी गई है। इनका एक पंथ अलग चल गया है, जिसे रैदासी पंथ कहते हैं। इस पंथ के अनुयायी गुजरात में बहुत हैं।

रैदास की कविता बहुत सरल और साधारण है। उसमें भाषा का बहुत चलता हुआ रूप है। पदों में अरबी फारसी शब्दों के सरल

---

came a disciple of Rudas, the Ramanandi, and then a devotee of Krishna.

An Outline of the Religious Literature of India Page 306.

J. N Farquhar

१. संतबानी संग्रह (मीराबाई) भाग २. पृष्ठ ७७

२. नामदेव कहिये जाति कै ओछ।
जाको जस गावै लोक ॥ ३ ॥
भगति हेत भगता के चले।
अङ्कमाल लै बीठल मिले ॥ ४ ॥
निरगुन का गुन देखो आई।
देही सहित कबीर सिधाई ॥ ५ ॥

—रैदास जी की बानी, पृष्ठ ३३

रूप है। एक पद में तो रैदास ने फारसी शब्दों की लड़ी बाँध दी है।[1]

रैदास ने यद्यपि ईश्वर के नाम सगुणात्मक रक्खे हैं पर उनका निर्देप निर्गुण ब्रह्म से है। रैदास जी के दो प्रधान ग्रन्थ हैं—रविदास की बानी और रविदास के पद।

रैदास जैसे निम्नजाति के संत को महत्त्व का स्थान देने में वैष्णव धर्म ने अपनी उदारता का पूर्ण परिचय दिया है।[2]

कबीर

कबीर के जीवनवृत्त के विषय में निश्चित रीति से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कबीर के जितने जीवन-वृत्त पाये जाते हैं, उनमें एक तो तिथि आदि के विषय में कुछ नहीं लिखा, दूसरे उनमें

---

१ खालिक सिकस्ता मैं तेरा।

दे दीदार उमेदगार, बेकरार जिव मेरा ॥ टेक ॥

औवल आखिर इलाह, आदम फरिस्ता बन्दा।

जिसकी पनह पीर पैगम्बर, मैं गरीब क्या गन्दा ॥

तू हाजरा हजूर जोग इक अवर नहीं है दूजा।

जिसके इसक आसरा नाहीं, क्या निवाज क्या पूजा ॥

नाली दोज, हनोज, बेवखत, कमि खिजमतगार तुम्हारा।

दरमादा दर ज्वाब न पावै, कह रैदास विचारा ॥

रैदास जी की बानी, पृष्ठ ६०

२ It is very creditable to the Vaishnava sect to have embraced in its fold and assigned honourable position to persons of such castes as Dom (Nabha) and chamar (Raidas)

Second Triennial Report of the Search for Hindi Manuscripts.

बहुत सी अलौकिक घटनाओं का समावेश है। स्वयं कबीर ने अपने विषय में कुछ बातें कह कर ही सन्तोष कर लिया है। उनसे हमें उनकी जाति और व्यक्तिगत जीवन का परिचय-मात्र मिलता है, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

कबीरपन्थ के ग्रन्थों में कबीर के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। उनमें कबीर की महत्ता सिद्ध करने के लिए उनसे गोरखनाथ[1] और चित्रगुप्त[2] तक से वार्तालाप कराया गया है। किन्तु उनकी जन्म-तिथि और जन्म के विषय पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। कबीर चरित्र बोध[3] ही में जन्म-तिथि के विषय में निर्देश किया गया है।

"कबीर साहब का काशी में प्रकट होना

सम्वत् चौदह सौ पंचपन विक्रमी जेष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार के दिन सत्य पुरुष का तेज काशी के लहर तालाब में उतरा। उस समय पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हो गया।.... उस समय अष्टानन्द वैष्णव तालाब पर बैठे थे, वृष्टि हो रही थी, बादल आकाश में घिरे रहने के कारण अंधकार छाया हुआ था, और बिजली चमक रही थी, जिस समय वह प्रकाश तालाब में उतरा उस समय समस्त तालाब जगमग-जगमग करने लगा और बड़ा प्रकाश हुआ। वह प्रकाश उस तालाब में ठहर गया और प्रत्येक दिशाएँ जगमगाहट से परिपूर्ण हो गईं।"

१—कबीर गोरख की गोष्ठी, हस्तलिखित प्रति सं० १८७०, (ना० प्र० सभा)

२—अमरसिंह बोध (कबीर सागर नं० ४) स्वामी युगलानन्द द्वारा संशोधित, पृष्ठ १८, सम्वत् १९६३, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई

३—कबीर चरित्र बोध (बोधसागर, स्वामी युगलानन्द द्वारा संशोधित [illegible]

कबीर-पंथियों में कबीर के जन्म के सम्बन्ध में एक दोहा प्रसिद्ध है :—

> चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाट ठए।
> जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए॥

इस दोहे के अनुसार कबीर का जन्म संवत् १४५५ की पूर्णिमा को सोमवार के दिन ठहरता है। बाबू श्यामसुन्दर दास का कथन है कि "गणना करने से संवत् १४५५ में जेष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चन्द्रवार को नहीं पड़ती। पद्य को ध्यान से पढ़ने पर संवत् १४५६ निकलता है, क्योंकि उसमें स्पष्ट शब्दों में लिखा है "चौदह सौ पचपन साल गए" अर्थात् उस समय तक संवत् १४५५ बीत गया था।[1] गणना से संवत् १४५६ में चन्द्रवार को ही ज्येष्ठ पूर्णिमा पड़ती है। अतएव इस दोहे के अनुसार कबीर का जन्म संवत् १४५६ की जेष्ठ पूर्णिमा को हुआ।

किन्तु गणना करने पर ज्ञात होता है कि चन्द्रवार को जेष्ठ पूर्णिमा नहीं पड़ती। चन्द्रवार के बदले मङ्गलवार दिन आता है।[2] इस प्रकार बाबू श्यामसुन्दरदास का कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। कबीर के जन्म के सम्बन्ध में उपर्युक्त दोहे में 'बरसायत' पर भी ध्यान नहीं दिया गया है।

भारत पथिक कबीरपंथी स्वामी श्री युगलानन्द ने 'बरसायत' पर एक नोट लिखा है :—

"बरसाइत अपभ्रंश है वट सावित्री का। यह वट सावित्री व्रत जेष्ठ की अमावस्या को होता है, इसकी विस्तारपूर्वक कथा महाभारत में है। उसी दिन कबीर साहब नीमा और नूरी को मिले थे। इस कारण से कबीर-पंथियों में बरसाइत महातम ग्रन्थ की

१—कबीर-ग्रन्थावली, प्रस्तावना, पृष्ठ १८

२—Indian Chronology—Part I, By Pillai

कथा प्रचलित है। और इसी दिन कबीरपंथी लोग बहुत उत्सव मनाते है।"[1]

यह नोट श्री युगलानन्द जी ने अनुराग सागर में वर्णित "कबीर साहेब का काशी में प्रकट होकर नीरू को मिलने की कथा" के आधार पर लिखा है। उस कथा की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

> यह विधि कछुक दिवस गयऊ। तजि तन जन्म बहुरि तिन पयऊ।
> मानुष तन जुलहा कुल दीन्हा। दोउ संयोग बहुरि विधि कीन्हा॥
> काशी नगर रहै पुनि सोई। नीरु नाम जुलाहा होई।
> नारि नवन ताव मग सोई। जेठ मास बरसाइत होई॥[2]

इस पद और टिप्पणी के आधार पर कबीर का जन्म जेठ की 'बरसाइत' (अमावस्या) को हुआ। अब यह देखना है कि जेठ की अमावस्या को चन्द्रवार पड़ता है या नहीं। यदि अमावस्या को चन्द्रवार पड़ता है तब तो कबीर का जन्म संवत् १४५५ ही मानना होगा और 'गए' का अर्थ १४५५ के 'व्यतीत होते हुए' मानना होगा। ऐसी स्थिति में दोहे का परिवर्ती भाग "पूरणमासी प्रगट भये" भी अशुद्ध माना जावेगा, क्योंकि 'बरसाइत' पूर्णमासी को नहीं पड़ती, वह अमावस्या को पड़ती है।

मोहनसिंह ने अपनी पुस्तक 'कबीर—हिज बायोग्रेफी' में इस किम्वदंती के दोहे का उल्लेख किया है। वे हिन्दी में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (सन् १९०२, पृष्ठ ...) का उल्लेख करते हुए सं० १४५२ (सन् १३९८) की पुष्टि करते हैं।[3]

---

१ अनुराग सागर (कबीर सागर नं० २) पृ० ८६ भारत पथिक कबीरपंथी स्वामी श्री युगलानन्द द्वारा संशोधित सं० १९६२ श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई

२ वही, पृ० ८६

कबीर पंथियों में कबीर के जन्म के सम्बन्ध में एक दोहा प्रसिद्ध है :—

> चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाट ठए।
> जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए॥

इस दोहे के अनुसार कबीर का जन्म संवत् १४५५ की पूर्णिमा को सोमवार के दिन ठहरता है। बाबू श्यामसुन्दर दास का कथन है कि "गणना करने से संवत् १४५५ में ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चन्द्रवार को नहीं पड़ती। पद्य को ध्यान से पढ़ने पर संवत् १४५६ निकलता है, क्योंकि उसमें स्पष्ट शब्दों में लिखा है "चौदह सौ पचपन साल गए" अर्थात् उस समय तक संवत् १४५५ बीत गया था।[1] गणना से संवत् १४५६ में चन्द्रवार को ही ज्येष्ठ पूर्णिमा पड़ती है। अतएव इस दोहे के अनुसार कबीर का जन्म संवत् १४५६ की ज्येष्ठ पूर्णिमा को हुआ।

किन्तु गणना करने पर ज्ञात होता है कि चन्द्रवार को ज्येष्ठ पूर्णिमा नहीं पड़ती। चन्द्रवार के बदले मङ्गलवार दिन आता है।[2] इस प्रकार बाबू श्यामसुन्दरदास का कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। कबीर के जन्म के सम्बन्ध में उपर्युक्त दोहे में 'बरसायत' पर भी ध्यान नहीं दिया गया है।

भारत पथिक कबीरपंथी स्वामी श्री युगलानन्द ने 'बरसायत' पर एक नोट लिखा है :—

"बरसाइत अपभ्रंश है वट सावित्री का। यह वट सावित्री व्रत जेष्ठ की अमावस्या को होता है, इसकी विस्तारपूर्वक कथा महाभारत में है। उसी दिन कबीर साहब नीमा और नूरी को मिले थे। इस कारण से कबीर-पंथियों में बरसाइत महातम ग्रन्थ की

१—कबीर-ग्रन्थावली, प्रस्तावना, पृष्ठ १८

२—Indian Chronology—Part I, By Pillai

कथा प्रचलित है। और उसी दिन कबीरपंथी लोग बहुत उत्सव मनाते है।"[1]

यह नोट श्री युगलानन्द जी ने अनुराग सागर मे वर्णित "कबीर साहेब का काशी मे प्रकट होकर नीरू को मिलने की कथा" के आधार पर लिखा है। उस कथा की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

> यह विधि कछुक दिवस गयऊ। तजि तन जन्म बहुरि तिन पयऊ।
> मानुष तन जुलहा कुल दीन्हा। दोउ संयोग बहुरि विधि कीन्हा॥
> काशी नगर रहे पुनि सोई। नीरू नाम जुलाहा होई।
> नारि गवन लाव मग सोई। जेठ मास बरसाइत होई॥[2]

इस पद और टिप्पणी के आधार पर कबीर का जन्म जेठ की 'बरसाइत' (अमावस्या) को हुआ। अब यह देखना है कि जेठ की अमावस्या को चन्द्रवार पड़ता है या नहीं। यदि अमावस्या को चन्द्रवार पड़ता है तब तो कबीर का जन्म संवत् १४५५ ही मानना होगा और 'गए' का अर्थ १४५५ के 'व्यतीत होते हुए' मानना होगा। ऐसी स्थिति मे दोहे का परिवर्ती भाग "पूरणमासी प्रगट भये' भी अशुद्ध माना जावेगा, क्योंकि 'बरसाइत' पूर्णमासी को नहीं पड़ती, वह अमावस्या को पड़ती है।

मोहनसिंह ने अपनी पुस्तक 'कबीर—हिज बायोग्रेफी' मे इस किम्वदंती के दोहे का उल्लेख किया है। वे हिन्दी मे हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज (सन् १९०२, पृष्ठ [illegible]) का उल्लेख करते हुए सं० १४५५ (सन् १३९८) की पुष्टि करते हैं।[3]

---

१ अनुराग सागर (कबीर सागर नं० [illegible]) पृष्ठ ८६ भारत पथिक कबीरपंथी स्वामी श्री युगलानन्द द्वारा संशोधित सं० १९६२ श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई

अर्थात् सिकन्दर लोदी के शासक होने के दो वर्ष बाद माने तो सिकन्दर लोदी की मृत्यु तक कबीर केवल २६ वर्ष के होंगे। किन्तु मृत्यु के बहुत पहले ही सिकन्दर लोदी कबीर के सम्पर्क में आ गया था। यह समय भी निश्चित करना आवश्यक है।

श्री भक्तमाल सटीक[1] में प्रियादास की टीका में एक घनाक्षरी है, जिसके अनुसार कबीर और सिकन्दर लोदी का साक्षात्य हुआ था। वह घनाक्षरी इस प्रकार है :—

> देखि कै प्रभाव, फेरि उपज्यो अभाव द्विज;
>
> आयो पातसाह सो सिकन्दर सुनाँव है।
>
> विमुख समूह संग माता मिलाय लई,
>
> जाय कै पुकारे "जू दुखायो सब गाँव है॥"
>
> ल्यावो रे पकर वाको देखौं मैं मकर कैसो,
>
> अकर मिटाऊँ गाढ़े जकर तनाव है।
>
> आनि ठाढ़े किये, काजी कहत सलाम करौ,
>
> जानै न सलाम, जानै राम गाढ़े पाँव है॥

इस घनाक्षरी के नीचे सीतारामशरण भगवानप्रसाद का एक नोट है :—

यह प्रभाव देख कर ब्राह्मणों के हृदय में पुनः मत्सर उत्पन्न हुआ। वे सब काशीराज को भी श्री कबीर जी के वश में जान कर, बादशाह सिकन्दर लोदी के पास जो आगरे से काशी जी आया था पहुँचे। श्री कबीर जी की माँ को भी मिला के साथ में ले के मुसलमानों सहित बादशाह की कचहरी में जाकर उन सबने पुकारा कि कबीर शहर भर में उपद्रव मचा रहा है . आदि।

१—भक्तमाल सटीक पृष्ठ ६८० सीतारामशरण भगवानप्रसाद
प्रथम बार, लखनऊ सन् १९१३)

इससे ज्ञात होता है कि जब सिकन्दर लोदी आगरे से काशी आया, उस समय वह कबीर से मिला। इतिहास से ज्ञात होता है कि सिकन्दर लोदी विहार के हुसेनशाह शरकी से युद्ध करने के लिए आगरे से काशी आया था। जान ब्रिग्स के अनुसार यह घटना हिजरी ९०० [अर्थात् सन् १४९४] की है।[1]

यदि कबीर सन् १४९४ में सिकन्दर लोदी से मिले होंगे तो वे उस समय बील के अनुसार केवल ४ वर्ष के रहे होंगे। उस समय उनका इतनी प्रसिद्धि पाना कि वे सिकन्दर लोदी की अप्रसन्नता के पात्र बन सकें, सम्पूर्णतया असम्भव है। अतएव बील के द्वारा दी हुई तिथि भ्रमात्मक है।

यदि बील के अनुसार कबीर की जन्म-तिथि सन् १४९० (सं० १५४७) मानी जावे तो सिकन्दर लोदी के बनारस आने पर (मेकालिफ के निर्णयानुसार सन् १४८८ में) कबीर तो पैदा ही नहीं हुए; उनके जन्म लेने के लिए दो वर्ष बाकी थे। अतः बील के द्वारा दी हुई कबीर की जन्म तिथि स्पष्टतः अशुद्ध है।

एम्० ए० मेकालिफ के अनुसार सिकन्दर लोदी सन् १४९४ के पूर्व ही बनारस आया था। जिस वर्ष वह राज्य-सिंहासनासीन हुआ था, उसी वर्ष उसने बनारस में कुछ समय व्यतीत किया। उसके

है सन् १४२० से १५१८ (अर्थात् संवत् १४९७ से १५७५) यह समय सिकन्दर लोदी का समय है और कबीर का इस समय रहना प्रामाणिक है। जे० एन० फरकहार सिकन्दर लोदी का सिंहासनासीन होना सन् १४८९ से १५१७ तक मानते हैं। यह तिथि मेकालिफ की तिथि के लगभग ही है। फरकहार भी कबीर का साक्ष्य सिकन्दर लोदी से होना स्वीकार करते हैं, पर वे कोई निश्चित तिथि नहीं देते।[1]

अतः कबीर की जन्म-तिथि किसी ने भी निश्चित प्रकार से नहीं दी। बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार प्रचलित दोहे के आधार पर जेष्ठ पूर्णिमा, चन्द्रवार संवत् १४५६ और अनुराग सागर के आधार पर जेष्ठ अमावस्या संवत् १४५५ कबीर की जन्म-तिथि है। जेष्ठ पूर्णिमा संवत् १४५६ को चन्द्रवार नहीं पड़ता अतएव यह तिथि अनिश्चित है। ऐसी परिस्थिति में हम कबीर की जन्म-तिथि जेष्ठ अमावस्या संवत १४५५ ही मानते हैं। कबीरपंथियों में भी जेठ बरसाइत सं० १४५५ मान्य है, जो अनुराग सागर द्वारा स्पष्ट की गई है।

कबीर की मृत्यु की तिथि भी संदिग्ध ही है। धर्मदास के अतिरिक्त कबीर के दो प्रधान शिष्य थे, रीवाँ के वीरसिंहदेव बघेला और बिजली खाँ। धर्मदास लिखित निर्भय-ज्ञान के अनुसार जब कबीर की मृत्यु हुई

He used to be placed between 1380 and 1420.

The Oxford History of India by V A Smith Page 2 1 (foot note)

1 He was brought before the Emperor Sikandar Lodi, who reigned [illegible] 1489 to 1517 The [illegible] thus [illegible] here that he [illegible] ground of H[illegible] [illegible] at Magher [illegible]

An Outline of the Religious Literature of [illegible]

धर्मदास के अनुसार इन दो तिथियों में कौन सी तिथि ठीक है, यह कहना कठिन है।

मृत्यु के सम्बन्ध में भक्तमाल में यह दोहा है :—

> पन्द्रह सै उनचास में मगहर कीन्हों गौन।
> अगहन सुदि एकादशी, मिले पौन मों पौन ॥[1]

इसके अनुसार कबीर की मृत्यु सं० १५४९ में हुई। कबीरपंथियों में प्रचलित दोहे के अनुसार यह तिथि सं० १५७५ कही गई है :—

> सम्वत् पन्द्रह सै पचहत्तरा, कियो मगहर[2] को गौन।
> माघ सुदी एकादशी, रलो पौन में पौन ॥[3]

सिकन्दर लोदी सन् १४९४ (संवत् १५५१) में कबीर से मिला था।[4] अतएव भक्तमाल के दोहे के अनुसार कबीर की मृत्यु-तिथि अशुद्ध है। कबीर की मृत्यु सम्वत् १५५१ के बाद ही मानी जानी चाहिए।

नागरी प्रचारिणी सभा से कबीर-ग्रंथावली का सम्पादन सं० १५६१ की हस्तलिखित प्रति के आधार पर किया गया है।[5] इस प्रति में वे बहुत से पद और साखियाँ नहीं हैं, जो ग्रंथ साहब में संकलित हैं। इस सम्बन्ध में बाबू श्यामसुन्दरदास जी का कथन है :—

---

१ भक्तमाल सटीक पृ० [illegible]

२ अयोध्या से [illegible] पूर्व और गोरखपुर से १५ मील पश्चिम में एक स्थान जिसके सम्बन्ध में यह विश्वास है कि यहाँ मरने वाले को गधे की योनि में जन्म लेना पड़ता है।

३ [illegible]

४ [illegible]

५ [illegible] पृ० [illegible]

"इससे यह मानना पड़ेगा कि या तो यह संवत् १५६१ वाली प्रति अधूरी है अथवा इस प्रति के लिखे जाने के १०० वर्ष के अन्दर बहुत सी साखियाँ आदि कबीरदास जी के नाम से प्रचलित हो गई थीं, जोकि वास्तव में उनकी न थीं। यदि कबीरदास का निधन सम्वत् १५७५ में मान लिया जाता है तो यह बात असंगत नहीं जान पड़ती कि इस प्रति के लिखे जाने के अनन्तर १४ वर्ष तक कबीरदास जी जीवित रहे और इस बीच में उन्होंने और बहुत से पद बनाए हों जो ग्रंथसाहब में सम्मिलित कर लिए गए हों।"[1]

बाबू साहब का यह मत समीचीन जान पड़ता है। कबीरपंथियों के विचार से साम्य रखने के कारण मृत्यु-तिथि सं० १५७५ ही मान्य है। इस प्रकार कबीर की जन्म-तिथि सं० १४५५ और मृत्यु-तिथि सं० १५७५ ठहरती है। इसके अनुसार वे १२० वर्ष तक जीवित रहे।

कबीर की जाति में भी अभी तक संदेह है। कबीरपंथी तो उन्हें जाति से परे मानते हैं।[2] किन्तु किम्वदन्ती है कि वे एक ब्राह्मणी विधवा के पुत्र थे। विधवा-कन्या का पिता श्री रामानन्द का बड़ा भक्त था। एक बार श्री रामानन्द उस विधवा-कन्या के प्रणाम करने पर उसे 'पुत्रवती' होने का आशीर्वाद दे बैठे। ब्राह्मण ने जब अपनी कन्या के विधवा होने की बात कही तब श्री रामानन्द ने अपना [illegible]। आशीर्वाद के फलस्वरूप उस विधवा कन्या के एक पुत्र हुआ, जिसे उसने लोकलाज के डर से लहरतारा तालाब के किनारे डाल दिया। कुछ देर बाद उसी रास्ते से नीरू जुलाहा अपनी [illegible] का गौना करा कर ला रहा था। नवजात शिशु को [illegible] उठा लिया और उसको अपने पुत्र के

[1] [illegible]

[2] [illegible], सकल पुरुष मानक के बानी ॥

[3] [illegible]

समान पालन किया, इसीलिए कबीर जुलाहे कहलाए, यद्यपि वे एक ब्राह्मण विधवा के पुत्र थे।

महाराज रघुराजसिंह की "भक्तमाला रामरसिकावली" में भी इस घटना का उल्लेख है, पर कथा में थोड़ा सा अन्तर आ गया है।[1] कुछ कबीरपंथियों का मत है कि कबीर ब्राह्मण की विधवा-कन्या के पुत्र नहीं थे, वरन् रामानन्द के आशीर्वाद के फल-स्वरूप वे उसकी हथेली से उत्पन्न हुए थे, इसीलिए वे करवीर (हाथ के पुत्र) अथवा (करवीर का अपभ्रंश) 'कबीर' कहलाए। बात जो भी हो, कबीर का जन्म जनश्रुति ब्राह्मण-कन्या से जोड़ती है। किन्तु प्रश्न यह है कि यदि कबीर विधवा की सन्तान थे तो यह बात लोगों को ज्ञात कैसे हुई? उसने तो कबीर को लहरतारा के समीप छिपा कर रख दिया था। और यदि ब्राह्मण-विधवा को वरदान देने की बात लोग जानते थे तो उस विधवा ने अपने बालक को छिपाने का प्रयत्न ही क्यों

---

१ रामानन्द रहे जग स्वामी। ध्यावत निसदिन अन्तरयामी ॥
तिनके ढिग विधवा एक नारी। सेवा करै बड़ो श्रमधारी ॥
प्रभु एक दिन रह ध्यान लगाई। विधवा तिय तिनके ढिग आई ॥
प्रभुहि कियो वंदन बिन दोपा। प्रभु वह पुत्रवती भरि घोपा ॥
तब तिय अपनो नाम बखाना। यह विपरीत दियो बरदाना ॥
स्वामी कह्यो निकस मुख आयो। पुत्रवती हरि तेहि बनायो ॥
है है पुत्र कलङ्क न लागी। तब सुत ह्वैहै हरि अनुरागी ॥
तब तिय-कर फुलका परि आयो। कछु दिन में ताते सुत जायो ॥
जनत पुष्प नभ बजे नगारा। तदपि जननि उर सोच अपारा ॥
सो सुत लै तिय फेंक्यो दूरी। चली जुलाहिन तहँ एक रूरी ॥
सो बालकहि अनाथ निहारी। गोद राखि निज भवन सिधारी ॥
लालन पालन विध बहु भांती। सेयो सुतहि नारि दिन राती ॥
—भक्तमाला रामरसिकावली

"इससे यह मानना पड़ेगा कि या तो यह संवत् १५६१ वाली प्रति अधूरी है अथवा इस प्रति के लिखे जाने के १०० वर्ष के अन्दर बहुत सी साखियाँ आदि कबीरदास जी के नाम से प्रचलित हो गई थीं, जोकि वास्तव मे उनकी न थीं। यदि कबीरदास का निधन सम्वत् १२७५ मे मान लिया जाता है तो यह बात असंगत नहीं जान पड़ती कि इस प्रति के लिखे जाने के अनन्तर १४ वर्ष तक कबीरदास जी जीवित रहे और इस बीच में उन्होने और बहुत से पद बनाए हों जो ग्रंथसाहब में सम्मिलित कर लिए गए हो।"[1]

बाबू साहब का यह मत समीचीन जान पड़ता है। कबीरपंथियों के विचार से साम्य रखने के कारण मृत्यु-तिथि सं० १५७५ ही मान्य है। इस प्रकार कबीर की जन्म-तिथि सं० १४५५ और मृत्यु-तिथि सं० १५७५ ठहरती है। इसके अनुसार वे १२० वर्ष तक जीवित रहे।

कबीर की जाति मे भी अभी तक संदेह है। कबीरपंथी तो उन्हें जाति से परे मानते है।[2] किन्तु किम्वदन्ती है कि वे एक ब्राह्मणी विधवा के पुत्र थे। विधवा-कन्या का पिता श्री रामानन्द का बड़ा भक्त था। एक बार श्री रामानन्द उस विधवा-कन्या के प्रणाम करने पर उसे 'पुत्रवती' होने का आशीर्वाद दे बैठे। ब्राह्मण ने जब अपनी कन्या के विधवा होने की बात कही तब भी रामानन्द ने अपना वचन नहीं लौटाया। आशीर्वाद के फल-स्वरूप उस विधवा कन्या के एक पुत्र हुआ, जिसे उसने लोकलाज के डर से लहरतारा तालाब के किनारे छिपा दिया। कुछ देर बाद उसी रास्ते से नीरू जुलाहा अपनी नव-विवाहिता स्त्री नीमा को लेकर जा रहा था। नवजात शिशु का सौन्दर्य देखकर उन्होंने उसे उठा लिया और उसको अपने पुत्र के

---

१ कबीर ग्रन्थावली, भूमिका, पृष्ठ २१

२ है अनाम [illegible] अविनाशी, अक्षर पुरुष सत्यलोक के वासी ॥

—श्री कबीर साहब का जीवन-चरित्र (श्री जनकलाल) नरसिंहपुर (१९०[illegible]

समान पालन किया, इसीलिए कबीर जुलाहे कहलाए, यद्यपि वे एक ब्राह्मण विधवा के पुत्र थे।

महाराज रघुराजसिंह की "भक्तमाला रामरसिकावली" में भी इस घटना का उल्लेख है, पर कथा में थोड़ा सा अन्तर आ गया है।[1] कुछ कबीरपंथियों का मत है कि कबीर ब्राह्मण की विधवा-कन्या के पुत्र नहीं थे, वरन् रामानन्द के आशीर्वाद के फल-स्वरूप वे उसकी हथेली से उत्पन्न हुए थे, इसीलिए वे करबीर (हाथ के पुत्र) अथवा (करबीर का अपभ्रंश) 'कबीर' कहलाए। बात जो भी हो, कबीर का जन्म जनश्रुति ब्राह्मण-कन्या से जोड़ती है। किन्तु प्रश्न यह है कि यदि कबीर विधवा की सन्तान थे तो यह बात लोगों को ज्ञात कैसे हुई? उसने तो कबीर को लहरतारा के समीप छिपा कर रख दिया था। और यदि ब्राह्मण-विधवा को वरदान देने की बात लोग जानते थे तो उस विधवा ने अपने बालक को छिपाने का प्रयत्न ही क्यों

---

१ रामानन्द रहे जग स्वामी। ध्यावत निशदिन अन्तरयामी ॥
तिनके ढिग विधवा एक नारी। सेवा करै बड़ो श्रमधारी ॥
प्रभु एक दिन रह ध्यान लगाई। विधवा तिय तिनके ढिग आई ॥
प्रभुहिं कियो वंदन बिन दोषा। प्रभु कह पुत्रवती भरि घोषा ॥
तब तिय अपनो नाम बखाना। यह विपरीत दियो बरदाना ॥
स्वामी कह्यो निकस मुख आयो। पुत्रवती हरि तेहिं बनायो ॥
ह्वै है पुत्र कलङ्क न लागी। तव सुत ह्वैहै हरि अनुरागी ॥
तब तिय-कर फुलका परि आयो। कछु दिन में ताते सुत जायो ॥
जनत पुत्र नभ बजे नगारा। तदपि जननि उर सोच अपारा ॥
सो सुत लै तिय फेंक्यो दूरी। कढ़ी जुलाहिन तहँ एक रूरी ॥
सो बालकहिं अनाथ निहारी। गोद राखि निज भवन सिधारी ॥
लालन पालन किय बहु भाँती। सेयो सुतहिं नारि दिन राती ॥
—भक्तमाला रामरसिकावली

किया ? रामानन्द के आशीर्वाद से तो कलङ्क-कालिमा की आशंका भी नहीं हो सकती थी। इस प्रकार कबीर की यह कलङ्क-कथा निर्मूल सिद्ध होती है। इस कथा के उद्‌गम के तीन कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि इससे रामानन्द के प्रभुत्व का प्रचार होता है। वे इतने प्रभावशाली थे कि अपने आशीर्वाद से एक विधवा कन्या के उदर से पुत्रोत्पत्ति कर सकते थे। दूसरा कारण यह हो सकता है कि कबीर के पंथ में बहुत से हिन्दू भी सम्मिलित थे। अपने गुरु को जुलाहा की हीन और नीच जाति से हटा कर वे उनका सम्बन्ध पवित्र ब्राह्मण जाति से जोड़ना चाहते थे। और तीसरा कारण यह है कि कुछ कट्टर हिन्दू और मुसलमान जो कबीर की धार्मिक उच्छृङ्खलता से क्षुब्ध थे, उन्हें अपमानित और कलंकित करने के लिए उनके जन्म का सम्बन्ध इस कलङ्क-कथा से घोषित करना चाहते थे।

कबीर के जन्म-सम्बन्ध में प्राप्त हुए कुछ प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि वे ब्राह्मण-विधवा की संतान न होकर मुसलमानी कुल में ही पैदा हुए थे। सबसे अधिक प्रामाणिक उद्धरण हमें आदि श्री गुरुग्रंथ साहब में मिलता है। उक्त ग्रंथ में श्री रैदास के जो पद संग्रहीत हैं, उनमें एक पद इस प्रकार है :—

मलार बाणी भगत रविदास जी की[1]

---

1. ਉ सतगुरु प्रसादि ॥. ....॥३॥१ ॥
मलार ॥ हरि जपत तेऊ जना पदम कवलासपति ता सम तुलि नहीं आन कोऊ। एक ही एक अनेक अनेक होइ बिसथरिओ आनरे आनभरपूरे सोऊ ॥ रहाउ ॥ जाकै भगवतु लेखीऐ अवरु नहीं पेखीऐ तास की जाति आछोप छीपा ॥ बिआस यहि लेखीऐ सनक महि पेखीऐ नाम की नामना सपत दीपा ॥१॥ जाकै ईदि बकरीदि कुल गऊ रे बधु करहि मानीअहि सेख सहीद पीरा ॥ जाकै बाप वैसी करी पूत ऐसी सरी तिहू रे लोक परसिध कबीरा ॥२॥

मलार॥हरिजपततेऊजनांपद्मकवलासपतितासमतुलिनहीआन कोऊ॥ एकहीएकअनेकअनेकहोइविसथरिओआनरेआनभरपूरिसोऊ ॥ रहाऊ ॥ जाकैभागवतुलेखीऐअवरुनहीपेखीऐतासकीजातिआछोपछीपा । विआस-महिलेखीऐसनकमहिपेखीऐनामकीनामनासपतदीपा ॥ १ ॥

जाकैईदिबकरीदिकुलगऊरेबधुकरहिमानीअहिसेखसहीदपीरा ॥ जाकै बापवैसीकरीपूतऐसीसरीतिहूरेलोकपरसिधकबीरा ॥२॥ जाकेकुटुम्बकेढेढ सबढोरढोवंतफिरहिअजहुबनारसीआसपासा । आचारसहितविप्रकरहिडंड-उतितिनितनैरविदासदासानुदासा ॥ ३ ॥ २ ॥

रैदास के इस पद मे नामदेव, कबीर और स्वयं रैदास का परिचय दिया गया है। नामदेव छीपा (दर्जी) जाति के थे। कबीर जाति के मुसलमान थे, जिनके कुल मे ईद बकरीद के दिन गऊ का वध होता था, जो शेख शहीद और पीर को मानते थे। उन्होने अपने बाप के विपरीत आचरण करके भी तीनो लोको मे यश की प्राप्ति की। रैदास चमार की जाति के थे जिनके वंश मे मरे हुये पशु ढोये जाते है और जो बनारस के निवासी थे।

आदि श्री गुरुग्रन्थ के इस पद के अनुसार कबीर निश्चय ही मुसलमान वंश मे उत्पन्न हुए थे। आदि ग्रन्थ का सम्पादन संवत् १६६१ मे हुआ था। सिक्खो का धार्मिक ग्रंथ होने के कारण इसके पाठ मे अणुमात्र भी अन्तर नही हुआ। निर्देशित आदि श्री गुरुग्रंथ साहिब गुरुमुखी मे लिखे हुए इसी ग्रंथ की अविकल प्रति है।[१] इस प्रकार

जाके कुटुम्ब के ढेढ़ सभ ढोर ढोवंत फिरहि अजहु बनारसी आसपासा ॥
अचार सहित बिप्र करहि डंडउति तिनि तनै रविदास दासानुदासा । ३ ॥[२]

—आदि श्रीगुरुग्रन्थसाहिब जी, पृष्ठ ६६८
भाई मोहनसिंह वद तरनतारन, अमृतसर)
[illegible]

[१] [illegible] और [illegible] के देखते हुए [illegible]
[illegible] दास के [illegible] और [illegible]

यह प्रति और उसका पाठ अत्यन्त प्रामाणिक है। इस प्रमाण का आधार श्री मोहनसिंह ने भी कबीर की जाति के निर्णय करने में लिया है।[1] भक्तमाल में इसका कोई प्रमाण नहीं है।[2]

सर मानियर विलियम्स भी अपने ग्रन्थ ब्रह्मनिज्म एण्ड हिन्दूइज्म

भी बहुत कम रखने का दृढ़ विचार और ऐसा ही बरताव किया गया। फिर यह विचार हुआ कि शब्द के स्थान शब्द तथा और हिन्दी शब्द या पद हिन्दी की लेखन प्रणाली के अनुसार लिखे जावें या यथातथ्य गुरुमुखी के अनुसार ही लिखे जावें ? इस पर बहुत विचार करने से यही निश्चय हुआ कि महान पुरुषों की तरफ़ से जो अक्षरों के जोड़ तोर मन्त्र रूप दिव्य वाणी में हुआ करते हैं, उनके मिलाप में कोई अमोघ शक्ति होती है, जिसको सर्व-साधारण हम लोग नहीं समझ सकते। परन्तु उनके पठन-पाठन में यथा तथ्य उच्चारन से ही पूर्ण सिद्ध प्राप्त हो सकती है। इसके सिवाय यह भी है कि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के प्रति-शत ८० शब्द ऐसे हैं जो हिन्दी पाठक ठीक-ठीक समझ सकते हैं। इस विचार के अनुसार ही यह हिन्दी बीड़ गुरमुखी लिखत अनुसार ही रखी गई है अर्थात् केवल गुरमुखी से अक्षरों के स्थान हिन्दी (देवनागरी) अक्षर ही किये गये हैं—

वही ग्रन्थ, प्रकाशक की विनय, पृष्ठ १

१. Kabir—His Biography, By Mohan Singh
Publisher Atma Ram and Sons, Lahore 1931.

२. कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरशनी ॥
भक्ति विमुख जो धरम ताहि अधरम करि गायो।
जोग जग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो ॥
हिन्दू तुरुक प्रमान रमैनी सबदी साखी।
पक्षपात नहिं बचन सबहिं के हित की भाखी ॥
आरूढ़ दशा है जगत पर मुख देखी नाहिन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरशनी ॥
—भक्तमाल (नाभादास) पृष्ठ ४६१-४६२

में कबीर को मुसलमान मानते हैं।[१] कबीर नाम ही मुसलमानी धर्म का सूचक है।

दूसरा प्रमाण सद्गुरु गरीबदास जी साहिब की वाणी[२] से प्राप्त होता है। इसमें 'पारख का अङ्ग' ॥ २२ ॥ के अन्तर्गत कबीर साहब का जीवन चरित्र दिया हुआ है। प्रारम्भ में ही लिखा हुआ है :—

गरीब सेवक होय करि उतरे
　　　इस पृथ्वी के माँहि
जीव उधारन जगत गुरु बार बार बलि जाँहि ॥ ३८० ॥
गरीब काशी पुरी कस्त किया, उतरे अधर मँझार।
मोमन को मुजरा हुआ, जङ्गल में दीदार ॥ ३८१ ॥
गरीब कोटि किरण शशि भान सुधि, आसन अधर विमान।
परसत पूरण ब्रह्म कू, शीतल पिंडरु प्राण ॥ ३८२ ॥
गरीब गोद लिया मुख चूँमि करि, हेम रूप झलकन्त।
जगर मगर काया करै, दमकैं पदम अनन्त ॥ ३८३ ॥
गरीब काशी उमटी गुल भया, मोमन का घर घेर।
कोई कहै ब्रह्म विष्णु हैं, कोई कहै इन्द्र कुबेर[३] ॥ ३८४ ॥

---

१ His name Kabir—an Arabic word meaning 'Great'—gives support to the new generally accepted opinion that he was originally a Musalman.

Brahmanism ... H ... 158-1...

... W... n...

२ श्री सद्गुरु गरीबदास जी साहिब की वाणी
सम्पादक ... गरीबदास' ...
... सुधारक ...

३. वही ग्रन्थ, पृ० ...

इस अवतरण से यह ज्ञात होता है कि कबीर ने काशी में गोसैं [illegible] (मोमिन) ही को दर्शन देकर अपने मत में [illegible] किया। और मोमिन ने दिल से कबीर का गुरु रूप जान कर उनके पारलौकिक रूप के दर्शन किये। इस अवतरण से भी कबीर की रामानन्द शिष्यता से [illegible] की किंवदन्ती गलत हो जाती है। सद्गुरु गरीबदास जी साहिब की बाणी भी प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाना चाहिए, क्योंकि वह संवत् १८६० की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति के आधार पर प्रकाशित किया गया है।[1]

इन दो प्रमाणों से कबीर का मुसलमान होना स्पष्ट है। इन्होंने अपनी जुलाहा जाति का परिचय भी स्पष्ट रूप से अनेक स्थानों पर दिया है :—

१ तननां बुननां तज्या कबीर, राम नाम लिखि लिया शरीर ॥[2]

२ जुलहे तनि बुनि पान न पावल, फारि बुनी दस ठाईं हो ॥[3]

३ जाति जुलाहा मति को धीरे,
हरषि हरषि गुण रमै कबीर ॥[4]

---

१. यह ग्रन्थ साहिब हस्तलिखित विक्रम संवत् १८६० मिति वैशाख मास का लिखा हुआ मेरे को मुकाम छिलाणा जिल्ला रोहतक में मिला हुआ जैसा का तैसा छापा है। जिसको असल लिखा हुआ ग्रन्थ साहिब देखना हो वह बरोदे में श्री जुम्मादादा व्यायामशाला प्रो० माणेकराव के यहाँ कायम के लिए रखा गया है सो सब वहाँ से देख सकते हैं—

अजरानन्द गरीबदासी—वाणी की प्रस्तावना

२. कबीर ग्रन्थावली (नागरी प्रचारिणी सभा) १६२८, पृष्ठ ६५

३. वही, पृष्ठ १०४

४. वही पृष्ठ १२८

४ तूँ—ब्राह्मण मैं कासी का जुलाहा,

चीन्हि न मोर गियाना।[1]

५ जाति जुलाहा नाँम कबीरा,

बनि बनि फिरौं उदासी।[2]

६ कहत कबीर मोहि भगत उमाहा,

कृत करणीं जाति भया जुलाहा॥[3]

७ ज्यूँ जल मैं जल पैसि न निकसै,

यूँ ढुरि मिल्या जुलाहा।[4]

८ गुरु प्रसाद साध की संगति,

जग जीतैं जाइ जुलाहा॥[5]

कबीर के छठे उद्धरण से तो यही ध्वनि निकलती है कि पूर्व-कर्मानुसार ही उन्हे जुलाहे के कुल मे जन्म मिला। "भया" शब्द इस अर्थ का पोषक है। अतः कबीर मुसलमान जुलाहे थे और उन पर मुसलमानी प्रभाव यथेष्ट-मात्रा मे था।[6]

१	वही	पृष्ठ १७३
२	,,	,, १८१
३	,,	,, ,,
४	,,	,, २२१
५	,,	,, ,,

६। The influence of Islam is clearly manifest in the teachings of Namdeo, Kabir and Nanak, who all condemned caste, polytheism and idolatory and pleaded for true faith, sincerity and purity of life.

A Short History of Muslim Rule in India, page 251.
Dr Ishwari Prasad.

कबीर बचपन से ही धर्म की ओर आकर्षित थे। वे भजन गाया करते थे और लोगों को उपदेश दिया करते थे, पर 'निगुरा' (बिना गुरु के) होने के कारण लोगों में आदर के पात्र नहीं थे और उनके भजनों अथवा उपदेशों को भी कोई सुनना पसन्द नहीं करता था। इस कारण वे अपना गुरु खोजने की चिन्ता में व्यस्त हुए। उस समय काशी में रामानन्द की बड़ी प्रसिद्धि थी। कबीर उन्हीं के पास गये, पर कबीर के मुसलमान होने के कारण उन्होंने उन्हें अपना शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया। वे हताश तो बहुत हुए, पर उन्होंने एक चाल सोची। प्रातःकाल अँधेरे ही में रामानन्द पञ्चगङ्गा घाट पर नित्य स्नान करने के लिए जाते थे। कबीर पहले से ही उनके रास्ते में घाट की सीढ़ियों पर लेट रहे। रामानन्द जैसे ही स्नानार्थ आए वैसे ही उनके पैर की ठोकर कबीर के सिर में लगी। ठोकर लगने के साथ ही रामानन्द के मुख से पश्चात्ताप के रूप में 'राम' 'राम' शब्द निकल पड़ा। कबीर ने उसी समय उनके चरण पकड़ कहा कि महाराज, आज से आपने मुझे राम नाम से दीक्षित कर अपना शिष्य बना लिया। आज से आप मेरे गुरु हुए। रामानन्द ने प्रसन्न हो कबीर को हृदय से लगा लिया। उसी समय से कबीर रामानन्द के शिष्य कहलाने लगे। बाबू श्यामसुन्दरदास ने अपनी पुस्तक कबीर ग्रंथावली में लिखा है :—

"केवल किंवदन्ती के आधार पर रामानन्द को उनका गुरु मान लेना ठीक नहीं। यह किंवदन्ती भी ऐतिहासिक जाँच के सामने ठीक नहीं ठहरती। रामानन्द जी की मृत्यु अधिक से अधिक देर में मानने से संवत् १४६७ में हुई, इससे १४ या १५ वर्ष पहले भी उनके होने का प्रमाण विद्यमान है। उस समय कबीर की अवस्था ११ वर्ष की रही होगी, क्योंकि हम ऊपर उनका जन्म १४५६ सिद्ध कर आए हैं। ११ वर्ष के बालक का घूम फिर कर उपदेश देने लगना सहसा ग्राह्य नहीं जान पड़ता। और यदि रामानन्द जी की मृत्यु संवत् [illegible] के लग

भग हुई तो यह किंवदन्ती झूठ ठहरती है; क्योंकि उस समय तो कबीर को संसार में आने के लिए अभी तीन-चार वर्ष रहे होंगे।"[1]

बाबू साहब ने यह नहीं लिखा कि रामानन्द की मृत्यु की तिथि उन्होंने किस प्रामाणिक स्थान से ली है। नाभादास के भक्तमाल की टीका करने वाले प्रियादास के अनुसार रामानन्द की मृत्यु सं० १५०५ विक्रमी में हुई। इसके अनुसार रामानन्द की मृत्यु के समय कबीर की अवस्था ४९ वर्ष की रही होगी। उस अवस्था में या उसके पहले कबीर क्या कोई भी भक्त घूम-फिर कर उपदेश दे सकता है और रामानन्द का शिष्य बन सकता है।[2] फिर कबीर ने लिखा है :—

काशी में हम प्रगट भये हैं रामानन्द चिताए। (कबीर परिचय)

कुछ विद्वानों का मत है कि शेख तकी कबीर के गुरु थे।[3] पर जिस गुरु को कबीर ईश्वर से भी बड़ा मानते थे, उस गुरु शेख़ तकी के लिए ऐसा वे नहीं कह सकते थे :—

घट-घट अविनाशी सुनहु तकी तुम शेख़ (कबीर परिचय)

हाँ, यह अवश्य हो सकता है कि वे शेख तकी के सत्सङ्ग में रहे हों और उनसे उनका पारस्परिक व्यवहार रहा हो। यह भी कहा जाता है

---

१. कबीर ग्रन्थावली, भूमिका पृष्ठ २५

२ These dates however make Kabir a contemporary of Ramananda and in this respect contradict the tradition according to which he was a mere youth when he became the latter's disciple.

Influence of Islam on Indian Culture page 14[illegible]

Dr. Tara Chand

३ Kabir and the Kabir Panth — W[illegible]

कि शेख तक़ी सिकन्दर लोदी के गुरु थे। शेख तक़ी के कहने से ही सिकंदर लोदी ने कबीर पर अत्याचार किये थे। कबीर ने पर्यटन भी ख़ूब किया था और वे अनेक सन्तों और सूफ़ियों के संसर्ग में आये थे। मानिकपुर में तो वे रहे भी थे, जिसका वर्णन उन्होंने बीजक की ४८ वीं रमैनी में किया है।

मानिकपुरहिं कबीर बसेरी। महति सुनी शेख तकि केरी॥
अजो सुनी यवनपुर थाना। भूसी सुन पीरन को नामा॥
इकइस पीर लिखे तेहि ठामा। खतमा पढ़ै पैगम्बर नामा॥
सुनत बोल मोहि रहा न जाई। देखि मुकर्बा रहा भुलाई॥
हबी नबी नबी के कामा। जहँ लौ अमल सो सबै हरामा॥

कबीर का विवाह हुआ था अथवा नहीं, यह सन्देहात्मक है। कहते हैं उनकी स्त्री का नाम लोई था। वह एक वनखंडी वैरागी की कन्या थी। उसके घर पर एक रोज संतों का समागम था। कबीर भी वहाँ थे। सब सन्तों को दूध पीने को दिया गया। सबने तो पी लिया, कबीर ने अपना दूध रखा रहने दिया। पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि एक सन्त आ रहा है, उसके लिए यह दूध रख दिया गया है। कुछ देर में एक सन्त उसी कुटी पर पहुँचा। सब लोग कबीर की शक्ति पर मुग्ध हो गये। लोई तो भक्ति से इतनी विह्वल हो गई कि वह इनके साथ रहने लगी। कोई लोई को कबीर की स्त्री कहते हैं, कोई शिष्या। कबीर ने निस्सन्देह लोई को सम्बोधित कर पद लिखे हैं।

कहत कबीर सुनहु रे लोई
हरि बिन राखन हार न कोई

(कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ ११८)

सम्भव है, लोई उनकी स्त्री हो, पीछे सन्त स्वभाव से उन्होंने उसे शिष्या बना लिया हो। उन्होंने अपने गार्हस्थ्य-जीवन के विषय में भी लिखा है :—

नारी तौ हम भी करी, पाया नहीं विचार ।

जब जानी तब परिहरी, नारी बड़ा विकार ॥

(सत्य कबीर की साखी, पृष्ठ १३३)

कहते हैं, लोई से इन्हें दो सन्तान थीं । एक पुत्र था कमाल, और दूसरी पुत्री थी कमाली । जिस समय ये अपने उपदेशों से प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे थे उस समय सिकन्दर लोदी तख्त पर बैठा था । उसने कबीर के अलौकिक कृत्यों की कहानी सुनी । उसने कबीर को बुलाया और जब उसने कबीर को स्वयं अपने को ईश्वर कहते पाया तो क्रोध में आकर उन्हें आग में फेंका, पर वे साफ़ बच गये, तलवार से काटना चाहा, पर तलवार उनका शरीर बिना काटे ही उनके भीतर से निकल गई । तोप से मारना चाहा, पर तोप में जल भर गया । हाथी से चिराना चाहा, पर हाथी डर कर भाग गया ।

ऐसे अलौकिक कृत्यों में कहाँ तक सत्यता है, यह संभवतः कोई विश्वास न करे, पर महात्मा या सन्तों के साथ ऐसी कथाओं का जुड़ जाना आश्चर्यजनक नहीं है ।

मृत्यु के समय कबीर काशी से मगहर चले आए थे । उन्होंने लिखा है :—

सकल जनम शिवपुरी गँवाया

मरति वार मगहर उठि धाया

(कबीर परिचय)

यह विश्वास है कि काशी में मरने से मोक्ष मिलता है, मगहर में मरने से गर्दभ योनि । पर कबीर ने कहा :—

जौ काशी तन तजै कबीरा

तौ रामहि कौन निहोरा

(कबीर परिचय)

वे तो यह चाहते थे कि यदि मैं सच्चा भक्त हूँ तो चाहे काशी में मरूँ चाहे मगहर में, मुझे मुक्ति मिलनी चाहिये । यही विचार कर वे

स्वर्ग चले गये। उनके मरने के समय हिन्दू मुसलमानों में उनके शव के लिये झगड़ा उठा। हिन्दू दाह-कर्म करना चाहते थे और मुसलमान गाड़ना चाहते थे। कफ़न उठाने पर शव के स्थान पर फूलराशि दिखलाई पड़ी, जिसे हिन्दू मुसलमानों ने सरलता से आधे भागों में विभाजित कर लिया। हिन्दू और मुसलमान दोनों सन्तुष्ट हो गये।

कविता की भाँति कबीर का जीवन भी रहस्य से परिपूर्ण है।

कबीर के ग्रन्थ

कबीर के निर्गुणवाद ने हिन्दी साहित्य के एक विशेष अंग की पूर्ति की है। धार्मिक काल के प्रारम्भ में जब दक्षिण के आचार्यों के सिद्धान्त उत्तर भारत में फैल रहे थे और हिन्दी साहित्य के रूप में अपना मार्ग खोज रहे थे, उस समय धार्मिक विचारों के उस निर्माण-काल में कबीर का निर्गुणवाद अपना विशेष महत्व रखता है। एक तो मुसलमानी धर्म का व्यापक किन्तु अदृष्ट प्रभाव दूसरे हिन्दू धर्म की अनिश्चित परिस्थिति उस समय के हिन्दी साहित्य में निर्गुणवाद के रूप में ही प्रकट हो सकती थी, जिसके लिये कबीर की वाणी सहायक हुई।[1] इसमें कोई सन्देह नहीं कि धार्मिक काल की महान अभिव्यक्ति राम और कृष्ण की भक्ति के रूप में हो रही थी, पर उसके लिए अभी वातावरण अनुकूल नहीं था। चारणकाल की प्रशस्ति एक बार ही धर्म की अनुभूति

---

१. The Muslims introduced a new spirit into Hindu Society by laying stress on the Unity of God. The doctrine of the Unity of God was not unknown to the Hindus but its emphatic assertion in Islam had a great effect on teachers like Namdeva, Ramanand, Kabir and Nanak in whom we see a happy blending of Hindu and Muslim influences.

A Short History of Muslim Rule in India page 247

Dr Ishwari Prasad.

नहीं बन सकती थी। ऐहिक भावना पारलौकिक भावना में एक बार ही परिवर्तित नहीं हो सकती थी और नरेशों की वीरता की कहानी सगुण ब्रह्म वर्णन में अपना आत्म-समर्पण नहीं कर सकती थी। इसके लिए एक मध्य शृङ्खला की आवश्यकता थी और वह कबीर की भावना में मिली। यद्यपि कबीर ने किसी नरेश अथवा अधिपति की प्रशंसा में ईश्वरीय बोध की भावना नहीं रक्खी तथापि सगुणवाद को हृदयंगम करने तथा तत्कालीन परिस्थितियों के बीच भक्ति को जागृत करने के साधन अवश्य उपस्थित किए। यह आश्चर्य की बात अवश्य है कि निर्गुणवाद ने सगुणवाद के लिए मार्ग प्रशस्त किया यद्यपि होना चाहिए इसके विपरीत, किन्तु कबीर की निर्गुण धारा अधिकांश में परिस्थिति की आज्ञा थी और भक्ति तथा साकारवाद की असंदिग्ध प्रारम्भिक स्थिति। अतः भक्ति-काल के प्रभात में कबीर का निर्गुणवाद साहित्य के विकास की एक आवश्यक और प्रधान परिस्थिति ही माना जाना चाहिए।

कबीर की रचनाओं में सिद्धान्त का प्राधान्य है, काव्य का नहीं। उनमें हमें साहित्य का सौन्दर्य नहीं मिलता, हमें मिलता है एक महान संदेश। केवल कबीर की रचनाओं में ही नहीं, उनके द्वारा प्रवर्तित निर्गुणवाद के कवियों की रचनाओं में भी हमें साहित्य-सौन्दर्य खोजने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। उनमें अलंकार, गुण और रस के लिए कोई स्थान नहीं है, क्योंकि वे रचनाएं इस दृष्टिकोण से लिखी ही नहीं गईं। उन रचनाओं में भाव हैं, सिद्धान्त हैं और उन्हीं का मूल्य निर्धारित करना चाहिए। कबीर के सिद्धान्त यद्यपि कहीं-कहीं सुन्दर काव्य का रूप धारण किए हुए हैं, पर वह रूप केवल गौण ही है। कहीं-कहीं तो कबीर की रचनाएँ काव्य का परिधान पहने हुए हैं, कहीं वे नितान्त नग्न हैं। अत कबीर में सन्देश है, काव्य-सौन्दर्य कम। उसका कारण यह है कि कबीर का शास्त्र-ज्ञान बहुत थोड़ा था। वे पढ़े-लिखे भी नहीं थे, उनका ज्ञान केवल सत्संग का फल था। कबीर के कविता

मे हिन्दू धर्म के सिद्धान्त हमे टूटे-फूटे रूप में ही मिलते हैं, पर वे कबीर की मौलिकता के कारण चिकने और गोल हो गए हैं। हिन्दू धर्म के सहारे उन्होंने अपने व्यावहारिक ज्ञान को बहुत सुन्दर रूप दे दिया है, साथ ही साथ उन्होंने सूफी मत के प्रभाव से भी[1] अपने विचारों को स्पष्ट किया है, यही कबीर की विशेषता है। सगुणवादी रामानन्द से दीक्षित होकर भी उन्होने हिन्दू धर्म के निर्गुणवाद में अपनी मौलिकता प्रदर्शित की। यह निर्गुणवाद सिद्धान्त के रूप मे बहुत परिमित है। उसमें कुछ ही भावनाएँ हैं और उनका आवर्तन बार-बार हुआ है। यह कबीर के ग्रंथो को देखने से ज्ञात होता है किन्तु जो संदेश हैं वे कवि के द्वारा विश्वास और शक्ति के साथ लिखे गए हैं। उनमे जीवन है और हृदय को ईश्वरोन्मुख करने की महान् शक्ति है।

कबीर ने कितनी रचनाएँ की है, यह संदिग्ध है। यदि उन्होने 'मसि कागद' नही छुआ था और अपने हाथो मे कलम नहीं पकड़ा था, तो वे स्वयं अपनी रचनाओं को लिपिबद्ध तो कर ही नहीं सकते थे; उनके शिष्य ही उन्हे लिख सकते थे। नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट मे जितने ग्रंथो का पता चलता है उनमे एक भी ग्रंथ ऐसा नहीं है, जो कबीर के हाथो से लिपिबद्ध हुआ हो। शिष्यों के द्वारा लिखे जाने से

---

१. All these quotations prove that he was greatly indebted to Sufi literature, but if his writings do not show more coincidences in phraseology, it is not due to the fact that his familiarity with their thought was less but because he was not a man of learning and therefore while he absorbed the ideas he could not retain the Persian lines complete in his mind.

Influence of Islam on Indian Culture page 152-153.

Dr Tarachand.

[illegible] ... [illegible] होगी ... [illegible] ... [illegible] है और स्वभावतः परिष्कृत भी नहीं होगी। कबीर ने पर्यटन भी खूब किया, था अतः जगह-जगह। उन्होंने अपने भ्रमण काल में जिस होगा, वहाँ की भाषा का प्रभाव कबीर की रचनाओं पर पड़ा होगा। दूसरे कबीर भाषा के पंडित भी नहीं थे, अतः वे भाषा को मांज भी न सके होंगे। जैसे उनके भाव होंगे वैसी ही भाषा स्वाभाविक रूप से कवि की वाणी में आती जाती होगी। इसके साथ ही एक कठिनाई और है। एक ग्रन्थ की अनेक प्रतियाँ मिलती हैं। इन प्रतियों की भाषा और पाठ ही भिन्न नहीं हैं, वरन् उनका विस्तार भी असमान है। कबीर के अनुराग-सागर की दो प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं। नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट के अनुसार हमें उनका यह परिचय मिलता है :—

खोज रिपोर्ट सन १९०६, १९०७, १९०८

अनुराग सागर

लिपिकाल सन् १८६३

पद्य संख्या १५९०

संरक्षण स्थान

महन्त जगन्नाथदास, मऊ, छतरपूर

खोज रिपोर्ट सन् १९०९, १९१०, १९११.

अनुराग सागर

लिपि काल सन १८८७

पद्य संख्या १५०४

संरक्षण स्थान

पण्डित भानुप्रताप तिवारी, चुनार

सन् १९०९, १९१०, १९११ की खोज रिपोर्ट के अनुसार चुनार की प्रति पहले की है और वह छतरपूर की प्रति से १६ वर्ष पहले लिखी गई है। इसी छोटे से काल मे ८३ पद्यो की और वृद्धि हो गई। बहुत सम्भव है कि आजकल की लिखी हुई प्रति मे पद्य संख्या और भी अधिक मिले। इस प्रकार कबीर के नाम से सन्तो की अनेक रचनाएँ मूल पुस्तक मे जुड़ती चली जाती है और कबीर की रचनाओं का मूल रूप विकृत होता चला जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि प्राचीन से प्राचीन प्रति प्राप्त कर उसके आधार पर ग्रन्थों का सम्पादन और प्रकाशन हो। जितनी हस्त-लिखित प्रतियाँ अभी तक प्राप्त हुई है, उनके आधार पर कबीर ग्रन्थावली का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण कार्य है, जिसे किसी सम्माननीय संस्था को हाथ मे ले लेना चाहिये।

अभी तक कबीर के जितने ग्रन्थ प्राप्त हो सके हैं, उनका विवरण इस प्रकार है :—

१. अगाध मङ्गल

पद्य संख्या	३४
विषय	योगाभ्यास का वर्णन

अठपहरा

पद्य संख्या	२०
विषय	एक भक्त की दिनचर्या

३. अनुराग सागर

पद्य संख्या	१५०४
विषय	ज्ञानोपदेश और आध्यात्मिक सत्यवचन
विशेष	इस पुस्तक की एक प्रति और भी है जिसमे पद्य संख्या १५९० है

४. अमर मूल

पद्य संख्या	११२५
विषय	आध्यात्मिक ज्ञान

५. [illegible]

पद्य संख्या [illegible]

विषय [illegible]

६. [illegible]नामा

पद्य संख्या ३४

विषय ज्ञानोपदेश

विशेष इस पुस्तक की एक प्रति और भी है जिसका शीर्षक है, 'अनितनामा कबीर का' उसमें पद्य संख्या ३४ के बदले ४१ है।

७. अक्षरखंड की रमैनी

पद्य संख्या ६१

विषय ज्ञानोपदेश

८. अक्षर भेद की रमैनी

पद्य संख्या ६०

विषय ज्ञानवार्ता

९. आरती कबीर कृत

पद्य संख्या ६०

विषय गुरु की आरती उतारने की रीति

१०. उग्र गीता

पद्य संख्या १०२५

विषय आध्यात्मिक विचार पर कबीर और उनके शिष्य धर्मदास से वार्तालाप

११ उग्र ज्ञान मूल सिद्धान्त दश मात्रा

पद्य संख्या २७०

विषय आध्यात्मिक ज्ञान

१२. कबीर और धर्मदास की गोष्ठी

पद्य संख्या २९

विषय आध्यात्मिक विषय पर कबीर और धर्मदास में वार्तालाप

१३. कबीर की बानी

पद्य संख्या १६५

विषय ज्ञान और भक्ति

विशेष इस नाम की दो पुस्तकें और भी प्राप्त हैं। उनके नाम हैं कबीर बानी और कबीर साहब की बानी। प्रथम की पद्य संख्या ८०० है और दूसरी की ३८३०। प्रथम का निर्देश-काल है ना० प्र० सभा की खोज रिपोर्ट सन् १९०६, १९०७, १९०८ और दूसरी का खोज रिपोर्ट सन् १९०९, १९१०, १९११। कबीर बानी संग्रहीत की गई थी सन् १५१२ में और कबीर साहब की बानी सन् १७९८ में। दो सौ वर्षों में पद्यों की संख्या का बढ़ना स्वाभाविक है। कबीर की बानी का लिपिकाल नहीं दिया गया। सम्भवतः यह कबीर बानी से पहले की संग्रहीत हो।

१४. कबीर अष्टक

पद्य संख्या २३

विषय ईश्वर की वंदना

१५. कबीर गोरख की गोष्ठी

पद्य संख्या १६०

विषय कबीर और गोरख का ज्ञान-सम्वाद।

विशेष — [illegible] किन्तु [illegible] ।
[illegible] पद्य संख्या [illegible] है ।

१६. [illegible] की साखी

पद्य संख्या — [illegible]

विषय — ज्ञान और उपदेश

विशेष — इस नाम की एक प्रति और भी है। उसकी पद्य-संख्या १६०० है। उसका लिपि-काल है संवत् १९०९, १०, ११। सम्भव है, यह प्रति बहुत पीछे लिखी गई हो, क्योंकि प्रथम प्रति का लेखन-काल सन् १७६४ है और पद्य केवल ९२५ हैं।

१७ कबीर परिचय की साखी

पद्य संख्या — ३३५

विषय — ज्ञानोपदेश

१८. कर्मकाण्ड की रमैनी

पद्य संख्या — ८८

विषय — उपदेश

१९. कायापञ्जी

पद्य संख्या — ८८

विषय — योग वर्णन

२० चौका पर की रमैनी

पद्य संख्या — [illegible]

विषय — ज्ञानोपदेश

२१ चौंतीसा कबीर का

पद्य संख्या — ७५

विषय ज्ञानोपदेश

२२. छप्पय कबीर का

पद्य संख्या २६

विषय सन्तों का वर्णन

२३. जन्म बोध

पद्य संख्या २५०

विषय ज्ञान

२४. तीसा जन्त्र

पद्य संख्या ४८

विषय ज्ञान और उपदेश

२५. नाम महातम की साखी

पद्य संख्या ३२

विषय ईश्वर के नाम की बड़ाई

विशेष इसी नाम की एक प्रति और भी है, किन्तु उसका नाम है केवल नाम महात्म्य, विषय भी वही है, पर पद्य-संख्या ३९५ है।

२६. निर्भय ज्ञान

पद्य संख्या ७००

विषय कबीर का धर्मदास को अपना जीवन-चरित्र बतलाना तथा ज्ञानोपदेश।

विशेष इस नाम की एक प्रति और भी है, उसकी पद्य-संख्या ६५० है और उसका निर्देश काल है खो० रि० १९०९, १९१०, १९११। यह बहुत महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसकी प्रतिलिपि सन् १८७६

३२. ब्रह्म निरूपण

पद्य संख्या ३००

विषय सत्पुरुष निरूपण

३३. भक्ति का अंग

पद्य संख्या ३४

विषय भक्ति और उसका प्रभाव

विशेष नाम आधुनिक ज्ञात होता है

३४. माषौ खंड चौंतीसा

पद्य संख्या ७५५

विषय ज्ञान, भक्ति और नीति का वर्णन

३५. मुहम्मद बोध

पद्य संख्या ४४०

विषय कबीर और मुहम्मद साहब के प्रश्नोत्तर

३६. मंगल शब्द

पद्य संख्या १०३

विषय वन्दना और ज्ञान

३७. रमैनी

पद्य संख्या ४८

विषय माया विषयक सिद्धान्त और तर्क

३८ राम रक्षा

पद्य संख्या ६३

विषय राम नाम से रक्षा करने की विधि

३९. राम सार

पद्य संख्या १२०

विषय राम-नाम की महिमा

४०. रेखता

पद्य संख्या १६५०

विषय ज्ञान और गुरु महिमा का वर्णन

४१. विचार माला

पद्य संख्या ९००

विषय ज्ञानोपदेश

४२ विवेक सागर

पद्य संख्या ३२५

विषय पदों में ज्ञानोपदेश

४३. शब्द अलह टुक

पद्य संख्या १६५

विषय ज्ञानोपदेश

४४. शब्द राग काफी और राग फगुआ

पद्य संख्या २३०

विषय रागों में ज्ञान और उपदेश

४५. शब्द राग गौरी और राग भैरव

पद्य संख्या १०४

विषय रागों में ज्ञान और उपदेश

४६ शब्द वंशावली

पद्य संख्या ८७

विषय आध्यात्मिक सत्य

४७. शब्दावली

पद्य संख्या ११९८

विषय पन्थ का रहस्य और कबीर पन्थी की दिनचर्या।

विशेष — इस ग्रन्थ की एक और प्रति मिलती है, इसमें पद्य-संख्या १८५० है।

४८. सत कबीर बंदी छोर

पद्य संख्या — ८५

विषय — आध्यात्मिक सिद्धान्त

४९. सतनामा

पद्य संख्या — ७२

विषय — ज्ञान और वैराग्य-वर्णन

५०. सत्संग को अंग

पद्य संख्या — ३०

विषय — सन्त सङ्गति और माहात्म्य

५१. साधो को अंग

पद्य संख्या — ४७

विषय — साधु और साधुता का वर्णन

५२ सुरति सम्वाद

पद्य संख्या — ३००

विषय — ब्रह्म प्रशसा, गुरु वर्णन, आत्म महिमा, नाम महिमा

५३. स्वांस गुञ्जार

पद्य संख्या — १५६७

विषय — स्वांस के जानने की रीति

५४ हिंडोरा वा रेखता

पद्य संख्या — २१

विषय — सत्यवचन पर गीत

५५ हंस मुक्तावली

पद्य संख्या — ३४०

विषय — ज्ञान वचन

५६ ज्ञान गुन्दड़ी

पद्य संख्या ३०

विषय ज्ञान और उपदेश

५७ ज्ञान चौंतीसी

पद्य संख्या ११५

विषय ज्ञान

विशेष इस ग्रन्थ की एक प्रति खो० रि० १९१७, १८, १९ से प्राप्त हुई है। इसमे १३० पद्य है।

५८ ज्ञान सरोदय

पद्य संख्या २२०

विषय स्वरो का विचाराविचार और ज्ञान

५९ ज्ञान सागर

पद्य संख्या १६८०

विषय ज्ञान और उपदेश

६०. ज्ञान सम्बोध

पद्य संख्या ५७०

विषय सन्तो की महिमा का वर्णन

६१. ज्ञान स्तोत्र

पद्य संख्या २५

विषय सत्य वचन और सत्पुरुष का निरूपण

कबीर के ग्रन्थो को देख कर हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते है :—

१—ग्रन्थ-संख्या

खोज से अभी तक कबीर कृत ६१ पुस्तकें प्राप्त हुई हैं। ये सभी कबीर रचित कही जाती हैं ; इसमे कितना सत्य है, यह कहना कठिन

है। पर पुस्तकों के नाम से इस विषय में कुछ अवश्य कहा जा सकता है। नं० १५ कबीर गोरख की गोष्ठी, नं० २६ कबीर जी की साखी, नं० ३३ भक्ति का अंग, नं० ३९ मुहम्मद बोध, ये चार ग्रन्थ कबीर कृत कहने में सन्देह है। कबीर न तो गोरख के समकालीन थे और न मुहम्मद ही के। अतः कबीर का उक्त दोनों महात्माओं से वार्तालाप होना असम्भव है। इसी प्रकार नं० २६ ग्रन्थ में कोई भी कवि अपने नाम को 'जी' से अन्वित कर ग्रन्थ नहीं लिख सकता। नाम को इस प्रकार आदर देने वाले कवि के अनुयायी ही हुआ करते हैं। नं० ३३ का ग्रन्थ अपने शीर्षक से ही संदिग्ध ज्ञात पड़ता है। कबीर 'भक्ति को अङ्ग' कहते हैं 'भक्ति का अङ्ग' नहीं, अतएव ये चार ग्रन्थ कबीर कृत होने में सन्देह है। सम्भव है और ग्रन्थ भी कबीर कृत न हों, पर उस सम्बन्ध में अभी तक कोई प्रमाण नहीं दिया जा सकता। ६१ में से ४ निकालने पर ५७ संख्या रह जाती है। अतः हम अभी तक ५७ ग्रन्थ पा सके हैं, जो कबीर कृत कहे जाते हैं। इस सूची के अनुसार कबीर के ७ ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनमें प्रत्येक की पद्य संख्या १००० से ऊपर है। इन ५७ ग्रन्थों में कबीर ने कुल १७=३० पद्य लिखे है। इस प्रकार कबीर ने हिन्दी-जगत को लगभग बीस हजार पद्य दिये है।

२. वर्ण्य विषय

इन ग्रन्थो का वर्ण्य-विषय प्रायः एक ही है। वह है ज्ञानोपदेश। कुछ परिवर्तन कर यही विषय प्रत्येक ग्रन्थ में प्रतिपादित किया गया है। विस्तार मे उनके वर्ण्य विषय यही है :—

योगाभ्यास, भक्त की दिनचर्या, सत्य वचन, विनय और प्रार्थना, आरती उतारने की रीति, नाम महिमा, संतो का वर्णन, सत्पुरुष-निरूपण, माया विषयक सिद्धान्त, गुरु महिमा, रागो मे उपदेश, सत्सङ्गति, स्वर-ज्ञान आदि। यह सब या तो उपदेशक की भाँति प्रतिपादित किया

गया है या धर्मदास से सम्वाद के रूप मे। विपय घूम फिर कर निर्गुण ईश्वर का निरूपण हो जाता है। अनेक स्थानों पर सिद्धान्त और विचारो मे आवर्तन भी हो जाता है। यह सब ज्ञान सरल और व्यावहारिक ढङ्ग से वर्णित है, काव्य के सौन्दर्य से नहीं। सरल और व्यावहारिक होने के कारण यह ज्ञान जनता के हृदय मे सरलता से पैठ जाता है। पाठ के विषय मे ऊपर लिखा जा चुका है।

३. भापा, ग्रन्थों का स्वरूप और उनका सम्पादन

कबीर ने अपनी भापा पूरबी लिखी है, पर नागरी प्रचारिणी सभा ने कबीर ग्रन्थावली का जो प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किया है, उसमे पूरबीपन किसी प्रकार भी नहीं है। इसके पर्याय उसमें पञ्जाबीपन बहुत है। इसे ग्रन्थ के सम्पादक जी शिष्यो या लिपिकारो की कृपा ही समझते है। यह बहुत अंशो मे सत्य भी है।

४. संरक्षण स्थान और खोज

कबीर के ग्रन्थों की खोज उत्तर भारत और राजस्थान मे हुई है। कबीर के ग्रंथ अभी तक निम्नलिखित सज्जनो और संस्थाओ से मिले हैं।

अ. सज्जनों की सूची

१. पं० भानुप्रताप तिवारी, चुनार
२. महन्त जगन्नाथदास, मऊ, छतरपूर
३. महन्त जानकीदास, मऊ, छतरपूर
४ लाला रामनारायन, बिजावर
५. महन्त ब्रजलाल, जमींदार, सिराथू, इलाहाबाद
६ पं० छेदालाल तिवारी, ओरई
७ श्री लछमनप्रसाद सुनार मोजा [illegible] बलिया
८. बाबा रामबल्लभ शर्मा श्री सद्गुरुशरण अयोध्या

९. बाबा सुदर्शनदास आचार्य, गोंडा
१०. पं० महादेवप्रसाद चतुर्वेदी, पो० आ० आसनी, फतेहपुर
११. पं० जगमङ्गलप्रसाद बाजपेयी, फतेहपुर
१२. पं शिवदुलारे दुबे, हुसेनागञ्ज, फतेहपुर

आ. संस्थाओं की सूची :—

१. एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बङ्गाल, कलकत्ता
२. राज्य पुस्तकालय, दतिया
३. राज्य पुस्तकालय, टीकमगढ़
४. राज्य पुस्तकालय, चरखारी
५. सरस्वती भंडार, लक्ष्मण कोत, अयोध्या
६. आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
७. गोपालजी का मन्दिर, सीतली, जोधपुर
८. कबीर साहब का स्थान, मौजा मगहर, बस्ती

दक्षिण मे कबीर के ग्रंथो की खोज अभी तक नहीं हुई। मध्य प्रदेशान्तर्गत छत्तीसगढ़ विशेषकर दामा खेड़ा, खरसिया, कवर्धा आदि महत्वपूर्ण स्थानो मे कबीर के ग्रंथो की खोज होनी चाहिए। छत्तीसगढ़ में तो धर्मदास की गद्दी ही थी। उस स्थान में सैकड़ो ग्रंथ मिल सकते हैं, उन यंत्रालयो मे भी खोज होनी चाहिए, जहाँ से कबीर-साहित्य प्रकाशित हुआ है। ऐसे यंत्रालयो में चार प्रधान हैं :—

१. श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
२. बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
३. कबीर धर्मवर्धक कार्यालय, सीयाबाग, बड़ोदा
४. सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर सी० पी०

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने परिश्रम और अध्यवसाय से उत्तर भारत के अनेक स्थानो मे कबीर के ग्रन्थो की खोज की है। अच्छा हो,

यदि वह मध्यप्रदेश में भी इसी प्रकार खोज कर कबीर साहित्य को प्रकाश में लाने का अभिनन्दनीय प्रयास करें।

कबीर का महत्त्व और उनका काव्य

हर्ष का मृत्युकाल (सन् ६४८ ई०) भारतीय समाज के इतिहास में एक बड़ी विभाजक-रेखा का कार्य करता है। शंकराचार्य के अभ्युदय से ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान तो हुआ, पर कुछ बाह्य और अंतरंग कारणों से वह अधिक काल तक स्थित न रह सका। वह धीरे धीरे बहुत कुछ रूपान्तरित सा हो गया। मुसलमानों के आक्रमण के प्रथम भारतवर्ष पर शक-हूण आदि कितने ही विदेशियों के आक्रमण हुए थे। इन विदेशियों के धार्मिक एवं सामाजिक सिद्धान्त व्यापक न होने के कारण ये शीघ्र ही हिन्दूधर्म के साथ एक हो गये और कुछ काल में इनका अपना भिन्न अस्तित्व भी न रह गया। किन्तु मुसलमानी सभ्यता का जन्म अपनी एक विशेष शक्ति के आधार पर हुआ था। इसका प्रवेश विजेता के रूप में हुआ। मुस्लिम सत्ता और हिन्दू जनता कुछ विरोधशील प्रवृत्ति के कारण एक न हो सकी। इतिहासकार स्मिथ लिखता है कि १४ वीं शताब्दी में कुछ प्रलोभन तथा भय के कारण उत्तरी भारत की अधिकांश जनता मुसलमान हो गई थी। मुस्लिम शासक की विनाशकारी प्रवृत्ति के कारण हिन्दुओं में समाज-संस्कार को अधिक नियमित करने की आवश्यकता बढ़ी। इसके परिणाम-स्वरूप वर्णाश्रम धर्म की रक्षा, छुआछूत की जटिलता तथा परदे की प्रथा है। १४ वीं शताब्दी में भारतीय समाज की अशान्ति के इन बाह्य कारणों के अतिरिक्त कुछ विशेष कारण भी थे। प्राचीन भाषा अब नवीन रूप धारण कर चुकी थी। धार्मिक साहित्य की समस्त रचना संस्कृत में ही हुई थी। इस दृष्टि से धार्मिक अध्ययन ब्राह्मण-पंडितों तक ही सीमित हो गया था और साधारण जनता धार्मिक ज्ञान से बहुत दूर हो गई थी। जिस प्रकार यूरोप में लूथर के पूर्व १५ वीं शताब्दी में पोप ही धर्म के स्तम्भ

समझे जाते थे, उसी प्रकार कबीर के पूर्व धार्मिक ज्ञान पूर्णरूप से ब्राह्मणों के आश्रित था। साधारण जन की शान्ति के लिये कोई आश्रय न था। साथ ही शासकों की निरङ्कुश नीति के कारण राजनीतिक असंतोष की मात्रा भी बहुत बढ़ी थी। मोहम्मद तुगलक के शासन काल से ही व्यवस्था अनियमित हो गई थी और सन् १३९८ ई० का तैमूर का आक्रमण तो उत्तरी भारत के लिये अराजकता और हिंसक प्रवृत्ति का सीमान्त उदाहरण था।

ऐसी ही अव्यवस्थित स्थिति में रामानन्द और कबीर का उदय हुआ था। प्रसिद्ध इतिहासकार 'बकले' का कहना है कि युग की बड़ी विभूतियां काल-प्रसूत होती हैं। कबीर के विषय में तो यह बात पूर्णरूप से सत्य है। जनता की धर्मान्धता तथा शासकों की नीति के कारण कबीर के जन्मकाल के समय में हिन्दू मुसलमान का पारस्परिक विरोध बहुत बढ़ गया था। धर्म के सच्चे रहस्य को भूल कर कृत्रिम विभेदों द्वारा उत्तेजित होकर दोनों जातियां धर्म के नाम पर अधर्म कर रही थीं। ऐसी स्थिति में सच्चे मार्ग के प्रदर्शन का श्रेय कबीर को है। यद्यपि कबीर के आदर्श धार्मिक सुधार तक ही सीमित हैं, तथापि भारतीय मध्ययुग के समाज-सुधारकों में कबीर का स्थान सर्वप्रथम है; क्योंकि [illegible] दर्शन, नैतिक आचरण एवं कर्मकाण्ड तीनों का [illegible] है।

[illegible] पहिले भी हिन्दू समाज में कितने ही धार्मिक सुधारक हुए [illegible] अपना साहस नहीं था। हिन्दू [illegible] स्वीकार होता है। यह उसकी जातीय दुर्बलता है। [illegible] मुस्लिम धर्म का [illegible] प्रतिकूल [illegible] में कबीर [illegible] उन दो जातियों का [illegible] हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच

की सीमा तोड़ने का यत्न दृष्टिगत होता है। यही उनकी आन्तरिक अभिलाषा थी।

कबीर की विशेषता इन्हीं धार्मिक पाखण्डो का स्पष्ट शब्दो मे विरोध कर, सत्यानुमोदन करने की है। कबीर ने निश्चय किया कि हिन्दू मुस्लिम विरोध का मूल कारण उनका अंधविश्वास है। धर्म का मार्ग संसार के कृत्रिम भेद-भावो से बिल्कुल रहित है। 'कह हिन्दू मोहि राम पियारा, तुरुक कहै रहिमाना। आपस मे दोउ लरि लरि मूये मरम न काहू जाना।'[1] वास्तव मे भारतीय समाज मे बन्धुत्व के ये भाव कबीर द्वारा ही सर्वप्रथम व्यक्त किए गए थे। भक्तिभाव के आन्दोलन द्वारा भगवान के सामने सम-भाव का आदेश तो रामानन्द ने भी दिया था, पर जाति-विभाग और ऊंच-नीच भाव के एकीकरण का साहस कबीर के पहले किसी ने भी नहीं किया था। सच्चा सुधारक समाज में नये मार्ग का प्रदर्शन करने की अपेक्षा अंधविश्वास मे पड़े हुए मनुष्यो को तर्क द्वारा जागृत करना अधिक आवश्यक समझता है। कबीर स्वाधीन विचार के व्यक्ति थे। काशी मे—हिन्दूधर्म के प्रधान केन्द्र मे कबीर के सिवा और कौन साहस कर पूछ सकता था कि 'जो तुम बाम्हन बाम्हनि जाये, और राह तुम काहे न आये ?' यदि काली और सफेद गाय के दूध मे कोई अंतर नहीं होता तो फिर उस विश्व-वंद्य की दृष्टि मे जाति-कृत भेद कैसा ! "कोई हिन्दू कोई तुरुक कहावे एक जमीं पर रहिये"। सत्य तो यह है कि सभी परमेश्वर की सन्तान है। "को ब्राह्मण को शूद्रा !"

कबीर की यही समदृष्टि उन्हे सार्वभौमिक बना देती है। स्मरण रखना चाहिए कि भक्तियोग के उत्थान के साथ कितने अन्य महात्माओं ने भी शूद्रों को स्वीकार किया था, परन्तु 'जाति-विभाग हेय और हानिप्रद है' ऐसी घोषणा करने का साहस कबीर के पहले किसी ने भी नहीं किया था।

१—कबीर वचनावली, द्वितीय खण्ड १८२.

इसी जाति-विभाग के नियम-पालन में छुआछूत का प्रश्न और भी जटिल हो गया था। हिन्दू मुसलमान दोनों ने अपने विशेष सामाजिक संस्कार बना लिए थे। साथ ही धर्म के दार्शनिक तत्वों की अवहेलना भी खूब हो रही थी। धर्म का रूप केवल बाह्य-कृत्यों तक ही सीमित था। कारण यह था कि पंडितों और मुल्लाओं की प्रधानता एवं उनकी संकुचित विचार-धारा के कारण आडम्बर की मात्रा बहुत बढ़ गई थी। विशेषता तो यह थी कि इन सभी आचारों का अनुमोदन क़ुरान, पुराण आदि धार्मिक पुस्तकों के नाम से किया जाता था। कबीर ने देखा कि शास्त्र-पुराण आदि की कथाओं से लोग धर्म के सच्चे तत्व को भूल गए हैं। यह सब "झूठे का बाना" है। मनुष्य भूल कर आडम्बर के फेर में पड़ गया है। "सुर नर मुनी निरंजन देवा सब मिलि कीन्ह एक बंधाना, आप बँधे औरन को बाँधे भवसागर को कीन्ह पयाना" बात सत्य थी, पर रूखे तौर पर कही गई थी। थोड़े से शब्दों में यह अप्रिय सत्य था जिसके वक्ता और श्रोता दोनों दुर्लभ होते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उन्होंने वास्तविक ज्ञान-राशि वेद, क़ुरान आदि को हेय समझा था, परन्तु उनका कहना तो यह था कि बिना समझे इनका आश्रय लेना अज्ञानता है। उन्होंने तो स्पष्ट कह दिया है कि 'वेद कितेब कहो मत झूठे, झूठा जो न विचारै'। काशी, गया, द्वारका आदि की यात्रा से कोई भी तात्पर्य नहीं है। मनुष्य को पहले निष्कपट होना चाहिए। उसका परिधान रँगा हुआ है, हृदय नहीं। कबीर के समय में हिन्दू मुसलमानों के पारस्परिक विरोध के कारण धर्म के बाह्याडम्बरों की बहुत वृद्धि हो गई थी। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार परमात्मा विश्वव्यापी है। सूफी सिद्धान्त भी इसी मत का प्रतिपादन करता है। पर जनता मूल सिद्धान्त को भूल गौण को मुख्य मान कर विरोध कर रही थी। विश्वव्यापी का निवास कोई पूर्व और कोई पश्चिम में बताता था। मुसलमान बाँग देकर अपने ईश्वर को स्मरण करने में ही अपना महत्व समझता है। पुराणों के अनुसार कितने ही

मार्ग प्रतिपादित है। धर्म ग्रन्थ अनन्त है, फिर उनके द्वारा प्रतिपादित मार्गों की सीमा नहीं। सभी अपना राग अलापते हैं। कबीर ने देखा कि इस एकात्मता के पीछे अनेक रूपता का रूपक देकर अकारण ही विरोध बढ़ाया गया है। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि महादेव और मोहम्मद में कोई भेद नहीं है। राम और रहीम पर्यायवाची हैं। क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी उस परवरदिगार के बन्दे हैं। "हिन्दू तुरुक की एक राह है सतगुरु इहै बताई। कहै कबीर सुनो हो संतो राम न कहेउ खोदाई।"

इस प्रकार कबीर ने अपने समय में धार्मिक पाखण्ड एवं कुरीतियों को दूर कर पारस्परिक विरोध को हटाने का सफल परिश्रम किया। सरल जीवन, सत्यता, स्पष्ट व्यवहार आदि उनके उपदेश हैं। हिन्दू मुसलमान दोनों धार्मिक बनते हैं। कबीर का कहना है "इन दोउन राह न पाई।" एक बकरी काटता है, दूसरा गाय। यह पाखण्ड नहीं तो और क्या है? कबीर ने समसामयिक प्रवाह देखकर हिन्दू मुसलमान दोनों के आडम्बर-मूलक व्यवहार का घोर विरोध किया। उन्होंने अपने विचार की पुष्टि के लिए किसी विशेष ग्रन्थ का आश्रय नहीं लिया। यह हो सकता है कि इसके मूल में उनके पुस्तक-ज्ञान का अभाव रहा हो पर उन्होंने इतना तो स्पष्ट देखा कि इन्हीं धर्म-ग्रन्थों का आश्रय लेकर हिन्दू मुसलमान अन्याय कर रहे हैं। फिर जो बात सत्य है उसकी वास्तविकता ही प्रधान आधार है। उनका तो कहना था कि :—

"मैं कहता हूँ आँखिन देखी।
तू कहता कागद की लेखी।"

प्रश्न हो सकता है कि कबीर अपने कार्य में कितने सफल हो सके है। सच तो यह है कि संसार की महान विभूतियों को जनता अपने अज्ञानवश ठुकरा देती है। युग-प्रवर्त्तक महात्माओं को अपनी शिक्षा के अनुमोदित न होने का सदा दुःख रहा है। सुकरात, क्राइस्ट

सभी इस अज्ञान जनता के शिकार हुए हैं। कबीर का सन्देश कृत्रिम भेद-भाव रहित विश्व-प्रेम-मूलक था यद्यपि वह विश्वव्यापी न हो सका।

भारतीय शिक्षित समाज पर प्रत्यक्ष रूप से कबीर का प्रभाव बहुत कम पड़ा, परन्तु एक बात हिन्दुओं और मुसलमानों में समान रूप से व्याप्त हो गई। सबका भगवान एक है और सब भगवान के बन्दे हैं। जो हरि की वन्दना करता है वह हरि का दास है। परम पद की प्राप्ति के लिए प्रेम ही वाञ्छनीय है; कोई विशेष सम्प्रदाय, जाति अथवा शिक्षा नहीं। इस विषय की कितनी ही सूक्तियाँ आज उत्तरी भारत के गाँवों में कबीर के नाम से प्रसिद्ध हैं। हिन्दू मुसलमान दोनों कबीर का महत् पद स्वीकार करते हैं। भारतीय समाज के इतिहास में भी कबीर के इस भाव का प्रभाव प्रत्यक्ष लक्षित होता है। कबीर की मृत्यु के पश्चात् मुस्लिम शासन-काल में भी प्रायः तीन शताब्दी तक हिन्दू-मुस्लिम धर्म सम्बन्धी अनाचार की कोई घटना नहीं मिलती। प्रत्युत अकबर-कालीन मुगल शासन में हिन्दू-मुस्लिम सम्पर्कता-सम्बन्धी कितने ही उदाहरण मिलते हैं। इतिहासकार इसके बहुत से कारण बताते हैं, परन्तु उन सभी कारणों में हिन्दू मुस्लिम-विरोध के मूल-स्वरूप अंधविश्वास को मिटा कर समता का उपदेश देने वाले कबीर का प्रादुर्भाव विशेष विचारणीय है। इतिहास लेखक प्रायः इस विषय की अवहेलना कर देते हैं परन्तु इसका प्रभाव हम गाँवों में देख सकते हैं, जहाँ आज भी हिन्दू मुस्लिम भेदभाव का कोई स्पष्ट रूप नहीं दिखलाई पड़ता। छुआछूत का तो बहुत कुछ अभाव ही है और साथ ही दोनों एकरूप से समता, सरल जीवन, ज्ञान तथा संतुष्टि के कितने ही पद प्रेम से गाया करते हैं। कबीर ने शताब्दियों की सङ्कुचित चित्तवृत्ति को परिमार्जित कर समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अधिक उदार बना दिया है। यही उनकी विशेषता है। उन्होंने समाज में क्रान्ति सी उत्पन्न कर दी थी। धर्म के नाम पर किए गए अनाचार का विरोध कर जन साधा-

रण की भाषा द्वारा समाज को जागृत करने में कबीर का स्थान सर्वप्रथम है।

कबीर का काव्य बहुत स्पष्ट और प्रभावशाली है। यद्यपि कबीर ने पिंगल और अलंकार के आधार पर काव्य-रचना नहीं की तथापि उनकी काव्यानुभूति इतनी उत्कृष्ट थी कि वे सरलता से महाकवि कहे जा सकते है। कविता में छन्द और अलंकार गौण है, संदेश प्रधान है। कबीर ने अपनी कविता में महान् संदेश दिया है। उस संदेश के प्रकट करने का ढंग अलंकार से युक्त न होते हुए भी काव्यमय है। कई समालोचक कबीर को कवि ही नहीं मानते क्योंकि वे कभी-कभी सही दोहा नही लिखते और अनुप्रास जैसे अलंकारो की चकाचौंध पैदा नहीं कर सकते। ऐसे समालोचको को कबीर की समस्त रचना पढ़ कर कवि के कवित्व की थाह लेनी चाहिए। मीरा मे भी काव्य साधना है, पर पिंगल नहीं। फिर क्या मीरा को कवि के पद से वहिष्कृत कर देना चाहिए? कविता की मर्यादा जीवन की भावात्मक और कल्पनात्मक विवेचना मे है। यह विवेचना कबीर मे पर्याप्त है। अतः वे एक महान् कवि हैं। वे भावना की अनुभूति से युक्त हैं, उत्कृष्ट रहस्यवादी हैं और जीवन के अत्यन्त निकट है।

यह बात अवश्य है कि कबीर की कविता मे कला का अभाव है। उनकी रचना मे पद-विन्यास का चातुर्य नहीं है। उल्टवासियों मे क्लिष्ट कल्पना है, भाषा बहुत भद्दी है, पर उन्होंने काव्य के इन उपकरणो को जुटाने की चेष्टा भी तो नही की। वे एक भावुक और स्पष्टवादी व्यक्ति थे और उन्होने प्रतिभा के प्रयोग से अपने संदेश को भावनात्मक रूप देकर हृदय ग्राही बना दिया था। वे धर्म की जिज्ञासा उत्पन्न करने के लिए उल्टवासियाँ लिखते थे और संकीर्णता हटाने के लिए रेखते। उनकी कला उनकी स्पष्टवादिता मे थी, उनकी स्वाभाविकता मे थी। यही स्वाभाविकता उनकी सब से बड़ी निधि है। कबीर के विरह के साहित्य के किसी भी उत्कृष्ट कवि के पदो से हीन नहीं हैं। ७

विरहिणी-आत्मा की पुकार काव्य-जगत मे अद्वितीय है। रहस्यवाद के दृष्टिकोण से यदि उनकी "पतिव्रता को अंग" पढ़ा जावे तो ज्ञात होगा कि उनका कवित्व संसार के किसी भी साहित्य का शृंगार हो सकता है।

उत्तरी भारत मे कबीर का महत्व बहुत ही अधिक था। वे रामानन्द के प्रधान शिष्य थे। उनका निर्भीक विषय-प्रतिपादन उनके समकालीन भक्तों और कवियो मे उन्हे सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित कर देता है। यही कारण है कि वे अपने गुरु का अनुकरण न करते हुए भी स्वयं अनेक भक्तो और कवियो के आदर्श हो गए।[1]

कबीर के बाद संत परम्परा मे जितने प्रधान भक्त और कवि हुए, उनका विवरण इस प्रकार है :—

धरमदास (सं० १४७१)

ये कबीर के सबसे प्रधान शिष्य थे और उनके बाद इन्हे ही कबीर-पंथ की गद्दी मिली। इनके जन्म की तिथि निश्चित नहीं है। कहा जाता है कि ये कबीर से कुछ वर्ष छोटे थे। कबीर की जन्म-तिथि संवत् १४५५ मानी गई है, अतः इनका जन्म १४५५ के बाद ही होगा। सन्त सीरीज के सम्पादक धरमदास जी की जन्म तिथि संवत् १४७१ और १५०० के

---

1. Kabir was one of the first disciples of Ramanand. His fearless and yet humble advocacy of truth and his profound mystic poems and utterances make him a most prominent figure in this mediaeval movement and his influence over his contemporaries and successors seems to have been unbounded.

Selections from Hindi Literature Book IV, Page 1—G. Lala Sita Ram B. A.

बीच मे मानते है ।[1] धरमदास जी की मृत्यु कबीर की मृत्यु के लगभग बीस-पचीस वर्ष बाद हुई । अतः कबीर की मृत्यु-तिथि १५७५ मानने पर इनकी मृत्यु लगभग संवत् १६०० माननी होगी ।

धरमदास का प्रारम्भिक जीवन साकारोपासना मे ही व्यतीत हुआ । ये बांधोगढ़ के निवासी थे और बड़े धनी थे । अतः तीर्थ यात्रा और पूजन आदि मे बहुत धन खर्च करते थे । अमर सुख निधान मे धरमदास ने स्वयं अपना जीवन-चरित्र लिखा है । उस ग्रन्थ की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है :—

धरमदास बन्धो के बानी । प्रेम प्रीति भक्ति में जानी ॥
सालिगराम की सेवा करई । दया धरम बहुतै चित धरई ॥
साधु भक्त के चरन पखारै । भोजन कराइ अस्तुति अनुसारै ॥
भागवत गीता बहुत कहाई । प्रेम भक्ति रस पियै अघाई ॥
मनसा वाचा भजै गुपाला । तिलक देइ तुलसी को माला ॥
द्वारिका जगन्नाथ होइ आए । गया बनारस गङ्ग नहाए ॥

मथुरा और काशी के पर्यटन मे इनसे कबीर की भेंट हुई और ये कबीर से बहुत प्रभावित हुए । अन्त मे इन्होने अपना सब धन लुटा कर कबीर पंथ में प्रवेश किया । तुलसी साहब ने अपने ग्रन्थ घट रामायण मे धरमदास जी के विचार-परिवर्तन का बड़ा प्रभावशाली वर्णन किया है । ये सपरिवार कबीर पंथी होकर काशी मे रहने लगे । इन्होने ही कबीर की रचना का संग्रह संवत् १५२१ (सन् १४६४) मे किया ।[2] इनकी मृत्यु के बाद कबीर पंथ की गद्दी इनके पुत्र चूड़ामणि को मिली ।

इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें इनकी और कबीर की गोष्ठी और धर्म निरूपण ही अधिक है। इनकी बहुत सी रचना कबीर की रचना में इतनी मिल गई है कि दोनों को अलग करना बहुत कठिन हो गया है। इनके प्रधान ग्रन्थों में सुखनिधान का बहुत ऊंचा स्थान है। कबीर के समान इन्होंने भी 'विरह' पर बहुत लिखा है।

इनके शब्दों में कबीर की भाँति ही आध्यात्मिक सन्देश और रहस्यवाद है, यद्यपि इसकी उत्कृष्टता कबीर के पदों से हीन है। कबीर के भक्त होने के कारण इनके बहुत से पद आचारात्मक हैं जिनमें आरती विनती, मङ्गल और प्रश्नोत्तर है। साथ ही इन्होंने बारहमासा, बसन्त और होली, सोहर आदि पर बहुत से शब्द लिखे हैं। इनकी भाषा प्रवाह युक्त और स्वाभाविक है। इस पर पूर्वी हिन्दी की पूर्ण छाप है। मङ्गल का एक शब्द इस बात को बहुत स्पष्ट कर रहा है :—

सूतल रहलौं मैं सखियाँ, तो विष कर आगर हो।
सतगुर दिहलैं जगाइ, पायौं सुख सागर हो॥
जब रहली जननी के ओदर, परन सम्हारल हो।
तब लौं तन में प्रान, न तोहि बिसराइब हो॥
एक बुंद से साहेब, मँदिल बनावल हो।
बिना नेब कै मँदिल, बहु कल लागल हो॥ आदि।

धर्मदास की एक गद्दी मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ में है। कबीर पंथ में धर्मदास का स्थान कबीर साहब के बाद ही माना गया है।

श्री गुरु नानक (सं० १५२६)

सिख संप्रदाय के संस्थापक श्री नानकदेव के सम्बन्ध में अनेक विवरण और जन्म-साखियाँ है जिनसे उनके जीवन पर प्रकाश डाला जा सकता है। पर उन विवरणों की अनेक बातें इतनी कपोल-कल्पित और अन्धविश्वास से भरी पड़ी है, कि किसी भी इतिहास-प्रेमी को वे ग्राह्य नहीं हो सकती। प्रत्येक धर्म-संस्थापक के पीछे इसी प्रकार

की कल्पित कथाओं की शृंखला लगी रहती है, अतः नानक के सम्बन्ध मे भी यह होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

जिन जन्म-साखियो के आधार पर नानक का जीवन-विवरण मिलता है वे अधिकतर पञ्जाबी भाषा और गुरुमुखी लिपि मे हैं। जे० डब्ल्यू यङ्गसन को अमृतसर मे लिखी गई एक जन्म-साखी[1] मिली है, जिसके अनुसार गुरु नानक महाराज जनक के अवतार थे। प्रारम्भ में कथा है कि राजा जनक ने एक बार नर्क की यात्रा की थी और अपने पुण्य से सतयुग, त्रेता और द्वापर के पापियो का उद्धार कर दिया था। वे उस समय कलियुग के पापियो का उद्धार नहीं कर पाये। अतः कलियुग मे पापियो का उद्धार करने के लिए वे गुरु नानक के रूप मे अवतरित हुए।

एक और जन्मसाखी प्राप्त है जिसका अनुवाद ई० ट्रम्प ने किया है। इसका रचनाकाल अनुवादक के द्वारा १६ वीं शताब्दी का अंत या १७ वी शताब्दी का प्रारम्भ माना गया है। इस जन्मसाखी पर पाँचवे गुरु श्री अर्जुन देव के हस्ताक्षर है और यह उन अक्षरो मे लिखी है जिनमे ग्रन्थ साहिब की सबसे प्राचीन लिपि लिखी गई है। इस जन्म-साखी मे कपोल-कल्पना नहीं है, अतः यह अधिक विश्वस्त है।

एम० ए० मेकालिफ ने भी एक जन्मसाखी का परिचय दिया है[2] जिसकी लेखनतिथि सन् १८८८ मानी गई है। इसमे भी अनेक प्रकार की कथाएँ है जिनसे गुरु नानक का महत्व प्रकट होता है।

इन जन्म-साखियो मे से अस्पष्ट और अतिशयोक्तिपूर्ण बातो को निकाल कर गुरु नानक का जीवन वृत्त इस प्रकार होगा :—

---

१. Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol 9, Page 181

२. The Sikh Religion by M. A Macauliffe Introduction Page L XXXVI

नानक संवत् १५२६ (सन् १४६९) मे पैदा हुए थे। अतः उनकी भेंट तो किसी प्रकार शेख फरीद से हो ही नहीं सकती थी। फरीद के बाद उनकी वंश-परम्परा के अन्तर्गत शेख इब्राहीम से अवश्य उन्होंने भेंट की थी। शेख इब्राहीम कविता लिखा करते थे और उनमे शेख फरीद का ही नाम डाला करते थे; क्योंकि शेख इब्राहीम को शेख फरीद द्वितीय की उपाधि थी। यह निश्चित है कि जो पद ग्रन्थ साहब में शेख फरीद के मिलते हैं वे सब शेख इब्राहीम के लिखे हुए हैं। इन्हें फरीद सानी भी कहा गया है। शेख इब्राहीम की मृत्यु सं० १६०९ मे हुई।

इनकी कविता मे ईश्वर से मिलने की आकांक्षा बहुत अधिक है।

मलूकदास (सं० १६३१)

इनका जन्म संवत् १६३१ मे कड़ा (इलाहाबाद) नामक स्थान मे हुआ। इनके पिता का नाम सुन्दरदास खत्री था। बचपन से ही मलूकदास मे प्रतिभा के चिन्ह थे। ये सन्तो को भोजन और कम्बल दे दिया करते थे, जो इनके पिता इन्हे बेचने के लिए देते थे। इनके सम्बन्ध मे अनेक अलौकिक कथाएँ कही जाती हैं जिनमे इनकी भक्ति और शक्ति का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है। इनकी मृत्यु सं० १७३९ मे हुई। इस प्रकार इनकी आयु मृत्यु के समय १०८ वर्ष की थी। इनके एक शिष्य सुथरादास थे जिन्होंने 'मलूक परिचय' के नाम से एक जीवनी लिखी है। इसके अनुसार भी मलूकदास के जन्म और मृत्यु के संवत् यही हैं।[1]

मलूकदास के बारह चेले थे जिनके नाम अज्ञात हैं। इनकी गद्दियाँ कड़ा, जयपुर, गुजरात, इसफ़हाबाद, मुल्तान, पटना (बिहार),

1. खोज रिपोर्ट सन् १९२०-२१-२२

सीताकोयल (दक्षिण), कलापुर, नैपाल और काबुल मे हैं।[1] मलूक-दास के बाद गद्दी पर रामसनेही बैठे।

इनकी कविता सरस और भावपूर्ण है। इनके दो ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। ज्ञानबोध और रामावतार लीला (रामायण)। ज्ञानबोध मे इन्होंने ज्ञान भक्ति और वैराग्य का वर्णन किया है। अष्टांग योग एवं प्रवृत्ति और निवृत्ति का भी विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण है। रामावतार लीला मे रामचरित्र वर्णित है। उसमे रामायण की कथा विस्तार से दी गई है। भाषा मे पूर्ण स्वाभाविकता है। इनके उपदेश और चेतावनी बड़ी तेजस्वी भाषा मे वर्णित है। उनमे स्थान-स्थान पर अरबी, फारसी के शब्द भी हैं, पर उनसे कविता के प्रवाह मे कोई व्याघात उपस्थित नहीं हुआ। इन्होंने शब्दो के अतिरिक्त कवित्त भी लिखे हैं जिनमे काव्य-सौन्दर्य तो नहीं है, पर भाव-सौन्दर्य अवश्य है। कहा जाता है कि एक और मलूकदास थे जिनका निवास-स्थान कालपी था और जो जाति के खत्री थे। कड़ा के मलूकदास बहुत पर्यटनशील थे। संभव है ये ही कालपी मे रहे हो। इस प्रकार दो मलूकदास होने का भ्रम हो गया है। जो हो, दोनो की रचनाओ मे भिन्नता का कोई दृष्टिकोण नहीं है।

सुथरादास (सं० १६४०)

ये कायस्थ साधू थे और इलाहाबाद के निवासी थे। ये बाबा मलूकदास के शिष्य होगए थे और उन्हीं के सिद्धान्त का प्रचार करते थे। इन्होंने बाबा मलूकदास की जीवनी 'मलूक परिचय' के नाम से लिखी। इसके अनुसार मलूकदास का जन्म सन् १५७४ मे हुआ था और मृत्यु १६८२ मे।

दादूदयाल (सं० १६५८)

सन्तमत मे दादू का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके सिद्धान्त कबीर

के सिद्धान्तों से मिलते हुए भी अपनी विशेषता रखते हैं। इनके पदों और साखियों में चेतावनी का अंश बहुत अधिक है।

इनका जन्म सं० १६५८ में हुआ था।

इस प्रकार ये अकबर के समकालीन थे। दादू के शिष्य जनगोपाल ने लिखा है कि अकबर और दादू में धार्मिक वार्तालाप भी हुआ करता था।[1] गार्सां द तासी के अनुसार दादू रामानन्द की शिष्य-परम्परा में छठे शिष्य थे।[2] शिष्यों का क्रम इस प्रकार है :—

रामानन्द
|
कबीर
|
कमाल
|
जमाल
|
विमल
|
बुड्ढन
|
दादू

दादू पंथियों के अनुसार ये गुजराती ब्राह्मण थे, पर जनश्रुति इन्हें धुनियाँ मानती है। मोहसिन फ़ानी भी इन्हे धुनियाँ ही मानते हैं।

---

१. दादूर शिष्य भक्त जनगोपाल लिखियाछेन जे फतेपूर सिक्री ते सम्राट आकबर प्रायई दादूर सगे बसिया धर्म विषये गभीर आलाप करितेन।

दादू (उपक्रमणिका, पृष्ठ १३)

श्री क्षितिमोहन सेन (विश्व भारती, कलकत्ता)

२. Histoire de la literature Hindoui et Hiduoustanie

Vol 1 page 403

विल्सन ने भी मोहसिन फानी के मत का अनुकरण किया है। फर्कहार और ट्रेल इन्हें ब्राह्मण मानते है पर सुधाकर द्विवेदी का कथन है कि दादू मोची जाति के थे और मोट बनाया करते थे। पहली स्त्री की मृत्यु होने पर ये वैरागी हो गए। इनका पहला नाम महाबली था।[1] इनका जन्म तो अहमदाबाद मे हुआ था पर इन्होने अपने जीवन का विशेष समय राजस्थान के नराना और भराना नामक स्थानो मे व्यतीत किया। दादू इतने अधिक दयालु थे कि लोग इन्हे दादूदयाल के नाम से पुकारने लगे। इन्होने एक अलग पंथ का निर्माण किया जो दादू पंथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दादू-पंथ दो भागो मे विभाजित हुआ। एक भाग मे तो वे साधू है जो संसार से विरक्त हैं और गेरुए वस्त्र धारण करते है, दूसरे भाग मे वे हैं जो सफेद कपडे पहनते और व्यापार करते है। दादूदयाल स्वयं गृहस्थ थे। इन दोनो भागो मे ५२ सिद्ध पीठ हैं जो अखाड़ो के नाम से 'पंथ' मे प्रसिद्ध हैं।[2] हिन्दू मुसलमान का ऐक्य इन्होने कबीर की भांति ही करना चाहा। कबीर के दृष्टिकोण के अनुसार ही इनकी रचना के अंग हैं। इनकी कविता बड़ी प्रभावोत्पादिनी है। वह सरलता से हृदयंगम हो जाती है और एक आध्यात्मिक वातावरण छोड़ जाती है।

दादू ने लगभग ५००० पद्य लिखे हैं जिनमे से बहुत से ग्रन्थो मे नहीं पाये जाते। वे केवल साधु-संतों की स्मृति मे हैं। दादू ने धर्म के प्रायः सभी अङ्गो पर प्रकाश डाला है। मूर्तिपूजा, जाति, आचार, तीर्थव्रत, अवतार, आदि पर दादू कबीर के पूर्णतः अनुयायी हैं। डॉ० ताराचंद के अनुसार दादू ने सूफीमत की व्याख्या अधिक सफलता के साथ की है। उसका कारण यह हो कि वे कमाल के शिष्य थे।[3] दादू

---

१. दादूदयाल की बानी (प्रस्तावना) श्री सुधाकर द्विवेदी

२ संतबानी संग्रह भाग १ पृ० ७६

३ Dadu manifests perhaps even greater knowledge of Sufism than his predecessors [illegible]

ने गुरु का महत्व बहुत उत्कृष्ट बतलाया है। वे कहते हैं कि बिना गु के आत्मा वश में नहीं आ सकती। यदि ठीक गुरु न मिले तो पशु-पक्षी और वृक्ष ही गुरु हो सकते हैं क्योंकि इनमे भी ईश्वर की व्याप्ति है और ये मनुष्य से अधिक पवित्र और सच्चे हैं। दादूदयाल के शिष्य जनगोपाल ने दादू की एक जीवनी "जीवन परची" के नाम से लिखी है।[1] उसमे दादू ने किस वर्ष मे क्या किया यह क्रमानुसार वर्णित है।

बारह बरस बालपन खोये।
गुरु भेटैं थैं सन्मुख होयें॥
सांभर आये समये तीसा।
गरीब दास जनमें बत्तीसा॥
मिले बयाला अकबर साही।
कल्यानपुर पचासा जाही॥
समै गुनसठा नगर नराने।
साधे स्वामी राम समाने॥

(ग्रंथ जनगोपाल कृत, २६ विश्राम, २६-२७ चौपाई)

जनगोपाल के अतिरिक्त दादू के अन्य शिष्य रज्जब ने भी दादू के जीवन पर प्रकाश डाला है।

---

dısciple of Kamal who probably had greater leanings towards Islamıc ways of thinking than others, perhaps because the Sufıs of Western India—Ahmedabad and Ajmer—wielded greater ınfluence upon the mınds or seekers after God, Hindu or Muslım, than those of the East.

Influence of Islam on Indian Culture, page 185.

Dr. Tarachand.

१. दादू (श्री क्षितिमोहन सेन) उपक्रमणिका, पृष्ठ २३-२४
(विश्वभारती, कलकत्ता)

दादू के ५२ शिष्य थे। प्रत्येक शिष्य ने 'दादू-द्वार' की स्थापना की। इस प्रकार इस पन्थ के ५२ दादू द्वार (पूजन स्थान) है। दादूपन्थी जब गृहस्थाश्रम स्वीकार करते है तो वे दादूपन्थी न कहला कर 'सेवक' कहलाते हैं। दादूपन्थी नाम केवल वैरागियो के लिए है। दादूपन्थ के अंतर्गत इन वैरागियो के पाँच भेद है :—

(१) खालसा (२) नागा (३) उत्तरादी (४) विरक्त और (५) खाकी। दादू द्वार मे दादू की 'बानी' की पूजा ठीक उसी प्रकार की जाती हैं जैसे किसी मन्दिर मे मूर्ति की। दादू पंथियो का केन्द्र प्रधानतः राजस्थान है।

वीरभान (आविर्भाव संवत् १६६०)

ये दादू के समकालीन थे। इन्होने साध या सतनामी पंथ की स्थापना की। इनका जन्म संवत् १६०० मे विजेसर (नारनौल, पंजाब) मे हुआ था। ये रैदास की परम्परा मे ऊधोदास के शिष्य थे। इसीलिए ये अपने को "ऊधो का दास" लिखते थे। इन्होने गुरु का महत्त्व बहुत माना है। उसे ये ईश्वर की इच्छा का अवतार समझते थे, इसीलिए ऊधोदास को ये "मालिक का हुक्म" लिखते थे। इनके अनुसार ईश्वर का नाम 'सत्यनाम' है। इसीलिए इनके पथ का नाम सतनामी है। इस पंथ मे जाति का कोई बंधन नहीं है। सब समान रूप से साथ खा सकते और विवाह कर सकते है। मांसाहार वर्ज्य है और मूर्तिपूजा के लिए कोई स्थान नहीं है।

इस पंथ का पूज्य ग्रन्थ 'पोथी' है। यह पंथ मे गुरु ग्रन्थ साहिब की भाँति ही पूज्य है। यह 'जुमलाघर' या 'चौकी' मे सुरक्षित रहता है और वहीं से पढ़ा जाता है। इस पोथी की अनेक शिक्षाओं मे [illegible] हुक्म प्रधान है, जो आदि उपदेश मे लिखे गए है

सतनामी पंथ का नाम राजनीति के इतिहास मे भी [illegible] है। औरंगजेब के शासन-काल मे सतनामी पंथ ने सन् [illegible] मे [illegible]

का रूप लिया था।[1] अंत में औरंगजेब की सेना ने २००० सतनामियों को रणक्षेत्र में मार कर इस पंथ को बहुत निर्बल कर दिया था। ऐतिहासिक खाफी खाँ ने सतनामियों की बड़ी तारीफ की है :—

"ये भक्त की वेषभूषा में रहते हैं, पर कृषि और व्यापार करते हैं (यद्यपि अल्प मात्रा ही में)। धर्म के सम्बन्ध में इन्होंने अपने को 'सतनाम' से विभूषित कर रक्खा है। ये सात्विक रूप से ही धन प्राप्त करने के पक्ष में हैं। यदि कोई अन्याय या अत्याचार करता है तो ये उसे सहन नहीं कर सकते। बहुत से शस्त्र भी धारण करते हैं।[2]

ये मुंडिया भी कहलाते हैं, क्योंकि ये अपने सिर पर एक बाल भी नहीं रखते। ये हिन्दू और मुसलमान में कोई भेद नहीं मानते।

इस पंथ के केन्द्र दिल्ली, रोहतक (पंजाब), आगरा, फर्रुखाबाद, जयपुर (राजपुताना) और मिर्जापुर में हैं।

लालदास (संवत् १७००)

ये विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में हुए। ये अलवर के निवासी थे। इनके उपदेश कबीर के सिद्धान्तों के आधार पर ही हैं। इन्होंने लालदासी पंथ की स्थापना की जिसके अनुयायी गृहस्थाश्रम का पालन कर सकते हैं। कीर्तन का स्थान लालदासी पंथ में बहुत ऊँचा माना गया है। इनके उपदेश इनकी बानी में संग्रहीत हैं।

१, Another formidable rebellion was that of the Satnamis in the district of Narnol and Mewat........ A terrible battle followed in which about 2000 Satnamis were slain, and the rest fled from the field of battle. The rebellion was quelled with ruthless violence, and the country was cleared of the 'infidels'

History of Muslim Rule page 626-627

Dr Ishwari Prasad

२. Ibid, page 625-627,

बाबालाल (संवत् १७००)

बाबालाल लालदास के समकालीन थे। ये क्षत्रिय थे और मालवा मे उत्पन्न हुए थे। इनके समय मे जहाँगीर राज्य-सिंहासन पर था। दाराशिकोह इनका शिष्य था, जिसने इनसे अनेक धार्मिक समस्याओं पर परामर्श लिया। इसका निर्देश फारसी ग्रंथ 'नादिर-उन-नुकात' मे है। यह निर्देश दाराशिकोह और बाबालाल के बीच प्रश्नोत्तर के रूप मे है।

बाबालाल ने अन्त मे देहनपुर (सिरहिन्द) मे अपने जीवन का अंतिम भाग व्यतीत किया।

हरिदास (संवत् १७००)

ये नारायणी पंथ के प्रवर्त्तक थे। यद्यपि इस पंथ के ईश्वर का नाम नारायण है, तथापि इसमे ईश्वर की साकार भावना नहीं है। न तो इस पंथ मे मूर्तिपूजा है और न किसी प्रकार का पूजनाचार ही। नारायणी वैरागियो का संसार से कोई सम्पर्क नही है—एकान्त निवास ही उनका नियम है।[1]

संवत् १७०० के लगभग और भी संत हुए जिनमे विशेष उल्लेखनीय निम्नलिखित है :—

शिवरीना रिदायी, हरिराम पुरी, जद्दु, प्रतापमल, दिनावली (हीरामन कायस्थ के पुत्र), आबादह (ब्राह्मण) और निहिरचन्द (सुनार)।[2]

स्वामी प्राणनाथ (आविर्भाव संवत् १७१०)

ये बुन्देलखंड के सब से बड़े और प्रभावशाली सन्त थे। इनका जन्म संवत् १६७५ मे हुआ था। इनके पिता केशव जी थे [illegible]

[1] दबिस्तान ए मज़ाहिब, पृष्ठ २१।

[2] [illegible]

सुन्दरदास (सं० १७१०)

सुन्दरदास दादूदयाल के शिष्य थे। इनका जन्म सं० १७१० में जयपुर की पहली राजधानी द्यौसा नगर में हुआ था। ये जाति के खंडेलवाल बनिया थे। ये बहुज्ञ और बहुश्रुत थे। हिन्दी, पंजाबी, गुजराती मारवाड़ी, संस्कृत और फारसी पर समान अधिकार रखते थे। संस्कृत के पंडित होते हुए भी ये हिन्दी में कविता करते थे, क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य अपने सिद्धान्तों का प्रचार करना ही था। ये बहुत सुन्दर थे, इसी कारण शायद दादू ने इनका नाम 'सुन्दर' रख दिया था। ये छः वर्ष की अवस्था से ही दादू के साथ हो गए थे। जब नारायणा में दादू का देहावसान संवत् १६६० में हुआ तो ये वहाँ से चल कर डीडवाणे में रहे और वहाँ से काशी चले आए। काशी में इन्होंने बहुत विद्याध्ययन किया और साधु-महात्माओं का साहचर्य प्राप्त किया। इसके बाद ये फतहपुर शेखावाटी चले आए, यहाँ उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की और बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की। इनकी मृत्यु साँगानेर (जयपुर) में संवत् १७४६ में हुई। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह पद्य प्रसिद्ध है :—

> संवत सत्रह सै छीयाला, कातिक सुदि अष्टमी उजाला।
> तीजे पहर भरस्पति बार, सुन्दर मिलिया सुन्दर सार ॥

सुन्दरदास बहुत बड़े पंडित थे। ये सन्तमत के अन्य कवियों की भाँति साधारण और सरल कविता करने वाले नहीं थे। इनकी रचनाओं में काव्य-शास्त्र का पूर्ण ज्ञान है। इंदव, मनहरण, हंसाल, दुर्मिल छंद बहुत ललित और प्रवाहयुक्त है। अनेक प्रकार का काव्य-कौशल इनकी कविता में रत्नराशि के समान सजा हुआ है। कहीं रस-निरूपण है तो कहीं अलंकारों की सृष्टि। ये शृंगार रस के बहुत विरुद्ध थे और उसे छोड़ अन्य रसों के वर्णन में इनकी प्रतिभा ख़ूब प्रस्फुटित हुई है। इनके पर्यटन ने इनके अनुभव को और भी बढ़ा दिया था और इन्होंने

सभी स्थानो के विषय मे रचनाएँ की हैं। इनके "दशो दिशा के सवैया" इसके प्रमाण स्वरूप दिये जा सकते हैं।

इनके ग्रंथो मे ज्ञान समुद्र (पॉच उल्लासों मे) सुन्दरविलास (३४ अंगो मे) और पद (२७ राग-रागिनियों में) विशेष प्रसिद्ध हैं। इन्होने पूर्वी भाषा वरवै में भाषा का स्वाभाविक सौन्दर्य खूब प्रदर्शित किया है। संत होते हुए भी ये हास्य-रस के विशेष प्रेमी थे, जिससे इनकी वेदांत की गंभीरता मनोरंजन मे परिणत हो जाती है। इन्होने शृंगार रस के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा है! नारी की निन्दा इन्होने जी खोल कर की है। इसके विपरीत सांख्य ज्ञान और अद्वैत ज्ञान का निरूपण इन्होने बड़े विशद रूप मे किया है। आत्म-अनुभव तो इनकी निज की सम्पत्ति है।

सुन्दरदास दादूदयाल से आयु मे सब से छोटे शिष्य थे, पर प्रसिद्धि मे सब से बड़े। इनके शिष्यो की पॉच गद्दियॉ कही जाती हैं जो फ़तेहपुर और राजस्थान मे हैं।[1] इनके पॉच शिष्य प्रसिद्ध है। १—टिकैतदास, २—श्यामदास, ३—दामोदरदास, ४—निर्मलदास और ५—नारायणदास।

धरनीदास (सं० १७१३)

इनका जन्म संवत् १७१३ मे मॉझी गॉव (जिला छपरा) में हुआ। ये जाति के श्रीवास्तव कायस्थ थे। धरनीदास के पिता परसराम दास थे, जो खेती का काम करते थे। धरनीदास मॉझी के बाबू के दीवान थे।

अपने काम मे सतर्क रहते हुए भी ये संत थे। एक बार इन्होंने अपने काम के काग़जो पर पानी से भरा लोटा लुढ़का दिया और पूछने पर उत्तर दिया कि जगन्नाथ जी के वस्त्रो मे आरती के समय आग लग गई थी उसीको इन्होने इस प्रकार बुझा दिया। बाबू ने इसे असत्य

१. संतबानी संग्रह भाग १, पृष्ठ १०६

समझ कर इन्हे निकाल दिया। बाद में पता लगाने पर जब यह घटना सत्य बतलाई गई तो उन्होंने धरनीदास जी को फिर से नौकर रखना चाहा जिसे इन्होने अस्वीकार कर दिया। इस घटना के बाद धरनीदास जी साधू हो गए।

गृहस्थाश्रम मे इनके गुरु चंद्रदास थे और सन्यास मे सेवानन्द। धरनीदास के सम्बन्ध मे अनेक अलौकिक कथाएँ प्रसिद्ध है जिनसे इनका महत्त्व प्रकट होता है। यहां उन कथाओ को लिखने की आवश्यकता नहीं। ये सर्व-मान्य सुन्दर कवि और सच्चे भक्त थे। इनके दो ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है, प्रेम-प्रकाश और सत्य प्रकाश। इनके प्रेम मे विरह का विशेष स्थान है। रागो मे इन्होंने बहुत सुन्दर शब्द कहे है। इनकी चेतावनी-गर्भ-लीला मे कबीर का 'रेखता' प्रयुक्त है। इन्होने कवित्त सवैया भी लिखे हैं। कबीर की भाँति इनका ककहरा भी प्रसिद्ध है। इनकी भाषा पर पूर्वी प्रभाव स्पष्ट लक्षित है। ये फारसी भी खूब जानते थे। अलिफनामा मे इनके फ़ारसी का ज्ञान देखा जा सकता है। इनका बारहमासा दोहो मे कहा हुआ है।

यारी साहब (सं० १७२५)

यारी साहब बीरू साहब के शिष्य थे। ये जाति के मुसलमान थे और दिल्ली मे निवास करते थे। इनका आविर्भाव-काल संवत् १७२५ से १७८० तक माना गया है। इनके शिष्य का नाम बुल्ला साहब था, जो भुरकुड़ा निवासी थे। इनके नाम से कोई विशेष पंथ नहीं चला। इनका प्रभाव अधिकतर दिल्ली, गाजीपुर और बलिया आदि जिलो मे है।

इनकी रचना सरल और सरस है। भाषा का बहुत चलता हुआ रूप है। इनके शब्द बहुत लोकप्रिय है जिनमे निगु ण ब्रह्म का निरूपण है। सत्गुरु और सुन्न पर इनकी रचनाएँ बहुत विस्तारपूर्वक हैं। इन्होंने अलिफनामा मे फ़ारसी का ककहरा लिखा है और प्रत्येक अक्षर से

मारवाड़ मे दरियापंथी बहुत संख्या मे हैं। ये दरियापंथी विहार के दरिया साहब के पंथ के अनुयायियो से बहुत भिन्न हैं। मारवाड़ वाले दरिया साहब ने अधिकतर साखियाँ लिखी हैं। इन्होंने अपने शब्दो मे कबीर की उल्टवाँसियो का अनुकरण किया है। इन्होने अपने अराध्य को राम के नाम से पुकारा है, यद्यपि वह राम आदि और निराकार ब्रह्म है। इनकी बानी मे विरह का भी यथेष्ट अङ्ग है। इनके शब्द रागो से सम्बद्ध हैं। ज्ञात होता है, कविता के क्षेत्र मे ये कबीर को ही अपना गुरु मानते थे।

बुल्लासाहब (आविर्भाव सं० १७५०)

ये यारी साहब के शिष्य थे। इनका आविर्भाव काल संवत् १७५० और १८२१ के बीच मे माना गया है। इनका वास्तविक नाम बुलाकीराम था और ये जाति के कुनबी थे। पहले गुलाल साहब के यहाँ नौकर थे, पर इनकी भगवद्भक्ति देख कर गुलाल साहब स्वयं इनके शिष्य हो गये। ये भुरकुड़ा (गाज़ीपुर) के निवासी थे और अन्त समय तक वहीं रहे। इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है :—

बावरी साहब
|
बीरू साहब
|
यारी साहब
|
बुल्ला साहब
|
गुलाल साहब
|
भीखा साहब [1]

---

1. बुल्ला साहब का शब्दसार (जीवन-चरित्र) पृष्ठ 1

इनकी भाषा पूरबी है। आजु भयल अवधूता, गगन-मण्डल में हरिरस चाखल, आदि प्रयोग इनकी रचना मे बहुत पाये जाते हैं। इन्होने बसन्त, होली, आरती, हिंडोला आदि बहुत लिखे हैं। रेख़ता और झूलना भी इन्हे विशेष प्रिय हैं। इनके अधिकांश शब्दो मे 'सुरत' और दसवे द्वार का वर्णन है। हठयोग मे इनकी विशेष आस्था है। प्राणायाम के सहारे ये ध्यान के पक्ष मे है। इनके शेष पदो मे चेतावनी और उपदेश है। इन्होने भी अपने पूर्ववर्ती भक्त-कवियो का निर्देश किया है :—

> खेले नाभा और कबीर, खेले नानक बड़े धीर।
> दसम द्वार पर दरस होय, जन बुल्ला देखे आपु सोय ॥[1]

गुलाल साहब (आविर्भाव सं० १७५०)

गुलाल साहब का वास्तविक नाम गोविन्द साहब था। ये बुल्ला साहब के शिष्य थे। बुल्ला साहब पहले गुलाल साहब के नौकर थे। बाद मे अपने नौकर की भगवद्भक्ति देख कर गुलाल साहब उनके शिष्य हो गए। गुलाल साहब क्षत्रिय थे और इनका आविर्भाव काल सं० १७५० से १८०० तक माना जाता है। गुलाल साहब बसहरि (गाजीपुर) मे जमींदार थे। इन्होने गृहस्थाश्रम मे रहते हुए अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। इनकी गद्दी भुरकुड़ा गाँव मे ही थी, जो बसहरि के अन्तर्गत है। शिष्य-परम्परा मे भीखा साहब गुलाल साहब के शिष्य माने गए है। गुलाल साहब के शब्द प्रसिद्ध हैं। इन्होंने प्रेम पर बडी सरस रचनाएँ की है। यह प्रेम कबीर के रहस्यवाद का ही प्रेम है। इनकी भाषा पर पूर्वीपन की छाप है :—

> छुत्र सिखर चढ़ि जाइब हो,[2]

[1] वही, पृ० १८

[2] गुलाल साहब की बानी, पृ० ४१

करल लिलरवा पवना भागल हो सजनी[1]

अविगत जागल हो सजनी[2]

इन्होंने वारहमासा और हिंडोला भी लिखे हैं, जिनमें निराकार ब्रह्म का वर्णन है। इनके होली और वसंत में आध्यात्मिक शृङ्गार की बड़ी मनोहर छटा है। इनके रेखते, मङ्गल और आरती में कबीर का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

केशवदास (आविर्भाव संवत् १७५०)

इनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में कुछ विशेष विवरण नहीं मिलता। ये जाति के वनिये और यारी साहब के शिष्य और बुल्ला साहिब के गुरुभाई थे। यारी साहब का काल संवत् १७२५ से १७८० तक[3] माना गया है और बुल्लासाहब का सं० १७.० से १८२५ तक।[4] इन तिथियों के अनुसार केशवदास का समय संवत् १७५० के आस-पास ही मानना चाहिए। इनका एक ही ग्रन्थ प्राप्त हुआ है, उसका नाम है अमीघूँट। अमीघूँट की भाषा कहीं तो मारवाड़ी और कहीं पूर्वी हिन्दी के प्रभाव से प्रभावित है।

पिय थारे रूप लुभानी हो।

म्हारे हरि जू सूँ जुरलि सगाई हो। आदि

इनके फुटकर शब्द वड़े प्रभावशाली हैं। इनके रेखते फारसी शब्दों से पूर्ण हैं। ज्ञात होता है केशवदास अपनी भाषा के प्रयोग में बड़े स्वतन्त्र थे। भावों में सुन्न, गगन, और पाँच-पचीस ही का उल्लेख अधिक है।

---

१ वही, पृष्ठ २६

२ वही, पृष्ठ २६

३. यारी साहब की रत्नावली (जीवन-चरित्र) पृष्ठ १

४. बुल्लासाहब का शब्द सागर (जीवन-चरित्र) पृष्ठ १

चरनदास (सं० १७६०)

ये एक संत थे ; देहरा (अलवर) के निवासी थे। इनके पिता का नाम मुरली था जो धूसर वनिया थे। ये गृहस्थ थे और इनके शिष्यो मे दयाबाई और सहजोबाई का नाम प्रसिद्ध है। इनका जन्म संवत् १७६० मे हुआ। सहजोबाई ने भी इनका यही जन्म-संवत् माना है। इनके चार ग्रंथ प्रसिद्ध है :—अमरलोक, अखंड धाम, भक्ति पदारथ, ज्ञान सरोदय और शब्द। इनकी रचना साधारण है, पर योग सिद्धान्त उत्तम प्रकार से वर्णित हैं। इन्होने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सत्य, शील आदि सद्‌गुणो का विशेष वर्णन किया है तथा विविध विषयो पर भक्तिपूर्ण उपदेश दिए है। इनकी विचार-धारा कबीर के सिद्धान्तों के आधार पर ही है। गुरु का स्थान गोविन्द से भी ऊँचा माना गया है। चरणदास ने मूर्तिपूजा का भी तिरस्कार किया है। इनका वास्तविक नाम रणजीत था। बाल्यावस्था ही मे इन्होने सुखदेव नामक साधु से दीक्षा लेकर अपना नाम चरणदास रख लिया था। संत साहित्य मे चरणदास जी का विशेष स्थान है।

बालकृष्ण नायक (आविर्भाव सं० १७६५)

इनका आविर्भाव-काल सं० १७६५ माना जाता है। ये चरणदास के शिष्य थे। इन्होने अनेक पुस्तको की रचना की। ध्यान मंजरी और नेह प्रकाशिका मुख्य है। रचना सरस और प्रौढ़ है। ध्यानमंजरी मे श्री सीताराम की युगल मूर्ति की शोभा और ध्यान संक्षेप मे है और नेह प्रकाशिका मे श्री सीता जी का अपनी सखियो के साथ विहार करना वर्णित है। यह आश्चर्य की बात अवश्य है कि निर्गुण पथ की परम्परा मे होकर बालकृष्ण ने विष्णु के साकार रूप की उपासना की।

श्री अक्षर अनन्य (संवत् १७६७)

ये जाति के श्रीवास्तव कायस्थ थे और दतिया के निवासी थे। ये महाराज छत्रपाल के समकालीन दतिया के राजा पृथ्वीचंद के दीवान थे।

एक बार ये मस्त हो गए और दरबार से चले गए। राजा साहब स्वयं इन्हें मनाने के लिए गए। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि [illegible] पड़े हुए हैं। राजा साहब ने कहा —"[illegible]?" [illegible] ने उत्तर दिया "[illegible]" अर्थात् [illegible] लिया। महाराज पन्ना ने भी इन्हें आमंत्रित किया, पर ये नहीं गए।

ये वेदान्त के ज्ञाता थे और इन्होंने दुर्गा [illegible] का अनुवाद हिन्दी कविता में किया। इनके निम्नलिखित ग्रंथ प्रसिद्ध हैं :—

राज योग, विज्ञान योग, ध्यान योग, सिद्धान्त योग, विवेक दीपिका, ब्रह्मज्ञान और आनन्द प्रकाश। इन्होंने पारिभाषिक शब्दों का विशेष प्रयोग किया है और साधन के दृष्टिकोण से राजयोग का विशद वर्णन किया है।

भीखा साहब (सं० १७७०)

भीखा साहब गुलाल साहब के शिष्य थे। जाति के ब्राह्मण थे। इनका वास्तविक नाम भीखानंद था। इनका जन्म लगभग सं० १७७० में माना जाता है। ये आजमगढ़ के खानपुर बोहना नामक स्थान में हुए।

बाल्यावस्था से ही ये सरल और धार्मिक प्रवृत्ति के थे। फलतः ये बारह वर्ष की अवस्था ही में गुरु की खोज में निकल पड़े और गुलाल साहब को गुरु मान कर भुरकुड़ा में उनसे दीक्षा प्राप्त की। अपने गुरु के सम्बन्ध में ये स्वयं लिखते हैं :—

इक ध्रुपद बहुत विचित्र सुनत भोग पूछेउ है कहा।
नियरे भुरकुरा ग्राम जाके सब्द आये है तहा ॥
चोप लागी बहुत जायके चरन पर सिर नाइया।
पूछेउ कहा कहि दिया आदर सहित मोहि देखाइया ॥
गुरु भाव बूझि मगन भयो मानो जन्म को फल पाइया।
लखि प्रीति दरद दयाल दरवें आपनो अपनाइया ॥[1]

1, भीखा साहब की बानी, पृष्ठ। १७

भीखा साहब बारह वर्ष तक अपने गुरु गुलाल साहब के पास रहे। उनकी मृत्यु के बाद ये स्वयं गद्दी के उत्तराधिकारी हुए और उपदेश देते रहे। इनके अनेक ग्रंथो मे 'राम जहाज' नामक ग्रंथ बहुत बड़ा है और उसमे इनके सभी सिद्धान्तो का निरूपण है। इनके विषय मे अनेक अलौकिक कथाएं प्रसिद्ध हैं। उनसे भीखा साहब के महत्त्व की ही घोषणा होती है।

। साहब के पंथ के अनुयायी अधिकतर बलिया जिले में हैं। इनका उपदेश-स्थान भुरकुड़ा तो भीखा पंथियो का तीर्थ ही है। इनकी मृत्यु लगभग पचास वर्ष की अवस्था (संवत् १८२०) मे हुई।

इन्होने ईश्वर को राम और हरि नाम से अधिकतर पुकारा है। पर 'अनहद नाद गगन घहरानो' की ध्वनि ही इनकी रचना मे गूंजती है। गुरु और नाम-महिमा पर भी इन्होने बहुत लिखा है। इन्होने भी होली, वसन्त आदि पर रचना की है। इनके कवित्त और रेखतो मे पाप और पुण्य की अच्छी विवेचना की गई है। इन्होने कुछ कुंडलियाँ भी लिखी हैं। और अलिफनामा और ककहरा दोनो ही मे अपना ज्ञान निरूपित किया है। इनकी रचनाओ मे उपदेश का स्थान अधिक है।

गरीबदास (संवत् १७७४)

इन्होने छुड़ानी (रोहतक) मे संवत् १७७४ में जन्म लिया। ये जाति के जाट थे और प्रारम्भ से ही भक्त थे। आगे चल कर ये एक नवीन पंथ के प्रवर्त्तक हुए और जीवन भर गृहस्थ रह कर अपने सिद्धान्तो का उपदेश करते रहे। ये चरनदास के समकालीन थे। इनकी रचना सत्तरह हजार पद्यो मे कही जाती है जिसमे से केवल एक चतुर्थांश ही मिली है। ये कबीर के बड़े भक्त थे। इन्होने अपनी बानी मे कबीर के जीवन पर भी प्रकाश डाला है। इनके सम्बन्ध मे अनेक अलौकिक कथाएँ कही जाती है।

१८०७ है। इनका एक ही ग्रंथ प्रसिद्ध है। वह है बारहमासा जिसमे इन्होने भक्ति और ईश्वर-प्रेम का निरूपण किया है। रचना साधारण है।

सहजानन्द (सं० १८३७)

स्वामी सहजानन्द स्वामीनारायणी पंथ के प्रवर्त्तक थे। इनका जन्म सं० १८३७ मे अयोध्या मे हुआ था। इन्होने एकेश्वर ब्रह्म की उपासना पर जोर दिया। उस ब्रह्म का नाम कृष्ण या नारायण रक्खा। ये अपने को उसी कृष्ण या नारायण का अवतार मानते थे।

ये अहिंसा के बहुत बड़े समर्थक और मांसाहार, निन्दा आदि पापो के घोर विरोधी थे। इन्होने जाति की व्यवस्था किसी प्रकार भी नहीं मानी। इसी तरह इन्होने मूर्तिपूजा का भी तिरस्कार किया।

स्वामीनारायणी पंथ के अनुयायी आजन्म ब्रह्मचारी रहते हैं। ये अहिंसात्मक असहयोग मे विश्वास करते है। इसी कारण जब मराठा पेशवाओ ने इन पर सख्ती की तो इन्होने शान्ति पूर्वक मृत्यु स्वीकार की। फरकहार का मत है कि सहजानन्द ने वल्लभ सम्प्रदाय के अनाचार की प्रतिक्रिया के रूप मे अपने पंथ की स्थापना की जिसमे राधा और कृष्ण दोनो मान्य है।[1] पर सहजानन्द की कविता मे जिस ईश्वर का रूप मिलता है वह निर्गुण है, सगुण नहीं। इस पंथ का साहित्य अधिकतर गुजराती मे है।

तुलसी साहब (हाथरस वाले सं० १८४५)

इनका जन्म सं० १८४५ मे माना जाता है। ये ब्राह्मण थे और बाल्यावस्था से ही भक्ति भावना मे लीन थे। इन्होने अपना समस्त जीवन हाथरस (अलीगढ) मे ही व्यतीत किया और वहीं अपनी जीवन लीला समाप्त की।

साखियाँ भी लिखी हैं जिनमें [illegible]
में "संसारी और परमार्थी [illegible]
बाई हरप्रसाद पुरोहित की लड़की थी और [illegible]
में हुई। सहजोबाई ने अपने ग्रन्थ [illegible] संवत् [illegible]
माना है। अपने गुरु से [illegible] के कारण इनका
जन्म संवत् १७[illegible] के बाद ही मानना उचित होगा। इन दोनों की भाषा
ब्रजभाषा ही थी।[2] सहजोबाई की कविता में प्रेम और भक्ति की भी
सरस भावनाएँ हैं। इन्होंने गुरु का स्थान गोविन्द से भी ऊँचा माना
है। बिना गुरु के जीव का इस संसार से निस्तार नहीं हो सकता।
इनकी रचनाएँ हृदय-स्पर्शी हैं।

दयाबाई उसी गाँव डेरा (मेवात) में पैदा हुई थीं जिसमें चरणदास ने जन्म लिया था। इन्होंने सहजोबाई के साथ चरणदास की बड़ी सेवा की। संवत् १८१८ में इन्होंने अपने ग्रंथ दयाबोध की रचना की। इनका एक ग्रंथ और कहा जाता है। उसका नाम है विनय मालिका। पर ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ चरणदास के पंथ के अनुयायी किन्हीं दयादास का बनाया हुआ है। बेलवेडियर प्रेस ने तो उसे दयाबाई का ही मान कर प्रकाशित किया है। दयाबोध की रचना बहुत सरस है। उसमें गुरु के प्रति अगाध प्रेम झलकता है।

रामरूप (आविर्भाव सं० १८०७)

ये प्रसिद्ध चरणदास के शिष्य थे। इनका आविर्भावकाल संवत्

---

१. संतबानी संग्रह भाग १, पृष्ठ १५४

२ She wrote in Braj Bhakha and her sayings indicate a deep affection to God

Selections from Hindi Literature Book IV. Page 310.

Lala Sita Ram B. A.

१८०७ है। इनका एक ही ग्रंथ प्रसिद्ध है। वह है बारहमासा जिसमे इन्होने भक्ति और ईश्वर-प्रेम का निरूपण किया है। रचना साधारण है।

सहजानन्द (सं० १८३७)

स्वामी सहजानन्द स्वामीनारायणी पंथ के प्रवर्त्तक थे। इनका जन्म सं० १८३७ मे अयोध्या मे हुआ था। इन्होने एकेश्वर ब्रह्म की उपासना पर ज़ोर दिया। उस ब्रह्म का नाम कृष्ण या नारायण रक्खा। ये अपने को उसी कृष्ण या नारायण का अवतार मानते थे।

ये अहिंसा के बहुत बड़े समर्थक और मांसाहार, निन्दा आदि पापो के घोर विरोधी थे। इन्होने जाति की व्यवस्था किसी प्रकार भी नही मानी। इसी तरह इन्होने मूर्तिपूजा का भी तिरस्कार किया।

स्वामीनारायणी पंथ के अनुयायी आजन्म ब्रह्मचारी रहते हैं। ये अहिंसात्मक असहयोग मे विश्वास करते है। इसी कारण जब मराठा पेशवाओ ने इन पर सख्ती की तो इन्होने शान्ति पूर्वक मृत्यु स्वीकार की। फरकहार का मत है कि सहजानन्द ने वल्लभ सम्प्रदाय के अनाचार की प्रतिक्रिया के रूप मे अपने पंथ की स्थापना की जिसमे राधा और कृष्ण दोनो मान्य है।[1] पर सहजानन्द की कविता मे जिस ईश्वर का रूप मिलता है वह निर्गुण है, सगुण नही। इस पंथ का साहित्य अधिकतर गुजराती मे है।

तुलसी साहब (हाथरस वाले सं० १८४५)

इनका जन्म सं० १८४५ मे माना जाता है। ये ब्राह्मण थे और बाल्यावस्था से ही भक्ति भावना मे लीन थे। इन्होने अपना समस्त जीवन हाथरस (अलीगढ़) मे ही व्यतीत किया और वहीं अपनी जीवन लीला समाप्त की।

ये बड़े विद्वान थे और अनेक विषयों का गम्भीर विवेचन करते थे। उन्होंने घट-रामायण, शब्दावली और रत्न सागर नामक तीन प्रसिद्ध ग्रंथों की रचना की। ये अपने को तुलसी (रामचरित मानसकार) का अवतार मानते थे। इन्होंने निर्गुण ईश्वर की व्याख्या बड़े शास्त्रीय ढंग से की। रत्नसागर में तो इनका व्यावहारिक और अनुभवपूर्ण ज्ञान स्थान-स्थान पर लक्षित होता है। इन्होंने आकाश की उत्पत्ति, रचना का भेद, जन्म मरण की पीड़ा, कर्म फल आदि की विवेचना बड़े गंभीर रूप से की। इन तथ्यों को समझाने के लिए इन्होंने पौराणिक और काल्पनिक कथाओं को भी बीच-बीच में सम्बद्ध कर दिया है। इन्होंने दोहा, चौपाई और हरिगीतिका छंद में ही अधिकतर रचना की है। भाषा साधारण है। इन्होंने जिस पंथ का प्रचार किया वह आनापंथ के नाम से प्रसिद्ध है

पलटूदास (आविर्भाव सं० १८५०)

इनके जीवन की तिथि निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती। ये अवध के नवाब शुजाउद्दौला और दिल्ली के शहंशाह शाहआलम के समकालीन थे। अतः ये विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी में फैजाबाद के मौजा नगपुर-जलालपुर में हुए। ये जाति के बनिया थे और इनके गुरु गोविन्द जी थे, जो भीखा साहब के शिष्य थे। इनके जीवन का अधिक भाग अयोध्या ही में व्यतीत हुआ।

कहा जाता है कि इनके विचारों की स्वतंत्रता ने इनके कई शत्रु पैदा कर दिए थे, जिनमें अयोध्या के वैरागी भी थे। वैरागियों ने इन्हें जीवित ही जला दिया था। कहते हैं कि ये जगन्नाथ में पुनः प्रकट हुए थे। बाद में सदैव के लिए अन्तर्धान हो गए। इनका भी एक पथ चला, जिसके अनुयायी अधिकतर अयोध्या में रहते है।

इनके विचार अधिकतर कबीर के सिद्धान्त पर ही लिखे गए हैं।

हिन्दू और मुलमान के बीच ये कोई विभाजक रेखा नहीं खींचना चाहते थे। इन्होंने सूफ़ीमत से अपनी पूरी जानकारी प्रकट की है। नासूत, मलकूत, जबरूत और लाहूत आदि का वर्णन इन्होंने अनेक बार किया है।

गाजीदास (आविर्भाव सं० १८७७)

ये मध्यप्रदेशान्तर्गत छत्तीसगढ़ निवासी चमार थे। इनका आविर्भाव काल सं० १८७७ से सं १८८७ माना जाता है। इन्होंने सतनामी पंथ के सिद्धान्तों का ही प्रचार किया, यद्यपि जगजीवदास के प्रभाव को इन्होंने स्वीकार नहीं किया। इन्होंने निराकार एकेश्वर-वाद की प्रधानता मानी और मांसाहार और मूर्तिपूजा का विरोध किया। गाजीदास का यह पंथ अधिकतर चमारों तक ही सीमित रहा।

संतमत के अनेक कवियों पर विचार करने पर यह ज्ञात हो सकता है कि उन्होंने यद्यपि मूर्तिपूजा और साकार ब्रह्म की अवहेलना की, तथापि वे हिन्दू जनता के हृदय से पूजन की प्रवृत्ति नहीं हटा सके। किसी सम्प्रदाय में मूर्तिपूजा के स्थान में गुरुपूजा अथवा ग्रंथ पूजा है। संतमत में यही सबसे बड़ी कमी रही। संत-काव्य साकार ब्रह्म अथवा मूर्ति के स्थान पर कोई भी ऐसी वस्तु नहीं दे सका जिसका आश्रय लेकर जनता की भक्ति भावना की संतुष्टि हो सकती। इसीलिए मूर्ति के स्थान पर उन्होंने अपने पंथ के ग्रंथ को ही मूर्तिवत् मान लिया। दूसरी बात यह थी कि संत काव्य किसी उत्कृष्ट तर्क और न्याय पर निर्भर नहीं था। इसीलिए इसके अनुयायी अधिकतर साधारण कोटि के मनुष्य ही थे। इसका प्रचार प्रधानतः नीच अथवा अछूत जातियों में ही हुआ। जहाँ एक ओर संत काव्य द्वारा धार्मिक भावना की जागृति बनी रही, वहाँ दूसरी ओर उसके द्वारा धार्मिक क्षेत्र में विशेष ज्ञान की वृद्धि नहीं हुई।

संत काव्य के आधार पर जितने प्रधान पंथ धार्मिक क्षेत्र में प्रचलित पा सके, उनका निरूपण इस प्रकार है :—

पंथ	तिथि	केन्द्र	प्रवर्त्तक
१८ पलटूदासी	सं॰ १८५८	अयोध्या	पलटूदास
१९ स्वामी नारायणी	सं॰ १८६७	गुजरात	सहजानंद
२० आवापंथी	सं॰ १८७७	हाथरस (अलीगढ़)	तुलसी साहब

संत साहित्य का सिंहाव्लोकन

उत्तर भारत में मुसलमानी प्रभाव की प्रतिक्रिया के रूप में निराकार और अमूर्त ईश्वर की भक्ति का जो रूप स्थिर हुआ वही साहित्य के क्षेत्र में सन्त काव्य कहलाया। उसकी विशेषताओं का विवरण इस प्रकार है :—

१ वर्ण्य विषय

संत साहित्य का वर्ण्य विषय मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

अ. आध्यात्मिक { क्रियात्मक, ध्वंसात्मक }

आ. सामाजिक { क्रियात्मक, ध्वंसात्मक }

आध्यात्मिक भावना के अन्तर्गत निराकार ईश्वर का गुण-गान ही है। ईश्वर की अनुभूति में और जितने उपकरण हो सकते हैं उनका भी वर्णन है, जैसे गुरु, भक्ति, साधुसंगति, विरह आदि। आध्यात्मिक भावना के दो रूप हैं। पहला तो क्रियात्मक रूप है जिससे आध्यात्मिक जीवन को प्रोत्साहन मिलता है जिन्हें हम 'विधि' का रूप दे सकते हैं जैसे दया, क्षमा, संतोष, भक्ति, विश्वास, 'करता' निर्णय मौन विचार आदि। दूसरा ध्वंसात्मक रूप है जिससे दुर्गुणपूर्ण भावनाओं का ध्वंस हो—

२—सूफीमत के प्रभाव से अथवा रामानन्द के सत्संग से प्रेम का अलौकिक स्वरूप।

इन दोनो भावो के मिश्रण ही ने कबीर के आध्यात्मिक भावो का स्वरूप निर्धारित किया। यही कारण था कि वे निराकार ईश्वर की भावना प्रेम और भक्ति के साथ कर सकं। इस अस्पष्ट भावना का स्वरूप कबीर ने यद्यपि कहीं-कहीं सफलता के साथ खींचा है, तथापि उनके परिवर्ती संत कवियो ने तो इस मत का इतना विकृत रूप खड़ा किया है कि उससे कुछ सिद्धान्त ही नहीं निकलता। एक ओर तो प्रेम और भक्ति इतनी तेजी से उमड़ रहे है कि किसी के चरणो मे अपना सर्वस्व न्योछावर करने की भावना जागृत हो उठी है और दूसरी ओर हवा मे निराकार का रूप है। उस शून्याकाश से प्रेम भावना को कितनी ठेस लगती है! प्रेम और भक्ति के आवेश मे निराकार रूप का निरूपण हो ही नहीं सकता। हमारे संत कवियो ने इसी निराकार के अविगत रूप मे अपने प्रेम की धारा बहाई है। ऊसर मे नदी कितनी दूर तक जा सकती है? निराकार ईश्वर का विरुद ही क्या—

> मारग जोवै विरहिनी, चितवै पिय की ओर।
> सुंदर पियरे जक नहीं, कल न परत निस भोर॥

इस दोहे से व्यक्ति का बोध होता है, जिसका पता निराकार भावना में लग ही नहीं सकता। इसीलिए संत मत की ईश्वरीय भावना बहुत अस्पष्ट और असंगत है।

आध्यात्मिक भावना मे मुख्य-मुख्य जिन अङ्गो पर सन्तो ने प्रकाश डाला है उनका विवरण निम्नलिखित है :—

(१) क्रियात्मक

सत्पुरुष (निराकार ईश्वर), नाम-स्मरण, अनहद शब्द, भक्ति, सुरत, विरह पतिव्रता-प्रेम, विश्वास, 'निज करता को निर्णय', सत्संग, सहज, 'सार गहनी', मौन परिचय, उपदेश 'साध उदारता

सम्बन्ध प्रकट करना था तो भक्ति और प्रेम से न करते। यदि वे भक्ति और प्रेम को नहीं छोड़ सकते थे तो उन्हें भगवान की साकार भावना से अपने विचारों का प्रचार करना था। न तो वे निराकार की ठीक उपासना कर सके और न साकार की पूरी भक्ति ही। इस मिश्रण ने यद्यपि उनके विचारों को प्रचार पाने का अवसर दे दिया ; पर ईश्वर-भावना का रूप बहुत अस्पष्ट रह गया। न हम उसे निराकार ऐकेश्वर की उपासना ही कह सकते हैं और न साकार ईश्वर की भक्ति ही। इसका एक कारण हो सकता है।

संत मत के प्रधान प्रवर्त्तक कबीर थे। वे बड़े ऊँचे रहस्यवादी थे। उन पर मुसलमानी संस्कारों का प्रभाव भी पड़ा था और इसलिये कि वे जुलाहे के घर मे पोपित हुए थे, उनका मिलाप भी अनेक सूफियो से हुआ था। उन्होने सूफी संतों के विषय मे अपने बीजक की ५८ वीं रमैनी मे भी लिखा है। ऐसी स्थिति मे उन्होने 'अनलहक' का अवश्य अनुभव किया था। इस सूफीमत में "इश्क़ हकीकी" का प्रधान स्थान है। बिना प्रेम के ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब तक भक्त के मन मे प्रेम का विचार न होगा तब तक वह ईश्वर मे मिलने के लिये किस प्रकार अग्रसर होगा ? रहस्यवाद तो आत्मा ही की एक प्रवृत्ति है, जिसमे वह प्रेम के वशीभूत होकर अपनी सारी भावनाओं को अनुराग मे रँग कर ईश्वर से मिलने के लिये अग्रसर होती है और अन्त मे ईश्वर मे मिल जाती है। अतएव कबीर रहस्यवादी होने के कारण प्रेम की प्रधानता को अवश्य मानते। दूसरी बात उनके रामानन्द गुरु से दीक्षित होने की है। इन दोनो परिस्थितियों ने उनके हृदय मे प्रेम का अंकुर जमा दिया था। वे मुसलमान के घर मे थे, इसलिये बहुत सम्भव है कि ईश्वर की भावना, बचपन ही से उनके मन मे निराकार रूप में हुई हो। इन सब बातों ने कबीर के मन में इन्हीं दो भावनाओं को उत्पन्न किया।

१—निराकार भाव से ईश्वर की उपासना।

२—सूफीमत के प्रभाव से अथवा रामानन्द के सत्संग से प्रेम का अलौकिक स्वरूप।

इन दोनो भावो के मिश्रण ही ने कबीर के आध्यात्मिक भावो का स्वरूप निर्धारित किया। यही कारण था कि वे निराकार ईश्वर की भावना प्रेम और भक्ति के साथ कर सके। इस अस्पष्ट भावना का स्वरूप कबीर ने यद्यपि कहीं-कहीं सफलता के साथ खींचा है, तथापि उनके परिवर्ती संत कवियो ने तो इस मत का इतना विकृत रूप खड़ा किया है कि उससे कुछ सिद्धान्त ही नहीं निकलता। एक ओर तो प्रेम और भक्ति इतनी तेजी से उमड़ रहे है कि किसी के चरणो मे अपना सर्वस्व न्योछावर करने की भावना जागृत हो उठी है और दूसरी ओर हवा मे निराकार का रूप है। उस शून्याकाश से प्रेम भावना को कितनी ठेस लगती है! प्रेम और भक्ति के आवेश मे निराकार रूप का निरूपण हो ही नही सकता। हमारे संत कवियो ने इसी निराकार के अविगत रूप मे अपने प्रेम की धारा बहाई है। ऊसर मे नदी कितनी दूर तक जा सकती है? निराकार ईश्वर का विरुद ही क्या—

मारग जोवै विरहिनी, चितवै पिय की ओर।
सुंदर पियरे जक नहीं, कल न परत निस भोर॥

इस दोहे से व्यक्ति का बोध होता है, जिसका पता निराकार भावना मे लग ही नहीं सकता। इसीलिए संत मत की ईश्वरीय भावना बहुत अस्पष्ट और असंगत है।

आध्यात्मिक भावना मे मुख्य-मुख्य जिन अङ्गो पर सन्तो ने प्रकाश डाला है उनका विवरण निम्नलिखित है.—

(१) क्रियात्मक

सत्पुरुष (निराकार ईश्वर), नाम-स्मरण, अनहद शब्द और सुरत, विरह, पतिव्रता-प्रेम, विश्वास, 'निज करता को निरणय', सत्संग, सहज, 'सार गहनी', मौन, परिचय, उपदेश, 'साध ...'

शील, क्षमा, सन्तोष, धीरज, दीनता, दया, विचार, विवेक, गुरुदेव, आरती।

(२) ध्वंसात्मक

चेतावनी, भेष, कुसंग, काम, क्रोध, लोभ, मोह, 'मान और हंगता' कपट, आशा, तृष्णा, मन, माया, कनक और कामिनी, निद्रा, निंदा, स्वादिष्ट अहार, मांसाहार, नशा, 'आनदेव की पूजा', तीर्थ-व्रत, दुर्जन।

सामाजिक भावना के अंग निम्नलिखित हैं :—

(१) क्रियात्मक

चेतावनी, समदृष्टि

(२) ध्वंसात्मक

भेदभाव, चेतावनी

२. भाषा

सन्त काव्य मे भाषा बहुत अपरिष्कृत है। उसमे कोई विशेष सौन्दर्य नहीं है। भावों का प्रकाशन प्रधान है और भाषा का प्रयोग गौण। इस प्रकार की भाषा के सम्बन्ध मे तीन कारण हो सकते है।

(१) सन्त-काव्य जन-समाज के लिए ही लिखा गया था। अतः उसमें भावों के प्रचार एवं प्रसार के लिए भाषा का सरल होना आवश्यक था। कठिन भाषा के द्वारा ईश्वर सम्बन्धी कठिन और दुरूह विषय जन-समाज तक नहीं पहुँच सकता था।

(२) सन्तों की रचनाएँ अधिकतर गेय रही हैं, इसलिए भाषा का रूप एक मुख से दूसरे मुख तक जाने मे बहुत बदल गया।

(३) ये रचनाएँ अधिक समय तक लिपिबद्ध भी नहीं हुईं। अतः जिस प्रदेश मे ये प्रचलित रहीं उसी प्रदेश की भाषा का प्रभाव उन पर आ गया। कवियों के प्रदेश-विशेष मे रहने के कारण भी भाषा मे विभिन्नता है, पर कबीर की रचनाओं मे पजाबीपन की जो

छाया है, उसका क्या कारण हो सकता है ? कबीर तो पंजाब के निवासी नहीं थे। इसे कुछ तो प्रान्त विशेष के भक्तो और कुछ लिपिकारो की कृपा का फल ही समझना चाहिए। जो हो, सन्त-काव्य हमे तीन भाषाओ से प्रभावित मिलता है :—

पूरबी हिन्दी, राजस्थानी और पंजाबी।

३. रस

संतकाव्य मे प्रधान रूप से शान्त रस है। ईश्वर की भक्ति प्रधान होने के कारण निर्वेद ही स्थायी भाव है और आदि से अंत तक शान्त रस की ही सत्ता है। कभी-कभी रहस्यवाद के अन्तर्गत आत्मा के विरह वर्णन के कारण वियोग शृंगार भी है। आत्मा जब एक स्त्री के रूप मे परमात्मा रूपी पति के लिए व्याकुल होती है तब उसमे वियोग शृंगार की भावना स्वाभाविक रूप से आ जाती है। संयोग शृंगार की भावना बहुत ही न्यून है।

> दुलहिनी गावहु मङ्गलचार
> हम घर आये हो राजा राम भतार

जैसी मिलन की भावनाएँ बहुत ही कम है। संतकाव्य मे विरह श्रेष्ठ माना गया है। उसमें परमात्मा से मिलन का साधन ही अधिक है, मिलन की सिद्धि नहीं। अतः शान्त और वियोग शृंगार प्रधान रस हैं। शेष रस गौण हैं।

कहीं-कहीं ईश्वर की विशालता के वर्णन मे अद्भुत रस भी है 'एक बिन्दु ते विश्व रच्यो है' जैसी भावनाएं आश्चर्य के स्थायी भाव को उत्पन्न करती है। कबीर की उलटबांसियों भी आश्चर्य मे डाल देने वाली हैं। सृष्टि और माया की विचित्रता भी अद्भुत रस की उत्पत्ति मे सहायक है।

कुछ स्थानो पर वीभत्स रस भी है। जहा सुन्दरदास स्त्री के शरीर का वीभत्स वर्णन करते है, वहां जुगुप्सा प्रधान हो जाती है।

कंचन और कामिनी शीर्षक अंग में भी अनेक स्थानों पर वीभत्सता है। संक्षेप में संतकाव्य का रस निरूपण इस प्रकार है :—

प्रधान रस—शान्त, शृंगार (वियोग)

गौण रस—अद्भुत, वीभत्स

४. छन्द

संतकाव्य में सब से अधिक प्रयोग साखियों और शब्दों का हुआ है। साखी तो दोहा छन्द है और 'शब्द' रागों के अनुसार पद हैं। दोहा छन्द बहुत प्राचीन है। अपभ्रंश के बाद प्राचीन हिन्दी में लिखे हुए जैन ग्रंथों में इस दोहा छंद के दर्शन होते हैं। इसके बाद डिंगल साहित्य में भी दोहा छन्द का व्यवहार हुआ। तत्पश्चात् अमीर खुसरो ने अपनी बहुत सी पहेलियाँ इसी दोहे छंद में लिखीं। अतः दोहा छंद तो साहित्य में प्रयोग-सिद्ध हो चुका था। पदों का हिन्दी-साहित्य में यह प्रयोग प्रथम बार ही समुचित रूप में किया गया। संतों के शब्द अधिकतर गेय थे अतः वे राग-रागिनियों के रूप में गाये जा सकते थे। इस कारण वे पदों का रूप पा सके। दोहा और पद के बाद तीसरा प्रचलित छंद है झूलना। इसका प्रयोग कबीर ने बड़ी सफलतापूर्वक किया, सो कबीर के बाद तो अन्य संत कवियों ने भी इसका प्रयोग किया। इन तीन छन्दों के अतिरिक्त चौपाई, (जिसका प्रयोग अधिकतर साखी में हुआ है) कवित्त, सवैया, हंस पद (जिसका प्रयोग [illegible] में हुआ है) और सार (जिसका प्रयोग 'पहाड़' में हुआ है) भी संतकाव्य में प्रयुक्त हुए हैं। संतकाव्य में पदों और [illegible] का प्राधान्य है जिनका विशिष्ट नाम शब्द और साखी है।

५. [illegible]

[illegible] का [illegible] रूप संतकाव्य में पल्लवित हुआ, [illegible] हिन्दी साहित्य में है। गोरखनाथ ने अपने पंथ के [illegible] हठयोग का आश्रय ग्रहण किया था, वहीं हठयोग

कंचन और कामिनी शीर्षक अंग मे भी अनेक स्थानों पर वीभत्सता है। संक्षेप मे संतकाव्य का रस निरूपण इस प्रकार है :—

प्रधान रस—शान्त, शृंगार (वियोग)

गौण रस—अद्भुत, वीभत्स

४. छन्द

संतकाव्य मे सब से अधिक प्रयोग साखियो और शब्दों का हुआ है। साखी तो दोहा छन्द है और 'शब्द' रागों के अनुसार पद है। दोहा छन्द बहुत प्राचीन है। अपभ्रंश के बाद प्राचीन हिन्दी मे लिखे हुए जैन ग्रंथो मे इस दोहा छंद के दर्शन होते हैं। इसके बाद डिंगल साहित्य मे भी दोहा छन्द का व्यवहार हुआ। तत्पश्चात् अमीर खुसरो ने अपनी बहुत सी पहेलियाँ इसी दोहे छंद मे लिखीं। अतः दोहा छंद तो साहित्य मे प्रयोग-सिद्ध हो चुका था। पदो का हिन्दी-साहित्य मे यह प्रयोग प्रथम बार ही समुचित रूप मे किया गया। संतो के शब्द अधिकतर गेय थे अतः वे राग-रागिनियो के रूप मे गाये जा सकते थे। इस कारण वे पदो का रूप पा सके। दोहा और पद के बाद तीसरा प्रचलित छंद है झूलना। इसका प्रयोग कबीर ने बड़ी सफलतापूर्वक किया, यो कबीर के बाद तो अन्य संत कवियो ने भी इसका प्रयोग किया। इन तीन छन्दो के अतिरिक्त चौपाई, (जिसका प्रयोग अधिकतर आरती मे हुआ है) कवित्त, सवैया, हंस पद (जिसका प्रयोग अधिकतर ककहरा मे हुआ है) और सार (जिसका प्रयोग 'पहाड़ा' मे हुआ है) भी संतकाव्य मे प्रयुक्त हुए हैं। संतकाव्य मे पदों और दोहों का प्राधान्य है जिनका विशिष्ट नाम शब्द और साखी है।

५. विशेष

नागपथ का विकसित रूप संतकाव्य मे पल्लवित हुआ, जिसका आदि इतिहास सिद्धों के साहित्य मे है। गोरखनाथ ने अपने पंथ के प्रचार मे जिस हठयोग का आश्रय ग्रहण किया था, वही हठयोग

पाँचवाँ प्रकरण

प्रेम-काव्य

प्रेम-काव्य की रचना मुसलमानों के कोमल हृदय की अभिव्यक्ति है। जब मुसलमानी शासन भारतवर्ष मे स्थापित हो गया, तब हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियाँ परस्पर स्नेह-भाव के जागरण की आकांक्षा करने लगीं। यह सच है कि मुसलमान शासक अपने उद्धत स्वभाव के कारण तलवार की धार मे अपने इस्लाम की तेजी देखना चाहते थे। और किसी भी हिन्दू को इस्लाम या मृत्यु दो मे से एक को चुनने के लिए वाध्य कर सकते थे, पर दूसरी ओर एक शासक वर्ग ऐसा भी था, जो हिन्दुओं को अपने पथ पर चलने की आज्ञा प्रदान करने मे सुख का अनुभव करता था। ऐसे शासक-वर्ग मे शेरशाह का उदाहरण दिया जा सकता है, जिसने उलमाओं की शिक्षा की अवहेलना कर हिन्दू धर्म के प्रति उदारता का भाव प्रदर्शित किया।[1] शासकों के साथ ऐसे मुसलमान भी थे, जो हिन्दू धर्म के प्रति उदार ही नहीं, वरन् उस पर आस्था भी रखते थे। जहाँ वे एक ओर इस्लाम

---

१ He (Sher Shah) did not listen to the advice of the 'Ulamas and adopted a policy of religious toleration towards the Hindus.

A Short History of Muslim Rule in India

Dr. Ishwari Prasad (Indian Press Ltd., at Allahabad) 1936.

के अन्तर्गत सूफी धर्म के प्रचार की भावना मे विश्वास मानते थे वहाँ दूसरी ओर वे हिन्दुओ के धार्मिक आदर्शों को भी सौजन्य की दृष्टि से देखते थे। प्रेम-काव्य की रचना मे इसी भावना का आधार है।

प्रेम-काव्य का परिचय चारण-काल ही से मिलना प्रारम्भ हो जाता है, जब मुल्ला दाऊद ने नूरक और चन्दा की प्रेम-कथा की रचना की थी। यह समय अलाउद्दीन खिलजी के राजत्व-काल का था, जिसमें हिन्दुओ पर काफी सख्ती की जा रही थी। वे घोड़े पर नहीं चढ़ सकते थे और किसी प्रकार की विलास-सामग्री का उपभोग भी नहीं कर सकते थे।[1] हिन्दू धर्म के प्रति अश्रद्धा होते हुए भी कुछ मुसलमानी हृदयो मे हिन्दू प्रेम-कथा के भाव मौजूद थे। नूरक और चन्दा की कथा की प्रति अप्राप्त है, पर इस प्रेम-कथा का नाम ही सम्वत् १३७१ की साहित्यिक मनोवृत्ति का परिचय देने मे पर्याप्त है।

धार्मिक काल के प्रेम-काव्य का आदि नूरक और चन्दा की प्रेम-कथा से ही मानना चाहिए। यद्यपि इस प्रेम-कथा की परम्परा बहुत बाद मे प्रारम्भ हुई, पर उसका श्रीगणेश मुल्ला दाऊद ने कर दिया था। नूरक और चन्दा की प्रेम-कथा के बाद सम्भव है कुछ और प्रेम-कथाऐं लिखी गई हो, पर वे साहित्य के इतिहास मे अभी तक नहीं दीख पड़ीं। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने पदमावत मे इस प्रेम की परम्परा का निर्देश अवश्य किया है, पर उसके विषय मे कोई विशेष परिचय नहीं दिया। उन्होंने 'पदमावती' मे लिखा है :—

---

१ The po[illegible]cy of the state was that the Hindus [illegible] much as to enable them to ride on horse back [illegible] and cultivate lux[illegible] habits.

[illegible] Muslim R[illegible]

विक्रम धँसा प्रेम के बारा । सपनावति कहँ गयउ पतारा ॥
मधू पाछ मुगधावति लागी । गगनपूर होइगा वैरागी ॥
राजकुँवर कचनपुर गयऊ । मिरगावति कहँ जोगी भयऊ ॥
साधे कुँवर खंडावत जोगू । मधुमालति कर कीन्ह वियोगू ॥
प्रेमावति कहँ सुरपुर साधा । उषा लागि अनिरुध वर बाँधा ॥[1]

इस उद्धरण के अनुसार जायसी के पूर्व प्रेम-काव्य पर कुछ ग्रन्थ लिखे जा चुके थे—स्वपनावती, मुग्धावती, मृगावती, खंडरावती, मधुमालती और प्रेमावती। इनमे से मृगावती और मधुमालती तो प्राप्त हैं, शेष के विषय मे कुछ ज्ञात नहीं है। इनके साथ एक ग्रन्थ का और परिचय मिलता है। उसका नाम है "लक्ष्मणसेन पद्मावती"। यह ग्रन्थ संवत् १५१६ मे लिखा गया था। ग्रन्थकर्ता का नाम दामो है। इसमे अधिकतर वीर-रस है। "वीर कथा रस करूँ वपान"। अपभ्रंश काल के ग्रन्थों के समान इसमे वीच-वीच में संस्कृत मे श्लोक और प्राकृत मे गाथा हैं। संक्षेप मे मृगावती और मधुमालती का परिचय इस प्रकार है :—

मृगावती—इसके रचयिता कुतुवन थे, जो शेख बुरहान के शिष्य थे। इनका आविर्भाव काल सं० १५५० माना जाता है, क्योंकि ये शेरशाह के पिता हुसेनशाह के समकालीन थे। मृगावती की कथा लौकिक प्रेम की कथा है जिसमें अलौकिक प्रेम का सम्पूर्ण संकेत है। कचनपुर के राजा की राजकुमारी मृगावती पर चन्द्रगिरि के राजा का पुत्र मोहित हो जाता है। वह प्रेम के मार्ग मे योगी बन कर निकल जाता है। अनेक कष्ट झेलने के उपरान्त वह

[1] जायसी ग्रन्थावली—सम्पादक पं० रामचन्द्र शुक्ल (ना० प्र० सभा) पृष्ठ १०७—१०८.

राजकुमारी को प्राप्त करता है। काव्य में कोई विशेष सौन्दर्य नहीं है, किन्तु ईश्वर विषयक संकेत यथेष्ट है। भाषा अवधी और छन्द दोहा-चौपाई है।

मधुमालती—इसकी केवल एक खण्डित प्रति ही प्राप्त हो सकी है। इसके लेखक मंझन थे, जिनके विषय में कुछ विवरण नहीं मिलता। यह कहानी मृगावती से कहीं अधिक आकर्षक और भावनात्मक है। कल्पना भी इसमें यथेष्ट है। इसके द्वारा निस्वार्थ प्रेम की अभिव्यञ्जना सुन्दर रूप से होती है। इसमें कनेसर के राजा के पुत्र मनोहर और महारस की राजकुमारी मधुमालती के प्रेम का वर्णन है। कथा में वर्णनात्मकता का अंश अधिक है। प्रेम के चित्रण में विरह को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। विरह ही मनुष्य के लिये ईश्वर को समझने का महत्वपूर्ण साधन है।

इन दो ग्रन्थों के बाद मलिक मुहम्मद जायसी का नाम आता है, जिन्होंने पदमावत (या पदुमावती) की रचना की।

पदमावत (पदुमावती)—पदमावत के लेखक मलिक मुहम्मद जायसी के जीवनवृत्त के विषय में कुछ अधिक ज्ञात नहीं है। ये जायस के रहने वाले थे [1] और अपने समय के सूफी संतों में विशेष आदर के पात्र थे। ये सैयद मुहीउद्दीन के शिष्य थे [2] और चिश्तिया निजामिया की शिष्य-परम्परा में ग्यारहवें शिष्य थे। मुहीउद्दीन के गुरु शेख बुरहान

---

१ जायस नगर धरम अस्थानू।
तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू॥ पदमावत, पृष्ठ १०

२ गुरु मेंहदी सेवक मैं सेवा।
चले उताइल जेहि कर खेवा॥ वही, पृष्ठ ८

इस स्थान पर जायसी के साहित्यिक दृष्टिकोण पर विस्तारपूर्वक विचार करना समीचीन होगा।

जायसी ने अपने पद्मावत की कथा मे आध्यात्मिक अभिव्यंजना रक्खी है। सारी कथा के पीछे सूफी सिद्धान्तो की रूप रेखा है, पर जायसी इस आध्यात्मिक सकेत को पूर्ण रूप से नहीं निवाह सके। उसका मुख्य कारण यह है कि जायसी ने मसनवी की शैली का आधार लेते हुए अपने काव्य मे प्रत्येक छोटी से छोटी वात का इतना विस्तारपूर्वक वर्णन किया है कि विषय के विश्लेषण मे सारी आध्यात्मिकता खो गई है। जायसी का अत्यधिक विलासमय वर्णन भी आध्यात्मिकता के चित्र को अस्पष्ट कर देता है। इतना तो ठीक है कि रत्नसेन और पद्मावती का मिलन होता है जहाँ तक कि खुदा और वन्दे का एकीकरण है, पर जहाँ रत्नसेन और पद्मावती का अश्लीलता की सीमा को स्पर्श करता हुआ शृंगार वर्णन है वहाँ आध्यात्मिकता को किस प्रकार घटित किया जा सकता है ? अतः जायसी का संकेत (Allegory) विशेष-विशेष स्थानो पर ही है। सारी कथा का घटना-पक्ष अध्यात्मवाद से नहीं मिल सका है। इसका एक कारण हो सकता है। वह यह कि जायसी एक प्रेम-कहानी कहना चाहते हैं। वे अपनी प्रेम-कहानी के प्रवाह मे सभी घटनाओ को कहते चलते हैं और आध्यात्मिकता भूल जाते हैं। जव मुख्य घटनाओ की समाप्ति पर उन्हे अपने अध्यात्मवाद की याद आती है तो उसका निर्देश कर देते हैं। पर कथा की व्यापकता मे अध्यात्मवाद सम्पूर्ण रूप से घटित नहीं हो पाता, क्योंकि कथा घटना-प्रसंग से प्रेरित होकर कही गई है।

जायसी कवीर से विशेष प्रभावित हुए थे। जिस प्रकार कवीर ने हिन्दू-मुसलमानो के वीच भिन्नता की भावना हटानी चाही उसी प्रकार जायसी ने भी दोनो सम्प्रदायो मे प्रेम का वीज वोने का प्रयत्न किया। दोनो मे सूफीमत के सिद्धान्तो का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जाता है और इसी के फल-स्वरूप दोनो रहस्यवादी हैं। वे संसार के प्रत्येक

कार्य मे एक परोक्ष सत्ता का अनुभव करते हैं और उसी को प्रधान मान कर ईश्वर की महानता का प्रचार करते है। अंतर केवल इतना है कि कबीर अन्य धर्मों के लिए लेशमात्र भी सहानुभूति नहीं रखते—वे उद्दण्डता के साथ विपक्षी मत का खंडन करते है, उनमे सहिष्णुता का एकान्त अभाव है, पर जायसी प्रेमपूर्वक प्रत्येक धर्म की विशेषता स्वीकार करते है और ईश्वर के अनेक रूपो मे भी एक ही सत्ता देखने का विनयशील प्रयत्न करते हैं। कबीर ने जिस प्रकार अपने स्वतंत्र और निर्भीक विचारो के आधार पर अपने पंथ की 'कल्पना' की उस प्रकार जायसी ने नहीं की, क्योंकि जायसी के लिए जैसा तीर्थव्रत था वैसा ही नमाज और रोजा। वे प्रत्येक धर्म के लिए सहिष्णु थे, पर कबीर अपने ही विचारो का प्रचार देखना चाहते थे।

कबीर विधि-विरोधी और लोक-व्यवस्था का तिरस्कार करने वाले थे, पर जायसी ने कभी किसी मत के खण्डन करने की चेष्टा नहीं की। इसका एक कारण था। जायसी का ज्ञान-क्षेत्र अधिक विस्तृत था। उनपर इस्लाम की संस्कृति के साथ-साथ हिन्दू धर्म की संस्कृति भी पूर्ण रूप से पड़ी थी—वे कबीर की भाँति केवल सत्संगी जीव नहीं थे—पर गम्भीर रूप से शास्त्रीय ज्ञान से पूर्ण मनुष्य थे। यह बात दूसरी हैं कि उन्होंने जन-साधारण की अवधी भाषा का प्रयोग किया, इस प्रकार का प्रयोग तो तुलसीदास ने भी किया था। वे भाषा के व्यवहार मे कबीर के समकक्ष होते हुए भी ज्ञान-निरूपण मे अधिक मननशील और संयत थे। वे मसनवी की शैली मे प्रेम-कहानी कहते हुए भी अपनी गम्भीरता नहीं खोते। यही उनकी विशेषता है। जायसी अपने ज्ञान मे उत्कृष्ट होते हुए भी कबीर की महत्ता स्वीकार करते है —

ना—नारद तब रोइ पुकारा
एक जुलाहै सो मैं हारा ॥[1]

१ अखरावटी (जायसी ग्रंथावली पृष्ठ ३६५
ना० प्र० सभा काशी (१९२४)

जायसी ने अपनी सम दृष्टि से दोनों धर्मों को अपनी प्रेम-कहानी के सूत्र से एक कर दिया है । हिन्दू पात्रों के जीवन से उन्होंने सूफी सिद्धान्त निकाले हैं । अखरावट मे भी उन्होंने एक ओर सूफी मत का वर्णन किया है, दूसरी ओर वेदान्त का ।

सूफीमत

साईं केरा वार, जो थिर देरौ औ सुनै ।
नई-नई करै जुहार, मुहमद निति उठि पाँच बेर ॥

ना-नमाज है दीन क थूनी । पढ़ै नमाज सोइ बड़ गूनी ॥
कही सरीअत चिसतो पीरू । उघरित असरफ औ जहँगीरू ॥
तेहि के नाव चढ़ा हौं धाई । देखि समुद जल जिउ न डेराई ॥
जेहि के ऐसन सेवक भला । जाइ उतरि निरभय सो चला ॥
राह हकीकत परै न चूकी । पैठि मारफत मार बुड़ूकी ॥
ढूढ़ि उठै लेइ मानिक मोती । जाइ समाइ जोति महँ जोती ॥
जेहि कहँ उन्ह अस नाव चढ़ावा । कर गहि तीर खेइ लेइ आवा ॥

साँची राह सरीअत, जेहि विसवास न होइ ।
पाँव राखि तेहि सीढ़ी, निभरम पहुँचै सोइ ॥ [1]

वेदान्त

माया जरि अस आपुहि खोई । रहै न पाप, मैलि गइ धोई ॥
गौं दूसर भा सुन्नहि सुन्नू । कहँ कर पाप, कहाँ कर पुन्नू ॥
आपुहि गुरू, आपु भा चेला । आपुहि सब औ आपु अकेला ॥
अहै सो जोगी, अहै सो भोगी । अहै सो निरमल अहै सो रोगी ॥
अहै सो कड़ुवा अहै सो मीठा । अहै सो आमिल अहै सो सीठा ॥
वै आपुहि कहँ सब महँ मेला । रहै सो सब महँ, खेलै खेला ॥
उहै दोउ मिलि एकै भयऊ । बात करत दूसर होइ गयऊ ॥

---

१ वही, पृष्ठ ३५३-३५४

जो किछु है सो है सब, ओहि बिनु नाहिंन १
जो मन चाहा सो किया, जो चाहै सो होइ।

इस प्रकार जायसी ने हिन्दू और मुसलमान दोनो संस्कृति का चित्र अपनी रचनाओं मे प्रदर्शित किया है। [illegible] देखना आवश्यक है कि जायसी के साहित्यिक दृष्टिकोण का निर्मित करने मे प्रत्येक संस्कृति का कितना हाथ है।

(क) मुसलमान संस्कृति

(१) मुसलमान संस्कृति का स्पष्टतः प्रभाव तो पहले जायसी की रचना-शैली पर ही पड़ा है। पद्मावत की रचना-शैली मसनवी के ढंग की है। समस्त रचना मे अध्याय और सर्ग न होकर घटनाओं के शीर्षकों के आधार पर खंड हैं। कथा ५७ खंडो मे समाप्त हुई है। कथा-प्रारंभ के पूर्व स्तुति खंड मे ईश्वर स्तुति, मुहम्मद और उनके चार मित्रो की वंदना, फिर तत्कालीन राजा (शेरशाह) की वंदना है। उसके बाद आत्म-परिचय देकर कथारम्भ किया गया है। आदि से अंत तक प्रबन्धात्मकता की रक्षा की गई है। यह सब मसनवी के ढंग पर किया गया है।

ईश्वर स्तुति

सुमरौं आदि एक करतार। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसार॥[२]

मुहम्मद स्तुति

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा। नाम मोहम्मद पूनो करा॥
चारि मीत जे मुहमद ठाऊँ जिन्हहि दीन्ह जग निरमल नाऊँ।[३]

१ वही पृ० २६८
२ पदमावत पृ० १
३ वही पृ० ५

सुल्तान स्तुति

सेरसाहि देहली सुलतानू । चारिउ खंड तपै जस भानू ॥[1]

आत्म-परिचय

एक नयन कवि मुहमद गुनी । सोइ बिमोहा जेइ कवि सुनी ॥[2]

जायस नगर धरम अस्थानू । तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू ॥[3]

हौं पंडितन केर पछलगा । किछु कहि चला तबल देइ डगा ॥[4]

(२) समस्त कथा में सूफी सिद्धान्त बादल में पानी के बूँद की भाँति छिपे हुए हैं। सिहलद्वीप वर्णन खंड में सिंहलगढ़ का वर्णन आध्यात्मिक पद-प्राप्ति के रूप में किया गया है।

नवौ खंड नव पौरी, औ तहँ बज्र किवार ।
चार बसेरे सों चढ़ै, सत सों उतरै पार ॥

नव पौरी पर दसवँ दुआरा । तेहि पर बाज राज घरियारा ॥[5]

इसमें साधकों की चार अवस्थाओं शरियत, तरीक़त, हक़ीकत और मारिफत का संकेत बडे चातुर्य से किया गया है। अन्त में समस्त कथा को सूफी मत का रूपक दिया गया है।

मैं एहि अर्थ पंडितन्ह बूझा । कहा कि हम्ह किछु और न सूझा ॥
चौदह भुवन जो तर उपराहीं । ते सब मानुष के घट माहीं ॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा । हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा ॥
गुरू सुवा जेहि पंथ देखावा । बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ।
नागमती यह दुनिया धंधा । बाचा सोइ न एहि चित बंधा ॥[6]

---

१. वही पृष्ठ ५
२. ,, पृष्ठ ९
३. ,, पृष्ठ १०
४. ,, ,,
५. ,, पृष्ठ १८
६. ,, पृष्ठ ३१२.

(३) जायसी की इस्लाम धर्म में पूरी आस्था थी। इसके अनुसार उन्होंने मसनवियों की प्रेम पद्धति का ही अधिक अनुसरण किया है, यद्यपि बीच बीच में हिन्दू लोक-व्यवहार के भाव अवश्य आ गए हैं। पद्मावती का केवल रूप वर्णन सुन राजा रत्नसेन का विरह में व्याकुल हो जाना बहुत हास्यास्पद है। मसनवियों की प्रेम पद्धति इसी प्रकार की है। रत्नसेन की व्याकुलता का चित्र जायसी ने इस प्रकार खींचा है :—

सुनतहिं राजा गा मुरछाई। जानौं लहरि सुरुज कै आई॥
प्रेम-घाव-दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पै सोई॥
परा सो प्रेम समुद्र अपारा। लहरहिं लहर होइ बिसँभारा॥
बिरह भौंर होइ भाँवरि देई। खिन खिन जीउ हिलोरा लेई॥
खिनहिं उसास बूड़ि जिउ जाई। खिनहिं उठै निसरै बौराई॥
खिनहिं पीत खिन होइ मुख सेता। खिनहिं चेत खिन होइ अचेता॥
कठिन मरन तें प्रेम बेवस्था। ना जिउ जियै न दसवँ अवस्था॥
जनु लेनिहार न लेहिं जिउ, हरहिं तरासहिं ताहि॥
एतनै बोल आव मुख परै, तराहि तराहि॥[1]

(४) जायसी के विरह-वर्णन में वीभत्सता आ गई है। शृंगार रस के अंतर्गत विरह में रति की भावना प्रधान रहनी चाहिए, तभी रस की पुष्टि होगी। जायसी ने विरह में इतनी वीभत्सता ला दी है कि उससे रति के भाव को बहुत बड़ा आघात लगता है। यह वीभत्सता भी मसनवी की शैली से उद्भूत है।

बिरह के दगध कीन्ह तन भाठी। हाड़ जराइ कीन्ह जस काठी॥
नैन नीर सौं पोता किया। तस मद चुवै बरै जस दिया॥
बिरह सरागन्हि भूँजै माँसू। गिरि गिरि परै रकत कै आँसू॥

१ [illegible]

२ [illegible]

इस विरह वर्णन से सहानुभूति उत्पन्न न होकर जुगुप्सा उत्पन्न होती है। हिन्दी कविता के दृष्टिकोण से यह विरह-वर्णन शृंगार रस का अंग नहीं हो सकता।

(५) मसनवी की वर्णनात्मकता भी जायसी को विशेष प्रिय थी। उन्होंने छोटी-छोटी बातों का बड़ा विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इससे चाहे कथा का कलेवर कितना ही बढ़ जावे, पर सजीवता को आघात लगता है। पाठक वर्णन-विस्तार में प्रधान भाव को भूलने लगता है और कथा की साधारण बातों में उलझ जाता है। पद्मावत में इस वर्णन-विस्तार की बहुत अधिकता आ गई है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित वर्णन बहुत बड़े हो गए हैं :—

(अ) सिंहल द्वीप वर्णन

अमराई की अलौकिकता, पनघट का दृश्य, हिन्दू-हाट, गढ़ और राजद्वार, जलक्रीड़ा

(आ) सिंहल द्वीप यात्रा वर्णन

प्राकृतिक वर्णन, मानसिक भावों के अनुकूल और प्रतिकूल दृश्य वर्णन।

(इ) समुद्र वर्णन

जल-जीवों का वर्णन, सात समुद्रों का वर्णन

(ई) विवाह वर्णन

व्यवहारों की अधिकता, समारोह

(उ) युद्ध वर्णन

शौर्य, शस्त्रों की चमक, झनकार, हाथियों की रेलपेल, सिर और धड़ का गिरना, वीभत्स व्यापार।

(ऊ) बादशाह का भोज वर्णन

भोजनों की लम्बी सूची

(ए) चित्तौर गढ़ वर्णन

सिंहलगढ़ की भाँति वर्णन-विस्तार

(ऐ) षट् ऋतु, बारह मासा वर्णन

उद्दीपन की दृष्टि से प्राकृतिक दृश्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन।

(ख) हिन्दू संस्कृति

(१) डिंगल साहित्य के बाद हिन्दी कविता का जो प्रवाह मध्यदेश में हुआ उसमें ब्रजभाषा और अवधी का विशेष हाथ रहा। यों तो अमीर ख़ुसरो ने खड़ी बोली, ब्रजभाषा और अवधी तीनों पर अपनी प्रतिभा का प्रकाश डाला था, पर यह रचना केवल प्रयोगात्मक थी। मलिक मुहम्मद जायसी ने अवधी को साहित्य क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने का सफल प्रयत्न किया। जायसी के बाद तुलसीदास ने तो अवधी को मानस के कोमल कलेवर में अमर कर दिया। जायसी का अवधी प्रयोग यद्यपि असंस्कृत था, उसमें साहित्यिक सौन्दर्य की मात्रा तुलसी से अपेक्षाकृत कम थी, पर भाषा की स्वाभाविकता, सरसता और मनोगत भावों की प्रकाशन-सामग्री के रूप में जायसी ने अवधी को साहित्य क्षेत्र में मान्य बना दिया। इस अवधी प्रयोग के साथ जायसी ने हिन्दी छन्दों का भी सफल प्रयोग किया। दोहा और चौपाई यद्यपि कुतुबन और मंझन द्वारा प्रयुक्त हो चुके थे, पर प्रेमाख्यानक काव्य में इन छन्दों का सर्वोत्तम प्रयोग जायसी के द्वारा हुआ। इन्होंने अपने दोनों ग्रन्थ पद्मावत और अखरावट दोहा-चौपाई छन्दों में लिखे। सात चौपाई की पंक्तियों के बाद एक दोहा छन्द है। चौपाई की एक पंक्ति ही पूरा छन्द मान ली गई है। यदि दो पंक्तियों को छन्द माना जाता तो जायसी को [illegible] लिखना पड़ता।

(२) जायसी ने हिन्दू संस्कृति के अन्तर्गत [illegible]

[illegible]

लक्ष्य है :—

(अ) वेदान्त

[illegible]

(आ) हठयोग

नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा। औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा।
दसवँ दुआर गुपुत एक ताका। अगम चढ़ाव बाट सुठि बाँका॥[2]

(इ) रसायन

होइ अबरक ईंगुर भया, फेरि अगिनि महँ दीन।
काया पीतर होइ कनक, जो गुरु चाहहि कीन॥[3]

(३) संयोग और वियोग शृंगार वर्णन यद्यपि कहीं-कहीं मसनवी की प्रेम-पद्धति से प्रभावित हो गए हैं, पर वे अंततः हिन्दू संस्कृति के आधार पर ही लिखे गए हैं। हिन्दू पात्रों के होने के कारण उनका दृष्टिकोण भी हिन्दू आदर्शों से पूर्ण है। विरह में षटऋतु और बारहमासा तो हिन्दी कविता की विशेष वस्तु है। अलंकारों के वर्णन में हिन्दी काव्य-परिपाटी का ही अनुसरण किया गया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अनेक अलंकारों का भाव और चित्र-आधार एक मात्र हिन्दू संस्कृति और साहित्य से ओत-प्रोत है।

---

१ अखरावट पृष्ठ ३६५.

२. पदमावत, पृष्ठ १००

३. वही पृष्ठ १४०

(४) पात्रों का चरित्र-चित्रण हिन्दू जीवन के आदर्श से पूर्ण सामञ्जस्य रखता है। पात्र स्वभावतः दो भागों में विभाजित हो जाते हैं। एक का दृष्टिकोण सतोगुणी और दूसरे का तमोगुणी होता है। दोनों में संघर्ष होता है। अन्त में पाप पर पुण्य की विजय हो जाती है और सम्पूर्ण कथा सुखान्त होकर एक शिक्षा और उपदेश सम्मुख रखने में समर्थ होती है। यही बात पद्मावत के प्रत्येक पात्र के सम्बन्ध में है। रत्नसेन में प्रेम का आदर्श है। वह सम्पूर्ण रूप से धीरोदात्त दक्षिण नायक है। धीरोदात्त नायक में जितने गुण होने चाहिए वे सभी गुण रत्नसेन में है। पद्मावती स्त्री-धर्म की मर्यादा में दृढ़ और प्रेम करने वाली है। नागमती भी प्रेम के आदर्श में दृढ़ है "मोहिं भोग सो काज न बारी। सोह दीठि की चाहन हारी॥" में उसका उत्कृष्ट नारीत्व निहित है। वह रूपगर्विता भले ही हो, पर अपने पति के साथ सती होने की क्षमता रखती है। गोरा-बादल तो अपने वीरत्व के कारण अमर हैं। राजपूती स्वाभिमान और स्वामिभक्ति का आदर्श उनके प्रत्येक कार्य में है। दूसरी ओर अलाउद्दीन, राघव चेतन और देवपाल की दूती तामसी प्रवृत्ति से परिपूर्ण है। अलाउद्दीन लोभी, अभिमानी और इन्द्रिय-लोलुप है। राघवचेतन अहङ्कारी, कृतघ्नी, निर्लज्ज, नीच और वाममार्गी है। देवपाल की दूती धूर्त, प्रगल्भ और आडम्बरपूर्ण है। इन दोनों वर्गों के पात्रों में युद्ध होता है और अन्त में सतोगुण की विजय होती है। सूफी मत के सिद्धान्तों से कथावस्तु का विकास होने तथा ऐतिहासिक घटना का आधार लेने के कारण घटनाओं में कहीं-कहीं व्याघात आ गया है और वे दुःखान्त हो गई हैं। पर सूफीमत के दृष्टिकोण से मरण दुःखान्त न होकर सुखान्त का साधन रूप है। रत्नसेन की मृत्यु के बाद पद्मावती और नागमती का सती होना जहाँ एक ओर हिन्दू स्त्री के आदर्श की पूर्ति करता है, वहाँ दूसरी ओर सूफीमत के मिलन का उपक्रम भी करता है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में हिन्दू संस्कृति का प्रभाव पूर्ण रीति से है।

प्रेम-काव्य की कथाएँ अधिकतर काल्पनिक ही हैं। पर जायसी ने कल्पना के साथ-साथ इतिहास की सहायता से अपने पद्मावत की कथा का निर्माण किया। रत्नसेन की सिंहल-यात्रा काल्पनिक है और अलाउद्दीन का पद्मावती के आकर्षण में चित्तौड़ पर चढ़ाई करना ऐतिहासिक। टाड ने पद्मिनी (या पद्मावती) के पति का नाम भीमसीं लिखा है, पर आईन अकबरीकार ने रत्नसिंह ही लिखा है और यहीं से जायसी ने यह नाम अपनी प्रेम-कथा के लिए चुना है। जायसी ने देवपाल का चित्रण भी कल्पना से ही किया है। रत्नसेन की मृत्यु सुल्तान के द्वारा न होकर देवपाल के हाथ से होना भी कवि की अपनी कल्पना है।

कवि ने अपनी कथा का विस्तार बड़े मनोरंजक ढंग से किया है। जहाँ घटनाओं की वास्तविकता का चित्रण किया है वहाँ तो कवि भाव-जगत में बहुत ऊँचा उठ गया है। घटनाओं की शृंखला पूर्ण स्वाभाविक है। यदि कहीं उसमें दोष है तो वह आदर्श और अतिशयोक्ति के कारण। हिन्दू-धर्म के आदर्शों ने कवि को एक सात्विक पथ पर चलने के लिए बाध्य किया है। कथा में कवि की मनोवृत्ति ऐसी ज्ञात होती है कि वह संसार को उसके वास्तविक नग्न स्वरूप में चित्रित करना चाहता है। पर उसका आध्यात्मिक संदेश और आदर्श के प्रति प्रेम उसे ऐसा करने से रोकते हैं। रत्नसेन के प्रेमावेश में अस्वाभाविकता है और यह अस्वाभाविकता इसीलिए आ गई है कि कवि इस प्रेमावेश को आत्मा या साधक के प्रेमावेश में घटित करना चाहता है। वस्तुस्थिति के वर्णन में जो अस्वाभाविकता है उसमें भी साहित्य के आदर्श बाधा डाल देते हैं। कहीं-कहीं उनमें आध्यात्मिक तत्व खोजने के प्रयत्न में भी स्वाभाविकता का नाश हो जाता है। पद्मावती के रूप-वर्णन में नखशिख खंड के अन्तर्गत कवि लंक-(कमर) चित्रण में लिखता है :—

बसा लंक बरनै जग झीनी।
तेहि तें अधिक लंक वह खीनी।

स्थलो मे कहीं-कहीं वर्णन मे अस्वाभाविकता आ जाती है, पर ऐसे वर्णन किसी प्रकार भी शिथिल नहीं होते. यह कवि की प्रतिभा की महानता है।

पद्मावत की कथा इतिवृत्तात्मक होते हुए भी रसात्मक है। बिना इतिवृत्त के कौतूहल की सृष्टि नहीं होती और बिना वर्णन-विस्तार के रसात्मकता नहीं आती। जहाँ जायसी ने कौतूहल की सृष्टि की है वहाँ उन्होंने वर्णन-विस्तार मे भी मनोरंजन की यथेष्ट सामग्री रक्खी है। कथावस्तु के पाँच भाग होते है। प्रारम्भ, आरोह, चरम सीमा, अवरोह और अंत। रसात्मकता के साथ कथावस्तु का रूप इस प्रकार है :—

राघवचेतन देस निकाला खंड
[चरम सीमा]

प्रेम खंड से—
रत्नसेन संतति खण्ड
[आरोह]

राघवचेतन दिल्ली गमन खंड से
गोरा बादल युद्ध खंड
[अवरोह]
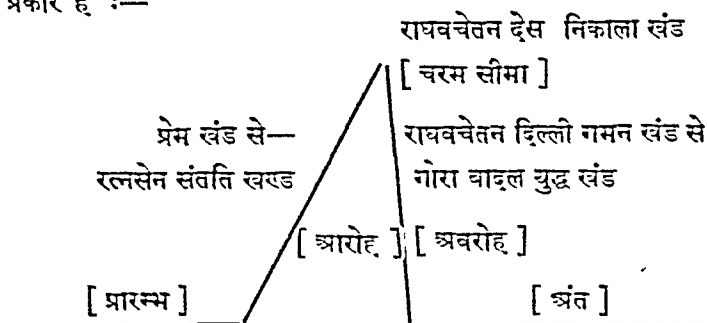
[प्रारम्भ]
जन्म खंड से नखशिख खंड

[अंत]
रत्नसेन देवपाल युद्ध खंड से
पद्मावती नागमती सती खंड

राघवचेतन देस निकाला खंड ही कथा के प्रवाह को बदल देता है, अतः वही कथा की चरम सीमा है। जन्मखंड से नखशिख खंड तक वातावरण की सृष्टि होती है। प्रेम खंड से संघर्ष प्रारम्भ होता है जो राघवचेतन देस निकाला खंड मे उत्कर्ष को प्राप्त होकर चरम सीमा का निर्माण करता है। राघवचेतन दिल्ली गमन खंड से अवरोह प्रारम्भ होता है और उसकी समाप्ति गोरा बादल के युद्ध मे होती है। अंत मे रत्नसेन देवपाल युद्ध से पद्मावती और नागमती के सती होने मे कथा की समाप्ति है।

प्रधान कथा रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम की ही है। यदि इसे आधिकारिक कथा-वस्तु मान लिया जावे तो इसकी सहायता के लिए इस आख्यान में प्रासंगिक कथा वस्तु निम्नलिखित होगी :—

१. राघवचेतन—(चित्तौड़ की चढ़ाई के पश्चात् इसका निर्देश भी नहीं है। यह केवल अवसर विशेष पर काम कर कथावस्तु से निकल जाता है।

२. हीरामन तोता—इसका भी विवाह के बाद निर्देश नहीं है। यह सिंहलद्वीप का पथ-प्रदर्शन कर अपना कार्य समाप्त कर देता है।

३. तूफ़ान—यह अलाउद्दीन और रत्नसेन के बीच सन्धि कराने में प्रस्तुत पांच रत्न उपस्थित करने में ही कथावस्तु में स्थान पाता है।

४. देवपाल दूती—यह रत्नसेन और देवपाल में युद्ध कराने की अनुक्रमणिका प्रस्तुत करती है।

इनके द्वारा प्रासंगिक कथावस्तु का निर्माण होता है जिससे प्रधान या आधिकारिक कथावस्तु का विकास होता है। पद्मावत में कथावस्तु की ही प्रधानता है, क्योंकि कवि ने उन्हीं घटनाओं की सृष्टि की है जिनसे पात्रों के आदर्श की पूर्ति होते हुए भी कौतूहल उत्पादन करने वाली प्रेम-कथा की रूप-रेखा निर्मित हो जावे। अतः पद्मावत घटना-प्रधान कहा जा सकता है, पात्र-प्रधान नहीं। घटना प्रधान में वर्णनात्मकता का बहुत बड़ा स्थान है जिस पर पीछे विचार हो चुका है। कवि जिस चीज को हाथ में लेता है उसी का वर्णन-विस्तार कर देता है। उदाहरणार्थ सिंहलद्वीप में फूलों, फलों और घोड़ों के नाम, भोजन में पकवानों के नाम, पद्मावती-रत्नसेन की प्रथम भेंट के समय सोलह शृंगार का वर्णन, रत्नसेन का रसायन और हठयोग सम्बन्धी ज्ञान आदि आवश्यकता से अधिक वर्णित है।

पद्मावत का सबसे बड़ा सौन्दर्य पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में

है। नागमती का विरह-वर्णन, उसकी उन्माद दशा, पशु पक्षियों का उससे सहानुभूति प्रकट करना, पक्षी द्वारा संदेश आदि सभी स्वाभाविकता के साथ विदग्धतापूर्ण भाषा में वर्णित हैं। बारहमासा में वेदना का कोमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य जीवन का मर्मस्पर्शी माधुर्य प्रकृति की सजीव अभिव्यक्ति से हृदय की मनोहर अनुभूति है। इसी मनोवैज्ञानिक चित्रण में रसों का सफल प्रदर्शन हुआ है। जहाँ रत्नसेन पद्मावती मिलन में संयोग और नागमती के विरह-वर्णन में वियोग शृंगार की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वहाँ गोरा-बादल के उत्साह में वीर रस जैसे साकार हो गया है। रत्नसेन के योगी होने और कथा के अन्तिम भाग में मारे जाने पर करुण रस की बड़ी सरस अभिव्यक्ति है। इस प्रकार साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, प्रत्युत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी पद्मावत प्रेम-काव्य का एक चिरस्मरणीय रत्न रहेगा।

मलिक मुहम्मद जायसी के बाद प्रेम-काव्य में उसमान का नाम आता है जिन्होंने चित्रावली नाम का ग्रन्थ लिखा।

चित्रावली

चित्रावली को हम पद्मावत की छाया कह सकते हैं। पद्मावत में जिन-जिन विषयों पर प्रकाश डाला गया है, उन्हीं विषयों पर चित्रावली में भी विस्तार पूर्वक वर्णन है। किन्तु यह कथा पद्मावत की भाँति ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बद्ध नहीं है। यह कल्पना-प्रसूत है। इसके सम्बन्ध में स्वर्गीय जगन्मोहन वर्मा लिखते हैं :—

'कवि ने इस ग्रन्थ में ठौर-ठौर पर वेदान्त और अद्वैतवाद की झलक दिखलाने में कमी नहीं की है। कथा ऐतिहासिक घटना से नहीं ली गई जान पड़ती बल्कि कल्पना-प्रसूत है। नेपाल के राजसिंहासन पर एक भी पवार राजा नहीं हुआ है। कथा विचारने से आध्यात्मिक प्रतीत

प्रधान कथा रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम की ही है। यदि इसे आधिकारिक कथा-वस्तु मान लिया जावे तो इसकी सहायता के लिए इस आख्यान में प्रासंगिक कथा वस्तु निम्नलिखित होगी :—

१. राघवचेतन—(चित्तौड़ की चढ़ाई के पश्चात् इसका निर्देश भी नहीं है। यह केवल अवसर विशेष पर काम कर कथावस्तु से निकल जाता है।

२. हीरामन तोता—इसका भी विवाह के बाद निर्देश नहीं है। यह सिंहलद्वीप का पथ-प्रदर्शन कर अपना कार्य समाप्त कर देता है।

३. तूफान—यह अलाउद्दीन और रत्नसेन के बीच सन्धि कराने में प्रयुक्त पाँच रत्न उपस्थित करने में ही कथावस्तु में स्थान पाता है।

४. देवपाल दूती—यह रत्नसेन और देवपाल में युद्ध कराने की अनुक्रमणिका प्रस्तुत करती है।

इनके द्वारा प्रासंगिक कथावस्तु का निर्माण होता है जिससे प्रधान या आधिकारिक कथावस्तु का विकास होता है। पद्मावत में कथावस्तु की ही प्रधानता है, क्योंकि कवि ने उन्हीं घटनाओं की सृष्टि की है जिनसे पात्रों के आदर्श की पूर्ति होते हुए भी कौतूहल उत्पादन करने वाली प्रेम-कथा की रूप-रेखा निर्मित हो जावे। अतः पद्मावत घटना-प्रधान कहा जा सकता है, पात्र-प्रधान नहीं। घटना प्रधान में वर्णनात्मकता का बहुत बड़ा स्थान है जिस पर पीछे विचार हो चुका है। कवि जिस चीज को हाथ में लेता है उसी का वर्णन-विस्तार कर देता है। ।उदाहरणार्थ सिंहलद्वीप में फूलों, फलों और घोड़ों के नाम, भोजन में पकवानों के नाम, पद्मावती-रत्नसेन की प्रथम भेंट के समय सोलह शृंगार का वर्णन, रत्नसेन का रसायन और हठयोग सम्बन्धी ज्ञान आदि आवश्यकता से अधिक वर्णित है।

पद्मावत का सबसे बड़ा सौन्दर्य पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में

पावे खोज तुम्हार सो, जेहि देखलावहु पंथ ।
कहा होइ जोगी भये, औ पुनि पढ़े गरंथ ॥[1]

आध्यात्मिकता के साथ चित्रावली में नीति के भी दर्शन होते हैं। इस नीति का आधार उसमान की लोकोक्तियाँ हैं, जो समस्त ग्रन्थ में भरी पड़ी हैं।

चित्रावली में भूगोल भी यथेष्ट वर्णित है। रचना के समय में अंग्रेजों का वर्णन उसमान की बहुज्ञता का सूचक है। उस समय अंग्रेजों को भारत में आये कठिनता से एक वर्ष ही व्यतीत हुआ था। इतने थोड़े समय में उसमान का अंग्रेजों के सम्बन्ध में उल्लेख उनकी ज्ञान-राशि का सूचक है :—

वलंदीप देखा अंग्रेजा, तहाँ जाइ नहिं कठिन करेजा।
ऊँच नीच धन संपति हेरा, मद वराह भोजन जेहि केरा।

श्री जगन्मोहन वर्मा लिखते हैं :—

उस समय अंग्रेजों को आये इस देश में बहुत थोड़े दिन हुए थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी सन् १६०० में लंडन में बनी थी और १६१२ में सूरत में कम्पनी ने अपना गोदाम बनाया था। उसके एक वर्ष बाद १६१३ का रचा हुआ यह ग्रंथ है। उस समय कवि का एक साधारण गाजीपुर ऐसे छोटे नगर में रह कर अंग्रेजों के विषय में इतनी जानकारी रखना कोई साधारण बात नहीं है।[2]

उसमान जहाँगीर के समकालीन थे। इनके पिता का नाम शेख हुसेन था। इनके चार भाई थे। ये गाजीपुर के निवासी थे और निजामुद्दीन चिश्ती की शिष्य-परम्परा में हाजी बाबा के शिष्य थे। इन्होंने चित्रावली में हाजी बाबा की प्रशंसा जी खोल कर की है। उसमान कविता में अपना नाम 'मान' रखते थे।

---

१. चित्रावली (ना० प्र० सभा) पृष्ठ ४७–४८

२ चित्रावली (ना० प्र० सभा) पृष्ठ १७

होती है और इसीलिए ग्रन्थ में सुजान को शिव का अवतार लिखा है।"[1]

स्वयं कवि ने अपनी कथा को कल्पित बतला कर लिखा है :—

कथा एक मैं हिएँ उपाई। कहत मीठ औ सुनत सुहाई॥
कहौं बनाय जैस मोहि सूझा। जेहि जस सूझ सो तैसे बूझा॥[2]

चित्रावली की कथा में घटनाओं की श्रृंखला बहुत लम्बी और बहुत कौतूहलपूर्ण है। उसमें अनेक अलौकिक बातों का भी समावेश है। कथा को विस्तृत रूप देने के लिए जबर्दस्ती विपत्तियों की कल्पना की गई है। संक्षेप में नेपाल के राजा धरनीधर पवार के पुत्र सुजान कुमार अनेक कठिनाइयों के बाद कंवलावती और चित्रावली से विवाह करने में समर्थ होता है। दो राजकुमारियों से विवाह करने के पूर्व जितनी कठिनाइयाँ सामने आती हैं उनका विस्तृत वर्णन चित्रावली में है।

इस ग्रन्थ में जहाँ कल्पना का प्राधान्य है, वहाँ ग्रन्थ में आध्यात्मिकता रखने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। सरोवर खंड में चित्रावली का जल में छिप जाना ईश्वर के गुप्त होने से साम्य रखता है। सखियाँ खोजती हैं और नहीं पातीं जिस प्रकार मनुष्य ईश्वर की खोज नहीं कर पाता।

गुपुत तोहि पावहिं का जानी, परगट महँ जो रहिह छपानी।
चतुरानन पढ़ि चारों वेदू, रहा खोजि पै पाव न भेदू।
संकर पुनि हारे कै सेवा, ताहि न मिलिउ और को देवा।
हम अंधी जेहि आपुन सूझा, भेद तुम्हार कहाँ लौं बूझा।
कौन सो ठाऊँ जहाँ तुम नाहीं, हम चषु जोति न देखहिं काहीं।

---

1. चित्रावली (जगन्मोहन वर्मा द्वारा सम्पादित) भूमिका पृष्ठ १६
नागरी प्रचारिणी सभा १९१२

2. वही, पृष्ठ १४

पावै खोज तुम्हार सो, जेहि देखलावहु पंथ।
कहा होइ जोगी भये, औ पुनि पढ़े गरंथ॥[1]

आध्यात्मिकता के साथ चित्रावली में नीति के भी दर्शन होते हैं। इस नीति का आधार उसमान की लोकोक्तियाँ हैं, जो समस्त ग्रन्थ में भरी पड़ी हैं।

चित्रावली में भूगोल भी यथेष्ट वर्णित है। रचना के समय में अंग्रेजों का वर्णन उसमान की बहुज्ञता का सूचक है। उस समय अंग्रेजों को भारत में आये कठिनता से एक वर्ष ही व्यतीत हुआ था। इतने थोड़े समय में उसमान का अंग्रेजों के सम्बन्ध में उल्लेख उनकी ज्ञान-राशि का सूचक है:—

वलंदीप देखा अंग्रेजा, तहाँ जाइ नहिं कठिन करेजा।
ऊँच नीच धन संपति हेरा, मद बराह भोजन जेहि केरा।

श्री जगन्मोहन वर्मा लिखते हैं:—

उस समय अंग्रेजों को आये इस देश में बहुत थोड़े दिन हुए थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी सन् १६०० में लंडन में बनी थी और १६१२ में सूरत में कम्पनी ने अपना गोदाम बनाया था। उसके एक वर्ष बाद १६१३ का रचा हुआ यह ग्रंथ है। उस समय कवि का एक साधारण गाजीपुर ऐसे छोटे नगर में रह कर अंग्रेजों के विषय में इतनी जानकारी रखना कोई साधारण बात नहीं है।[2]

उसमान जहाँगीर के समकालीन थे। इनके पिता का नाम शेख हुसेन था। इनके चार भाई थे। ये गाजीपुर के निवासी थे और निजामुद्दीन चिश्ती की शिष्य-परम्परा में हाजी बाबा के शिष्य थे। इन्होंने चित्रावली में हाजी बाबा की प्रशंसा जी खोल कर की है। उसमान कविता में अपना नाम 'मान' रखते थे।

---

1. चित्रावली (ना० प्र० सभा) पृष्ठ ४७–४८
2. चित्रावली (ना० प्र० सभा) पृष्ठ १७

होती है और इसीलिए ग्रन्थ में सुजान को शिव का अवतार लिखा है।"[1]

स्वयं कवि ने अपनी कथा को कल्पित बतला कर लिखा है :—

कथा एक मैं हिएं उपाई। कहत मीठ औ सुनत सुहाई॥
कहीं बनाय जैस मोहि सूझा। जेहि जस सूझ सो तैसे बूझा॥[2]

चित्रावली की कथा में घटनाओं की शृंखला बहुत लम्बी और बहुत कौतूहलपूर्ण है। उसमें अनेक अलौकिक बातों का भी समावेश है। कथा को विस्तृत रूप देने के लिए जबर्दस्ती विपत्तियों की कल्पना की गई है। संक्षेप में नैपाल के राजा धरनीधर पंवार के पुत्र सुजान कुमार अनेक कठिनाइयों के बाद कंवलावती और चित्रावली से विवाह करने में समर्थ होता है। दो राजकुमारियों से विवाह करने के पूर्व जितनी कठिनाइयाँ सामने आती हैं उनका विस्तृत वर्णन चित्रावली में है।

इस ग्रन्थ में जहाँ कल्पना का प्राधान्य है, वहाँ ग्रन्थ में आध्यात्मिकता रखने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। सरोवर खंड में चित्रावली का जल में छिप जाना ईश्वर के गुप्त होने से साम्य रखता है। सखियाँ खोजती हैं और नहीं पातीं जिस प्रकार मनुष्य ईश्वर की खोज नहीं कर पाता।

गुपुत तोहि पावहिं का जानी, परगट महँ जो रहिह छपानी।
चतुरानन पढ़ि चारौं वेदू, रहा खोजि पै पाव न भेदू।
संकर पुनि हारे कै सेवा, ताहि न मिलिउ और को देवा।
हम अंधी जेहि आपुन सूझा, भेद तुम्हार कहाँ लौं बूझा।
कौन सो ठाऊँ जहाँ तुम नाहीं, हम चपु जोति न देखहिं काहीं।

---

१. चित्रावली (जगन्मोहन वर्मा द्वारा सम्पादित) भूमिका पृष्ठ १६
नागरी प्रचारिणी सभा १९१२

२. वही, पृष्ठ १४

निवासी थे और जहाँगीर के समकालीन थे। इनका आविर्भाव-काल संवत् १६७५ माना गया है।

कनक मंजरी

इस ग्रन्थ में रत्नपुर के व्यापारी धनधीर साह की स्त्री कनक मंजरी से वहाँ के राजकुमार ने पति-प्रवास में प्रेम-याचना की, पर वह सफल न हो सका। इस ग्रन्थ के लेखक औरङ्गजेब के सूबेदार निज़ामत ख़ाँ के आश्रित कवि काशीराम थे। काशीराम ने यह कथा राजकुमार लक्ष्मीचन्द के लिए लिखी थी। संभव है, इसके पीछे लेखक का कोई उद्देश्य हो। काशीराम का आविर्भाव काल संवत् १७२० माना गया है।

कामरूप की कथा

इस ग्रन्थ में राजकुमार कामरूप और राजकुमारी की प्रेम-कथा है। इस ग्रन्थ के लेखक हरसेवक मिश्र थे जो ओरछा दरबार के कवि थे। इनका आविर्भाव काल संवत् १८०१ माना गया है।

इस ग्रन्थ के अतिरिक्त हरराजकृत ढोला मारवणी चउपही, आलम कवि कृत माधवानल कामकन्दला, प्रेमचन्द्र कृत चन्द्रकला और मृगेन्द्र कवि कृत प्रेम पयोनिधि नामक ग्रन्थ भी पाये जाते हैं जिनमें प्रेम-काव्य की परम्परा का पालन किया गया है। हरराज कृत ढोला मारवाणी चौपही और आलम कवि कृत माधवानल कामकन्दला का निर्देश चारण काल में हो ही चुका है। शेष ग्रन्थ साधारण हैं। इनके अतिरिक्त दो ग्रन्थ और भी जिनके लेखकों के विषय में विशेष ज्ञात नहीं। वे ग्रन्थ हैं 'कुतुब शतक', जिसमें कुतुब दी और साहिबा की प्रेम-कथा है तथा 'जलाल गहाणी की वात' जिसमें जलाल और गहाणी की प्रेम-कथा है।

संक्षेप में प्रेम-काव्य की परम्परा में निम्नलिखित मुख्य ग्रन्थों की रचना हुई :—

ज्ञानदीप

इस ग्रंथ मे राजा ज्ञानदीप और रानी देवजानी की प्रेम-कथा है। इसके लेखक मऊ (दोसपुर, जौनपुर) निवासी शेख नबी थे। इनका समय सं० १६७६ माना गया है।

हंस जवाहर

इस ग्रंथ मे राजा हंस और रानी जवाहर की प्रेम-कथा है। इसके लेखक दरियाबाद (बाराबंकी) के निवासी कासिमशाह थे। इनका काल संवत् १७८८ माना गया है।

इंद्रावती

इस ग्रंथ मे कालिंजर के राजकुमार राजकुँवर और आजमपुर की राजकुमारी इन्द्रावती की प्रेम-कथा है।

इसके लेखक मुग़ल बादशाह मुहम्मद शाह के समकालीन (सं० १८०१) नूरमुहम्मद थे।

प्रेमरतन

इस ग्रंथ मे नूरशाह और माहे मुनीर की प्रेम-कथा है। इसके लेखक फाज़िल शाह थे, जो सं० १९०५ मे छतरपुर नरेश महाराज प्रतापसिंह के दरबार मे थे।

रस रतन

इस ग्रन्थ मे सूरसेन की बड़ी लम्बी कथा वर्णित है। इसमे स्थान-स्थान पर नीति, शृंगार और काव्य के अनेक अंगो का वर्णन है। इसमे प्रेमाख्यानक शैली का सम्पूर्णतः अनुसरण किया गया है और प्रत्येक बात का वर्णन विस्तारपूर्वक है। इस ग्रन्थ के लेखक मोहनदास के पुत्र पुहकर कवि थे, जो जाति के कायस्थ थे। ये प्रतापपुर (मैनपुरी) के

निवासी थे और जहाँगीर के समकालीन थे। इनका आविर्भाव-काल संवत् १६७५ माना गया है।

कनक मंजरी

इस ग्रन्थ में रत्नपुर के व्यापारी धनधीर साह की स्त्री कनक मंजरी से वहाँ के राजकुमार ने पति-प्रवास में प्रेम-याचना की, पर वह सफल न हो सका। इस ग्रन्थ के लेखक औरङ्गज़ेब के सूबेदार निज़ामत खाँ के आश्रित कवि काशीराम थे। काशीराम ने यह कथा राजकुमार लक्ष्मीचन्द के लिए लिखी थी। संभव है, इसके पीछे लेखक का कोई उद्देश्य हो। काशीराम का आविर्भाव काल संवत् १७२० माना गया है।

कामरूप की कथा

इस ग्रन्थ में राजकुमार कामरूप और राजकुमारी की प्रेम-कथा है। इस ग्रन्थ के लेखक हरसेवक मिश्र थे जो ओरछा दरबार के कवि थे। इनका आविर्भाव काल संवत् १८७१ माना गया है।

इस ग्रन्थ के अतिरिक्त हरराजकृत ढोला मारवणी चउपही, आलम कवि कृत माधवानल कामकन्दला, प्रेमचन्द्र कृत चन्द्रकला और मृगेन्द्र कवि कृत प्रेम पयोनिधि नामक ग्रन्थ भी पाये जाते हैं जिनमें प्रेम-काव्य की परम्परा का पालन किया गया है। हरराज कृत ढोला मारवाणी चौपही और आलम कवि कृत माधवानल कामकन्दला का निर्देश चारण काल में हो ही चुका है। शेष ग्रन्थ साधारण हैं। इनके अतिरिक्त दो ग्रन्थ और भी जिनके लेखकों के विषय में विशेष ज्ञात नहीं। वे ग्रन्थ हैं 'कुतुब शतक', जिसमें कुतुब दी और साहिबा की प्रेम-कथा है तथा 'जलाल गहाणी की वात' जिसमें जलाल और गहाणी की प्रेम-कथा है।

संक्षेप में प्रेम-काव्य की परम्परा में निम्नलिखित मुख्य ग्रन्थों की रचना हुई :—

में घटित होती है जिसमें स्थान-स्थान पर हिन्दू देवी और देवताओं के लिए सम्मान की शब्दावलियाँ प्रयुक्त हैं। यद्यपि ऐसी प्रेम-कथाओं का निष्कर्ष एकमात्र सूफ़ी मत का प्रतिपादन ही है, पर उसमें हिन्दू धर्म के लिए न तो अश्रद्धा है और न अपमान ही। हिन्दू धर्म और देवताओं का निर्देश अलौकिक घटनाओं और चमत्कार उत्पन्न करने में पाया जाता है। सारी कथावस्तु प्रेमाख्यान में ही विस्तार पाती है और उसमें किसी प्रकार की उपदेश देने की प्रवृत्ति लक्षित नहीं होती। कथा-समाप्ति पर संक्षेप में कथा के अंगों और पात्रों को सूफ़ीमत पर घटित कर दिया जाता है और समस्त कथा में एक आध्यात्मिक अभिव्यंजना (Allegory) आ जाती है। उदाहरण के लिए जायसी का पद्मावत ही लिया जा सकता है। समस्त कथा रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम और उसके विकास में समाप्त हो जाती है, अन्त में जायसी इस कथा में सूफ़ी सिद्धान्तों की रूप-रेखा निर्धारित करते हैं। अतः हिन्दू धर्म के वातावरण में सूफ़ी सिद्धान्तों के प्रचार करने में इस प्रेम-काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है।

यहाँ एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए। सभी प्रेम-कथाएँ मुसलमानों के द्वारा नहीं लिखी गईं। बहुत से हिन्दू लेखकों ने भी प्रेम-कथाएँ लिखी हैं जिनमें प्रेम-काव्य की परम्परा का अनुसरण किया गया है। कथावस्तु भी हिन्दू पात्रों के जीवन को स्पर्श करती है, पर उसमें किसी सूफ़ी सिद्धान्त के निरूपण करने का प्रयत्न नहीं किया गया। उसमें केवल आख्यायिका और उससे उत्पन्न मनोरंजन की भावना ही प्रधान है। यह आख्यायिका कहीं कहीं ऐतिहासिक हो जाती है, कहीं-कहीं काल्पनिक। हरराज की ढोला मारवणी चउपही, काशीराम की कनक मंजरी, हरसेवक की कामरूप की कथा आदि ऐसी प्रेम-कथाएँ हैं जिनमें केवल कथा का कौतूहल है, किसी सिद्धान्त विशेष का प्रतिपादन नहीं।

अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि जब प्रेमकथा किसी मुसलमान के द्वारा लिखी गई है तो उसमें कथा की गति में सूफ़ीमत के सिद्धान्तों

की यदि भी रचना करनी है, तो प्रेम कथा किसी हिन्दू के द्वारा लिखी गई है तो उसमें केवल प्रेम की समस्या रहती है, किसी सिद्धान्त के प्रतिपादन का प्रश्न नहीं।

छन्द

इन प्रेम काव्य की समस्त परम्परा में दोहा और चौपाई छन्द ही प्रयुक्त हुए हैं। प्रेमाख्यानकों में ये छन्द इतने उपयुक्त साबित हुए कि आगे चल कर तुलसीदास ने अपने मानस के लिए भी यही छन्द उपयुक्त समझे। अवधी भाषा के साहित्य में दोहा और चौपाई छन्द इतने सफल हुए जितने वे ब्रजभाषा के सम्पर्क में आकर नहीं। श्री जगन्मोहन वर्मा लिखते हैं :—

"ब्रजभाषा में दोहा रचने में बिहारी सिद्धहस्त थे और उनके दोहों में बड़े गूढ़ भाव पाये जाते हैं जिनके विषय में 'सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर' की जनश्रुति प्रख्यात है। पर पद-लालित्य में उनके दोहे भी पूर्वी भाषा के दोहों को कभी नहीं पहुंच सकते।"[1]

वर्मा जी के इस कथन में बहुत सत्य है।

मधुमालती और मृगावती में चौपाई की पाँच पंक्तियों के बाद एक दोहा है। जायसी ने पाँच के बदले सात पंक्तियाँ अपने पद्मावत में रक्खीं। तुलसीदास ने सात के बदले आठ पंक्तियाँ रक्खीं। इसका कारण यह ज्ञात होता है कि मुसलमानों ने चौपाई के दो चरणों को ही चौपाई का पूर्ण छन्द मान लिया। इस प्रकार वास्तव में मृगावती और मधुमालती में ढाई चौपाई के बाद और पद्मावत में साढ़े तीन चौपाई के बाद एक दोहा है। तुलसीदास संस्कृत के विद्वान और पिंगल के आचार्य थे, अतः उन्होंने आठ पंक्तियाँ लिख कर वास्तव में चार

---

१. चित्रावली (श्री जगन्मोहन वर्मा) भूमिका पृष्ठ ७
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (१६१२)

चौपाई के बाद एक दोहा रक्खा, जो काव्य की दृष्टि से सब प्रकार से युक्तिसंगत था।

भाषा

प्रेम-काव्य की भाषा अवधी है। अवधी भाषा के प्रथम कवि अमीर खुसरो थे। उन्होंने सबसे पहले ब्रजभाषा के साथ ही साथ अवधी में भी काव्य-रचना की, यद्यपि उसका दृष्टिकोण पहेलियों तक ही सीमित था। खुसरो के समय में काव्य की दो ही प्रधान भाषाएँ थीं, ब्रजभाषा और अवधी। दोनों के आदर्श भिन्न भिन्न थे। काल क्रमानुसार अवधी कविता में ब्रजभाषा से पहले प्रयुक्त हुई। अवधी ने अपभ्रंश का लोकप्रिय 'विप्रक्खरी' या 'दोहया' छन्द ही प्रयोग के लिए स्वीकार किया। खुसरो ने एक सुन्दर दोहा लिखा है :—

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, साँझ भई चहुँ देस॥

दोहा छन्द अवधी में ऐसा 'फिट' हुआ कि अन्य किसी भाषा में 'दोहे' के साथ न्याय नहीं हुआ। यही हाल चौपाई का रहा। अवधी में चौपाई का जो रूप निखरा वह ब्रजभाषा में भी नहीं। ब्रजभाषा का सौन्दर्य तो पद, सवैया और कवित्त में उद्भासित हुआ। यही कारण है कि तुलसी ने मानस को अवधी में लिख कर दोहे और चौपाइयों का प्रयोग किया और कवितावली ब्रजभाषा में लिख कर सवैये और कवित्तों का प्रयोग किया। गीतावली और विनयपत्रिका में भी ब्रजभाषा की छटा पदों में प्रदर्शित की। अवधी भाषा ही चौपाई में सौन्दर्य ला सकी। सूरदास और बिहारी की ब्रजभाषा भी दोहों की रचना में अपेक्षाकृत असफल ही रही।

जो अवधी इस प्रेमकाव्य में प्रयुक्त है, वह अत्यन्त सरल और स्वाभाविक है। वह जन समाज की बोली के रूप में है। उसमें संस्कृत के कठिन समास या दुरूह शब्दावलियाँ नहीं हैं। तुलसीदास ने अपनी

अवधी को संस्कृतमय कर अपने शब्द-भाण्डार का अपरिमित परिचय दिया है। पर प्रेम-काव्य के कवियों ने भाषा का यथातथ्य स्वरूप कविता में सुरक्षित रक्खा। तुलसीदास ने लिखा—

जो छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मदर सिंगारू। मथै पाणि पंकज निज मारू॥

जायसी ने लिखा —

काल आय दिखराई साटी। तब जिउ चला छाडि कै माटी।

पहले उद्धरण मे यदि पांडित्य और सरसता है तो दूसरे मे स्वाभाविकता और सरलता। प्रेमकाव्य के कवियो ने अवधी का अत्यन्त स्वाभाविक और यथातथ्य स्वरूप सुरक्षित रक्खा। साहित्य को प्रेम-काव्य की यह सब से बड़ी देन है।

रस

प्रेमकाव्य मे प्रधान रस शृंगार है। शृंगार के दो पक्ष हैं, संयोग और वियोग। प्रेमकाव्य मे जहॉ सूफीमत का प्राधान्य है, वहॉ वियोग शृंगार का आधिक्य है, क्योंकि साधक का विरह ईश्वर से बहुत दिनों तक रहता है। अन्त मे अनेक प्रकार की कठिनाइयों को पार कर संयोग की अवस्था आती है। इसलिए वियोग का अनुभव यथेष्ट समय तक रहता है। यह वियोग प्रेमकाव्य मे प्रायः किसी राजकुमारी के सौन्दर्य की कहानी सुनकर अथवा चित्र देख कर जागृत हुआ करता है। पद्मावत मे रत्नसेन को हीरामन तोते द्वारा कही हुई पद्मावती की प्रेम-कहानी सुन कर विरह का अनुभव होता है। चित्रावली मे राजकुमार सुजान चित्रावली की चित्रसारी मे उसका चित्र देख कर वियोग मे दुःखी होता है। मान भी प्रेमकाव्य मे मध्यम और गुरु हो जाता है। अधिकतर गुरु मान ही हुआ करता है, क्योंकि साधना मे बड़ी कठिनाई से ईश्वर मे सामीप्य प्राप्त होता है। प्रवास भूत और भविष्य दोनों प्रकार का होता है। नागमती का विलाप प्रवास के दृष्टिकोण से वियोग-

शृंगार का अच्छा उदाहरण है। प्रेमकाव्य में शृंगार रस की सम्पूर्ण विवेचना है। स्पष्टता के लिए प्रेमकाव्यान्तर्गत शृंगार रस के अंगों का निरूपण करना अयुक्तिसंगत न होगा :—
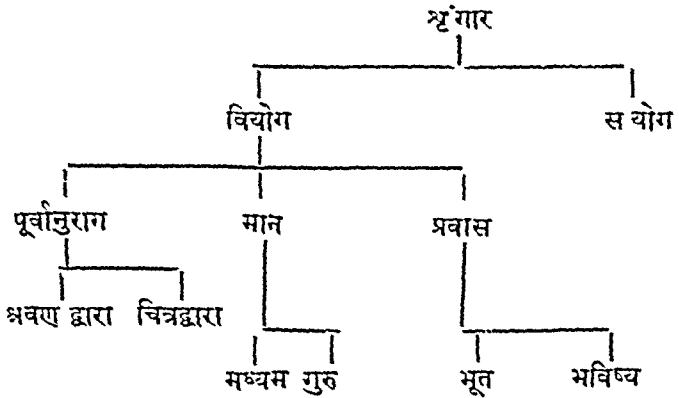
शृंगार रस के अतिरिक्त अन्य सभी रस कथावस्तु की मनोरंजकता बढ़ाने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। हाँ, हास्य-रस और रौद्र रस का अभाव अवश्य है। संभव है, प्रेमकाव्य में इनकी आवश्यकता न मानी गई हो। एक बात दृष्टव्य है। प्रेमकाव्य के वियोग शृंगार में कहीं-कहीं वीभत्स चित्रावली के भी दर्शन हो जाते हैं। इसका कारण संभवतः यह हो कि मसनवी की प्रेम-पद्धति में विरह-वर्णन कोमल न होकर भीषण हुआ करता है। मांस और रक्त का वर्णन तो विरह-वर्णन में अवश्य ही रहता है। हिन्दू दृष्टिकोण में शृंगार रस के स्थायी भाव रति से मांस और रक्त की भावना का सामञ्जस्य हो ही नहीं सकता। अतः शास्त्रीय दृष्टिकोण से प्रेम-काव्य में रस-दोष आ जाता है। शत्रु और मित्र रस समान रूप से साथ प्रस्तुत किये जाते हैं।

विशेष

प्रेम काव्य की परम्परा में आख्यायिका साहित्य का [illegible] विकास हुआ। इस साहित्य का पोषण हिन्दू और मुसलमान [illegible]

संस्कृतियों मे हुआ। हिन्दू संस्कृति ने आदर्शवाद और मुसलमान संस्कृति ने सूफ़ीमत के सिद्धान्तो से प्रेम-काव्य को पुष्ट किया। प्रेम-काव्य मसनवियो की शैली पर है और मसनवी सम्भवतः "अल्फ़ लैला" के घटना-वैचित्र्य से निर्मित हुई। मौलाना सैयद सुलेमान नदवी का कथन है—"कहानियो की प्रसिद्ध 'अल्फ़ लैला' नाम की पुस्तक मे सिन्दवाद के नाम की दो कहानियाँ हैं, जिनमे से एक मे सिन्दवाद नाम के व्यापारी की जल-यात्रा की और दूसरे मे स्थल-यात्रा की विलक्षण और अद्भुत घटनाएँ वतलाई गई हैं।[1]" अल्फ़ लैला की वर्णनात्मकता और विलक्षण घटना-कौतूहल ने ही संभवतः मसनवियो को जन्म दिया। अतः हमारे साहित्य का प्रेम-काव्य मुसलमानो के माध्यम से 'अल्फ़-लैला' का रूपान्तर ज्ञात होता है।

जहाँ तक धर्म से सम्बन्ध है, हिन्दुओ के वेदान्त और मुसलमानो के सूफ़ीमत मे वहुत साम्य है। नदवी साहव तो सूफ़ीमत को वेदान्त से प्रभावित भी मानते हैं। वे कहते हैं:—"इसमे तो कोई सन्देह नहीं कि मुसलमान सूफ़ियो पर, भारत मे आने के वाद, हिन्दू वेदान्तियों का प्रभाव पड़ा।[2]" इन दोनो धर्मों के सिद्धान्तो ने प्रेम-काव्य की रूपरेखा का निर्माण किया। जो प्रेमकथाएँ मुसलमान लेखको द्वारा लिखी गई हैं, उनमे धार्मिक संकेत अवश्य है, पर जो प्रेमकथाएँ हिन्दू लेखको द्वारा लिखी गई है उनमे काव्यत्व और घटना-वैचित्र्य ही प्रधान है। इतना अवश्य है कि हिन्दू प्रेमकथाकारो ने मुसलमानों द्वारा चलाई गई प्रेमकथा के आदर्शों का पूर्ण रूप से पालन किया है। दोनो प्रकार के लेखको मे भाषा का भी थोड़ा अन्तर है। मुसलमान लेखको ने भाषा का सरल और स्वाभाविक रूप रक्खा है, क्योंकि वे साहित्यिक भाषा से पूर्ण

---

1 अरब और भारत के सम्बन्ध, पृष्ठ १३८
(हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहावाद १९२९)

2 वही, पृष्ठ २०३

परिचित नहीं थे। किन्तु हिन्दू लेखकों ने अपनी भाषा में काव्यत्व लाने की भरपूर चेष्टा की है। इससे भाषा पूर्ण स्वाभाविक नहीं रह गई। उसमें संस्कृत की बहुत सी पदावलियाँ स्थान पा गई हैं। इतना होने पर भी मुसलमान लेखक हिन्दू लेखकों से प्रेम-कथा लिखने में आगे माने जायगे। साधारण भाषा में उत्कृष्ट भावों का प्रदर्शन करना कवित्व की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है। इस कसौटी पर मुसलमान लेखकों ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। प० रामचंद्र शुक्ल इन आख्यानकों के सम्बन्ध में लिखते हैं :—

"हिन्दी में चरित-काव्य बहुत थोड़े हैं। ब्रजभाषा में तो कोई ऐसा चरित-काव्य नहीं, जिसने जनता के बीच प्रसिद्धि प्राप्त की हो। पुरानी हिन्दी के पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, हम्मीर रासो आदि वीर-गाथाओं के पीछे चरित-काव्य की परम्परा हमें अवधी भाषा में ही मिलती है। ब्रजभाषा में केवल ब्रजवासीदास से ब्रजविलास का कुछ प्रचार कृष्ण-भक्तों में हुआ, शेष राम रसायन आदि जो दो-एक प्रबन्ध-काव्य लिखे गए वे जनता को कुछ भी आकर्षित नहीं कर सके। केशव की रामचंद्रिका का काव्य-प्रेमियों में आदर रहा, पर उसमें प्रबन्ध काव्य के वे गुण नहीं हैं, जो होने चाहिए। चरित-काव्य में अवधी भाषा को ही सफलता हुई और अवधी भाषा के सर्वश्रेष्ठ रत्न हैं रामचरित मानस और पदमावत। इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य में हम जायसी के उच्च स्थान का अनुमान कर सकते हैं।[1]"

———

[1] जायसी ग्रन्थावली, सम्पादक प० रामचन्द्र शुक्ल
(नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १६२४)

छठा प्रकरण

राम-काव्य

उत्तरी भारत में राम भक्ति का जो प्रचार हुआ, उसका एकमात्र श्रेय रामानन्द ही को है। रामानन्द के पूर्व यद्यपि अनेक वैष्णव भक्त हो चुके थे तथापि राम-भक्ति के वास्तविक आचार्य रामानन्द ही समझे गए। रामानन्द ने संस्कृत के साथ जन-समाज की बोली में ही वैष्णव धर्म का प्रचार किया। रामानन्द के शिष्य कबीर ने यद्यपि राम नाम का आश्रय लेकर ही संतमत की रूप रेखा निर्धारित की, तथापि राम-भक्ति का पूर्ण विकास तुलसीदास की रचनाओं में ही हुआ। रामकाव्य के कवियों पर विचार करने में पूर्व राम-भक्ति के विकास पर दृष्टि डालना उचित होगा।

राम का महत्व प्रथम हमें वाल्मीकि रामायण में मिलता है। इसकी तिथि ईसा के ६०० या ५०० वर्ष पूर्व मानी जाती है।[1] वाल्मीकि के प्रथम और सप्तम काण्ड तो प्रक्षिप्त माने गए हैं, पर द्वितीय से षष्ठ काण्ड तो मौलिक और प्रामाणिक हैं। यद्यपि उनकी वास्तविकता में भी कहीं कहीं संदेह है, पर अधिकतर उनका रूप विकृत नहीं हो पाया है। वाल्मीकि रामायण का दृष्टिकोण लौकिक है। इसकी यह सबसे बड़ी विशेषता है, क्योंकि उसके द्वारा ही हम धर्म के यथार्थ रूप का परिचय पा सकते हैं। ग्रंथ धार्मिक न होने के कारण

---

1 An Outline of the Religious Literature of India, page 47.
J. N. Farquhar.

अन्धविश्वास और भावोन्मेष से रहित है, अतः इसमें हम लौकिक दृष्टिकोण से धर्म का रूप पा सकते हैं। राम प्रारम्भ से लेकर अंत तक मनुष्य ही है, उनमें दैवत्व की छाया भी नहीं है। वे एक महापुरुष अवश्य हैं, पर अवतार नहीं। वाल्मीकि रामायण में वैदिक देवता ही मान्य हैं, जिनमें इन्द्र का स्थान अवश्य कुछ ऊंचा है। इनके सिवाय कुछ अन्य देवी और देवता भी हैं, जिनमें कार्तिकेय और कुबेर तथा लक्ष्मी और उमा मुख्य हैं। विष्णु और शिव का भी स्थान महत्वपूर्ण है, लेकिन उतना ही जितना ऋग्वेद में है। अतः वाल्मीकि रामायण में विष्णु और राम का कोई सम्बन्ध नहीं है और न राम अवतार रूप में ही हैं। वे केवल मनुष्य है, महात्मा हैं।

ईसा के दो सौ वर्ष पूर्व राम अवतार के रूप में माने जाते हैं। इस समय मौर्यवंश का विनाश हो गया था। उसके स्थान पर सुंग वंश की स्थापना हो गई थी। बौद्ध धर्म विकास पर था। इसी समय बुद्ध ईश्वरत्व के गुणों से विभूषित होने लगे थे। बौद्धमत में वे नवीन शक्तियों से संयुक्त भगवान के पद पर आरूढ़ होने जा रहे थे। संभव है, बौद्ध धर्म की इस नवीन प्रगति ने राम को भी देवत्व के स्थान पर आरूढ़ कर दिया हो। इस समय वायु पुराण में राम की भावना विष्णु के अवतारों में मानी गई। उसमें राम ईश्वरत्व के पद पर अधिष्ठित होते हैं। वायुपुराण का रचना-काल संदिग्ध है। उसकी रचना कुछ इतिहासज्ञों द्वारा ईसा के ५०० वर्ष पूर्व भी मानी गई है।[1] जो हो, वायुपुराण अधिक अंशो में बौद्धमत की भावना से अवश्य प्रभावित हुआ।

वाल्मीकि रामायण के प्रक्षिप्त अंशो में ब्रह्मा, विष्णु और महेश देवों के रूप में समान प्रकार से मान्य हैं और राम अंशतः विष्णु के

---

1. Encyclopaedia of Religion and Ethics.
Vol. 12, page 571.

अवतार है। इन्द्र के अनेक गुण विष्णु में स्थापित हो गए हैं और वे अब अपनी शक्ति का विस्तार कर रहे हैं। राम के रूप में विष्णु की उपासना का क्षेत्र विस्तृत हो गया, क्योंकि देवपूजा के साथ-साथ वीर-पूजा की भावना भी हिन्दू धर्म के अंतर्गत आ गई।

ईसा के २०० वर्ष बाद मानवधर्म-शास्त्र में अनुगीता के अंतर्गत विष्णु के अवतारों की मीमांसा की गई है। उसमें विष्णु के छः अवतार माने गए हैं :—वाराह, नृसिंह, वामन, मत्स्य, राम और कृष्ण। मानव-धर्म-शास्त्र के अंतर्गत मोक्षधर्म के एक विशेष भाग का नाम नारायणीय है। उसमें वैष्णव धर्म का विकास और भी हुआ है। उसमें विष्णु का विकास 'व्यूह' के रूप में हुआ है। इस प्रकार विष्णु स्रष्टा के रूप में चतुर्व्यूहियों का वेश धारण करते हैं। इसमें वासुदेव के साथ-साथ सात्वत और पंचरात्र नाम भी इस वैष्णव मत के लिए प्रयुक्त हुए हैं। नारायणीय में विष्णु के अवतारों की संख्या छः से बढ़ कर दस हो गई है। नारायणीय के बाद संहिता में शक्ति का सम्बन्ध भी विष्णु से हो गया[1]। राम-भक्ति में इस शक्ति ने सीता का रूप धारण किया। राम का पूर्ण रूप गुप्त काल में ही निश्चित हुआ, जब विष्णु पुराण (ईसा सन् ४००) की रचना हुई। ईसा की छठी शताब्दी के बाद राम की भक्ति का विकास राम पूर्व तापनीय उपनिषद् और राम उत्तर

---

[1] [illegible]

तापनीय उपनिषद् में हुआ जहाँ राम ब्रह्म के अवतार माने गए हैं। जिस ब्रह्म के वे अवतार हैं उनका नाम विष्णु है। इसके बाद ही अगस्त सुतीक्ष्ण संवाद संहिता में राम का महत्त्व अलौकिक रूप में घोषित किया गया है। आगे चल कर अध्यात्म रामायण में राम देवत्व के सबसे ऊँचे शिखर पर आ गए हैं। उनकी महिमा का विस्तृत विवरण ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भागवत पुराण द्वारा प्रचारित हुआ। इस प्रकार ग्यारहवीं शताब्दी तक राम के रूप में परिवर्द्धन होता रहा। इसी समय रामभक्ति ने एक सम्प्रदाय का रूप धारण किया।[1] रामानन्द ने चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इसी राम मत का प्रचार उत्तर-भारत में जाति-बन्धन को ढीला कर सर्व-साधारण में किया। इस रामभक्ति का प्रचार तुलसीदास की रचनाओं द्वारा चिरस्थायी जीवन और साहित्य का एक अंग बन गया। रामानन्द ने दास्य भाव से उपासना की। उसी का अनुसरण तुलसीदास ने किया। अपने विचारों का प्रतिपादन रामानन्द ने अनेक ग्रंथों में किया जिनमें मुख्य ग्रन्थ वैष्णव मतांतर भास्कर और श्री रामार्चन पद्धति माने गए हैं। संभव है, प्रचारक और सुधारक होने के कारण रामानन्द ने अन्य ग्रंथों की रचना भी की हो, पर वे ग्रंथ अब अप्राप्य हैं। सम्प्रदाय सम्बन्धी एक ग्रंथ का पता चलता है। वह है राम रक्षा स्तोत्र या संजीवनी मंत्र, पर उस ग्रंथ की रचना इतनी निम्न कोटि की है कि वह रामानन्द के द्वारा लिखा गया ज्ञात नहीं होता। यह भी सम्भव हो सकता है कि मंत्र या स्तोत्र लिखने में प्रतिभा का प्रदर्शन नहीं हो

---

१ The cult of Ram, therefore, must have come into existence about the eleventh century.

Vaishnavism, Saivism and Minor Religious Systems. Page 17

Sir R. G. Bhandarkar

पाता। नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९०० की खोज-रिपोर्ट में इस ग्रंथ के लेखक को अज्ञात माना गया है। खोज रिपोर्ट १९०६-७-८ में इस ग्रन्थ के लेखक कवीर माने गए हैं। सम्भव है, प्रारम्भिक राम रक्षा स्तोत्र रामानन्द ने लिखा हो, वाद में उसका रूप विकृत हो गया हो। यह भी सम्भव है कि रामानन्द के शिष्यों में से किसी ने रामानन्द के नाम से ही यह स्तोत्र लिख दिया हो। जो हो, यह रचना अत्यंत साधारण है। रामानन्द ने संस्कृत के अतिरिक्त भाषा में भी काव्य-रचना की। यद्यपि उनका कोई महान ग्रन्थ प्राप्त नहीं है, तथापि उनके कुछ स्फुट पद अवश्य पाये जाते हैं। रामानन्द की हिन्दी साहित्य सम्बन्धी सेवा यही क्या कम है कि उन्होंने अपने व्यक्तित्व से कवीर और अपने आदर्शों से तुलसी जैसे महाकवि उत्पन्न किये। रामानन्द के आदर्शों से प्रभावित होकर राम-काव्य की जो धारा हिन्दी-साहित्य में प्रवाहित हुई, उस पर यहाँ विचार करना आवश्यक है।

राम-साहित्य की प्रगति

तुलसी ने रामानन्द के सिद्धान्तों को लेकर अपनी प्रतिभा से जो रामभक्ति सम्बन्धी कविता की उसका महत्व स्थायी सिद्ध हुआ। न केवल उनके काल में ही, वरन् परिवर्ती काल में भी राम-भक्ति की धारा अवाध रूप से प्रवाहित होती रही। तुलसी की प्रतिभा और काव्य-कला इतनी उत्कृष्ट प्रमाणित हुई कि उनके वाद किसी भी कवि की रामचरित सम्बन्धी रचना उनके मानस की समानता में प्रसिद्धि प्राप्त न कर सकी। कृष्ण-काव्य की लोकप्रियता किसी अंश तक राम-साहित्य के लिए वाधक मानी जा सकती है, पर तुलसी की काव्य-रचना की उत्कृष्टता आने वाले कवियों को प्रसिद्धि प्राप्त का अवसर न दे सकी। मानस के सामने कोई भी प्रवन्ध-काव्य आदर की दृष्टि से न देखा गया। इतना अवश्य है कि राम साहित्य में तुलसी की रचना

रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत के पोषक थे। इन्होंने अद्वैतवाद के खण्डन के लिए भेद भास्कर नामक ग्रंथ लिखा। इनका आविर्भावकाल विक्रम की चौदहवीं शताब्दी का अंत माना जाता है।

द्वितीय कवि थे चन्द। इन्होंने दोहा-चौपाई में हितोपदेश का अनुवाद इसी नाम से किया। इनका आविर्भावकाल संवत् १५३२ मानना चाहिए। हितोपदेश का अनुवाद संवत् १५६३ में हुआ। तुलसीदास के पूर्व दोहा-चौपाई में रचना करने में सफलता प्राप्त करना कवि की प्रतिभा का द्योतक है। रचना सरस और प्रौढ़ है। इनका परिचय अभी हाल ही में मिला है।[1]

इन कवियों के बाद तुलसीदास पर विचार करना आवश्यक है।

तुलसीदास

तुलसीदास ही राम-साहित्य के सम्राट है। इन्होंने राम के चरित्र का आधार लेकर मानव-जीवन की जितनी व्यापक और सम्पूर्ण समीक्षा की है, उतनी हिन्दी साहित्य के किसी कवि ने नहीं की। इस समीक्षा के साथ ही उन्होंने लोक-शिक्षा का भी ध्यान रखा और मानव-जीवन में ऐसे आदर्शों की स्थापना की जो विश्वजनीन हैं और समय के प्रवाह से नहीं बह सकते। इन्होंने इन आदर्शों की भित्ति पर अपनी भक्ति के स्वरूप की इतनी अच्छी विवेचना की कि वह तत्कालीन धार्मिक अव्यवस्था में पथ-प्रदर्शन का काम कर गई। इस भक्ति में नीति की धारा भी मिली हुई है। इस प्रकार एक कवि ने विश्वव्यापी विचारों की इतनी गवेषणापूर्ण व्याख्या की कि हम उसे अपने साहित्य के सर्वोच्च आसन पर अधिष्ठित करने में स्वयं गौरवान्वित हैं।

तुलसीदास का जीवन-चरित्र सम्पूर्ण रूप से हमारे सामने प्रामाणिक होकर अभी तक नहीं आया। स्वयं तुलसीदास ने अपना विस्तृत

[1] खोज रिपोर्ट १९२०-२१-२२

परिचय नहीं दिया। उनके ग्रन्थों मे यत्र-तत्र कुछ विवरण बिखरा हुआ मिलता है। वह भी उन्होंने अपने परिचय के रूप मे नहीं दिया, वरन् अपने दैन्य और निराश हृदय के भावों को प्रकाशित करने के लिए ही दिया है। यदि तुलसीदास को आत्म-ग्लानि न होती तो शायद वे अपने विषय मे इतना भी नहीं लिखते। किन्तु जो कुछ भी हमारे सामने है वही प्रामाणिक है। संक्षेप मे तुलसीदास द्वारा दिया हुआ आत्म-चरित उन्हीं के शब्दों मे घटना के क्रम से इस प्रकार रखा जा सकता है—

अन्तर्साक्ष्य के आधार पर तुलसीदास का जीवन-वृत्त

१. जन्म-तिथि ×

२. माता-पिता

रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी।
तुलसिदास हित हिय हुलसी सी॥[१]

३. नाम

(अ) राम को गुलाम नाम राम बोला राख्यो राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहुँ कहत हौं।[२]

(आ) केहि गिनती महँ? गिनती जस बन घास।
नाम जपत भये तुलसी तुलसीदास॥[३]

(इ साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो
राम बोला नाम, हौं गुलाम राम साहि को।[४]

१ तुलसी ग्रंथावली पहला खंड, (मानस) पृ० २८
२ ,, दूसरा खंड (विनय पत्रिका पृ० ५०४
३ ,, दूसरा खंड (बरवै रामायण पृ० २४
४ ,, , (कवितावली) पृ० ..६ .

४. बाल्यावस्था

(अ) मातु पिता जग जाय तज्यो विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।[1]

(आ) जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस,
खाए टूक सबके विदित बात दुनी सो।[2]

(इ) तनु तज्यों कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ।[3]

(ई) द्वार-द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ।[4]

(उ) स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा कोसो टोटक,
औचक उलटि न हेरो।[5]

(ऊ) बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।[6]

(ऋ) जननी जनक तज्यो जनमि, करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे।
मोहुँ से कोउ कोउ कहत रामहि को सो प्रसंग केहि केरे॥
फिरयो ललात बिनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहि हेरे।
नाम प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं बबुर बहेरे॥[7]

(ॠ) खायो खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे।
तेरे बल बलि आजु लौं जग जागि जिया रे॥[8]

---

१ तुलसी ग्रंथावली दूसरा खंड (कवितावली) पृष्ठ २१६
२ ,, ,, (कवितावली) पृष्ठ २१६
३ ,, ,, (विनयपत्रिका) पृष्ठ ५६६
४ ,, ,, ,, पृष्ठ ५६६
५ ,, ,, ,, पृष्ठ ५६८
६ ,, ,, (कवितावली) पृष्ठ २१६
७ ,, ,, (विनयपत्रिका) पृष्ठ ५७७
८ ,, ,, (विनयपत्रिका) पृष्ठ ४७७

५. जाति और कुल

(अ) मेरे जाति पाँति न चहौं काहू की जाति पाँति,
मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को।[1]

(आ) जायो कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।[2]

(इ) दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।[3]

(ई) धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जुलहा कहौ कोऊ।[4]

(उ) भलि भारत भूमि भले कुल जन्मि समाज सरीर भलो लहि कै।[5]

६. गुरु

(अ) बन्दौं गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।[6]

(आ) मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत।[7]

(इ) माँगो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि,
सेवक सुखद सदा बिरद बहत हौं॥[8]

७. गृहस्थ जीवन

(अ) लोग कहैं पोचु सो न सोचु न सँकोचु,
मेरे ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं।[9]

---

१ तुलसी ग्रन्थावली दूसरा खंड (कवितावली), पृष्ठ [illegible]
२ " " " [illegible]
३ " " (विनयपत्रिका) पृष्ठ [illegible]
४ " " (कवितावली) [illegible]
५ " " " [illegible]
६ " पहला खंड ([illegible]) [illegible]
७ " " " [illegible]
८ " दूसरा खंड ([illegible]) [illegible]
९ " " [illegible]

(ऋ) नौमी भौमबार मधुमासा । अवधपुरी यह चरित प्रकासा ॥[1]

(लृ) घाघर डासनि के डक्का, रजनी चहुँदिस चोर ।
संकर निजपुर राखिए चितै सुलोचन कोर ॥[2]

(लृ) भागीरथी जलपान करौं
अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं ।[3]

(लृ) देवसरि सेवौं वामदेव गाउँ रावरे ही,
नाम राम ही के मागि उदर भरत हौं ।[4]

९. वृद्धावस्था

(रा) चेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो हर,
पाई तर आइ रह्यौ सुरसरि तीर हौं ।[5]

(अ) राम की सपथ सरबस मेरे राम नाम,
कामधेनु काम-तरु मोसे छीन छाम को ॥[6]

(आ) जरठाइ दिसा रविकाल उग्यो अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे ।[7]

१०. रोग

(अ) अविभूत, वेदन विषम होत भूतनाथ,
तुलसी विकल पाहि पचत कुपीर हौं ।

१	तुलसी ग्रन्थावली	पहला खंड	(मानस)	पृष्ठ २०
२	,,	दूसरा खंड	(दोहावली)	पृष्ठ १२४
३	,,	,,	(कवितावली)	पृष्ठ २२७
४	,,	,,	,,	पृष्ठ २४३
५	,,	,,	,,	पृष्ठ २४३
६	,,	,,	,,	पृष्ठ २४८
७	,,	,,	,,	पृष्ठ २१०

(आ) काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब,

काहू की जाति बिगार न सोऊ ॥[1]

(इ) लरिकाई बीतो अचेत चित चंचलता चौगुनो चाय ।

जोबन-जर जुवती कुपथ्यकरि भयो त्रिदोष भरि मदन बाय ॥[2]

८. वैराग्य और पर्यटन

(अ) मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत ।[3]

(आ) अब चित चेतु चित्रकूटहि चलु ।[4]

(इ) सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी ।[5]

(ई) मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानि कर ।[6]

जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न ॥

(उ) बारिपुर दिसिपुर बीच बिलसति भूमि,

अंकित जो जानकी चरन जलजात की ।[7]

(ऊ) तुलसी जो राम सों सनेह साँचो चाहिए,

तौ सेइए सनेह सों बिचित्र चित्रकूट सो ॥[8]

(ऋ) [illegible] बचत [illegible], मैं कबहूँ न निहोरे ।[9]

---

१ तुलसी ग्रंथावली दूसरा खंड (कवितावली) पृष्ठ [illegible]
२ " " (विनय पत्रिका) पृष्ठ [illegible]
३ " पहला खंड (मानस) पृष्ठ [illegible]
४ " दूसरा खंड (विनय पत्रिका) पृष्ठ [illegible]
५ " " " पृष्ठ [illegible]
६ " पहला खंड (मानस) पृष्ठ [illegible]
७ " दूसरा खंड (कवितावली) पृष्ठ [illegible]
८ " " " पृष्ठ [illegible]
९ " " (विनय पत्रिका) पृष्ठ [illegible]

(ऋ) नौमी भौमवार मधुमासा । अवधपुरी यह चरित प्रकासा ॥[1]

(लृ) बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँदिस चोर ।
संकर निजपुर राखिए चितै सुलोचन कोर ॥[2]

(लृ) भागीरथी जलपान करौं
अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं ।[3]

(लृ) देवसरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरे ही,
नाम राम ही के मागि उदर भरत हौं ।[4]

६. वृद्धावस्था

(रा) चेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो हर,
पाई तर आइ रह्यौ सुरसरि तीर हौं ।[5]

(अ) राम की सपथ सरवस मेरे राम नाम,
कामधेनु काम-तरु मोसे छीन छाम को ॥[6]

(आ) जरठाइ दिसा रविकाल उग्यो अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे ।[7]

१०. रोग

(अ) अविभूत, वेदन विषम होत भूतनाथ,
तुलसी विकल पाहि पचत कुपीर हौं ।

१	तुलसी ग्रन्थावली	पहला खंड	(मानस)	पृष्ठ २०
२	,,	दूसरा खंड	(दोहावली)	पृष्ठ १२४
३	,,	,,	(कवितावली)	पृष्ठ २२७
४	,,	,,	,,	पृष्ठ २४३
५	,,	,,	,,	पृष्ठ २४३
६	,,	,,	,,	पृष्ठ २४८
७	,,	,,	,,	पृष्ठ २१०

(ऌ) तातें तनु पेषियत, घोर बरतोर मिस,
फूटि फूटि निकसत लोन रामराय को ॥[1]

(ॡ) भारी पीर दुसह सरीर तें बिहाल होत,
सोऊ रघुबीर बिनु सकै दूरि करि को ? [2]

(ए) तुलसी तनु-सर सुख-जलज भुज रुज गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिए, कपि केसरी किसोर ॥
भुज-तरु-कोटर रोग-अहि बरबस कियो प्रबेस।
बिहँगराज-बाहन तुरत काढिय मिटइ कलेस ॥[3]

यश-प्राप्ति

(अ) हौं तो सदा खर को असवार तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो।[4]

(आ) छार तें सँवारि कै पहार हूँ तें भारी कियो,
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइ कै।[5]

(इ) पतित पावन राम नाम सों न दूसरो।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ॥[6]

(ई) नाम सो प्रतीत प्रीति हृदय सुथिर थपत।
पावन किय रावन रिपु तुलसिहु से अपत ॥[7]

(उ) केहि गिनती महँ गिनती जस बन घास।
नाम जपत भये तुलसी तुलसीदास ॥[8]

१	तुलसी ग्रंथावली	दूसरा खंड	(कवितावली)	पृष्ठ २६४
२	,,	,,	,,	,, २६४
३	,,	,,	(दोहावली)	,, १२३
४	,,	,,	(कवितावली)	,, २१५
५	,,	,,	,,	,, २१५
६	,,	,,	(विनय पत्रिका)	,, ४०१
७	,,	,,	,,	
८	,,	,,	(बरवै रामा	

(ऋ) एक तो कराल कलिकाल सूल मूल तामें,
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।
वेद धर्म दूरि गए भूमि चोर भूप भए,
साधु सीद्यमान जानि रीति पाप पीन की ॥[1]

(ॠ) पाहि हनुमान करुना निधान राम पाहि,
कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है ॥[2]

(ऌ) हाहा करै तुलसी दयानिधान राम ऐसी,
कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की ॥[3]

(ॡ) राज समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परिमिति पति हेतु वाद हठि हेरि हई है ॥
आस्रम बरन धरम विरहित जग लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पाप रत अपने अपने रंग रई है ॥
साँति सत्य सुभ रीति गई घटि बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत हुलसति खलई है ॥
परमारथ स्वारथ साधन भए अफल सकल, नहि सिद्धि सई है।
कामधेनु धरनी कलि गोमर विवस विकल जामति न बई है ॥[4]

(ए) अपनी बीसी आपु ही पुरिहि लगाये हाथ।
केहि विधि बिनती बिस्व की करौं बिस्व के नाथ ॥[5]

(ऐ) तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमें पूछिहै कौन ॥[6]

१	तुलसी ग्रंथावली	दूसरा खंड	(कवितावली)	पृ० [illegible]
२	,,	,,	,,	,, [illegible]
३	,,	,,	,,	,, [illegible]
४	,,	,,	(विनयपत्रिका)	,, [illegible]
५	,,	,,	(दोहावली)	,, [illegible]
६	,,	,,	,,	,, [illegible]

बादहिं सूद्र द्विजन सन हम तुम तें कछु घाटि।
जानहिं ब्रह्म सो बिप्रबर, आँखि देखावहिं डाँटि॥

(ओ) साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि निन्दहिं बेद पुरान॥
श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिवेक।
तेहि परिहरहिं बिमोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक॥
गोंड़ गँवार नृपाल महि जमन महा-महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल॥[1]

आत्मग्लानि

(अ) नाम तुलसी पै भोंड़े भाग, सो कहायो दास,
किए अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को[2]

(आ) राय दशरथ के समर्थ तेरे नाम लिए,
तुलसी से कूर को कहत जगत राम को।[3]

(इ) केवट पषान जातुधान कपि भालु तारे,
अपनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो।[4]

(ई) राम ही के द्वारे पै बोलाइ सनमानियत,
मोसे दीन दूबरे कुपूत कूर काहली॥[5]

(उ) रावरो कहावों गुन गावों राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावों राम रावरी ही कानि हौं।[6]

१	तुलसी ग्रन्थावली	दूसरा खंड	(दोहावली) पृष्ठ	१५२-१५३
२	,,	,,	(कवितावली) ,,	२०५
३	,,	,,	,, ,,	२०५
४	,,	,,	,, ,,	२०६
५	,,	,,	,, ,,	२०८
६	,,	,,	,, ,,	२१६

(ऊ) नीके कै ठीक दई तुलसी अवलंब बड़ो उर आखर दू की ।[1]

(ऋ) साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो ॥
रामबोला नाम हौं गुलाम राम साहि को ॥[2]

(ॠ) जानकीनाथ बिना तुलसी जग दूसरे सों करिहौं न हहा है ॥[3]

(ऌ) तुलसी सरनाम गुलाम है रामको जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ ।
माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो लैबे को एक न दैबे को दोऊ ॥[4]

(ॡ) साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहू के द्वार परौं जो हौं सो हौं राम को ॥[5]

(ए) तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के,
राम की भगति भूमि, मेरी मति दूब है ॥[6]

(ऐ) जागैं भोगी भोग ही, वियोगी रोगी सोग बस,
सोवै सुख तुलसी भरोसे एक राम के ॥[7]

(ओ) राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै बलि,
तुलसी तिहारो घरजायउ है घर को ॥[8]

(औ) तुलसी तोहि विशेष बूझिए एक प्रतीत प्रीति एकै बलु ॥[9]

१	तुलसी ग्रंथावली	दूसरा खंड	(कवितावली)	पृष्ठ २२४
२	”	”	”	” २२६-२२७
३	”	”	”	” २२७
४	”	”	”	” २२८
५	”	”	”	” २२८
६	”	”	”	” २२८
७	”	”	”	” २२९
८	”	”	”	” २३२
९	”	”	(विनयपत्रिका)	” ४७२

(अं) समुझि समुझि गुन ग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास रामपद पाइहै प्रेम पसाउ।[1]

(अ.) विश्वास एक राम नाम को।
मानत नहिं परतीति अनत ऐसोइ सुभाइ मन बाम को ॥[2]

(क) परिहरि देह जनित चिंता दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि भक्ति लहौंगो ॥[3]

(ख) है काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीम चरै।
तुलसिदास रघुबीर बाहु बल सदा अभय काहू न डरै ॥[4]

(ग) एक भरोसो, एक बल, एक आस विस्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास ॥[5]

नम्रता

(अ) संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु ॥[6]

(आ) भाषा भनित मोर मति भोरी। हँसिबे जोग हँसे नहि खोरी ॥[7]

(इ) कवि न होउँ नहि वचन प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू ॥[8]

(ई) कवित विवेक एक नहि मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे ॥[9]

१	तुलसी ग्रंथावली	दूसरा खंड	(विनयपत्रिका)	पृष्ठ	५१८
२	”	”	”	”	५४१
३	”	”	”	”	५५०
४	”	”	”	”	५३२
५	”	”	(दोहावली)	”	१०४
६	”	पहला खंड	(मानस)	”	[illegible]
७	”	”	”	”	[illegible]
८		”	”	”	[illegible]
९	”	”			[illegible]

(ऊ) नीके कै ठीक दई तुलसी अवलंब बड़ो उर आखर दू को ।[1]

(ऋ) साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो ॥
रामबोला नाम हौं गुलाम राम साहि को ॥[2]

(ॠ) जानकीनाथ बिना तुलसी जग दूसरे सों करिहौं न हहा है ॥[3]

(ऌ) तुलसी सरनाम गुलाम है रामको जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ ।
माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो लैबे को एक न दैबे को दोऊ ॥[4]

(ॡ) साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहू के द्वार परों जो हौं सो हौं राम को ॥[5]

(ए) तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के,
राम की भगति भूमि, मेरी मति दूब है ॥[6]

(ऐ) जागैं भोगी भोग ही, वियोगी रोगी सोग बस,
सोवै सुख तुलसी भरोसे एक राम के ॥[7]

(ओ) राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजे बलि,
तुलसी तिहारो घरजायउ है घर को ॥[8]

(औ) तुलसी तोहि विशेष बूझिए एक प्रतीत प्रीति एकै बलु ॥[9]

१	तुलसी ग्रंथावली	दूसरा खंड	(कवितावली)	पृष्ठ २२४
२	”	”	”	” २२६-२२७
३	”	”	”	” २२७
४	”	”	”	” २२८
५	”	”	”	” २२८
६	”	”	”	” २२८
७	”	”	”	” २२९
८	”	”	”	” २३२
९	”	”	(विनयपत्रिका)	” ४७२

जीवन की कलुष-स्मृति इन्हें इतना अशान्त बनाए हुए थी। इन्होंने अपने को न जाने कितनी गालियाँ दी हैं। कूर, काहली, दगाबाज, 'धोबी कैसो कूकर', अपत, उतार, 'अपकार को अगार', धींग, धमधूसर आदि न जाने कितने अपशब्द इन्होंने अपने ऊपर प्रयुक्त किए हैं। पर इसके साथ ही इन्हें राम की उदारता में विश्वास था और इसके सहारे इन्होंने अपने जीवन में भय को लेशमात्र भी मात्रा नहीं रक्खी। यही इनका आत्म-विश्वास था। ये निर्द्वन्द्वता से राम-नाम का भजन, चाहे वह आलस या क्रोध ही में किया गया हो, जीवन की सबसे बड़ी विभूति समझते थे।

इनकी मृत्यु-तिथि अनिश्चित है। अपने महा-प्रयाण के अवसर पर इन्होंने क्षेमकरी पक्षी के दर्शन किए थे, ऐसा कहा जाता है। पर 'अेलि सप्रेम पयान समै सब सोच विमोचन छेमकरी है' यह तो साधारणतः कभी भी कहा जा सकता है, क्योंकि प्रस्थान के समय क्षेमकरी पक्षी को देखना शुभ समझा गया है। यह आवश्यक नहीं है कि मृत्यु (महा प्रयाण) के समय ही यह तुलसी के द्वारा कहा गया हो। राम-नाम का वर्णन कर तुलसीदास ने मौन होने के पूर्व अपने मुख में तुलसी और सोना डालने की इच्छा प्रकट की थी, इसे भी जनश्रुति समझना चाहिए, क्योंकि यह दोहा किसी प्रामाणिक प्रति में नहीं मिलता।

बहिर्साक्ष्य के आधार पर तुलसीदास का जीवन-वृत्त

तुलसीदास के समकालीन और परवर्ती लेखकों ने तुलसीदास के जीवन पर प्रकाश अवश्य डाला है पर वह [illegible]

और सूक्ष्म-दृष्टि से वर्णन किया है कि ज्ञात होता है कि इन्होंने विवाह की विधि बहुत निकट से देखी थी।

इन्होंने अपने वैराग्य के पूर्व की कथा नहीं लिखी, पर वैराग्य-दशा और पर्यटन का यथेष्ट वर्णन किया है। राम की कथा जो इन्होंने शूकर-क्षेत्र में अपने गुरु से सुनी थी, वही अब जाकर पल्लवित हुई और इन्होंने अनेक स्थानों में पर्यटन किया। ये अपनी वैराग्य-यात्रा में चित्रकूट, काशी, वारिपुर, दिगपुर, अयोध्या, आदि स्थानों में बहुत घूमे। इनकी वृद्धावस्था शान्ति से व्यतीत नहीं हुई। इन्हें बाहुपीर उठ खड़ी हुई, जिसके शमन के लिए इन्हें शिव, पार्वती, राम और हनुमान की स्तुति करनी पड़ी। इन्हें अपने जीवन में तत्कालीन परिस्थितियों से असंतुष्टि थी। लोगों में धर्म के लिए कोई आस्था नहीं रह गई थी। राजनीतिक वातावरण अस्त-व्यस्त था। जीविका बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती थी। किसान खेती नहीं कर सकता था, भिखारी को भीख नहीं मिलती थी। वितण्डावाद की सृष्टि हो रही थी। अनेक प्रकार के 'पंथ' निकल रहे थे। पाखंड फैल रहा था। दंड की अधिकता हो रही थी। काशी में उस समय महामारी का भी प्रकोप था।

तुलसीदास ने संवत् १६३१ में मानस की रचना की, जय संवत् (सं० १६४३) में पार्वती मंगल की और रुद्रवीसी (सं० १६६५—१६८५) के बीच कवितावली के कुछ कवित्तों की रचना की। इनके अतिरिक्त अन्य ग्रंथों की रचना-तिथि का निर्देश तुलसीदास ने नहीं किया।

इस समय तक इनका यश सभी स्थानों में व्याप्त हो गया था। यहाँ तक कि इनका आदर राजाओं और तत्कालीन शासक द्वारा भी हुआ। ये लोगों में वाल्मीक के समान पूज्य हो गये।

ये बहुत ही नम्र थे। इतने विद्वान होने पर भी अपने को मूर्ख, भक्त होने पर भी अपने को पापी और महान होने पर भी अपने को दीन कहने में ही इन्होंने अपना गौरव समझा। सम्भवतः अपने पूर्ववर्ती

ये उत्तर लिख्यो ॥ जो श्री रामचंद्र जी तो एक पत्नीव्रत हैं सो दूसरो पत्नीन कुं कैसे संभार सकेंगे एक पत्नी हुं बरोबर संभार न सके ॥ सो रावण हर ले गयो और श्री कृष्ण तो अनन्त अबलान के स्वामी हैं और जिनकी पत्नी भये पीछे कोई प्रकार को भय रहे नहीं है एक कालावच्छिन्न अनंत पत्नीन कुं सुख देत हे ॥ जासूं मैंने श्रीकृष्ण पती कीने हे ॥ सो जानोगे ॥ [1]

३. सो एक दिन नन्ददास जी के मन मे ऐसी आई ॥ जो जैसे तुलसीदास जी ने रामायण भाषा करी है ॥ सो हम हूँ श्रीमद्भागवत भाषा करें ॥ [2]

४. सो नन्ददास जी के बड़े भाई तुलसीदास जी हते ॥ सो कासी जी तें नन्ददास जी कुं मिलवे के लिये व्रज मे आये । सो मथुरा मैं आय के श्री यमुना जी के दर्शन करें पाछे नन्ददास जी की खबर काढ़के श्री गिरिराजजी गये जहाँ तुलसीदास जी नन्ददास जी कुं मिले ॥ जब तुलसीदास ने नन्ददास जी सुं कही कें तुम हमारे संग चलो ॥ गाम रुचे तो अयोध्या मे रहो ॥ पुरी रुचे तो काशी मे रहो ॥ पर्वत रुचे तो चित्रकूट मे रहो ॥ वन रुचे तो दंडकारण्य मे रहो। ऐसे बड़े बड़े धाम श्रीरामचन्द्र जी ने पवित्र करे हे ॥ [3]

५. जब नन्ददास जी श्रीनाथ जी के दर्शन करने कूं गये ॥ तब तुलसीदास जी हुं उनके पीछे पीछे गये ॥ जब श्रीगोवर्धननाथ जी के दर्शन करे तब तुलसीदास जी ने माथो नमायो नहीं ॥ तब नन्ददास जी जान गये ॥ जो ये श्रीरामचन्द्र जी बिना और दूसरे कू नहीं नमे हे ॥ [4]

---

१. वही, पृष्ठ ३२
२. वही, पृष्ठ ३२
३. वही, पृष्ठ ३३
४ वही, पृष्ठ ३४

(१) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—

(ले० गोकुलनाथ सं० १६२५)

(२) भक्तमाल (ले० नाभादास सं० १६४२)

(३) गोसांईं चरित (ले० बाबा वेणीमाधवदास सं० १६८७)

(४) तुलसीचरित (ले० बाबा रघुबरदास, समय अज्ञात)

(५) भक्तमाल की टीका (ले० प्रियादास सं० १७६९)

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में नन्ददास की वार्ता के सम्बन्ध मे तुलसीदास का उल्लेख किया गया है। तुलसीदास से सम्बन्ध रखने वाले अवतरण इस प्रकार हैं :—

१. नन्ददास जी तुलसीदास के छोटे भाई हते॥ सो विनकूं नाच तमासा देखवे को तथा गान सुनवे को शोक बहुत हतो॥ सो वा देश मे सूं एक सग द्वारका जात हतो॥ सो नंददास जी ऐसे विचारे कें मे श्री रणछोड़ जी के दर्शन कूं जाऊँ तो अच्छौ है॥ जब विनने तुलसीदास जी सूं पूंछी तब तुलसीदास जी श्री रामचंद्र जी के अनन्य भक्त हते जासूं विनने द्वारका जायवे की नाहीं कही॥......[1]

२. सो वे नन्ददास जी व्रज छोड़ के कहूँ जाते नाहीं हुते॥ सो नन्ददास जी के बड़े भाई तुलसीदास जी काशी मे रहते हुते॥ सो विनने सुन्यो नन्ददास जी श्री गुसांईं जी के सेवक भये हैं॥ जब तुलसीदास जी के मन मे ये आई के नन्ददास जी ने पतिव्रता धर्म छोड़ दियो है आपने तो श्री रामचंद्र जी पति हुते॥ सो तुलसीदास जी नें ये विचार कें नन्ददास जी कुं पत्र लिख्यो॥ जो तुम पतिव्रता धर्म छोड़ के क्यो तुमने कृष्ण उपासना करी॥ ये पत्र जब नन्ददास जी कुं पहुँचो तब नन्ददास जी ने बाँच के

---

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ २८

[वैष्णव रामदास जी गुरु श्री गोकुलदास जी (डाकोर) सं० १९६०]

ये उत्तर लिख्यो ॥ जो श्री रामचंद्र जी तो एक पत्नीव्रत हैं सो दूसरो पत्नीन कुं कैसे संभार सकेंगे एक पत्नी हु बरोबर संभार न सके॥ सो रावण हर ले गयो और श्री कृष्ण तो अनन्त अबलान के स्वामी हैं और जिनकी पत्नी भये पीछे कोई प्रकार को भय रहे नहीं है एक कालावच्छिन्न अनंत पत्नीन कुं सुख देत हे ॥ जासूं मैंने श्रीकृष्ण पती कीने हे ॥ सो जानोगे ॥ [1]

२. सो एक दिन नन्ददास जी के मन में ऐसी आई ॥ जो जैसे तुलसीदास जी ने रामायण भाषा करी है ॥ सो हम हूं श्रीमद्भागवत भाषा करें ॥ [2]

४. सो नन्ददास जी के बड़े भाई तुलसीदास जी हते ॥ सो कासीं जी ते नन्ददास जी कुं मिलबे के लिये व्रज मे आये । सो मथुरा में आय के श्री यमुना जी के दर्शन करें पाछे नन्ददास जी की खबर काढ़के श्री गिरिराजजी गये उहाँ तुलसीदास जी नन्ददास जी कुं मिले ॥ जब तुलसीदास ने नन्ददास जी सुं कही कें तुम हमारे संग चलो ॥ गाम रुचे तो अयोध्या मे रहो ॥ पुरी रुचे तो काशी मे रहो ॥ पर्वत रुचै तो चित्रकूट मे रहो ॥ वन रुचे तो दंडकारण्य मे रहो। ऐसे बड़े बड़े धाम श्रीरामचन्द्र जी ने पवित्र करे हे ॥[3]

५. जब नन्ददास जी श्रीनाथ जी के दर्शन करने कूं गये ॥ तब तुलसीदास जी हुं उनके पीछे पीछे गये ॥ जब श्रीगोवर्धननाथ जी के दर्शन करे तब तुलसीदास जी ने माथो नमायो नहीं ॥ तब नन्ददास जी जान गये ॥ जो ये श्रीरामचन्द्र जी बिना और दूसरे कू नहीं नमे है ॥[4]

---

१. वही, पृष्ठ ३२
२. वही, पृष्ठ ३२
३. वही, पृष्ठ ३३
४ वही, पृष्ठ ३४

तब नन्ददास जी श्रीगोकुल चले तब तुलसीदास जी हूं संग संग आये तब आयके नन्ददास जी ने श्रीगुसाईं जी के दर्शन करे ॥ साष्टांग दण्डवत् करी और तुलसीदास जी ने दण्डवत करी नहीं ॥ और नन्ददास जी कुं तुलसीदास जी ने कही के जैसे दर्शन तुमने वहाँ कराये वैसे ही यहाँ कराओ ॥ जब नन्ददास जी ने श्रीगुसाँई जी सो वीनती करी ये मेरे भाई तुलसीदास हैं ॥ श्रीरामचन्द्र जी बिना और कुं नहीं नमे हैं तब श्रीगुसाँई जी ने कही तुलसीदास जी वैठो ॥[1]

इन उद्धरणों से तुलसीदास के सम्बन्ध में निम्न-लिखित बातें ज्ञात होती हैं :—

१. तुलसीदास नन्ददास के बड़े भाई थे।
२. तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे। वे काशी में रहते थे और उन्होंने रामायण भाषा में की थी।
३. तुलसीदास ने काशी से ब्रज-यात्रा भी की थी, वहाँ वे नन्ददास से मिले थे।
४. तुलसीदास राम के सिवा किसी को माथा नहीं नवाते थे। वे अपनी ब्रज-यात्रा में श्रीगुसाईं विट्ठलनाथ से भी मिले थे।

तुलसीदास की अनन्य भक्ति, काशी-निवास और मानस-रचना तो अन्तर्साक्ष्य से भी स्पष्ट है, किन्तु उनका नन्ददास से सम्बन्ध किसी प्रकार से भी अनुमोदित नहीं है। तुलसीदास की ब्रज-यात्रा और विट्ठलनाथ से भेंट अन्तर्साक्ष्य से स्पष्ट नहीं होती। ये बातें बाबा वेणीमाधवदास के गुसाईं चरित से अवश्य पुष्ट होती हैं।

वेणीमाधवदास ने नन्ददास को तुलसीदास का गुरुभाई माना है।

नन्ददास कनौजिया प्रेम मढ़े। जिन सेस सनातन तीर पढ़े ॥
सिच्छा गुरु बन्धु भये तेहिते। अति प्रेम सों आय मिले यहिते ॥[2]

---

1. वही, पृष्ठ ३८
2. मूल गोसाईं चरित (श्रीवेणीमाधवदास विरचित) पृष्ठ २८
(गीता प्रेस गोरखपुर सं० १९९३)

पर उसमें भी गोसाईं विट्ठलनाथ से मिलाप की बात नहीं है। तुलसीदास जी का वृन्दावन-गमन भी वेणीमाधवदास ने लिखा है :—

> वृन्दावन में तँह ते जु गये। सुठि राम सुघाट पै वास लये।
> बड़ धूम मचो सुचि संत धुरे। मुनि दरसन को नर नारि जुरे॥

इस प्रकार दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में कही हुई बातें अन्तःसाक्ष्य और बहिर्साक्ष्य से पुष्ट अवश्य हो जाती हैं। विश्वस्त तो उन बातों को मानना चाहिए जो अन्तर्साक्ष्य से प्रमाणित होती हैं।

नाभादास ने अपनी भक्तमाल में तुलसीदास पर एक ही छप्पय लिखा है :—

> कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो।
> त्रेता काव्य निबन्ध करी शत कोटि रमायन।
> इक अच्छर उच्चरे ब्रह्म हत्यादि परायन॥
> अब भक्तनि सुखदैन बहुरि लीला विस्तारी।
> राम चरन रस मत्त रहत अहनिसि व्रत धारी॥
> संसार अपार के पार को सुगम रूप नवका लियो।
> कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो॥[1]

इस छप्पय से तुलसीदास के विषय में केवल इतना ही ज्ञात होता है कि वे राम-भक्त थे और उन्होंने संसार के हित के लिए अवतार लिया था। तुलसीदास के व्यक्तित्व और काव्य के विषय में कुछ नहीं लिखा गया।

संवत् १७६९ (या १७७८) में भक्तमाल की जो टीका प्रियादास ने लिखी थी उससे अवश्य तुलसीदास के जीवन की सात घटनाओं का परिचय मिलता है।[2]

[1] श्रीभक्तमाल छप्पय पृ० ७, ७

२ [illegible]

[illegible] was writ-

वेणीमाधवदास का मूल गोसाईं चरित अवश्य ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें तुलसीदास का जीवन-वृत्त प्रारम्भ से लेकर अन्त तक तिथियों तथा अनेक घटनाओं के आधार पर लिखा गया है। इसके लेखक तुलसीदास के शिष्य वेणीमाधवदास थे जिन्होंने इसकी रचना सं० १६८७ में की। इसका निर्देश पहले पहल शिवसिंहसरोज (सं० १९३४) में किया गया है[1] पर अभी तक इसका कोई पता नहीं था। अभी कुछ वर्ष हुए उन्नाव के वकील रामकिशोर शुक्ल ने स्वसम्पादित नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित रामचरित-मानस के आरम्भ में इसे प्रकाशित किया है। उन्हें यह प्रति 'कनकभवन अयोध्या के महात्मा बालकराम विनायक से प्राप्त हुई थी।" इसमें तिथियों और घटनाओं का क्रम इतने सिलसिले से दिया गया है कि हमें साहित्य मे वैसा और दूसरा ग्रन्थ नहीं मिलता। इसकी यही नियमित लेखन-शैली उसकी प्रामाणिकता में संदेह का कारण बन गई है। रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास ने यद्यपि इस ग्रन्थ को प्रामाणिक मान कर इसके आधार पर एक आलोचनात्मक ग्रन्थ गोस्वामी तुलसीदास की रचना की है, पर अभी तक हिन्दी के

---

ten by Priya Das. This commentry devotes eighty-eight lines of verse to Tulsidas. They mention seven separate events in the poet's life. The first refers to his wife

The Ramayan of Tulsidas—Introduction XXI

J. M. Macfie (1930)

१. इनके जीवन-चरित्र की पुस्तक वेणीमाधवदास कवि पसका ग्रामवासी ने, जो इनके साथ-साथ रहे, बहुत विस्तारपूर्वक लिखी है। उसके देखने से इन महाराज के सब चरित्र प्रकट होते हैं। इस पुस्तक में ऐसी विस्तृत कथा को हम कहाँ तक सत्तेप में वर्णन करें।

शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ४२७.

(नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ १९२६)

विद्वानों ने इस पर अपनी स्वीकृति नहीं दी। इस पर सदेह करने के कारण निम्नलिखित हैं :—

(क) तिथि सम्बन्धी

१—हिन्दी मे तिथियों का इतना नियमित निर्देश करने की प्रथा थी ही नहीं। एक भी ग्रन्थ हमे नहीं मिलता, जिसमें इस प्रकार तिथियों पर जोर दिया गया हो। तिथियों के इस विवरण का विचार नवीन है। इसलिए सम्भव है, यह आधुनिक रचना हो।

२—इसके अनुसार तुलसी का जीवन १२६ वर्ष का एक विस्तृत काल हो जाता है, जो यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

(ख) साहित्यिक

१. हितहरिवंश की मृत्यु सं० १६०९ मे मानी गई है, पर इसने उनका जीवन-काल १६०९ के बाद तक चला जाता है। ओरछा से उनका सम्बन्ध सं० १६२० के बाद तक माना गया है।

२. सूरदास और गोकुलनाथ—सूरदास तुलसीदास से सं० १६१६ मे मिले और अपने साथ गोकुलनाथ का एक पत्र लाए। गोकुलनाथ का जन्म संवत् १६०८ माना जाता है।[1] अतएव सूरदास जी जब उनका पत्र लाये तब उनकी अवस्था केवल ८ वर्ष की होगी। गोकुलनाथ जी इतने समय में ही सूरदास जी के हाथ पत्र भेज सके होंगे ?

३. मीराबाई और उनका पत्र—गोसाईं-चरित के अनुसार संवत् १६१६ से १६२८ के बीच किसी समय अपने परिजनों ने

[1] [illegible] वैष्णव की वार्ता [illegible] चतुर्वेदी [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

पीड़ित मीराबाई का पत्र तुलसीदास के पास आया और तुलसीदास ने उत्तर लिखा। मीराबाई के विचारों से सहमत न होने वाले विक्रमादित्य ही थे, जो संवत् १५९३ तक गद्दी पर रहे। उसके बाद गद्दी बनवीर ने छीन ली।[1] मीराबाई को पत्र १५९४ तक ही लिखना चाहिए था, उसके २२ वर्ष के बाद नहीं। गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा तो मीरां बाई की मृत्यु संवत् १६०३ में मानते हैं।[2]

४. **केशवदास और रामचन्द्रिका**—वेणीमाधव ने रामचन्द्रिका की रचना सं० १६४३ के लगभग बतलाई है, पर केशवदास जी ने स्वयं अपनी रामचन्द्रिका का रचना-काल १६५८ दिया है :—

सोरह से अट्ठावन कातिक सुदि बुधवार।
रामचन्द्र की चन्द्रिका तब लीन्हों अवतार।[3]

सं० १६५३ में गोसाईंचरितकार ने तो केशव को प्रेत मान लिया है, जब उनकी रामचन्द्रिका की रचना भी नहीं हुई थी।

(ग) ऐतिहासिक

१. अकबर के सम्बन्ध में जो कुछ भी लिखा गया है, उसका इतिहास में कुछ भी उल्लेख नहीं है।[4]

---

१. उदयपुर राज्य का इतिहास, पहली जिल्द पृष्ठ ४०१

२. वही, (रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा)

३. रामचद्रिका पृष्ठ ४ (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ)

४. दिल्लीपति विनती करी, दिखरावहु करमात।
मुकरि गए बंदी किए, कीन्हें कपि उत्पात॥
बेगम को पट फारेऊ, नगन भई सब वाम।
हाहाकार मच्यो महल, पटको नृपहि धड़ाम॥

४. शिव का दर्शन देना।

५. प्रेत का दर्शन।

६. लड़की को लड़का बना देना।

७. विधवा स्त्री के पति को फिर जिला देना।

८. पत्थर के नन्दी का हत्यारे के हाथ से प्रसाद पाना।

९. कृष्ण का राम में रूपान्तरित हो जाना।

इन्हीं सब बातों के कारण अभी तक गोसाईं चरित की प्रामाणिकता के विषय में संदेह है।

गोसांईचरित के आधार पर तुलसीदास का जीवन-चरित्र संक्षेप में इस प्रकार है :—

तुलसीदास के पिता राजापुर के राजगुरु थे। वे "सरवार के विप्र" थे, माता का नाम हुलसी था। इनका जन्म सं० १५५४ में श्रावण शुक्ल सप्तमी को हुआ। उत्पन्न होते ही ये रोये नहीं, वरन् इन्होंने राम का उच्चारण किया। इसीलिए इनका नाम रामबोला पड़ा। इनके बत्तीसों दाँत थे और ये पाँच वर्ष के बालक की भाँति शरीर से बड़े थे। तीन दिन बाद हुलसी की मृत्यु हो गई। मृत्यु से पहले हुलसी ने अपनी दासी चुनियाँ से पुत्र की रक्षा का भार लेने की प्रार्थना की थी। हुलसी की मृत्यु के बाद चुनियाँ रामबोला (तुलसी) को अपनी ससुराल हरिपुर ले गई। पाँच वर्ष के बाद वह भी साँप के काटने से मर गई। हरिपुर से राजापुर संदेश भेजा गया कि रामबोला को ले जाओ, पर तुलसी के पिता बालक को अशुभ जानकर वापस लेने को तैयार नहीं हुए। ५ वर्ष का रामबोला द्वार-द्वार भीख माँगने लगा। इस दैन्य में रामबोला की रक्षा का भार ब्राह्मण स्त्री का रूप रख गौरामाई (पार्वती) ने लिया। दो वर्ष तक रामबोला का इस प्रकार पोषण हुआ। पार्वती का कष्ट जानकर शिव ने अनन्तानन्द के शिष्य नरहर्य्यानन्द को स्वप्न में दर्शन देकर रामबोला की रक्षा का भार ग्रहण करने का आदेश दिया। नरहर्य्यानन्द ने रामबोला के सब संस्कार कर

उसे राम की कथा शूकर-क्षेत्र में सुनाई। यह तिथि संवत् १५६१ है। शूकर-क्षेत्र में नरहर्य्यानंद पाँच वर्ष तक रहे। उन्होंने रामबोला को 'तुलसी' नाम दिया। इसके बाद नरहरि तुलसीदास को लेकर काशी आये। यहाँ ये पंचगङ्गा घाट पर शेष सनातन से मिले। शेष सनातन तुलसी की प्रतिभा पर मुग्ध हो गए। उन्होंने नरहरि से तुलसी को माँग लिया और अपना शिष्य बना लिया। तुलसीदास शेष सनातन के संरक्षण में पंद्रह वर्ष रहे और इस काल में उन्होंने "इतिहास पुरानरु काव्य-कला" सभी कुछ पढ़ डाला। जब शेष सनातन की मृत्यु हुई तो तुलसीदास राजापुर आकर राम की कथा कह कर अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

इसी समय यमुना के तीर पर तारिपता गाँव के ब्राह्मण ने अपनी पुत्री का विवाह तुलसीदास के साथ संवत् १५८३ में कर दिया। पाँच वर्ष तक तुलसी का वैवाहिक जीवन रहा। इसके बाद स्त्री के चुपचाप पितृ-गृह चले जाने पर तुलसी जब उसके पीछे ससुराल जाते हैं, तो उन्हें स्त्री की भर्त्सना मिलती है। वे वैराग्य ले लेते हैं और इस दुःख में उनकी स्त्री की मृत्यु संवत् १५८९ में हो जाती है।

इसके बाद तुलसीदास ने लगभग पंद्रह वर्ष तक तीर्थयात्रा और पर्यटन किया। अंत में चित्रकूट में इन्होंने अपना निवास बनाया। यहाँ इन्हें प्रेत-दर्शन हुए, जिससे इन्होंने हनुमान और राम के दर्शन किये। इन्हें यहाँ दरियानन्द स्वामी मिले, हितहरिवंश का पत्र मिला और सूरदास से सम्मिलन हुआ। सूरदास ने तुलसीदास को अपना सूर-सागर दिखलाया। यह घटना संवत् १६१६ की है। इसके बाद इन्हें मेवाड़ से मीरांबाई का पत्र मिला और इन्होंने उसका उत्तर दिया। संवत् १६१६ के बाद इन्होंने एक बालक के गाने के लिए राम और कृष्ण सम्बन्धी पदों की रचना की और संवत् १६२८ में उन्हें राम-गीतावली और कृष्ण-गीतावली के नाम से संग्रहीत किया। इसके बाद वे चित्रकूट से काशी चले गये। रास्ते में वारिपुर और दिगपुर नामक दो स्थानों पर रुके जहाँ इन्होंने कुछ कवित्तों की रचना की। काशी में

शिवजी ने दर्शन देकर इन्हें राम-कथा लिखने के लिए प्रेरित किया। इन्होंने संवत् १६३१ में रामचरित मानस की रचना अयोध्या में आकर की। इसके बाद इनका साहित्यिक जीवन नियमित रूप से आरम्भ होता है।

मानस की प्रसिद्धि ने काशी के कुछ लोगों को प्रेरित किया कि वे मानस की प्रति चुरा लें, इसीलिए तुलसीदास को वह प्रति अपने मित्र टोडर के यहाँ सुरक्षित रखनी पड़ी। काशी के पंडितों के कष्ट पहुँचाने पर इन्होंने संवत् १६३३ और १६४० के बीच में राम विनयावली (विनय-पत्रिका) की रचना की। इसके बाद ये मिथिला गये और शायद इसी यात्रा में इन्होंने रामलला नहछू, पार्वती मंगल और जानकी मंगल की रचना की। संवत् १६४० में इन्होंने दोहावली का संग्रह किया और संवत् १६४१ में वालमीकि रामायण की प्रतिलिपि तैयार की। संवत् १६४२ में सतसई लिखी। उसी समय काशी में महामारी का प्रकोप हुआ, इसे मीन की सनीचरी कहा गया है। इस सम्बन्ध में भी तुलसीदास ने कुछ रचनाएँ कीं। संवत् १६४२ के बाद तुलसीदास केशवदास से मिले। तुलसीदास ने केशवदास को प्राकृत कवि कह कर मिलने से इनकार कर दिया था। बाद में जब केशवदास ने एक रात्रि ही में रामचन्द्रिका लिख कर प्रस्तुत की, तो तुलसीदास जी केशवदास से मिले। संवत् १६४९ में ये नैमिषारण्य गये। वहाँ ये नाभादास, नन्ददास और गोपीनाथ से मिले। ये वृन्दावन से चित्रकूट गए। इसके बाद इन्होंने अनेक अलौकिक कार्य किए। केशवदास को प्रेत योनि से छुड़ाया, चरखारी के राजा की दुहिता को स्त्री-पति बदल कर पुरुष-पति दिया। यहाँ से ये दिल्ली-दरबार में कुछ करामात दिखलाने के लिए बुलाये गए। वहाँ दिल्लीपति को शिक्षा देकर ये महावन (काशी) चले आए। मार्ग में अयोध्या में मलूकदास से भी मिले।

इसके बाद महावन (काशी) ही में रहे। यहाँ उन्होंने पुनः अलौकिक कार्य किए। एक विधवा के पति को पुन. जीवित किया। अपने

मित्र टोडर की मृत्यु पर उसके उत्तराधिकारियों का पञ्चनामा लिखा। इसके बाद संवत् १६६९ में उन्होंने अनेक रचनाएं कीं। बरवै, बाहुक, वैराग्य संदीपिनी और रामाज्ञा प्रश्न की रचना की। नहछू, पार्वती-मङ्गल और जानकी-मंगल को परिमार्जित किया। संवत् १६७० में जहाँगीर तुलसीदास के दर्शनों के लिए काशी आया, वह तुलसीदास को धन-सम्पन्न करना चाहता था, पर तुलसीदास ने सब कुछ अस्वीकार किया। अन्त में संवत् १६८० में गंगा तीर पर असीघाट में तुलसीदास ने श्रावण कृष्ण ३ शनिवार को महाप्रस्थान किया।

> संवत् सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
>
> श्रावण श्यामा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर ॥ ११६ ॥

तुलसी-चरित के सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है। इसका कुछ भी साहित्यिक महत्त्व नहीं है। संवत् १९६९ की ज्येष्ठ मास की 'मर्यादा' में श्री इन्द्रदेवनारायण ने इस ग्रंथ की सूचना दी थी। इसके लेखक का नाम उन्होंने तुलसीदास के शिष्य बाबा रघुवरदास बतलाया था। इसके सम्बन्ध में उनका कथन था—

"इस ग्रंथ का नाम 'तुलसी चरित' है। यह बड़ा ही वृहत् ग्रंथ है। इसके मुख्य चार खंड हैं—(१) अवध, (२) काशी, (३) नर्मदा और (४) मथुरा। इनमें भी अनेक उपखंड हैं।" इस ग्रंथ की संख्या इस प्रकार लिखी हुई है :—

> एक लाख [illegible]

दुःख है कि [illegible] केवल ४२ छंद ही दिये हैं [illegible] पर तुलसी का [illegible] है —

तुलसीदास के [illegible] देश में [illegible] हनुमान जी के [illegible] —

था शंकर। शंकर मिश्र ने दो विवाह किए। पहले से इन्हें १० सन्तानें हुईं। दूसरे से दो पुत्र हुए, संत मिश्र और रुद्रनाथ मिश्र। रुद्रनाथ मिश्र के चार पुत्र हुए; जेष्ठ पुत्र का नाम था मुरारी मिश्र। मुरारी मिश्र के चार पुत्र हुए, गणपति, महेश, तुलाराम और मंगल। तुलाराम ही तुलसीदास थे। इन चार भाइयों के दो बहनें भी थीं, वाणी और विद्या। यह वंश-वृक्ष इस प्रकार है :—

परशुराम मिश्र
|
शंकर मिश्र
|
दस संतानें — संत मिश्र — रुद्रनाथ मिश्र
|
मुरारी मिश्र
|
गणपति — महेश — तुलाराम (तुलसीदास) — मंगल — (वाणी) — (विद्या)
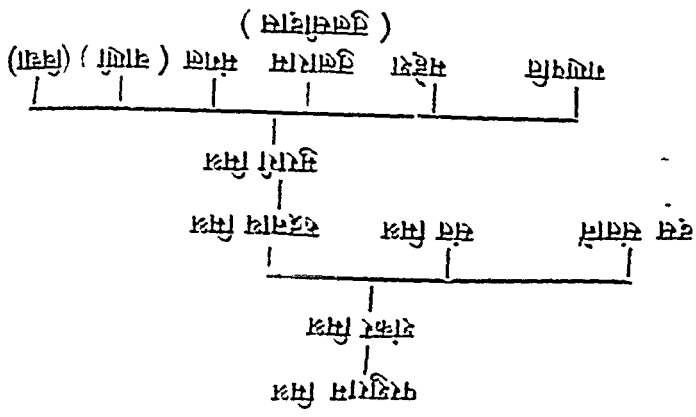
तुलसीदास के तीन विवाह हुए थे। तीसरा विवाह कंचनपुर के उपाध्याय लक्ष्मण की पुत्री बुद्धिमती के साथ हुआ था। इस स्त्री के साथ विवाह में इन्हें छः हजार मुद्राएँ प्राप्त हुई थीं। इतिहास इस विषय में मौन है। अतः इनका कोई महत्त्व नहीं है। फिर तुलसी-चरित के शेष अंश भी अभी तक प्रकाश में नहीं आए, जिससे इसकी प्रामाणिकता की जाँच की जा सके। अतः अभी तुलसी-चरित के आधार पर कुछ कहना असंगत है।

नाभादास के भक्तमाल की टीका प्रियादास ने सं० १७६९ में की। उन्होंने नाभादास के एक छप्पय का ही सहारा लेकर जनश्रुति के आधार पर तुलसीदास के जीवन की अनेक घटनाएँ लिखी हैं। उन घटनाओं में से अनेक ऐसी हैं जो अलौकिक हैं। प्रियादास ने अपनी [illegible] में तुलसीदास के वैवाहिक जीवन, हनुमान दर्शन, ब्रह्महत्या

निवारण, चोरों से रक्षा, मृत पति को जिलाना, दिल्लीपति बादशाह से संघर्ष, वृन्दावन-गमन आदि घटनाओं का विवरण अवश्य दिया है जो किम्वदन्ती के रूप में प्रचलित है, पर इनमे तिथि आदि का कोई विवरण नहीं है। तुलसीदास की जीवनी कुछ घटनाओं की शृंखला मात्र होकर रह गई है। जीवन के तत्व उसमें नही है। न तो इन घटनाओं से तुलसीदास की कृतियों पर प्रकाश पड़ता है और न उनके काव्य के दृष्टिकोण पर। कुछ अलौकिक घटनाएँ भक्तों के हृदय पर प्रभाव भले ही डालें, पर साहित्यिक जिज्ञासुओं को वे किसी प्रकार भी संतुष्ट नहीं कर सकतीं। अतः प्रियादास की टीका को जनश्रुति का लिखित रूप ही समझना चाहिए, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। एफ० एस० ग्राउज़ ने रामचरितमानस का अंग्रेजी अनुवाद किया है। उसके प्रारम्भ में उन्होंने तुलसी का जो जीवन चरित दिया है वह सम्पूर्ण रूप से प्रियादास की टीका के आधार पर ही है।[1]

जनश्रुति के अनुसार[2] तुलसीदास का जन्म संवत् १५८९ में माना गया है। पं० रामगुलाम द्विवेदी ने भी स्वसंपादित रामचरित मानस की

१ The Ramayan of Tulsidas, translated by Growse 1877 (Allahabad)

२ Tulsi was a Sarvaria Brahman, born according to tradition in A. D. 1532 during the reign of Humayun, [illegible]

भूमिका में तुलसीदास का जन्म संवत् १५८९ में माना है। इसे सर ग्रियर्सन ने भी स्वीकार किया है। इनका जन्म राजापूर में हुआ था और ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। ये अभुक्तमूल नक्षत्र में पैदा हुए थे। अतः जन्म होते ही माता-पिता द्वारा त्याग दिए गए। फलस्वरूप इनकी बाल्यावस्था दुःख में बीती, बाद में नरहरि के सम्पर्क में आ गए। इनकी कुछ शिक्षा-दीक्षा हुई और ये किसी तरह ज्ञान प्राप्त कर सके। इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था और इनके पुत्र का नाम तारक था। ये अपनी स्त्री को बहुत प्यार करते थे। एक बार इनकी स्त्री इनसे बिना पूछे ही अपने पिता के घर चली गई।

---

in his father's lifetime, and begot a son His wife's name was Ratnavali, daughter of Dinbandhu Pathak, and his son's Tarak. The later died at an early age and Tulsi's wife, who was devoted to the worship of Ram, left her husband and returned to her father's house to occupy herself with religion. Tulsidas followed her, and endeavoured to induce her to return to him, but in vain; she reproached him...and so moved him that he renounced the world...He first made Ayodhya his head quarters, frequently visiting distant places of pilgrimage in different part of India. During his residence at Ayodhya the Lord Ram is said to have appeared to him in a dream and to have commanded him to write a Ramayan in the language used by the common people . He settled at Asighat. Here he died in 1623, during the reign of the Emperor Jehangir, at the great age of 91.

Encyclopaedia Britannica, Vol 22, Page 511

इन्होंने प्रेमावेश में उसी समय अपनी ससुराल को प्रस्थान किया। भरी हुई नदी पार कर ये ससुराल पहुँचे। वहाँ भी भरी हुई स्त्री की भर्त्सना सुन इन्हें वैराग्य हुआ। ये अनेक स्थानों पर भ्रमण करते रहे, अन्त में अनेक अलौकिक चमत्कार दिखला कर संवत् १६८० में पंच-तत्त्व को प्राप्त हुए। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है :—

सवत सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

इस प्रकार तुलसीदास के जीवन सम्बन्धी तीन साक्ष्य हमारे सामने उपस्थित है। १. अन्तर्साक्ष्य २. वहिर्साक्ष्य और ३. जनश्रुति। इनमें सब से अधिक प्रामाणिक अन्तर्साक्ष्य है, क्योंकि वह स्वयं लेखक के द्वारा उपस्थित किया गया है। सब से कम प्रामाणिक जनश्रुति है, क्योंकि वह समय के प्रवाह में परिवर्तित होती रहती है। वहिर्साक्ष्य से भी प्रामाणिक बातें ज्ञात हो सकती हैं यदि वे अनेक घटनाओं से समर्थित हों। जब तक कि तथ्यपूर्ण और विश्वस्त खोज नहीं होती तब तक हमें अन्तर्साक्ष्य की सामग्री को ही प्रामाणिक मानना चाहिए। शिवसिंह सेंगर ने अपने सरोज में तुलसीदास का जन्म संवत् १५८३ में दिया है। वे वेणीमाधवदास के गोसाँईचरित का निर्देश करते हुए लिखते हैं कि "उसके देखने से इन महाराज के सब चरित्र प्रकट होते हैं। इस पुस्तक में ऐसी विस्तृत कथा को हम कहाँ तक संक्षेप में वर्णन करें।"[1] वेणीमाधवदास ने तुलसी का जन्म संवत् १५५४ दिया है। यदि सेंगर महाशय ने इस जीवन चरित्र को देखा होता तो वे इस संवत् का निर्देश अवश्य करते, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। इससे ज्ञात होता है कि सरोजकार ने गोसाँईचरित का नाम ही सुन कर, उसका उल्लेख कर दिया है।

[1] शिवसिंह सरोज (शिवसिंह सेंगर) पृष्ठ ४२०

अभी कुछ वर्षों से तुलसीदास की जन्मभूमि के सम्बन्ध में कुछ जिज्ञासुओं के द्वारा खोज की जा रही है। सुकवि सरोज (द्वितीय भाग) के लेखक पं० गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर' ने यह सिद्ध किया है कि गोस्वामी जी का स्थान सोरों ही था। वे अन्य प्रमाण देते हुए लिखते हैं—

"अयोध्या, चित्रकूट, काशी आदि अनेक स्थानों का गोस्वामी जी ने अपने जीवन में अनेक बार और भलीभाँति भ्रमण किया था, किन्तु अपने जन्मस्थान (सोरों) से जब से गए फिर नहीं आए, और यह है भी स्वाभाविक। इन बातों से यह भलीभाँति सिद्ध होता है कि गोस्वामी जी की जन्मभूमि सोरों ही थी, राजापुर नहीं।[1]

पं० रामनरेश त्रिपाठी भी तुलसीदास का जन्म-स्थान सोरों ही मानते हैं। वे तुलसीदास की कविता में प्रयुक्त विशेष शब्दों और मुहावरों को (जो सोरों में ही बोले और समझे जाते हैं) उद्धृत कर तुलसीदास की जन्मभूमि सोरों में ही मानने के प्रमाण उपस्थित करते हैं।[2]

तुलसीदास के ग्रंथ

तुलसीदास के समकालीन और परिवर्ती लेखकों ने तुलसीदास के मानस का ही निर्देश अधिकतर किया है।[3] अन्य ग्रंथों के विषय में कुछ लिखा ही नहीं गया। भिखारीदास ने ग्रंथों के नाम न लिख कर केवल

---

१. सुकवि सरोज (द्वितीय भाग) पं० गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'
श्रीसनाढ्यादर्श ग्रन्थमाला टीकमगढ़ (बुँदेलखण्ड) सं० १९९०

२. तुलसीदास और उनकी कविता—(पं० रामनरेश त्रिपाठी) पृष्ठ ६५-७०
हिन्दी मन्दिर, इलाहाबाद १९३६

३. सो एक दिन नन्ददास के मन ऐसी आई॥ जो जैसे तुलसीदास जी नें रामायण भाषा करी है॥ सो हमहूँ श्रीमद्भागवत भाषा करें।
दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ ३२.
वैष्णव रामदास जी गुरू श्री गोकुलदास जी १९६० (डाकोर)

कविता की भाषा की प्रशंसा कर दी है।[1] वेणीमाधवदास ने अपने मूल गोसांईचरित में तुलसीदास के अनेक ग्रंथों का निर्देश किया है। रचना-तिथि के क्रम से ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है :—

१. राम गीतावली	संवत् १६२८
२. कृष्ण गीतावली	”
३ रामचरित मानस	१६३१
४. दोहावली	१६४०
५. सतसई	१६४२
६ राम विनयावली (विनयपत्रिका)	”
७. रामलला नहछू	१६४३
८. पार्वती मंगल	”
९. जानकीमंगल	”
१०. बाहुक	१६६९
११. वैराग्य संदीपिनी	”
१२. रामाज्ञा	”
१३. बरवै	”

कवितावली का कोई निर्देश नहीं है। कुछ कवित्तों की रचना के सम्बन्ध में अवश्य लिखा गया है।

शिवसिंह सेंगर ने तुलसीदास के ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए 'सरोज' में लिखा है :—

"इनके बनाये ग्रन्थों की ठीक ठीक संख्या हमको मालूम नहीं हुई। केवल जो ग्रन्थ हमने देखे, अथवा हमारे पुस्तकालय में है, उनका ज़िक्र किया जाता है। प्रथम ४९ काण्ड रामायण बनाया है. इस [illegible] से १ चौपाई-रामायण ७ काण्ड. २ कवित्तावली ७ काण्ड ३ [illegible]

[1] तुलसी गंग दुवौ भये, सुकविन के सरदार
जिनके [illegible] में मिली, भाषा विविध प्रकार —[illegible]

वली ७ काण्ड, ४ छन्दावली ७ काण्ड, ५ बरवै ७ काण्ड, ६ दोहावली ७ काण्ड, कुंडलिया ७ काण्ड। सिवा इन ४९ काण्डों के १ सतसई, २ रामशलाका, ३ संकट मोचन, ४ हनुमत् बाहुक, ५ कृष्ण गीतावली, ६ जानकीमंगल, ७ पार्वती मंगल, ८ करखा छन्द, ९ रोला छन्द, १० भूलना छन्द इत्यादि और भी ग्रन्थ बनाये हैं। अन्त में विनयपत्रिका महाविचित्र मुक्ति रूप प्रज्ञानंद सागर ग्रन्थ बनाया है। चौपाई गोस्वामी महाराज की ऐसी किसी कवि ने नहीं बना पाई, और न विनयपत्रिका के समान अद्भुत ग्रन्थ आज तक किसी कवि महात्मा ने रचा। इस काल में जो रामायण न होती तो हम ऐसे मूर्खों का बेड़ा पार न लगता।[1]"

इस प्रकार सरोजकार के अनुसार तुलसीदास के ग्रन्थों की संख्या १८ है (७ रामायण और ११ अन्य)।

सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने तुलसीदास के ग्रन्थों का निर्देश तीन स्थानों पर किया है :—

१: इण्डियन एण्टिकरी (सन् १८९३) 'नोट्स आन तुलसीदास'
इसके अनुसार तुलसीदास ने २१ ग्रन्थ लिखे।[2]

मानस, गीतावली, कवितावली, दोहावली, छप्पय रामायण, राम सतसई, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, वैराग्य सन्दीपिनी, रामलला नहछू, बरवै रामायण, रामाज्ञा प्रश्न या राम सगुनावली, सङ्कटमोचन, विनयपत्रिका, बाहुक, रामशलाका, कुंडलिया रामायण, करखा रामायण, रोला रामायण, भूलना रामायण, श्रीकृष्ण गीतावली।

इस निर्देश के बाद ग्रियर्सन ने तुलसी के १२ ग्रन्थ ही माने हैं जो उन्होंने आगे चलकर एन्साइक्लोपीडिया आव् रिलीजन एण्ड ऐथिक्स में दिए।

---

१. शिवसिंह सरोज (शिवसिंह सेंगर) पृष्ठ ४२७-४२८
नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ (१८२६ ई०)

२ Indian Antiquary Vol XXII, 1893 Page 122.

२. इन्ट्रोडक्शन टु दि मानस (खड्गविलास प्रेस)

इसके अनुसार तुलसीदास ने १७ ग्रन्थ लिखे पर वे वास्तव में २१ ग्रन्थ हैं, क्योंकि ५ ग्रन्थों का समुच्चय ग्रियर्सन ने पञ्चरत्न के नाम से लिखा है।[1]

३. एन्साइक्लोपीडिया आव् रिलीजन एण्ड एथिक्स[2]

इसके अनुसार ग्रियर्सन ने तुलसी के १२ ग्रन्थ ही प्रामाणिक माने हैं। वे ग्रन्थ है :—

छोटे ग्रन्थ—रामलला नहछू, वैराग्य सन्दीपिनी, बरवै रामायण, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, रामाज्ञा।

बड़े ग्रन्थ—कृष्ण गीतावली, विनय पत्रिका, गीतावली, कवितावली, दोहावली और रामचरित मानस।

सन् १९०३ में बंगवासी के मैनेजर श्री शिवबिहारीलाल वाजपेयी ने बंगवासी के ग्राहकों को समस्त तुलसी ग्रन्थावली उपहार में दी थी। उस ग्रन्थावली के अनुसार तुलसीदास के ग्रन्थों की संख्या १७ निर्धारित की गई थी। बाद में तुलसीदास की तीन पुस्तकें और जोड़ दी गई थीं। उक्त ग्रंथावली के सम्बन्ध में श्री शिवबिहारीलाल वाजपेयी ने लिखा था[3] :—

---

१. Ramcharitmanas (Khadga Vilas Press, Bankipur) 1889

२. More than twenty formal works, besides numerous short poems have been attributed to Tulsidas but some of these are certainly apocryphal and others are of doubtful authenticity. The m[illegible] twelve, [illegible]

[illegible] 470

३. सम्वत् १९६० का हिन्दी बंगवासी का नवीन उपहार, पृ० १-२
शिवबिहारीलाल वाजपेयी
मैनेजर हिन्दी बंगवासी
३८-२ नं० भवानीचरण दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता, सन् १९०३ ई०

"हम इस वर्ष महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी के १७ ग्रंथ हिन्दी बङ्गवासी के ग्राहकों को उपहार देंगे। इनमें मानस रामायण अति प्रकाण्ड तथा भारत-प्रसिद्ध ग्रंथ है। भारत के नर नारी इसके लिए लालायित हैं।...इस मानस रामायण के अतिरिक्त गोस्वामी जी की १६ और रामायण हम अपने पाठकों को उपहार देते हैं। इन रामायणों में सुन्दर काव्य-तत्व तथा स्वतन्त्र कथाएं पृथक-पृथक रूप से वर्णित हैं, किन्तु दुःख इतना ही है कि इन १६ रामायणों का प्रचार इस देश में बहुत कम है। इनका प्रचार बढ़ाने के लिए ही हम इन्हें उपहार-स्वरूप देने को उद्यत हुए हैं।

इस बार के उपहार का सूचीपत्र देखिए :—

१ मानस रामायण
२ श्रीराम नहछू
३ वैराग्य संदीपिनी
४ बरवा रामायण
५ पार्वती मंगल
६ जानकी मंगल
७ श्रीराम गीतावली
८ श्रीकृष्ण गीतावली
९ दोहावली
१० श्री रामाज्ञा प्रश्न
११ कवित्त रामायण
१२ कलि धर्माधर्म निरूपण
१३ विनयपत्रिका
१४ छप्पय रामायण
१५ हनुमान बाहुक
१६ हनुमान चालीसा
१७ सङ्कट मोचन

इन १७ ग्रंथो के बाद इस ग्रंथावली मे तीन ग्रंथ और जोड़ दिए गए। वे ग्रथ थे—

कुण्डलिया रामायण, रामायण छन्दावली, तुलसी सतसई।

इस प्रकार तुलसीदास की कुल ग्रंथ संख्या २० हुई। ग्रियर्सन की सूची और इस सूची मे यह अन्तर है कि ग्रियर्सन ने रामशलाका, करखा रामायण, रोला रामायण और झूलना रामायण के नाम लिए हैं और इस सूची मे कलिधर्माधर्म निरूपण, हनुमान चालीसा और रामायण छन्दावली के नाम अविरिक्त हैं। यदि ग्रियर्सन की सूची मे ये तीन

अतिरिक्त नाम और जोड़ दिए जावें, तो तुलसीदास की ग्रंथ-संख्या (२१+३) २४ हो जाती है।

मिश्रवन्धुओं ने अपने नवरत्न में तुलसीदास की ग्रन्थ-संख्या २५ दी है। उन्होंने ग्रियर्सन की दी हुई २१ पुस्तकों की सूची में ४ ग्रन्थ और वढ़ा दिए है। वे चार ग्रन्थ है :—

छन्दावली रामायण, पदावली रामायण, हनुमान चालीसा और कलि धर्माधर्म निरूपण।

इन २५ ग्रन्थों में मिश्रवन्धु निम्नलिखित ग्रन्थों को प्रामाणिक नहीं मानते[1] :—

१ कड़खा रामायण
२ कुण्डलिया रामायण
३ छप्पय रामायण
४ पदावली रामायण
५ रामाज्ञा
६ रामलला नहछू
७ पार्वती मङ्गल
८ वैराग्य संदीपिनी
९ वरवै रामायण
१० सङ्कटमोचन
११ छन्दावली रामायण
१२ रोला रामायण
१३ झूलना रामायण

इन दस ग्रन्थों को निकाल देने पर शेष १२ ग्रंथ मिश्रवन्धुओं के अनुसार प्रामाणिक हैं :—

१ मानस
२ कवितावली
३ गीतावली
४ जानकी मंगल
५ कृष्ण गीतावली
६ हनुमान वाहुक
७ हनुमानचालीसा
८ रामशलाका
९ रामसतसई
१० विनयपत्रिका
११ कलिधर्माधर्म निरूपण
१२ दोहावली

१. नवरत्न (मिश्रबन्धु) पृष्ठ ८१-१०१
गंगा ग्रन्थागार लखनऊ (चतुर्थ संस्करण १९६१)

३३. श्री राम नहछू

पद्य संख्या—१२

विषय—राम के नहछू का मङ्गल-गान

३४. सगुनावली

पद्य संख्या—३४२

विषय—शकुनापशकुन जानने की रीति

३५. सूरज पुराण

पद्य संख्या—१५०

विषय—सूर्य की कथा

३६. ज्ञान को प्रकरण

पद्य संख्या—२१०

विषय—ज्ञान का वर्णन

३७. ज्ञान दीपिका

पद्य संख्या—५१०

विषय—ज्ञान, वैराग्य

सम्वत् १९८० में नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) ने तुलसीदास के केवल १२ ग्रन्थ प्रामाणिक मान कर उनका प्रकाशन 'तुलसी ग्रन्थावली खंड १ और २ के रूप में किया। वे ग्रन्थ हैं :—

३३.	खोज रिपोर्ट	सन्	१९०३
३४	"	"	१९०९-१०-११
३५.	"	"	"
३६	"	"	"
३७.	"	"	१९०६-७-८

१ मानस — तुलसी ग्रन्थावली पहला खंड
२ रामलला नहछू
३ वैराग्य सदीपिनी
४ बरवै रामायण
५ पार्वती मङ्गल
६ जानकी मङ्गल
७ रामाज्ञा प्रश्न — तुलसी ग्रन्थावली दूसरा खण्ड
८ दोहावली
९ कवितावली
१० गीतावली
११ श्रीकृष्ण गीतावली
१२ विनय पत्रिका

पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास मे इन्हीं १२ ग्रन्थों को प्रामाणिक माना है।[1] लाला सीताराम ने भी अपने सेलेक्शान्स फ्राम हिन्दी लिटरेचर मे तुलसीदास के १२ प्रामाणिक ग्रन्थ माने हैं।[2]

यदि तुलसीदास की शैली पर दृष्टि डाल कर इनके समस्त मिले हुए ग्रन्थों की समीक्षा की जावे तो इन १२ ग्रन्थों के अतिरिक्त कलिधर्माधर्म निरूपण भी प्रामाणिक माना जाना चाहिए। यहाँ तुलसीदास के प्रधान ग्रन्थों की विस्तृत समालोचना करना आवश्यक है।

रामलला नहछू

रचना-तिथि—रामलला नहछू की रचना-तिथि केवल वेणीमाधवदास के गोसाँई चरित से मिलती है। गोसाँई चरित के ५४ वे दोहे मे लिखा गया है :—

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल) पृष्ठ १..

२ [illegible]

मिथिला में रचना किए, नहछू मंगल गीत।
मुनि पाछे संगीत किए, ...

इसके अनुसार तुलसीदास ने नहछू की रचना मिथिला-यात्रा में की थी। वेणीमाधवदास के अनुसार तुलसीदास ने मिथिला यात्रा सं० १६४० के पूर्व की थी। अतः नहछू का रचनाकाल सं० १६३९ के लगभग मानना चाहिए। इतनी बात अवश्य है कि वेणीमाधवदास ने मिथिला-यात्रा के प्रसंग में तो नहछू की रचना का उल्लेख नहीं किया, सम्वत् १६३९ की घटनाओं के वर्णन करते समय यह लिख दिया है। संवत् १६४० के लगभग तुलसीदास ने विनयावली (विनयपत्रिका) की रचना की। नहछू और विनयपत्रिका के दृष्टिकोण में महान् अन्तर है। सम्भव है, तुलसीदास ने विनयपत्रिका को अपने जीवन के दुःख-सुख से प्रेरित होकर लिखा हो और नहछू को लोगों के गाने के लिए बना दिया हो। नहछू में कवि का न तो अभ्यास है और न प्रयास ही। ऐसी स्थिति में या तो नहछू कवि के काव्य-जीवन के प्रभात की रचना होनी चाहिए (मानस से बहुत पहले) या ऐसी रचना जिसे कवि ने चलते-फिरते बना दिया हो, जिसे लोग अश्लील गीतों के स्थान पर गा सकें। जन-साधारण का ध्यान आकर्षित करने के लिए यह रचना सरल और सुबोध रखी गई, उसमें काव्य-प्रतिभा प्रदर्शित करने की आवश्यकता भी नहीं समझी गई। जन-साधारण की रुचि के लिए ही शायद कवि ने आवश्यकता से अधिक शृंगार की मात्रा नहछू में रख दी है। ऐसी परिस्थिति में यदि नहछू और विनयपत्रिका की रचना एक ही समय में हुई तो वे दो पुस्तकें भिन्न दृष्टिकोण से लिखी गईं। इसी कारण दोनों में इतना अधिक अन्तर है।

विस्तार—रामलला नहछू एक प्रबन्धात्मक काव्य है। उसमें किसी प्रकार के कथा-विभाग नहीं है। एक ही वर्णन में ग्रन्थ समाप्त हो गया है। उसमें केवल २० छन्द हैं।

छन्द—नहछू में सोहर छन्द है, जिसमें १२, १० के विश्राम से २२ मात्राएँ होती हैं। यह छन्द आनन्दोत्सव या विवाह के अवसरों पर स्त्रियों द्वारा गाया जाता है।

वर्ण्य विषय—इसमें राम का नहछू वर्णित है। इसके सम्बन्ध में बाबू श्यामसुन्दर दास तथा डॉ० बड़थ्वाल लिखते हैं :—

"भारतवर्ष के पूर्वीय प्रान्त में अवध से लेकर विहार तक बारात के पहले चौक बैठने के समय नाइन से नहछू कराने की रीति प्रचलित है। इस पुस्तिका में वही लीला गाई गई है। इधर का सोहर एक विशेष छन्द है, जिसे स्त्रियाँ पुत्रोत्सव आदि अवसरों पर गाती हैं। पंडित रामगुलाम द्विवेदी का मत है कि नहछू चारों भाइयों के यज्ञोपवीत के समय का है। संयुक्त प्रदेश, मिथिला आदि प्रान्तों में यज्ञोपवीत के समय भी नहछू होता है। रामचन्द्र जी का विवाह अकस्मात, जनकपुर में स्थिर हो गया, इसीलिए विवाह में नहछू नहीं हुआ। गोसांई जी ने इसे वास्तव में विवाह के समय के गन्दे नहछुओं के स्थान पर गाने के लिए बनाया है।[1]

यह नहछू विवाह के अवसर का ही नहछू है, यज्ञोपवीत के समय का नहीं, क्योंकि रचना में दूलह शब्द का प्रयोग हुआ है।

गोद लिहे कौशिल्या बैठी रामहि वर हो।
सोभित दूलह राम सीस पर आचर हो ॥[2]
दूलह कै महतारि देखि मन हरषइ हो।
कोटिन्ह दीनेउ दान मेघ बनु बरषइ हो ॥[3]

१. गोस्वामी तुलसीदास (बा श्यामसुन्दर दास।
डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल) पृष्ठ ६६
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद १९३१
२. रामलला नहछू छन्द ६
३. वही १४

यदि यह राम के विवाह का नहछू है तो उसे मिथिला में होना चाहिए क्योंकि राम विवाह के पूर्व अयोध्या आए ही नहीं। किन्तु नहछू में स्पष्ट लिखा हुआ है कि यह नहछू अवधपुर में हुआ :—

> आजु अवधपुर आनन्द नहछू राम क हो।
> चलहु नयन भरि देखिय सोभा धाम क हो ॥[1]

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि यह नहछू अयोध्या में राम के विवाह के अवसर पर हुआ। यह कथन रामचरित की घटना से मेल नहीं खाता। इसीलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि तुलसीदास ने इस नहछू को विवाह के समय गाने के लिए बना दिया है। इसमें कथा की सत्यता पर न जाकर प्रथा की सत्यता पर जाना चाहिए, राम का नहछू तो एक बहाना मात्र है। तुलसीदास ने वर के लिए राम, वर की माता के लिए कौसिल्या, वर के पिता के लिए दशरथ आदि शब्द प्रयुक्त कर दिए हैं। वस्तुतः यह राम-कथा से सम्बन्ध रखने वाला नहछू न होकर साधारण नहछू की रीति पर लिखी हुई रचना है। इसीलिए प्रबन्धात्मकता में कहीं-कहीं दोष दीख पड़ते हैं और ऐसे प्रसंग मिलते हैं :—

> कौसल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो।
> नहछू जाय करावहु बैठि सिंहासन हो ॥[2]

'कौसल्या' की कोई 'जेठि' नहीं थी, कौसल्या स्वयं सब की 'जेठि' थी, पर जनसाधारण में यही होता है कि वर की माता को उसकी 'जेठि' आज्ञा देकर नहछू की रीति सम्पन्न कराती है। सर्वसाधारण के लिए यह रचना होने पर ही उसमें शृंगार की मात्रा अधिक है, नहीं तो तुलसीदास अपने गम्भीर काव्यों में कभी इतने शृंगार को स्थान नहीं दे सके।

---

१. रामलला नहछू छन्द १३

२. वही ,, ६

कटि के छीन बरिनिआँ छाता पानिहि हो ।
चन्द्रबदनि मृग लोचनि सब रस खानिहि हो ॥
नैन बिसाल नउनिआँ भौं चमकावइ हो ।
देइ गारी रनिवासहिं प्रमुदित गावइ हो ॥[1]

एक स्थान पर लिखा गया है कि स्वयं दशरथ इन परिचारिकाओं के शृंगार पर मुग्ध हो उठे ।[2] मर्यादा पुरुषोत्तम राम के पिता के सदाचार की सीमा इतनी निम्न नहीं हो सकती। यहाँ दशरथ का तात्पर्य राम के पिता से न होकर 'वर' के पिता से है। फिर विवाहोत्सव में तो थोड़ा-बहुत शृंगार क्षम्य भी माना जाना चाहिए।

विशेष—काव्य की दृष्टि से रचना साधारण है। इसमें न तो तुलसी के समान कवि की उत्कृष्ट प्रतिभा के दर्शन होते हैं और न उसकी भक्ति का दृष्टिकोण ही मिलता है। भाषा ठेठ अवधी है, जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्द कम हैं। आले, उँदरन, जेठि, तरीवन, कीदहु आदि ग्रामीण शब्द हैं।

वैराग्य संदीपिनी

रचना-तिथि—वेणीमाधवदास कृत गोसांई चरित के अनुसार इसकी रचना-तिथि सं० १६६९ है। इस समय की घटनाओं का वर्णन करते हुए वेणीमाधवदास ने यह दोहा लिखा है :—

बाहुपीर व्याकुल भए, बाहुक रचे सुधीर ।
पुनि विराग संदीपिनी, रामाज्ञा सकुनीर ॥[3]

बाबू श्यामसुन्दरदास और डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल इस रचना को सवत् १६४० के पूर्व की रचना मानते है। वे लिखते है :—

"इसमें तो संदेह नहीं कि वैराग्य-संदीपिनी दोहावली के संगृहीत

१. रामलला नहछू छन्द ८
२. " " ५.
३ गोसाई चरित दोहा ९५

बाल कांड १९ छंद (सीताराम के सौन्दर्य वर्णन के साथ धनुष-यज्ञ की कथा का संकेत मात्र)
अयोध्या कांड ८ छंद (कैकेयी क्रोध, वन यात्रा, ग्राम वासी वार्तालाप)
अरण्य कांड ६ छंद (शूर्पणखा-कूट, कंचन मृग, सीता-वियोग)
किष्किंधा कांड २ छंद (राम सुग्रीव मैत्री)
सुन्दर कांड ६ छंद (राम सीता विरह वर्णन)
लंका कांड १ छंद (सेना वर्णन)
उत्तर कांड २७ छंद (चित्रकूट महिमा, शान्त रस वर्णन)

कुल ६९ छंद हैं जिनमें कथा का विस्तार बहुत अनियमित है। पंडित शिवलाल पाठक का कथन था कि गोसांई जी की बरवै रामायण बहुत विस्तृत रचना है। आजकल की प्राप्त बरवै रामायण तो उस वृहत् रामायण का अवशेषांश है। पर यह कथन सत्य ज्ञात नहीं होता क्योंकि इस ग्रंथ मे बरवै इतने स्फुट और अप्रबन्धात्मक हैं कि वे किसी कथा-भाग का निर्माण नहीं कर सकते। उत्तर कांड में तो कोई कथा है ही नहीं। बरवै का यह कांड और कवितावली का उत्तर कांड एक सा ज्ञात होता है।

छंद—इसमें बरवै छंद प्रयुक्त है। इसमें १२, ७ के विश्राम से १९ मात्राएँ होती हैं। यह छन्द रहीम को विशेष प्रिय था। कहा जाता है कि रहीम का एक सिपाही अपनी नवविवाहिता पत्नी के पास अधिक दिनों तक ठहर गया। चलते समय उसकी पत्नी ने एक छन्द लिखकर पुनः आने की प्रार्थना की और रहीम से क्षमा-याचना भी की। वह छन्द था—

प्रेम प्रीति को बिरवा लगे चलाइ।
सींचन की सुधि लीजो मुरझि न जाय॥

रहीम ने यह छंद देख अपने सिपाही का अपराध क्षमा कर दिया और इसी छंद मे अपना नायिका-भेद लिखा। उन्होने स्वयं ही इस छंद मे रचना नहीं की, प्रत्युत अपने मित्रों को भी यह छंद लिखने के लिए वाध्य किया।

वर्ण्य विषय—इसमे राम-कथा कही गई है, पर यह कथा संकेत रूप मे ही है। वालकांड मे राम जन्मादि कुछ नहीं है। सीता-राम का सौन्दर्य वर्णन और जनकपुर मे स्वयंवर का संकेत मात्र है। इसी प्रकार अन्य कांडों की कथा भी अत्यंत संक्षेप मे है। लंकाकांड के केवल एक वरवै मे सेना वर्णन ही है।[1] उत्तर कांड मे कोई कथा ही नहीं। ज्ञान और भक्ति का वर्णन मात्र है। समस्त ग्रंथ मे भरत का नाम एक वार भी नहीं आया। ग्रंथ स्फुट रूप से लिखा गया है, उसमे प्रबन्धात्मकता का ध्यान ही नहीं रक्खा गया।

विशेष—वरवै रामायण के प्रारम्भिक छंद तो अलंकार-निरूपण के लिए लिखे गए ज्ञात होते हैं। इसी प्रकार उत्तर कांड मे शान्त रस का निरूपण है। यहाँ तुलसीदास प्रथम वार रस और अलंकार-निरूपण का प्रयास करते हैं। भाषा अवधी है जिसमे छंद की साधना सफलता पूर्वक हुई है। यदि इस ग्रंथ मे उत्तर कांड न होता तो यह रीति-कालीन रचना कही जा सकती थी। यहाँ कवि की कला ही अधिक है, भाव-गांभीर्य कम। पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वरवै रामायण के कुछ छंद कला की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि के हो गए हैं। ऐसे छंद अधिकतर वालकांड और उत्तर कांड मे हैं।

पार्वती मंगल

रचना-तिथि—वेणीमाधवदास ने पार्वती मंगल की रचना-तिथि सं० १६३९ की घटनाओं के वर्णन मे दी है :—

[1] विविध वाहिनी विलसत, सहित अनन्त।
जलधि सरिस को कहै, राम भगवन्त॥

ही माननी होगी। सम्भव है, तुलसीदास ने मिथिला-यात्रा सं० १६४२ में भी की हो, जिसका निर्देश बेणीमाधवदास ने न किया हो। अथवा बेणीमाधवदास का मत गलत हो।

विस्तार—यह ग्रंथ नियमित रूप से लिखा गया है। प्रारम्भ में मंगलाचरण और अंत में स्वस्ति-वचन है। इस ग्रंथ में १६४ छन्द हैं, जिनमें १४८ अरुण और १६ हरिगीतिका हैं।

छंद—अरुण या मंगल और हरिगीतिका। अरुण छन्द ११+९ के विश्राम से २० मात्रा का और हरिगीतिका १६+१२ के विश्राम से २८ मात्रा का छन्द है।

वर्ण्य विषय—इसमें शिव-पार्वती विवाह वर्णित है। रामचरित मानस की वर्णन-शैली से साम्य रखते हुए भी यह ग्रंथ मानस में [illegible] शिव पार्वती विवाह से भिन्न है। मानस मे पार्वती के [illegible] की परीक्षा सप्तर्षियों द्वारा ली गई है, इसमें पार्वती [illegible] वटु वेश में स्वयं शिव लेते है। मानस में पार्वती ने [illegible] ऋषियों के साथ वाद-विवाद मे भाग लिया है, [illegible] मे पार्वती अपनी सहचरी के द्वारा शिव को [illegible] मानस मे 'जस दूलह तस बनी बराता' का [illegible] विवाह मे भी सर्प लपेटे रहते हैं, पार्वती [illegible] अ-शिव वेश मे परिवर्तन हो जाता है। [illegible] संभव' के कारण ही जान पड़ता है। [illegible] श्लोक ३२-३४ मे शिव मे जो परिवर्तन [illegible] मंगल मे भी पाया जाता है। इस [illegible] परपरागत प्रथाएँ भी वर्णित हैं—[illegible]

[illegible] The poet evidently [illegible] [illegible] the work at in [illegible]

G. A. Grierson

[illegible] Vol XXI [illegible]

परिछन, शकुन आदि। मानस मे वर्णित शिव पार्वती के विवाह से यह कथा-भाग कहीं अधिक विदग्धतापूर्ण है, यद्यपि वर्णनात्मकता उतनी अच्छी नहीं है।

विशेष—यह रचना पूर्वी अवधी मे हुई है। भाषा की दृष्टि से यह मानस के समकक्ष है, परन्तु शैली की दृष्टि से नहीं।

जानकी मंगल

रचना-काल—वेणीमाधवदास के पूर्वोल्लिखित दोहे के अनुसार इसकी रचना भी मिथिला-यात्रा के समय अर्थात् संवत् १६४० के पूर्व हुई। पर पार्वती मंगल की रचना-तिथि अन्तर्साक्ष्य के अनुसार सं १६४३ निर्धारित की गई है। जानकी मगल और पार्वती मंगल सम्पूर्ण सादृश्य रखने के कारण एक ही काल की रचनाएँ मानी जानी चाहिए। कथा-शैली और वर्णन-शैली तथा छन्द-प्रयोग मे दोनो समान है। अतः जानकी मंगल की रचना भी सं० १६४३ मे माननी चाहिए।

विस्तार—इस ग्रंथ का विस्तार २१६ छन्दों मे है, जिनमे १९२ अरुण और २४ हरिगीतिका छन्द है। ८ अरुण के पीछे एक हरिगीतिका छन्द है। इस ग्रंथ का प्रारम्भ नियमित रूप से मंगलाचरण मे होता है और अंत मंगल-कामना में।

वर्ण्य विषय—इसमे सीता-राम का विवाह वर्णित है। राम के साथ उनके अन्य तीन भाइयो का भी विवाह हुआ है। पर कथा-क्षेत्र मे जानकी मंगल की कथा मानस की कथा से भिन्न है। जानकी मगल मे पुष्प वाटिका वर्णन, जनकपुर वर्णन और लक्ष्मण का दर्पोत्तर है ही नहीं। परशुराम का गर्वापहरण भी सभा मे न होकर बारात के लौटने पर मार्ग मे हुआ है। यह प्रभाव वाल्मीकि रामायण का ज्ञात होता है। वेणीमाधव दास के कथनानुसार तुलसीदास ने सं० १६४१ के लगभग

वाल्मीकि रामायण की प्रतिलिपि की थी।[1] यदि वेणीमाधवदास का यह कथन प्रामाणिक मान लिया जावे तो संभव है वाल्मीकि रामायण का प्रभाव तुलसीदास पर जानकी मंगल की रचना करते समय पड़ा हो। तुलसीदास ने सोचा हो कि मानस में जानकी विवाह वाल्मीकि रामायण से भिन्न प्रकार का है, जानकी मंगल में उसके अनुकूल ही हो। इसमें भी परम्परागत वैवाहिक प्रथाओं का वर्णन स्वतन्त्रतापूर्वक हुआ है।

विशेष—जानकी मंगल की रचना पार्वती मंगल के समान अवधी में ही हुई है। पार्वती मगल और जानकी मंगल में निम्नलिखित बातों में साम्य है, जिससे ज्ञात होता है कि दोनों एक ही काल की रचनाएँ है :—

१. दोनो का नाम एक सा ही है और दोनों का आधार संस्कृत ग्रन्थों पर है। पार्वती मंगल का आधार कुमारसम्भव और जानकी मंगल का आधार वाल्मीकि रामायण है।

२. दोनों में एक ही प्रकार के छन्द हैं और उनका क्रम भी एक सा है। ८ अरुण के पीछे १ हरिगीतिका छन्द है।

३. दोनों में एक ही भाषा अवधी और एक ही वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

४. दोनों की कथा मानस से भिन्न है। दोनों में एक ही प्रकार का मंगलाचरण और एक ही प्रकार का अन्त है।

एक बात में अन्तर अवश्य है। पार्वती मंगल में रचना-काल (जय संवत) दिया गया है, पर जानकी मगल में नहीं। संभव है पार्वती मगल और जानकी मगल एक ही ग्रन्थ मानकर 'मंगल' दोनों लिखे गए हों और एक का रचना संवत् दोनों के लिए प्रयुक्त हो।

[1] लिखे बालमीकि बहोर [illegible] ।

अगहन सुदि सप्तमी रवौ [illegible]

रामाज्ञा प्रश्न

रचना काल—वेणीमाधवदास ने रामाज्ञा की तिथि सं १६३९ दी है।

[illegible] भोर आइ [illegible] भगे, [illegible] सुजोर ।
पुनि लिखत संपूरनो, रामाज्ञा सुजोर ॥[1]

सर जार्ज ग्रियर्सन का कथन है कि मिर्ज़ापुर के लाला छक्कन लाल ने सन् १८२७ में रामाज्ञा की एक प्रतिलिपि मूल प्रति से की थी। छक्कन लाल के शब्द इस प्रकार हैं :—

"श्री संवत् १६५५ जेठ सुदी १० रविवार को लिखी पुस्तक श्री गुसांई जी के हस्त कमल की प्रह्लाद घाट श्री काशी जी में रही। उस पुस्तक पर से श्री पंडित राम गुलाम जी के सतसंगी छक्कन लाल कायस्थ रामायणी मिरजा पुर वासी ने अपने हाथ से संवत् १८८४ में लिखा था।"[2] यह मूल प्रति तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई कही जाती है जिसपर स्वयं कवि ने सं १६५५ ज्येष्ठ शुक्ल १० रविवार तिथि डाली थी। दुर्भाग्य से यह प्रति चोरी चली गई। इस प्रमाण के अनुसार रामाज्ञा की रचना-तिथि सं० १६५५ निर्धारित होती है। यह भी संदिग्ध है, क्योंकि मिश्र बन्धुओं के कथनानुसार "छक्कन लाल को रामाज्ञा नहीं, रामशलाका मिली थी"[3] किन्तु यदि रामाज्ञा प्रश्न और रामशलाका एक ही ग्रन्थ के दो नाम हैं तो फिर संदेह के लिए स्थान नहीं है। सुधाकर द्विवेदी का कथन है कि संवत् १६५५ रामाज्ञा की रचना-तिथि न होकर प्रतिलिपि-तिथि ही मानना उचित है क्योंकि तुलसीदास अपने ग्रंथ की रचना-तिथि आरम्भ में ही लिख देते हैं। उदाहरण के लिए रामचरित मानस और पार्वती मंगल ग्रंथ हैं जिनके आरम्भ ही में रचना-तिथि दी गई है।

विस्तार—इस ग्रन्थ में सात सर्ग हैं, प्रत्येक सर्ग में सात सप्तक हैं और प्रत्येक सप्तक में सात दोहे हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ की कुल छन्द संख्या ३४३ है।

---

१. मूल गोसाईं चरित, दोहा ६५
२ Indian Antiquary vol XXII (18 3) page 96
३. नवरत्न, पृष्ठ ८२

वर्ण्य विषय

इसमे रामकथा का वर्णन है। दोहों मे यह वर्णन इस प्रकार है कि प्रत्येक दोहे से शुभ या अशुभ संकेत निकलता है, जिससे प्रश्न-कर्ता अपने प्रश्न का उत्तर पा लेता है। इसका दूसरा नाम दोहावली रामायण भी है। समस्त कथा सात सर्गों मे विभाजित है। सर्गों के अनुसार कथा इस प्रकार है :—

प्रथम सर्ग—बाल कांड
द्वितीय सर्ग—अयोध्या कांड और अरण्य काड (पूर्वार्ध)
तृतीय सर्ग—अरण्य कांड (उत्तरार्ध) और किष्किन्धा कांड
चतुर्थ सर्ग—बालकाड
पंचम सर्ग—सुन्दर कांड और लङ्का काड
षष्ठ सर्ग—उत्तर कांड
सप्तम सर्ग—स्फुट

चतुर्थ सर्ग मे पुनः बालकांड लिखने के कारण यद्यपि कथा के क्रम [illegible] मे अवरोध होता है, तथापि कवि को ऐसा करना इसलिए आवश्यक [illegible] ज्ञान पड़ा क्योंकि मध्य मे भी शकुन का मङ्गलमय और आनन्दम[illegible] रूप रखना था। इसके लिए उन्हें मङ्गलमय घटना की आवश्यक[illegible] थी। राम की कथा में बालकाड के बाद की कथा दुःखद है। [illegible] सुखद घटना के लिये उन्हें फिर बालकाड की कथा चतुर्थ स[illegible] लिखनी पड़ी।

प्रथम सर्ग के सप्तम सप्तक के सप्तम दोहे में गङ्गाराम नाम [illegible] है।¹ इस नाम के आधार पर एक कथा चल पड़ी है—

गङ्गाराम राजघाट के राजा के पंडित थे। एक बार राजा के [illegible]

[illegible]

घबरा कर प्रह्लाद घाट पर रहने वाले पं० गङ्गाराम ज्योतिषी को सत्य बात के निर्णय करने की आज्ञा दी। शर्त यह थी कि यदि वे ठीक उत्तर दे सके तो एक लाख रुपये से पुरस्कृत होंगे, अन्यथा प्राणदंड पावेंगे। गङ्गाराम ज्योतिषी तुलसीदास के मित्र थे। उन्होंने अपनी विपत्ति का समाचार तुलसीदास को दिया। तुलसीदास ने छः घण्टे में रामाज्ञा की रचना कर गङ्गाराम को उसकी प्रति दे दी। इसके अनुसार गङ्गाराम ने राजकुमार के दूसरे दिन सकुशल लौट आने की बात और समय राजा साहब को बतला दिया। वास्तव में यह बात सच निकली। राजासाहब ने गङ्गाराम ज्योतिषी को एक लाख से पुरस्कृत किया जिसे उसने तुलसीदास की सेवा में समर्पित करना चाहा। तुलसीदास ने उस धन में से सिर्फ बारह हजार लेकर हनुमान जी के बारह मन्दिर बनवा दिये।

इस कथा का आधार केवल प्रथम सर्ग के अन्तिम सप्तक का अन्तिम दोहा है और उसी के आधार पर जनश्रुति। पर यह कथा सत्य ज्ञात नहीं होती क्योंकि इतनी लम्बी रचना केवल छ घण्टे में नहीं बन सकती और इसमें शकुन का समय भी नहीं निकलता। केवल शुभ या अशुभ लक्षण ज्ञात हो सकता है।[1]

रामाज्ञा की राम-कथा पर वाल्मीकि रामायण का ही अधिक प्रभाव है। परशुराम का मिलन राज-सभा में न होकर वाल्मीकि रामायण के समान मार्ग ही में होता है। इसका निर्देश प्रथम सर्ग के बालकाण्ड में है, चतुर्थ सर्ग के बालकाण्ड में नहीं।

1. Pandit Sudhakar Dwivedi justly points out that the ... whole story as apocryphal. The Rama... ...for ... ...ation ... this. It only ...

चारिउ कुंवर वियाहि पुर गवने दसरथ राउ ।
भए मञ्जु मंगल सगुन गुरु सुर संभु पसाउ ॥
पंथ परसुधर आगमन समय सोच सब काहु ।
राज समाज विषाद बड़, भय बस मिटा उछाहु ॥[1]

इसी प्रकार षष्ठ सर्ग में राम राज्याभिषेक के बाद न्याय की कथाएँ भी वाल्मीकि रामायण के अनुसार हैं :—

विप्र एक वालक मृतक राखेउ राज दुआर ।
दंपति विलपत सोक अति, आरत करत पुकार ॥[2]
बग उलूक झगरत गये, अवध जहाँ रघुराउ ।
नीक सगुन बिबरिहि झगर, होइहि धरम निआउ ॥
जती स्वान संवाद सुनि, सगुन कहब जिय जानि ।
हस बस अवतस पुर विलग होत पय पानि ॥[3]

इसी प्रकार सीता-निर्वासन और लवकुश-जन्म की ओर भी संकेत है :—

असमंजसु बड़ सगुन गत, सीता राम वियोग ।
गवन विदेस, कलेस कलि, हानि, पराभव रोग ॥[4]
पुत्र लाभ लवकुस जनम सगुन सुहावन होइ ।
समाचार मगल कुसल, सुखद सुनावइ कोइ ॥[5]

ये कथाएं मानस में नहीं हैं। अतः इस कथा पर सम्पूर्ण रूप से वाल्मीकि रामायण का प्रभाव है ।

१ रामाज्ञा प्रश्न	प्रथम सर्ग,	सप्तक ६	दोहा ३-४
२ रामाज्ञा प्रश्न	षष्ठ सर्ग	सप्तक ४	दोहा १
३ ,,	,,	,, ६	दोहा २-३
४ ,,	,,	,, ७	दोहा १
५ ,,	,,	,, ७	दोहा १

भुज तरु कोटर रोग अहि बरबस कियो प्रवेस।
बिहगराज बाहन तुरत काढ़िय मिटइ कलेस ॥
बाहु बिटप सुख बिहँग थलु लगी कुपीर कुआगि।
राम कृपा जल सींचिए बेगि दीन हित लागि ॥ दोहावली २३६.

इन दोहो मे तुलसीदास की बाहुपीड़ा का वर्णन है। तुलसीदास की बाहुपीड़ा उनके जीवन के अन्तिम दिनो मे मानी गई है। अतः इन दोहो का समय संवत् १६८० के लगभग मानना चाहिए।

दोहावली मे यदि संवत् १६६५ से १६८० तक की घटनाओं का वर्णन है तो उसका संग्रह स० १६४० मे किस भाँति हो सकता है? तुलसीदास के जीवन के अन्तिम दिनो की रचना दोहावली मे होने के कारण ऐसा अनुमान भी होता है कि इसका संग्रह स्वयं तुलसीदास के हाथ से न होकर उनके किसी भक्त के हाथ से हुआ होगा। ऐसी परिस्थिति मे वेणीमाधवदास द्वारा दी हुई तिथि अशुद्ध ज्ञात होती है।

विस्तार—दोहावली मे दोहो की संख्या ५७३ है। इनमे अन्य ग्रंथो के दोहे भी सम्मिलित हैं।

मानस के ८५ दोहे
सतसई के १३१ ,,
रामाज्ञा के ३५ ,,
वैराग्य संदीपिनी के २ ,,

शेष दोहे नवीन हैं। इनमे २२ सोरठे भी है।

छंद—दोहावली मे स्पष्ट ही दोहा छंद है, जिसमे १३, ११ के [illegible] २४ मात्राए होती हैं।

वर्ण्य विषय—दोहावली मे कोई विशेष कथानक नहीं है। [illegible] राम-महिमा, नाम माहात्म्य, तत्कालीन परि[illegible] प्रति चातक के आदर्श का प्रेम तथा [illegible] भी मिलती है। [illegible] दोहो मे [illegible]

प्रयत्न किया गया है। चातक की अन्योक्तियाँ बहुत सुन्दर हैं। उनके द्वारा कवि ने अपनी अनन्य भक्ति का स्पष्ट और सुन्दर परिचय दिया है। कलिकाल वर्णन में तत्कालीन परिस्थितियों पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है।

गोंड गँवार नृपाल महि, यमन महा-महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल॥

दोहावली में यह ५५९ वाँ दोहा है। कलिधर्माधर्म निरूपण में यह ८ वाँ दोहा है।[1]

इसी प्रकार—

साखी सबदी दोहरा कहि किहनी उपखान।
भगत निरूपहिं भगति कलि निन्दहिं वेद पुरान।

कलि धर्माधर्म निरूपण का यह २२ वाँ दोहा दोहावली में ५५४ वाँ दोहा है। यदि कलि धर्माधर्म निरूपण को एक विशिष्ट ग्रन्थ मान लिया जाय तो दोहावली में उसके दोहे भी संग्रहीत किए गए हैं। इस प्रकार दोहावली निश्चित रूप से एक संग्रह ग्रन्थ है।

विशेष—यह ग्रन्थ काव्योत्कर्ष के दृष्टिकोण से साधारण है। कुछ दोहे तो वास्तव में उत्कृष्ट हैं, जो मनोवेगों का स्वाभाविक चित्रण करते हैं।

कृष्ण गीतावली

रचना-काल—कृष्ण गीतावली का रचना-काल वेणीमाधवदास द्वारा सं० १६२८ माना जाता है। इसकी रचना राम गीतावली के साथ ही हुई:—

जब सोरह सै बसु बीस चढ़यौ। पद जोरि सबै शुचि ग्रन्थ गढ़यौ॥
तेहि राम गीतावलि नाम धर्यौ। अरु कृष्ण गीतावलि राँचि सर्यौ॥

जिस तरह जानकी मंगल और पार्वती मंगल युग्म हैं,

---

१. षोडष रामायण पृष्ठ ३२६ श्रीनुट विहारी राय, कलकत्ता (१६०३)

उसी प्रकार राम गीतावली और कृष्ण गीतावली। दोनो की रचना मे यह ज्ञात होता है कि ग्रंथ उस समय लिखे गए होगे जब कवि पर ब्रजभाषा और कृष्ण-काव्य का अत्यधिक प्रभाव होगा।

स्तार—कृष्णगीतावली मे स्फुट पदो का संग्रह है। यह रचना ग्रंथ के रूप मे प्रस्तुत नहीं की गई होगी, क्योंकि न तो इसके आदि मे मंगलाचरण है और न अन्त मे कोई मंगल-कामना ही। इसमे कोई काड या स्कन्ध आदि नहीं है, राग रागिनियो मे घटना-विशेष पर पद लिख दिए गए हैं। ऐसे पदो की संख्या ६१ है।

वरार्य विषय—इस ग्रन्थ मे कृष्ण की कथा गाई गई है। सूरदास के सूरसागर मे जिस प्रकार श्रीकृष्ण-चरित्र पर अनेक पद लिखे गए हैं, उसी प्रकार मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से कृष्ण-गीतावली मे भी पद-रचना है। कृष्ण गीतावली मे निम्न-लिखित विषयो पर पद-रचना की गई है:—

बाललीला, गोपी उपालम्भ, ऊखलबन्धन, इन्द्रकोप, गोवर्द्धन धारण, छाकलीला, सौन्दर्य वर्णन, गोपिका-प्रेम, मथुरा-गमन, गोपी-विरह, भ्रमरगीत और द्रौपदी-चीर। इन सभी घटनाओ का वर्णन बड़े स्वाभाविक ढंग से किया गया है। तुलसीदास ने कृष्ण चरित्र वर्णन मे भी हृदय-तत्व की प्रधानता रक्खी है और ये पद सूरसागर के पदो से किसी प्रकार भी हीन नहीं ज्ञात होते। कृष्ण का बाल-चरित्र वर्णन कर तुलसीदास ने इस क्षेत्र मे भी अपनी प्रतिभा का प्रकाश फैला दिया है और उनके मनोवैज्ञानिक अध्ययन ने इस चरित्र को उत्कृष्ट साहित्य का रूप दे दिया है। कृष्ण गीता-वली तुलसीदास की बड़ी सरल रचना है। [illegible] रचना ही मनोवैज्ञानिक भी।

प्रगट किया गया है। नायक की अन्योक्तियाँ बहुत सुन्दर हैं। उनके द्वारा कवि ने अपनी अनन्य भक्ति का स्पष्ट और सुन्दर परिचय दिया है। कलिकाल वर्णन में तत्कालीन परिस्थितियों पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है।

गोंड गँवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल॥

दोहावली में यह ५५६ वाँ दोहा है। कलिधर्माधर्म निरूपण में यह ८ वाँ दोहा है।[1]

इसी प्रकार—

साखी सबदी दोहरा कहि किहनो उपखान।
भगत निरूपहि भगति कलि निन्दहि वेद पुरान।

कलि धर्माधर्म निरूपण का यह २२ वाँ दोहा दोहावली में ५५४ वाँ दोहा है। यदि कलि धर्माधर्म निरूपण को एक विशिष्ट ग्रन्थ मान लिया जाय तो दोहावली में उसके दोहे भी संग्रहीत किए गए हैं। इस प्रकार दोहावली निश्चित रूप से एक संग्रह ग्रन्थ है।

विशेष—यह ग्रन्थ काव्योत्कर्ष के दृष्टिकोण से साधारण है। कुछ दोहे तो वास्तव में उत्कृष्ट हैं, जो मनोवेगों का स्वाभाविक चित्रण करते हैं।

कृष्ण गीतावली

रचना-काल—कृष्ण गीतावली का रचना-काल वेणीमाधवदास द्वारा सं० १६२८ माना जाता है। इसकी रचना राम गीतावली के साथ ही हुई:—

जब सोरह से वसु बीस चढ्यो। पद जोरि सबै शुचि ग्रन्थ गढ्यो॥
तेहि राम गीतावलि नाम धर्यो। अरु कृष्ण गीतावलि राँचि सर्यो॥

जिस तरह जानकी मंगल और पार्वती मंगल युग्म हैं,

---

१. षोडष रामायण पृष्ठ ३२६ श्रीजुत विहारी राय, कलकत्ता (१६०३)

उसी प्रकार राम गीतावली और कृष्ण गीतावली। दोनों की रचना से यह ज्ञात होता है कि ग्रंथ उस समय लिखे गए होंगे जब कवि पर ब्रजभाषा और कृष्ण-काव्य का अत्यधिक प्रभाव होगा।

विस्तार—कृष्णगीतावली में स्फुट पदों का संग्रह है। यह रचना ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत नहीं की गई होगी, क्योंकि न तो इसके आदि में मंगलाचरण है और न अन्त में कोई मंगल-कामना ही। इसमें कोई कांड या स्कन्ध आदि नहीं हैं, राग रागिनियों में घटना-विशेष पर पद लिख दिए गए हैं। ऐसे पदों की संख्या ६१ है।

वर्ण्य विषय—इस ग्रन्थ में कृष्ण की कथा गाई गई है। सूरदास के सूरसागर में जिस प्रकार श्रीकृष्ण-चरित्र पर अनेक पद लिखे गए हैं, उसी प्रकार मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से कृष्ण-गीतावली में भी पद-रचना है। कृष्ण गीतावली में निम्न-लिखित विषयों पर पद-रचना की गई है :—

बाललीला, गोपी उपालम्भ, ऊखलबन्धन, इन्द्रकोप, गोवर्द्धन धारण, छाकलीला, सौन्दर्य वर्णन, गोपिका-प्रेम, मथुरा-गमन, गोपी-विरह, भ्रमरगीत और द्रौपदी-चीर। इन सभी घटनाओं का वर्णन बड़े स्वाभाविक ढंग से किया गया है। तुलसीदास ने कृष्ण चरित्र वर्णन में भी हृदय-तत्व की प्रधानता रक्खी है और ये पद सूरसागर के पदों से किसी प्रकार भी हीन नहीं ज्ञात होते। कृष्ण का बाल-चरित्र वर्णन कर तुलसीदास ने इस क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का प्रकाश फैला दिया है और उनके मनोवैज्ञानिक अध्ययन ने कृष्ण चरित्र को उत्कृष्ट साहित्य का रूप दे दिया है। कृष्ण गीतावली तुलसीदास की बड़ी सरल रचना है। यह जितनी सरल है उतनी ही मनोवैज्ञानिक भी।

विशेष—कृष्ण-चरित्र के चित्रण ने तुलसीदास को ऐसे वैष्णव का रूप दे दिया है, जिसे विष्णु की व्यापकता में पूर्ण विश्वास है। उसे राम और कृष्ण में अन्तर नहीं ज्ञात होता। उसे अवतारवाद में पूर्ण विश्वास है। श्री कृष्ण गीतावली के कुछ पद सूरसागर से मिलते हैं। इसका कारण संभवतः यह हो कि "तुलसीदास की रचनाओं में मिलने वाले सूरदास के इन पदों को तुलसीदास जी ने गाने के लिए पसन्द किया होगा और तुलसीदास जी को प्रिय होने के कारण आगे चल कर उनके शिष्यों ने उचित परिवर्तन के साथ उन्हें उनकी रचनाओं में मिला दिया होगा।"[1]

यह रचना ब्रजभाषा में है तथा कवि की प्रतिभा की पूर्ण परिचायिका है।

बाहुक

रचना-काल—वेणीमाधवदास ने इसकी रचना संवत् १६६९ में मानी है :—

> बाहु पीर व्याकुल भये, बाहुक रचे सुधीर।
> पुनि विराग संदीपिनी, रामाज्ञा सकुनीर।[2]

कविता की प्रौढ़ता देख कर अनुमान भी यही होता है कि यह रचना तुलसीदास के जीवन के परिवर्ती काल की है। यदि इसी बाहुपीड़ा से तुलसीदास की मृत्यु माने तब तो यह तुलसीदास की अंतिम रचना है और इसका रचनाकाल संवत् १६८० है। यदि

---

१. गोस्वामी तुलसीदास, पृष्ठ ८१
(हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद १९३१)

२. मूल गोसाईं चरित, दोहा ९५

रूपों में अपनी कुशलता प्रदर्शित करना चाहते थे। अनेक स्थानों पर बड़ी सुन्दर उक्तियाँ हैं जिनमें तुलसीदास का अनुभव और निरीक्षण सन्निहित है। अनेक स्थानों पर हमें उपदेश भी मिलता है। वह केवल उपदेश ही नहीं है वरन् एक सत्य है जिसमें हृदय को छू लेने की शक्ति है।

विशेष पं० रामगुलाम द्विवेदी और पं० सुधाकर द्विवेदी तुलसी सतसई को तुलसी रचित नहीं मानते। ग्रियर्सन उसे अंशतः तुलसी रचित मानते हैं।[1] प्रधानतः कारण यह दिया जाता है कि इसमें अनेक कूट हैं जो तुलसी के काव्य-आदर्श के विरुद्ध हैं। सुधाकर द्विवेदी ने सतसई में गणित का अत्यधिक अंश पाकर उसे किसी तुलसी कायस्थ की रचना मान ली है। उस तुलसी कायस्थ को उन्होंने ग़ाज़ीपुर निवासी भी माना है क्योंकि तुलसी सतसई के कुछ शब्द-विशेष ग़ाज़ीपुर में अधिकतर बोले जाते हैं। किन्तु यहाँ यह विचारणीय है कि सतसई की शैली दोहावली की शैली के समान ही है और सतसई में दोहावली के लगभग डेढ़ सौ दोहे भी हैं। यदि दोहावली तुलसी रचित है तो सतसई को भी तुलसी रचित मानना समीचीन है। सतसई में सीता-भक्ति का प्राधान्य है। वेणीमाधवदास ने सं० १६४० में तुलसीदास की मिथिला-यात्रा का वर्णन किया है। सम्भव है, मिथिला के वातावरण का प्रभाव सतसई लिखते समय तुलसीदास के हृदय पर रहा हो। फिर सतसई की रचना

---

1. On the whole I am inclined to believe that at least a portion of the Satsai was written by our Tulsidas... ..

A Grierson.

Indian Antiquary Vol. XXII (1893) page 128.

सतसई (१)

रचना-काल—सतसई का रचना-काल सं १६४२ है। सतसई में लिखा है :—

अहि रसना थन धेनु रस गनपति द्विज गुरु वार।
माधव सित सिय जनम तिथि सतसैया अवतार ॥ २१ ॥

अहिरसना=२, थनधेनु=४, रस=६, गनपति द्विज=१,=१६४२ (अंकानां वामतो गतिः)

वेणीमाधवदास अपने मूल गोसांईचरित में भी यही तिथि देते हैं :—

माधौ सित सिय जनम तिथि व्यालिस सम्वत बीच।
सतसैया वरनै लगे प्रेम वारि के सींच ॥

विस्तार—इस प्रकार इस ग्रन्थ का रचना-काल संवत् १६४२ निश्चित है। इसमे ७४७ दोहे हैं।[1] सात सर्ग हैं। प्रथम सर्ग मे ११८, द्वितीय सर्ग मे १०३, तृतीय सर्ग मे १०१, चतुर्थ सर्ग में १०४, पंचम सर्ग में ९९, षष्ठ सर्ग मे १०१ और सप्तम सर्ग मे १२९ दोहे हैं।

वर्ण्य-विषय—प्रथम सर्ग मे भक्ति, द्वितीय सर्ग मे उपासना, तृतीय सर्ग मे राम-भजन, चतुर्थ सर्ग मे आत्म-बोध, पंचम सर्ग मे कर्म मीमांसा, षष्ठ सर्ग में ज्ञान मीमांसा और सप्तम सर्ग मे राजनीति के सिद्धान्त इसके वर्ण्य विषय हैं। सतसई का तृतीय सर्ग तो दृष्टि-कूट से भरा हुआ है। ऐसा ज्ञात होता है कि तुलसी अपने समकालीन काव्य के सभी

---

१. सतसई सप्तक—श्यामसुन्दर दास
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद १९३१

भी सीता जी की जन्म-तिथि को हुई। अतः सीता की भक्ति का वर्णन सतसई में स्वाभाविक है। चाहे यह ग्रंथ तुलसी रचित हो अथवा न हो, इसमें तुलसी के धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्त सम्यक् रूप से दिए गए हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से प्रकाशित तुलसी ग्रन्थावली में सतसई को स्थान नहीं दिया गया। सम्भव है, ग्रन्थावली के सम्पादक-गण पं० रामगुलाम द्विवेदी, पं० सुधाकर द्विवेदी और सर ग्रियर्सन से प्रभावित हुए हों।

कलि धर्माधर्म निरूपण

रचना-तिथि—इस ग्रन्थ का रचना-काल किसी प्रकार भी विदित नहीं। वेणीमाधवदास ने भी इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। नागरी प्रचारिणी सभा की तुलसी ग्रन्थावली में भी इसका समावेश नहीं है। किन्तु इसकी रचना-शैली और इसके अनेक दोहे दोहावली आदि ग्रन्थों में आने के कारण इसे तुलसीकृत मानना उचित होगा। मिश्र बन्धुओं ने अपने हिन्दी नवरत्न में इसे तुलसीदासकृत माना है :—

"इसकी रचना और भाषा रामायण से बहुत मिलती-जुलती है। यह एक मनोहर और प्रशंसनीय ग्रन्थ है। इसके तुलसीकृत होने में कोई सन्देह नहीं है।"[1]

इस ग्रन्थ के दोहे दोहावली में संग्रहीत हैं। अतः यह ग्रन्थ दोहावली से पहले बन गया होगा। दोहावली की रचना-तिथि सं० १६६५ के बाद की है क्योंकि दोहावली में 'बीसी विस्वनाथ की' (सम्वत् १६६५) का वर्णन है। अतः कलि धर्माधर्म निरूपण सं० १६६५ के पहले की रचना है।

---

1. हिन्दी नवरत्न, (मिश्र बन्धु) पृष्ठ ८८

भी सीता जी की जन्म-तिथि को हुई। अतः सीता की भक्ति का वर्णन सतसई में स्वाभाविक है। चाहे यह ग्रंथ तुलसी रचित हो अथवा न हो, इसमें तुलसी के धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्त सम्यक् रूप से दिए गए हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से प्रकाशित तुलसी ग्रन्थावली में सतसई को स्थान नहीं दिया गया। सम्भव है, ग्रन्थावली के सम्पादक-गण पं० रामगुलाम द्विवेदी, पं० सुधाकर द्विवेदी और सर ग्रियर्सन से प्रभावित हुए हों।

कलि धर्माधर्म निरूपण

रचना-तिथि—इस ग्रन्थ का रचना-काल किसी प्रकार भी विदित नहीं। वेणीमाधवदास ने भी इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। नागरी प्रचारिणी सभा की तुलसी ग्रन्थावली में भी इसका समावेश नहीं है। किन्तु इसकी रचना-शैली और इसके अनेक दोहे दोहावली आदि ग्रन्थों में आने के कारण इसे तुलसीकृत मानना उचित होगा। मिश्र बन्धुओं ने अपने हिन्दी नवरत्न में इसे तुलसीदासकृत माना है :—

"इसकी रचना और भाषा रामायण से बहुत मिलती-जुलती है। यह एक मनोहर और प्रशंसनीय ग्रन्थ है। इसके तुलसीकृत होने में कोई सन्देह नहीं है।"[1]

इस ग्रन्थ के दोहे दोहावली में संग्रहीत हैं। अतः यह ग्रन्थ दोहावली से पहले बन गया होगा। दोहावली की रचना-तिथि सं० १६६४ के बाद की है क्योंकि दोहावली में 'बीसी विस्वनाथ की' (सम्वत् १६६५) का वर्णन है। अतः कलि धर्माधर्म निरूपण सं० १६६५ के पहले की रचना है।

विस्तार—इसमें चार चौपाइयों (आठ पंक्तियों) के बाद एक दोहा है। ऐसे दोहों की संख्या ग्रन्थ में २५ है। बीच में एक और अन्त में छः सोरठे भी हैं। एक हरिगीतिका छन्द भी है। यह ग्यारह पृष्ठों की रचना है।[1]

छंद—चौपाई, दोहा, सोरठा और हरिगीतिका।

वर्ण्य विषय—इसमें तुलसीदास ने तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। इन तीनों क्षेत्रों में जो अनाचार है, उसे उन्होंने कलि-धर्म का नाम दिया है। यही समस्त रचना में वर्णित है।

विशेष—यद्यपि इस ग्रन्थ में मंगलाचरण नहीं है तथापि अन्त समुचित रूप से किया गया है। अन्तिम सोरठा इस प्रकार है :—

ना तन धरि करि काज, काज त्यागि नर मान को।
गाइ नाथ रघुराज, मॉंति नोंति मन विमल कर।

गीतावली

रचना-काल—अंतर्साक्ष्य से गीतावली के रचना काल पर कुछ प्रकाश नहीं पड़ता। इसमें किसी ऐतिहासिक घटना का निर्देश नहीं है। कवितावली की भाँति 'मीन की सनीचरी' या 'बीसी विस्वनाथ की' आदि का भी उल्लेख नहीं है। गीतावली का रचना-काल वेणीमाधवदास ने संवत् १६२८ माना है। इस ग्रन्थ की रचना का कारण यह दिया गया है :—

तहँके इक बालक आन लग्यो।
उठि सुन्दर कंठ सों गान लग्यो॥

---

१. पोथा रामायण (कवि वर्णनम् निबन्ध) पृष्ठ ३२६ से ३३६
(श्री गुरुविद्यारण्य द्वारा मुद्रित और प्रकाशित, कलकत्ता १६०३)

तिसु गान पै रीझि गोसाईं गए।
लिखि दीन्ह तबै पद चारि नए॥
करि कंठ सुनायउ दूजे दिना।
अड़ि जाय सो नूतन गान विना॥
मिस याहि वनावन गीत लगे।
उर भीतर सुन्दर भाव जगे॥[1]

यह ग्रन्थ कृष्ण गीतावली के साथ ही बना और इसमे संवत् १६१६ से संवत् १६२८ के बीच बने हुए समस्त पदों का संग्रह हुआ :—

जब सोरह सै वसु बीस चढ़्यो। पद जोरि सबै सुचि ग्रंथ गढ़्यो॥
तेहि राम गीतावलि नाम धर्‍यो। अरु कृष्ण गीतावलि राँचि सर्‍यो॥[2]

मूलगोसांई चरित के अनुसार गीतावली तुलसीदास की प्रथम रचना है। किन्तु गीतावली की शैली और कथा-वस्तु को देखते हुए यह अनुमान करना पड़ता है कि इसकी रचना मानस के पीछे हुई होगी। गीतावली की कथा उत्तर कांड में अधिकतर वाल्मीकि रामायण से साम्य रखती है। कौशल्या आदि का करुण चरित्र भी अधिक विदग्धतापूर्ण है तथा राम का वाल-वर्णन तुलसीदास के ग्रन्थों मे सब से उत्कृष्ट है। अतः संभव है इसकी रचना मानस के आदर्शों से स्वतंत्र होकर बाद में हुई हो, यद्यपि इस ग्रन्थ की रचना-तिथि विश्वस्त रूप से निर्धारित नहीं की जा सकती। जानकीमंगल और पार्वतीमंगल जय संवत की रचनाएँ हैं। ये दोनों ग्रन्थ संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर हैं। जानकीमंगल वाल्मीकि रामायण के आधार पर और पार्वतीमंगल कुमार संभव के आधार पर है। अतः इसी परिस्थिति मे कदाचित् गीतावली की रचना हुई हो जो वाल्मीकि की कथा से अधिक साम्य रखती है। ये उस समय की

---

१. गोसाईं चरित ३३वें दोहे की चौपाइयाँ

२ वही " "

रचनाएँ होगी जब कवि संस्कृत ग्रन्थों से अधिक प्रभावित हुआ होगा। इस विचार के अनुसार गीतावली की रचना जय संवत के आसपास ही माननी चाहिए अर्थात् गीतावली की रचना लगभग १६४३ में हुई होगी।

विस्तार—गीतावली सम्यक् ग्रन्थ के रूप में न लिखी जाकर स्फुट पदों के रूप में लिखी गई होगी। इसमें कोई मंगलाचरण नहीं है। ग्रन्थ का प्रारम्भ राम के जन्मोत्सव से होता है।

आजु सुदिन सुभ घरी सुहाई।
रूप सील गुन-धाम राम नृप भवन प्रगट भए आई॥[1]

इसमें रामावतार के न तो कारण ही दिए गए है और न पूर्व कथाएँ। ग्रन्थ अनियमित रूप से प्रारम्भ होता है। अतः इसमें कथा के अनेक सूत्र छूट गए है। फलस्वरूप कांडों का सानुपात विस्तार नहीं है। कुल ग्रन्थ में ३२८ पद हैं और उनका विभाजन सात कांडों में इस प्रकार हुआ है :—

बालकांड	१०८ पद
अयोध्याकांड	८९ पद
अरण्यकांड	१७ पद
किष्किधाकांड	२ पद
सुन्दरकांड	५१ पद
लङ्काकांड	२३ पद
उत्तरकांड	३८ पद

राम-कथा को देखते हुए किष्किधाकांड के केवल दो पद गीतावली का स्फुट रूप ही निश्चित रूप से निर्धारित करते है। कांडों के असमान होने के कारण घटनाओं का स्वरूप भी विशृंखल है। अयोध्याकांड के प्रथम पद में वशिष्ठ से राम राज्याभिषेक के लिए दशरथ की विनय

१ तुलसी ग्रंथावली दूसरा खंड, गीतावली पद १ पृ० २६९

है और दूसरे ही पद मे राम-वनवास के अनन्तर कौशल्या की राम से अयोध्या मे ही रह जाने की प्रार्थना है। कैकेयी-वरदान की समस्त विदग्धतापूर्ण कथा का अक्षम्य अभाव है। घटनाओं की विशृंखलता के साथ ही साथ चरित्र चित्रण भी पूर्ण नहीं हो पाता। मानस में जिस भरत के चित्रण मे तुलसी ने अयोध्या कांड का उत्तरार्ध ही समाप्त कर दिया, उसी भरत का चित्रण, गीतावली मे अधूरा है। ये अभाव गीतावली के स्फुट रूप मे लिखे जाने के कारण ही हैं।

वर्ण्य विषय (अ) कृष्ण-काव्य का प्रभाव

तुलसीदास ने गीतावली मे राम की कथा पदों मे लिखी है। संभव है, कृष्ण की कथा का पद-रूप मे अत्यधिक प्रचार होते देख कर तुलसीदास ने राम की कथा भी पद रूप में लिखी हो अथवा साहित्य के क्षेत्र मे संभवतः सूरदास के सूरसागर ने तुलसीदास का ध्यान इस ओर आकर्षित किया हो। वेणीमाधवदास ने अपने गोसॉई चरित मे तुलसीदास का सूरदास से मिलाप होना संवत् १६१६ में लिखा है :—

सोरह सै सोरह लगे, कामदगिरि डिग वास।
सुचि एकात प्रदेश महँ, आए सूर सुदास॥
कवि सूर दिखायउ सागर को। सुचि प्रेम कथा नट नागर को॥
पद द्वय पुनि गाय सुनाय रहे। पद-पंकज पै सिर नाय रहे॥[1]

इसके अनुसार सूरदास का सूरसागर तुलसीदास के समक्ष आ चुका था। यदि वेणीमाधवदास का कथन सत्य भी न माना जावे तब भी गीतावली मे अनेक पद ऐसे हैं जिनका पूर्ण साम्य सूरसागर मे लिखे गए पदों से होता है :—

(१) गीतावली—कनक रतन मय पालनो रच्यो मनहु मार सुतहार।
सूरसागर—अति परम सुन्दर पालनो गढ़ि ल्यावरे बढ़ैया।

1. गोसाँई चरित, दोहा २६ तथा आगे की चौपाई

(२) गीतावली—पालने रघुपति झुलावे ।
सूरसागर- यशोदा हरि पालने झुलावे ।

(३) गीतावली—आँगन फिरत घुटुरुवनि धाए ।
सूरसागर—आँगन खेलत घुटुरुवनि धाए ।

(४) गीतावली—जागिए कृपानिधान जान राय रामचन्द्र,
जननी कहे बार बार भोर भयो प्यारे ।
सूरसागर—जागिए गुपाललाल, आनन्दनिधि नन्दवाल,
यशुमति कहे बार बार भोर भयो प्यारे ॥

(५) गीतावली—खेलन चलिये आनन्द कन्द ।
सूरसागर—खेलन चलिये बाल गोविन्द ।

पद ३ और ५ तो इतना साम्य रखते है कि तुलसीदास और सूरदास के नाम के अतिरिक्त राम और श्याम के नाम से समस्त पद अक्षरशः मिलते हैं । या तो तुलसीदास ने ही अपनी भक्ति के आवेश मे सूरदास के पद को राम पर घटित कर दिया हो, या उन्होंने सूरदास का पद प्रिय लगने के कारण अपने ग्रन्थ मे रख लिया हो पर तुलसीदास जैसे महान् कवि से हम इन दोनो बातो की आशा नहीं रखते । सम्भव है, गीतावली के सम्पादकों ने भ्रमवश सूर के पदो को तुलसी के नाम से गीतावली मे रख दिया हो । इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि गीतावली पर सूरसागर की स्पष्ट छाप है । शब्दो और पदो के अतिरिक्त निम्नलिखित प्रकरणो से भी इस कथन की पुष्टि होती है :—

(१) कृष्ण के समान ही राम का बाल वर्णन है । राम के बालवर्णन का प्रसग तुलसीदास ने गीतावली को छोड़कर अन्य ग्रन्थो मे बहुत सक्षेप मे किया है । मानस मे—

[illegible] ते विहनि [illegible] ए ॥

और कवितावली मे—

कबहू स[illegible] [illegible]र कर, कबहू प्रतिबिम्ब निहार डार ॥ आदि

कृष्ण-काव्य से इतना साम्य होते हुए भी राम और कृष्ण के वाल-वर्णन मे कुछ भिन्नता है :—

(अ) तुलसीदास के राम इतने उत्कृष्ट व्यक्तित्व से समन्वित हैं कि उनका साधारण और स्वाभाविक परिस्थितियों मे चित्रण करना सम्भवतः तुलसीदास को रुचिकर न हुआ हो। राम तुलसी के परब्रह्म हैं। अतः आराध्य का इतना ऊँचा आदर्श वाल-वर्णन के समान साधारण कथानक मे शायद केन्द्रीभूत न हो सका हो।

(आ) तुलसीदास की भक्ति दास्य थी। वाल-वर्णन मे उन्हे इस वात का ध्यान था कि उनके स्वामी की मर्यादा का अतिक्रमण न हो। इसी के फल-स्वरूप मानस मे वाल-लीला के दो-चार ही पद्य हैं। स्थान-स्थान पर राम के परब्रह्म होने का निर्देश भी है।

जाके सहज स्वास स्रुति चारी।
सो हरि पढ़ यह अचरज भारी॥ (वालकाड)

गीतावली मे भी इसी अलौकिकता का पूर्ण संकेत है। इस कारण वात्सल्य के स्थान पर भय, आश्चर्य आदि भावनाओं का प्रावल्य हो जाता है। स्थान-स्थान पर देवतागण फूल वरसाते हैं और वादलों की ओट से वालक राम का सौन्दर्य देखते हैं :—

"विधि महेस मुनि सुर सिहात सब देखत अंबुद ओट दिए"

(वालकांड ७)

(इ) तुलसी का वाल-वर्णन अधिक वर्णनात्मक है। उसमे स्थिति का सागोपाग निरूपण है। पर यह वाल-वर्णन अभिनयात्मक नहीं हुआ है। समस्त-सौन्दय एक प्रेक्षक की भांति ही कवि के मुख से वर्णित है। पात्रों के सम्भाषण का भी अधिकतर अभाव है। यही कारण है कि

राम के शृंगार-वर्णन के सामने मनोवेगों का स्थान गौण हो गया है। तुलसीदास राम की छवि ही अधिकतर वर्णन करना चाहते हैं—अनेक वार कामदेव को लज्जित होने का आदेश करते हैं, पर वे वालक राम की मनोवृत्तियों में प्रवेश नहीं करना चाहते। सूरदास के अभिनयात्मक चित्रण के अन्तर्गत—

मैया कवहिं वढ़ैगी चोटी
किती वार मोंहि दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी॥

के समान मनोवैज्ञानिक भावनाओं को पात्रों के अभिनय का रूप देकर वर्णन करने की अपेक्षा तुलसीदास पात्रों का सीधा-सादा वर्णनात्मक चित्र खींचते हैं :—

सुभग सेज सोभित कौसल्या, रुचिर राम सिसु गोद लिए।
वार-वार विधु वदन विलोकति, लोचन चारु चकोर किए॥

गीतावली के वाल-वर्णन में अधिकतर ऐसे ही चित्र प्रस्तुत किये गए हैं जिनमें अभिनयात्मक तत्व अथवा सम्भाषण का अभाव है। यदि मनोवैज्ञानिक चित्रण अभिनय के रूप में हुआ भी है तो वह थोड़ा है, अप्रधान है। इसीलिए राम उतने स्वतन्त्र, चपल, चचल, वालोचित स्वाभाविक रूप से क्रीड़ा-मग्न नहीं है। उनमें उतनी नैसर्गिकता नहीं जितनी कृष्ण में है। रूठना, गिर पड़ना, आदि क्रीड़ाएँ नहीं हैं। इस प्रकार तुलसी ने अपने आराध्य के सौन्दर्य-चित्रण में—उनकी विरुदावली गाने के उत्साह में—वाल वर्णन की वहुत कुछ स्वाभाविकता अपने हाथ से चली जाने दी है। तुलसीदास ने अधिकतर अपने आराध्य के अंग, वस्त्र और आभूषणादि का वर्णन ही अनेक वार किया है। एक ही प्रकार की उत्प्रेक्षा और उपमा घटित की गई है। भावना की पुनरुक्ति से चमत्कार नहीं [illegible] सका। कामदेव, कमल, स्वर्ण, विद्युत, वादल, मयूर आदि की [illegible] न जाने कितनी वार प्रस्तुत है। गीतावली का

काव्य रूप होने के कारण सम्भवतः इसमें आवर्तन दोष न माना जावे पर कवि की दृष्टि तो सीमित ज्ञात होती ही है।

सूरदास और तुलसीदास के बाल-वर्णन में जो अन्तर आ गया है उसके अनेक कारण हो सकते हैं:—

(१) दोनों की उपासना का दृष्टिकोण भिन्न है। सूरदास ने सख्य-भाव से भक्ति की थी, तुलसी ने दास्य भाव से। अतः सूरदास अपने आराध्य से तुलसी की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता ले सकते थे। सूरदास अपने आराध्य से घुल-मिल सकते थे, पर तुलसीदास एक सेवक की भाँति दूर ही खड़े रहना उचित समझते थे। कहीं स्वामी का अपमान न हो जावे; यही कारण था कि तुलसीदास राम का बाह्य रूप वर्णन कर सके, राम के मनोवेगों में नहीं घुस सके।

(२) दोनों के आराध्य भी भिन्न थे। सूर के कृष्ण ग्राम्य वातावरण से पोषित गोप थे, तुलसी के राम नागरिक जीवन से मर्यादित राजकुमार थे। राम के नैसर्गिक जीवन के विकास की परिस्थितियाँ कम थीं। दूसरे कृष्ण की अनेक लीलाओं में—माखन-चोरी, दधि-दान, आदि में—बालोचित प्रवृत्तियों के विकास के लिए अधिक अवसर मिल गया। राम के मर्यादा पुरुषोत्तम-रूप में थोड़ी-सी भी उच्छृङ्खलता के लिए स्थान नहीं था। कृष्ण की भाँति वे अनेक स्त्रियों से प्रेम भी नहीं कर सकते थे—वे तो ऐसे संयम के सूत्र में जकड़े थे कि—

मोहि अतिशय प्रतीत जिय केरी।
जेहि सपनेहुँ पर नारि न हेरी॥ (मानस)

इसीलिए जहाँ सूरदास के लिए श्रीकृष्ण के चरित्र की बहुरंगी सामग्री है वहाँ तुलसीदास के लिए व्यक्तित्व-वर्णन का मर्यादित एवं संकुचित दृष्टिकोण है।

यह निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है:—

वर्ण्य विषय	सूर	तुलसी
१ वातावरण	ग्राम्य (स्वतंत्र)	नागरिक (संयत)
२ व्यक्तित्व	गोप (माखन चोरी, वंशी-वादन, गोपिका प्रेम)	राजकुमार (माता की गोद या मणि खचित आँगन में ही खेलना, चौगान)
	(अ) चरित्र वर्णन	(अ) व्यक्तित्व वर्णन
	(आ) विस्तृत क्षेत्र	(आ) संकुचित क्षेत्र
३ दृष्टिकोण	सख्य	दास्य
	(अ) मनोवेगों का वर्णन	(अ) वाह्य वर्णन
	(आ) मानवी संकेत	(आ) दैवी संकेत

यह तुलसी का कला-चातुर्य माना जावेगा कि उन्होंने मर्यादित परिधि के भीतर भी राम के वाल-जीवन के कुछ अच्छे चित्र खींचे हैं। परिस्थितियों का प्रभाव (Local colour) भी स्वाभाविक है। राम-जन्म की "छठी, वारहौ "तुला तौलिए घी के", "नरसिंह मन्त्र पढ़े", "झरावति कौशिला", "महि मनि महेस पर सवनि सुधेनु दुहाई" आदि चित्र वहुत स्वाभाविक हैं। इस भाँति राम के वाल-जीवन का क्रमिक विकास भी वहुत सरस और स्वाभाविक है :—

१ पूत सपूत कौशिला जायो (२ रा पद)
२ राम शिशु गोद लिए (७ वाँ पद)
३ पालने रघुपति झुलावै (२० वाँ पद)
४ आँगन फिरत घुटुरुवनि धाए (२३ वाँ पद)
५ ठुमुकि-ठुमुकि चलैं (३० वाँ पद)
६ खेलन चलिए आनन्दकन्द (३८ वाँ पद)
७ विहरत अवध वीथिन राम (३९ वाँ पद)
८ कर कमलनि विचित्र चौगानें खेलन लगे खेल रिझये (४३ वाँ पद)

(आ) गीतावली की कथा-वस्तु

गीतावली की रचना मुक्तक रूप मे, गीतो मे हुई है। अतः गीतावली मे गीतिकाव्य का प्रस्फुटन देखना चाहिए। गीतिकाव्य की रचना आत्माभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से ही होती है, उसमे विचारो की एकरूपता रहती है। आराध्य से आत्मनिवेदन के उल्लास मे रचना गेय हो जाती है और भावना के घनीभूत होने के कारण संक्षिप्तता आ जाती है। अतः सफल गीतिकाव्य मे ये चार बातें—आत्माभिव्यक्ति, विचारो की एकरूपता, सङ्गीत और संक्षिप्तता होनी आवश्यक है। गीतावली मे सङ्गीत का तो प्रधान स्थान है पर शेष बातो की अवहेलना सी की गई है। यद्यपि गीतावली मे प्रबन्धात्मकता नही है पर घटनाओ की वर्णनात्मकता मे पद बहुत लम्बे हो गए हैं। बालकाड मे राम-जन्म से सम्बन्ध रखने वाले पद २४ पंक्तियो से कम तो है ही नही। दूसरा पद तो ५० पक्तियो का है। इसमे आत्मनिवेदन भी नही है, राम-जन्म की वर्णनात्मकता ही है। विविध घटनाओ की सृष्टि के कारण विचारो की एकरूपता भी नही है, विचार-धारा और सङ्गीत मे साम्य अवश्य है। इस दृष्टि से गीतावली का अरण्य काड सबसे अधिक सफल कांड है। प्रथम पद ही मे राम को ललित घन का रूपक देकर उनका सौन्दर्य-वर्णन मलार राग मे किया गया है। यदि गीतावली मे घटनाओं की अधिक सृष्टि न की गई होती और कवि भाव-विभोर होकर अपने मे आराध्य को लीन कर लेता तो गीतावली उत्कृष्ट गीतिकाव्य के रूप मे साहित्य मे ऊंचा स्थान पाती।

गीतावली मे गीत-रचना होने के कारण केवल कोमल [illegible] को ही प्रश्रय मिला है। रामचरित के जितने कोमल [illegible] गीतावली मे विस्तार से वर्णित है पर जितने [illegible] संकेत मात्र कर दिया गया है [illegible] अवान्तर [illegible]

गीत के सरस और कोमल वातावरण के लिए उपयुक्त नहीं हो सकते थे।

बालकांड में राम की बाल्यावस्था के बहुत कोमल चित्र हैं। मानस की भांति इसमें रामावतार की कथाएँ नहीं हैं और न रामचरित्र की विस्तृत आलोचना ही। कवि ने सौन्दर्य की अन्तर्दृष्टि से राम की शारीरिक छवि को अनेक प्रकार से वर्णन किया है। उसने उनके शील-सौन्दर्य पर विशेष प्रकाश डाला है। ४४ पदों में राम का बाल-वर्णन ही है। समस्त बालकांड घटना सूत्र के सहारे राम का सौन्दर्य-प्रकरण ही कहा जा सकता है। उनका जितना रूप-वर्णन कांड के प्रारम्भ में है उतना ही अंत में, जहाँ जनकपुर की स्त्रियाँ उनके रूप की प्रशंसा करती हैं। बालकांड में जनकपुर-प्रसंग बड़े विस्तार से वर्णित है। कुछ स्थलों पर कृष्ण-काव्य का भी प्रभाव है। ५२ वें पद में तो 'ब्रजवधू अहीर' [1] का वर्णन उस समय किया गया है जब विश्वामित्र के साथ राम, लक्ष्मण उत्तर की ओर जा रहे थे—"मधु माधव मूरति दोउ संग मानो दिनमनि गवन कियो उत्तर अयन" ॥ पद नं० ४९

पद नं. ४३ और ४४ में राम का चौगान खेलना लिखा गया है। यह तुलसी के काव्य में काल-दोष (Anachronism) माना जा सकता है। जो हो, बालकांड के अंतर्गत जनकपुर में एकत्र नागरिक-वधू अपने प्रेम-कथन से राम की सुन्दरता और भक्ति-भावना की सर्वांग पवित्र चित्रावली प्रस्तुत करती हैं।

अयोध्याकांड में मनोवैज्ञानिक चित्रण की कमी है। कैकेयी-दशरथ-सम्वाद में जितनी मनोवैज्ञानिक प्रगति है वह मानस में तो अंकित है,

---

१ मुनि के सङ्ग विराजत वीर।

... ...

नयननि को फल लेत निरखि खग मृग सुरभी ब्रजवधू अहीर।

तुलसी प्रभुहि देत सब आसन निज-निज मन मृदु कमल कुटीर॥

बालकांड, पद ५२

पर गीतावली में उसका चिह्न भी नहीं है। यह कांड कथावस्तु के सौन्दर्य से भी हीन है। इतनी बात अवश्य है कि वन मार्ग की स्त्रियों ने राम लक्ष्मण और सीता के रूप की प्रशंसा सुन्दर शब्दावली और कल्पना की अनेक-रूपता से अवश्य की है। इस वर्णन में कवि का हृदय ही जैसे अपने आराध्य की प्रशंसा कर रहा है। कवि की भक्ति-भावना तो कुछ स्थलों पर इतनी बढ़ गई है कि वह कौशल्या से भी अपने पुत्र राम के प्रति अमर्यादित शब्द कहलवा देता है :—

सुनहु राम मेरे प्रान पियारे।
बारौं सत्य वचन श्रुति सम्मत जाते हौं बिछुरत चरन तिहारे॥[1]

माता का पुत्र से उसके 'चरण-वियोग' के सम्बन्ध में कहना मातृत्व पद की अवहेलना करना है। इसी प्रकार तीसरे पद में भी यही बात कही गई है :—

यह दूषन विधि ताहि होत अब, राम चरन वियोग उपजायक।

कथा का अनियमित विकास होने के कारण मानव-चरित्र की आलोचना के लिए कोई स्थान नहीं है। राम का शृंगार-वर्णन ही प्रधान स्थान प्राप्त कर लेता है और उसमें एक ही प्रकार की उपमाओं की पुनरावृत्ति होने लगती है। इस कांड में भी कृष्ण-काव्य का प्रभाव लक्षित होता है। यह प्रभाव दो प्रकार से है। एक तो वसन्त और फाग-वर्णन के रूप में और दूसरा माता के वियोगपूर्ण वात्सल्य में। चित्रकूट के प्रकृति-चित्रण में अनावश्यक रूप से फाग और होली की कल्पना की गई है :—

चित्रकूट पर राउर जानि अधिक अनुरागु।
सखा सहित जनु रतिपति आयउ खेलन फागु॥
झिल्लि झाँझ झरना डफ नव मृदंग निसान
भेरि उपंग भृंग रव ताल कीर कल गान

[1] गीतावली, अयोध्याकाण्ड पद २

हंस कपोत कबूतर बोलत चक्र चकोर।
गावत मनहुँ नारि नर मुदित नगर चहुँ ओर ॥[1]

यहाँ तुलसीदास ने 'राम ग्राम गुन', 'चाँचरि मिस' भले ही कह दिए हों, पर उनका चित्रण इस रूप में यहाँ अनावश्यक है। माता की करुणामयी वात्सल्य-भावना भी कृष्ण-काव्य से प्रेरित की हुई ज्ञात होती है, कृष्ण के वियोग में यशोदा की जो दशा है वही राम के वियोग में कौशल्या की। सूरसागर का यह पद :—

मधुकर इतनी कहियो जाय ॥
अति कृस गात भईं ये तुम बिन परम दुखारी गाय ॥
जल समूह बरसत दोउ आँखिन हूँकति लीन्हें नाउँ।
जहाँ-जहाँ गो-दोहन करते सूँघति सोई ठाउँ ॥
परति पछारि खाइ छिन ही छिन अति आतुर ह्वै दीन।
मानहुँ सूर काढ़ि डारी हैं बारि मध्य ते मीन ॥[2]

गीतावली के निम्नलिखित पद से कितना साम्य रखता है :—

राघौ एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावौ ॥
जे पय प्याइ पोखि कर पंकज बार-बार चुचुकारे।
क्यों जीवहिं मेरे राम लाडिले! ते अब निपट बिसारे ॥
भरत सौ गुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे, मनहु कमल हिम मारे ॥
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं बन, कहियो मातु सँदेसो।
तुलसी मोहिं और सबहिन तें इनको बड़ो अँदेसो ॥

कृष्ण के वियोग में जो दशा गायों की थी वही राम के वियोग में घोड़ों की। माता के उद्गारों में कितना साम्य है। इस विषय में अन्य

१. तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खंड (गीतावली) पृष्ठ ३५२-३५३
२ सूर सुषमा, पृष्ठ ५५, ५६ (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी १६८४)

उदाहरण भी दिए जा सकते हैं। वस्तुतः यह कांड कथा-प्रधान होने की अपेक्षा भाव-प्रधान हो गया है।

अरण्यकांड में तो कथा वस्तु की नितान्त अवहेलना है। मानस में जितनी घटनाएं इस कांड के अंतर्गत वर्णित हैं उनमें से आधी भी गीतावली में नहीं हैं। इस कांड के अंतर्गत घटनाओं की लम्बी शृंखला इतनी संक्षिप्त कर दी गई है कि कथा का रूप ही स्पष्ट नहीं होता। जयन्त-छल, अत्रि और अनुसुइया से राम-सीता मिलन, विराध-वध, शरभंग, अगस्त्य और सुतीक्ष्ण से राम-मिलन, शूर्पणखा-प्रसंग, खरदूषण वध, रावण-मारीच वार्तालाप, नारद-राम-भक्ति संवाद आदि कथाओं का संकेत भी नहीं है। संभवतः ये घटनाएं अधिकतर वर्णनात्मक और वीरात्मक होने के कारण छोड़ दी गई हैं। शेष घटनाएँ जो कोमल भावना से युक्त हैं, अवश्य वर्णित हैं। गीध-प्रसंग यद्यपि पूर्व पक्ष में वीरात्मक है पर उत्तर-पक्ष में करुणाजनक होने के कारण इस कांड में वर्णित है। फिर इस प्रसंग से राम की भक्तवत्सलता भी प्रकट होती है। यही भावना शबरी प्रसंग में भी है। वहाँ काव्य-सौन्दर्य न होते हुए भी वर्णन-विस्तार है जिससे व्यक्तिगत भक्ति-भावना को भी प्रश्रय मिलता है। यद्यपि इस कांड में काव्य सौन्दर्य गौण है तथापि कोमल भावनाओं का प्रस्फुटन करने में कवि ने सतर्कता से काम लिया है। जहाँ कहीं कवि को व्यक्तिगत भावनाओं के प्रदर्शित करने का अवसर मिला है, वहाँ वह चूका नहीं है :—

राघव, भावति मोहि विपिन की बीथिन्ह धावनि।[1]

इसी प्रकार सोलहवें पद में कवि कहता है :—

ऐसो प्रभु बिसारि तुलसी सठ तू चाहत सुख पायो ॥[2]

वन-देवों के द्वारा राम को सीता-समाचार सुनाना ('जबहिं सिय

१ तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खंड (गीतावली) पृष्ठ २६६

२ वही, पृष्ठ ३०३

सुनि सब गुननि सुनाऊँ)[1] यद्यपि अलौकिक रचना में परिगणित किया जायगा, किन्तु राम को सर्वोपरि देव मानने के कारण देवताओं का उनके प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक है। इसीलिए तुलसी ने वन-देवों को कथा में स्थान दिया है।

इस कांड में कवि ने करुण रस की ओर संकेत किया है और वह गीत एवं शारीरिक वर्णन के रूप में है। इन घटनाओं पर तुलसी मानस के समान अधिक विस्तार से लिख सकते थे। उन्होंने शरीर के सम्बन्ध में तो ऐसा किया भी है किन्तु गीति-काव्य में अधिक सौन्दर्य लाने के लिए उन्होंने करुण रस की अभिव्यक्ति कम किन्तु प्रभावोत्पादक शब्दों में ही की है। दशरथ की मृत्यु के बाद करुण-रस का संकेत हमें यहाँ मिलता है। यह स्पष्ट है कि तुलसीदास ने इस कांड में गीति-काव्य के लक्षणों की रक्षा करने का सम्पूर्ण प्रयत्न किया है।

गीतावली का किष्किन्धा-कांड महत्वहीन है। उसमें केवल दो पद हैं। न तो उसमें कथा ही है और न भाव-सौन्दर्य ही। मानस में जो प्रकृति-चित्रण में लोक-शिक्षा का व्यापक रूप मिलता है, वह भी यहाँ प्राप्त नहीं है।

रस की दृष्टि से सुन्दर-कांड श्रेष्ठ है। वीर, वियोग, शृंगार और रौद्र-रस के साथ ही साथ शान्त रस की भी उपस्थिति की गई है, यद्यपि वहाँ शान्त रस के लिए कोई स्थान नहीं था। विभीषण का राम पक्ष में आकर सेवा करना तुलसीदास की व्यक्तिगत भक्ति-भावना का चित्रण-सा हो गया है।

पद पद्म गरीब निवाज के।

देखिहौं जाइ पाइ लोचन फल, हित सुर साधु समाज के।[2]

समस्त पद भक्ति की भावनाओं से ओत प्रोत है। विभीषण का राम की शरण में आना तुलसी का भगवान की शरण में आना ही ज्ञात होता

१ तुलसी ग्रंथावली दूसरा खंड (गीतावली) पृष्ठ ३०३

२ वही, पृष्ठ ३६०

है। अतः यहाँ गीतिकाव्य मे व्यक्तिगत भावना का प्राधान्य आ गया ज्ञात होता है। जिन रसों की सृष्टि की गई है वे सभी उत्कृष्ट रूप मे हैं। वियोग शृंगार मे सीता के हृदय की परिस्थिति, वीर रस मे राम-सैन्य-संचालन, रौद्र-रस मे रावण के प्रति हनुमान की ललकार और शान्त-रस मे 'गरीब निवाज' राम के प्रति तुलसी-हृदय लेकर विभीषण के उद्‌गार सभी यथास्थान सजे हुए हैं। रस वैभिन्न की दृष्टि से एक ही स्थल पर अनेक रसों का समुच्चय इस कांड की विशेषता है।

इस कांड मे कुछ दोष भी हैं। सीता और मुद्रिका मे वार्तालाप होना बहुत अस्वाभाविक है। यही प्रसंग रामचन्द्रिका मे केशवदास ने अच्छी तरह सँभाला है। मुद्रिका से राम की कुशलता पूछने पर सीता को जब मुद्रिका उत्तर नहीं देती तो हनुमान सीता से कहते है :—

> तुम पूछत कहि मुद्रिके, मौन होत यहि नाम।
> कंकन की पदवी दई, तुम बिन या कहँ राम॥[1]

(तुम 'मुद्रिके' नाम से सम्बोधन कर समाचार पूछ रही हो, पर इस नाम पर इसका मौन रहना उचित ही है, क्योंकि तुम्हारे वियोग मे राम ने इसे 'कंकन' का नाम दे रखा है। अब यह मुद्रिका नहीं रह गई। इसीलिए 'मुद्रिका' नाम के सम्बोधन पर यह उत्तर नहीं दे सकी।)

पर गीतावली सुन्दर-कांड के तीसरे पद मे सीता और मुद्रिका मे बहुत लम्बा वार्तालाप हुआ है। अन्त मे कवि ने कहा है :—

> कियो सीय प्रबोध मुँदरी, दियो कपिहि लखाउ।
> पाइ अवसर नाइ सिर, तुलसीस गुनगन गाउ॥[2]

अशोक-वाटिका विध्वंस और लंकादहन जो इस कांड के प्रधान अंग हैं उनका वर्णन भी नहीं है। उनके अभाव मे कांड की वर्णनात्म-

---

१ रामचन्द्रिका सटीक, पृष्ठ १४२

(नवलकिशोर प्रेस लखनऊ १९१५)

२ तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खंड (गीतावली) पृ० ३०८-३०९

१. गीतावली में कथा का अनियमित विस्तार है जिसमें भावनात्मक चित्रण के लिए अधिक स्थान है। फलतः ग्रंथ में भावनाओं का प्राधान्य है, घटनाओं का नहीं। मुक्तक-काव्य होने के कारण भावनाएँ विशृङ्खल हो गई हैं।

२. गीति-काव्य के आदर्शों की रक्षा के लिए परुष एवं ओजपूर्ण स्थलों का एकान्त अभाव है। लंका-दहन एवं राम-रावण युद्ध की उपेक्षा इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। काव्य का गेय रूप होते हुए भी व्यक्तिगत भावना और गीति-काव्य के संक्षिप्त कलेवर की ओर कवि का ध्यान कम गया है।

३. राम के सौन्दर्य-वर्णन को आवश्यकता से अधिक महत्व दे दिया गया है। शील का संकेत मात्र है, अतः लोक-शिक्षा का स्वरूप जो मानस में तुलसी का आदर्श है, अप्रकाशित ही रह गया। पात्रों की चरित्र-रेखा भी निर्मित न होने के कारण लोक-शिक्षा का स्वरूप उपस्थित नहीं हो सका, भरत का चरित्र-चित्रण ही नहीं है, सीता का चरित्र एक कोमलांगी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। राम का चरित्र एक सुन्दर राजकुमार सा है। पात्र के सामने आदर्श नहीं रह सके, अतः उनका लोक-रंजक रूप अस्पष्ट ही रह गया। कृष्ण का व्यक्तित्व सौन्दर्य से अधिक निर्मित है, अतएव तुलसीदास राम के व्यक्तित्व को कृष्ण के व्यक्तित्व के बहुत समीप तक ले आये हैं। इसी आधार पर तुलसीदास को सूर के कृष्ण-काव्य से प्रभावित हुआ माना जा सकता है।

४. गीतावली की वर्णनात्मकता ने काव्य के सौन्दर्य को कम कर दिया है। इसका कारण यह है कि तुलसीदास ने मानव-जीवन के अंतरतम प्रदेशों में प्रविष्ट होने की चेष्टा नहीं की। उन्होंने केवल भक्ति के आवेश में आकर कथा-सूत्र के सहारे राम के चरित्र का वर्णन कर दिया है। फलतः उनकी गीतावली सूर-सागर की एक धुँधली छाया ज्ञात होती है।

५. गीतावली तुलसीदास को ब्रजभाषा पर अधिकार रखने का प्रमाण तो अवश्य दे सकती है किन्तु गीति-काव्य में सर्व-श्रेष्ठ कवि प्रमाणित नहीं कर सकती। गीतावली में व्यक्तिगत भावना का अभाव है। तुलसीदास राम कथा कहना चाहते हैं। वर्णनात्मक प्रसंगों में तुलसीदास की आत्माभिव्यक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है। यदि विनयपत्रिका के समान उनका आदर्श वर्णनात्मकता से हीन होता तब वे अपनी भक्ति-भावना स्पष्ट कर पाते। वर्णनात्मकता घटनाओं में ही केन्द्रित हो गई है। ये घटनाएँ कृष्ण-लीलाओं की तरह हैं। पर दोनों में अन्तर यह है कि कृष्ण की लीलाएँ स्वतन्त्र घटनाएँ हैं, पर राम का जीवन एक कथात्मक एवं वर्णनात्मक प्रसंग है। अतः गीतावली न तो पूर्ण रूप से वर्णनात्मक काव्य ही है और न आत्माभिव्यक्ति का उदाहरण ही। कवि मध्य स्थिति में है। वह कभी इस ओर कभी उस ओर प्रवाहित हो जाता है। तुलसीदास गीति-काव्य के अन्तर्गत केवल सौन्दर्य की सृष्टि कर सके, किसी उत्कृष्ट काव्यादर्श की नहीं। न तो वे विनय पत्रिका के समान आत्म-निवेदन ही कर सके और न मानस के समान कथा-प्रसंग की सृष्टि ही। अतः गीतावली एकान्त 'माधुर्य' की रचना है।

(इ) रस—गीतावली तुलसीदास की काव्य-कला की सब से मधुर अभिव्यक्ति है। उसमें जहाँ ब्रजभाषा का माधुर्य है वहाँ भावों की कोमलता भी अत्यधिक है। इसीलिए परुष भाव सम्बन्धी घटनाएँ कथावस्तु के अन्तर्गत नहीं हैं। इस दृष्टिकोण ने तुलसीदास को कोमल रसों के निरूपण करने के लिए ही अधिक प्रेरित किया है। गीतावली में शृंगार रस प्रधान है।

शृंगार—यदि वात्सल्य को भी शृंगार रस के अंतर्गत मान लिया जावे तब तो संयोग शृंगार ही प्रधान हो जाता है,

१. गीतावली में कथा का अनियमित विस्तार है जिसमें भावनात्मक चित्रण के लिए अधिक स्थान है। फलतः उसमें भावनाओं का प्राधान्य है, घटनाओं का नहीं। मुक्तक-काव्य होने के कारण भावनाएं विशृङ्खल हो गई हैं।

२. गीति-काव्य के आदर्शों की रक्षा के लिए प्रभावशाली एवं ओजपूर्ण स्थलों का एकान्त अभाव है। लंका-दहन एवं राम-रावण युद्ध की उपेक्षा इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। काव्य का गेय रूप होते हुए भी व्यक्तिगत भावना और गीति-काव्य के संक्षिप्त कलेवर की ओर कवि का ध्यान कम गया है।

३. राम के सौन्दर्य-वर्णन को आवश्यकता से अधिक महत्व दे दिया गया है। शील का संकेत मात्र है, अतः लोक-शिक्षा का स्वरूप जो मानस में तुलसी का आदर्श है, अप्रकाशित ही रह गया। पात्रों की चरित्र-रेखा भी निश्चित न होने के कारण लोक-शिक्षा का स्वरूप उपस्थित नहीं हो सका, भरत का चरित्र-चित्रण ही नहीं है, सीता का चरित्र एक कोमलांगी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। राम का चरित्र एक सुन्दर राजकुमार सा है। पात्र के सामने आदर्श नहीं रह सके, अतः उनका लोक-रंजक रूप अस्पष्ट ही रह गया। कृष्ण का व्यक्तित्व सौन्दर्य से अधिक निर्मित है, अतएव तुलसीदास राम के व्यक्तित्व को कृष्ण के व्यक्तित्व के बहुत समीप तक ले आये हैं। इसी आधार पर तुलसीदास को सूर के कृष्ण-काव्य से प्रभावित हुआ माना जा सकता है।

४. गीतावली की वर्णनात्मकता ने काव्य के सौन्दर्य को कम कर दिया है। इसका कारण यह है कि तुलसीदास ने मानव-जीवन के अंतरतम प्रदेशों में प्रविष्ट होने की चेष्टा नहीं की। उन्होंने केवल भक्ति के आवेश में आकर कथा-सूत्र के सहारे राम के चरित्र का वर्णन कर दिया है। फलतः उनकी गीतावली सूर-सागर की एक धुंधली छाया ज्ञात होती है।

क्योंकि—राम का वाल-वर्णन संयोगात्मक अधिक है, वियोगात्मक कम। इसके पर्याय कृष्ण का वाल-वर्णन वियोगात्मक अधिक है संयोगात्मक कम।

(२) तुलसी ने रामकथा का जैसा चित्रण किया है उसके अनुसार भी शृंगार रस को प्रधान स्थान मिलता है। राम के उन्हीं चरित्रों का दिग्दर्शन अधिक कराया गया है जो कोमल भावनाओं के व्यञ्जक हैं।

(३) गीतावली का अंतिम भाग कृष्ण-काव्य से प्रभावित होने के कारण भी अधिक शृंगारात्मक बन गया है। वसन्त और हिंडोला आदि अवतरणों ने तो शृंगार को और भी अतिरंजित कर दिया है।

शृंगार रस मे प्रधानतः निम्नलिखित अवतरण हैं :—

१.	राम का वाल-वर्णन	(वालकांड का पूर्वार्ध)	पद १ से ३७
२.	सीता स्वयंवर	(वालकांड का मध्य)	पद ६० से ९४
३.	विवाह	(वालकांड का उत्तरार्ध)	पद ९५ से १०८
४.	वन-गमन	(अयोध्या कांड का प्रारम्भ)	पद १३ से ४२
५.	चित्रकूट वर्णन	(अयोध्या कांड का मध्य)	पद ४४ से ४६
६.	राम का पंचवटी जीवन	(अरण्य कांड)	पद १ से ५
७.	राम का नखशिख	(उत्तर कांड)	पद २ से १६
८	हिंडोला वसन्त	(उत्तर कांड)	पद १७ से २३

वियोग शृंगार के वर्णन मे कवि-कौशल अधिक है, यद्यपि वह परिमाण मे कम है। जीवन की वास्तविक परिस्थितियो के चित्रण में वियोग शृंगार अधिक सफल हुआ है। अयोध्या काड मे वियोग शृंगार की चरम सीमा है।

करुण—वियोग शृंगार के मरण निवेदन की अंतिम स्थिति के बाद करुण रस की सृष्टि होती है जिसमे रति की भावना न होकर

शोक की भावना ही प्रधानता प्राप्त करती है। गीतावली में करुण रस के स्थल निम्नलिखित हैं :—

१. दशरथ का स्वर्गारोहण (अयोध्या कांड) पद १२ और ५७
२. कौशल्या का विलाप " पद २, ३, ४,
३. लक्ष्मण को शक्ति लगने पर
राम का विलाप लंका कांड पद ५, ६, ७

अयोध्या कांड का ५७ वाँ पद (दशरथ का विलाप) करुण रस की पूर्ण अभिव्यक्ति के रूप में है। उसी प्रकार राम के वन-गमन पर कौशल्या का विलाप करुण रस की परिधि में आ सकता है क्योंकि उन्हें विश्वास नहीं था कि वे राम के वियोग में १४ वर्ष तक जीवित रह सकेंगी। केवल इसी भावना के आधार पर उनका वियोग करुण रस में परिवर्तित हो सकता है। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम को उनके पुनर्जीवित होने की आशा नहीं है, यही संदेह करुण रस की पुष्टि करता है।

हास्य—गीतावली में सब से कमजोर रस हास्य है। इसका कारण यह है कि राम के शील सौन्दर्य में कवि इतना लीन हो गया था कि उसे साधारणतया हास्य-सामग्री प्राप्त करने में कठिनाई प्रतीत हुई। हास्य का जैसा भी रूप गीतावली में प्राप्त होता है वह भी विशेष व्यञ्जनायुक्त नहीं है। बालकांड के ६५ वें पद में विश्वामित्र-जनक परिहास में शतानन्द के प्रति बहुत ही निकृष्ट व्यंग्य है।[1] उससे चाहे क्षणिक कौतूहल के साथ हास्य की भावना उत्पन्न हो, किन्तु वह अभिनन्दनीय नहीं है। राम के पैदल चलने पर अहल्या की यह उक्ति कि यदि राम इस प्रकार वन में चलेंगे तो वन में एक भी शिला न

---

1 राम के प्रसाद गुरु गौतम खसम भए,
रावरेहु सतानंद पूत भये माय के ॥ गीतावली, बालकांड, पद ६५

रह जायगी; सभी शिलाएँ स्त्रियों के रूप में परिवर्तित हो जायँगी, बहुत साधारण है।[1]

गीतावली में तुलसीदास हास्य की उत्कृष्ट सृष्टि नहीं कर सके।

वीर—गीतावली में वीर रस के लिए विशेष स्थान न रहते हुए भी, उसकी मात्रा उचित रूप में है। यह तो अवश्य है कि लंकादहन और युद्ध जैसे आवश्यक अंग गीतावली में नहीं लाए गए पर इस कारण वीर रस का अभाव नहीं है। गीतावली का वातावरण, कोमल और मधुर होने से वीर रस का उद्रेक मानस-कथा के वीर रस के समान तो नहीं हो पाया, पर उसका वर्णन-प्रसंग में स्थान अवश्य है। वीर रस के तीन भेदों में युद्धवीर, दानवीर और दयावीर में दयावीर और दानवीर का ही गीतावली में अधिकतर वर्णन है। युद्धवीर तो बहुत साधारण है। गीतावली में निम्नलिखित अवसरों पर वीर रस का उद्रेक है :—

(क) दयावीर—

अहल्योद्धार	बालकांड पद ५५, ५६, ५७
शबरी-मिलन	अरण्यकांड पद १७
विभीषण शरणागत वत्सलता	सुन्दरकांड पद ३७-४६

(ख) दानवीर—

(१) विभीषण को तिलक	सुन्दर कांड पद ५२
(२) राम की न्याय-प्रियता	उत्तर कांड पद २५
(३) सीता-परित्याग	,, पद २६-२७

(ग) युद्धवीर

(१) हनुमान-रावण सम्वाद	सुन्दर कांड पद १२, १३, १४

1. जो चलिहैं रघुनाथ पयादेहि सिला न रहिहि अवनी॥ गीतावली, बालकांड, पद ८६

(२) जटायु-रावण युद्ध अरण्य कांड पद ८

(३) हनुमान का सजीवनी के लिए प्रस्थान लङ्का कांड पद ८, ९, १०

दयावीर और दानवीर का प्राधान्य है क्योंकि ये राम के शील और सौन्दर्य से अधिक सम्बन्ध रखते हैं। यही गीतावली का दृष्टिकोण है।

रौद्र और भयानक

गीतावली मे रौद्र और भयानक रस के लिए बहुत कम स्थान है। इन दोनो रसो का वर्णन तो उद्दीपन-विभाव और संचारी भावो के रूप मे ही अधिक है। राम-रावण युद्ध के अभाव मे इन रसो के लिए राम-कथा मे कोई अवसर नही रह गया। गीतावली के एक-दो स्थलों ही पर इनका निर्देश है :—

रौद्र (१) कैकेयी के प्रति भरत की भर्त्सना, अयोध्या कांड पद ६०, ६१

(२) रावण के प्रति अंगद की भर्त्सना, लंका कांड पद २, ३, ४

भयानक

राम का लंका-प्रस्थान सुन्दर काड, पद २२

वीभत्स

इस रस का तो गीतावली मे पूर्ण अभाव है। इस रस का वर्णन अधिकतर युद्ध मे ही हुआ करता है। पर गीतावली मे युद्ध-वर्णन न होने से इस रस को कोई स्थान नहीं मिल सका।

अद्भुत

इस रस का उद्रेक मानस मे अधिक हुआ है। जहाँ राम के लौकिक चरित्रो मे ब्रह्मत्व की स्थापना की गई है—"सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी" या "रोम-रोम प्रति राजहीं कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड" मे तो इस रस की चरम सीमा है, पर गीतावली मे इस रस का विस्तार साधारण है। राम के अवतार रूप गीतावली मे अधिक चित्रित नहीं किया गया। न तो रामावतार के पूर्व की कथाएँ ही है और न राम जन्म की अलौकिक

रह जायगी; सभी शिलाएँ स्त्रियों के रूप में परिवर्तित हो जायँगी, बहुत साधारण है।[1]

गीतावली में तुलसीदास हास्य की उत्कृष्ट सृष्टि नहीं कर सके।

वीर—गीतावली में वीर रस के लिए विशेष स्थान न रहते हुए भी, उसकी मात्रा उचित रूप में है। यह तो अवश्य है कि लंकादहन और युद्ध जैसे आवश्यक अंग गीतावली में नहीं लाए गए पर इस कारण वीर रस का अभाव नहीं है। गीतावली का वातावरण, कोमल और मधुर होने से वीर रस का उद्रेक मानस-कथा के वीर रस के समान तो नहीं हो पाया, पर उसका वर्णन-प्रसंग में स्थान अवश्य है। वीर रस के तीन भेदों में युद्धवीर, दानवीर और दयावीर में दयावीर और दानवीर का ही गीतावली में अधिकतर वर्णन है। युद्धवीर तो बहुत साधारण है। गीतावली में निम्नलिखित अवसरों पर वीर रस का उद्रेक है :—

(क) दयावीर—

अहल्योद्धार	बालकांड पद ५५, ५६, ५७
शबरी-मिलन	अरण्यकांड पद १७
विभीषण शरणागत वत्सलता	सुन्दरकांड पद ३७-४६

(ख) दानवीर—

(१) विभीषण को तिलक	सुन्दर कांड पद ५२
(२) राम की न्याय-प्रियता	उत्तर कांड पद २५
(३) सीता-परित्याग	,, पद २६-२७

(ग) युद्धवीर

(१) हनुमान-रावण सम्वाद	सुन्दर कांड पद १२, १३, १४

1. जो चलिहैं रघुनाथ पयादेहि सिला न रहिहि अवनी ॥ गीतावली, बालकांड, पद ५६

(२) जटायु-रावण युद्ध अरण्य कांड पद ८

(३) हनुमान का संजीवनी के लिए प्रस्थान लङ्का कांड पद ८, ९, १०

दयावीर और दानवीर का प्राधान्य है क्योंकि ये राम के शील और सौन्दर्य से अधिक सम्बन्ध रखते है। यही गीतावली का दृष्टिकोण है।

रौद्र और भयानक

गीतावली मे रौद्र और भयानक रस के लिए बहुत कम स्थान है। इन दोनो रसो का वर्णन तो उद्दीपन-विभाव और संचारी भावो के रूप मे ही अधिक है। राम-रावण युद्ध के अभाव मे इन रसो के लिए राम-कथा मे कोई अवसर नही रह गया। गीतावली के एक-दो स्थलो ही पर इनका निर्देश है :—

रौद्र (१) कैकेयी के प्रति भरत की भर्त्सना, अयोध्या कांड पद ६०, ६१

(२) रावण के प्रति अंगद की भर्त्सना, लंका कांड पद २, ३, ४

भयानक

राम का लंका-प्रस्थान सुन्दर कांड, पद २२

वीभत्स

इस रस का तो गीतावली मे पूर्ण अभाव है। इस रस का वर्णन अधिकतर युद्ध मे ही हुआ करता है। पर गीतावली मे युद्ध-वर्णन न होने से इस रस को कोई स्थान नही मिल सका।

अद्भुत

इस रस का उद्रेक मानस मे अधिक हुआ है। जहाँ राम के लौकिक चरित्रो मे ब्रह्मत्व की स्थापना की गई है—"सो हरि पद पद कौतुक भारी" या "रोम-रोम प्रति राजहीं कोटि-कोटि ब्रह्मांड" तो इस रस की चरम सीमा है, पर गीतावली मे इस रस का विस्तार साधारण है। राम के अवतार रूप गीतावली मे अधिक चित्रित [illegible] तो रामावतार के पूर्व की कथाएँ हैं और न [illegible]

वृत्तान्त या विष्णु-सम्भूत अद्भुत शक्ति के प्रादुर्भाव का रूप ही अंकित किया गया है। अतः राम का ब्रह्मत्व अनेक स्थलों पर मिलते हुए भी अधिक कौतूहलोत्पादक नहीं है।

बाल-वर्णन में यह रस प्रधान है :—

जासु नाम सरबस सदा सिव पार्वती के।
ताहि करावति सोभिला यह प्रीति रीति की हिय हुलसति तुलसी के॥[1]

इस प्रकार राम के ब्रह्मत्व के प्रति संकेत ही में इस रस का उद्रेक अधिक हुआ है। निम्न लिखित प्रसंग इस सम्बन्ध में मुख्य हैं :—

(१) राम का बाल-वर्णन — बालकांड पद १, २, १२, २२
(२) वन मार्ग में राम-सौन्दर्य के प्रति लोगों का आकर्षण — अयोध्या कांड पद १७—४२
(३) हनुमान का संजीवनी लाना — लंका कांड पद १०, ११

गीतावली में आश्चर्य के साथ कौतूहल की सृष्टि ही इस रस का प्रधान आधार है।

शान्त—

मानस तथा कवितावली के उत्तर कांड में यह रस अधिक है, क्योंकि उक्त दोनों स्थलों में ज्ञान, वैराग्य का वर्णन है। गीतावली के उत्तर कांड में वाल्मीकि रामायण के उत्तर कांड ही की कथा है, अतः तुलसीदास को गीतावली में शान्त रस के वर्णन के लिए अधिक अवकाश नहीं मिला। गीतावली के उत्तर कांड में कवि की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति भी नहीं है। उत्तर कांड में कृष्ण-काव्य का भी प्रभाव होने के कारण दास्य भक्ति के शान्त वातावरण के लिए स्थान नहीं मिला। उसमें शृङ्गार रस का ही प्राधान्य हो गया है। शान्त रस का चित्रण भरत के चरित्र में हुआ है, किन्तु गीतावली में भरत को कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया। भरत की भक्ति का तो वर्णन ही नहीं किया गया,

---

1 गीतावली, बालकांड, पद १२

अतः वहाँ भी शान्त रस के लिए कोई स्थान नहीं है। केवल एक स्थल पर तुलसी की आत्मा शान्त रस से प्लावित है। वह स्थल है विभीषण का राम की शरण में आना। केवल इसी स्थल पर शान्त रस के पूर्ण दर्शन होते हैं। यह स्थल सुन्दर कांड में है और यहाँ शान्त रस दयावीर के समानान्तर है। दोनों रसों का प्रदर्शन ३७ वें से ४६ वें तक दस पदों में है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि गीतावली में कोमल रसों का वर्णन ही अधिक किया गया है, परुष रसों का कम। इसके अनुसार शृंगार, करुण, हास्य, अद्भुत, शान्त के लिए अधिक स्थान है; वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स के लिए कम। गीतावली में प्रधानता की दृष्टि से रस-क्रम इस प्रकार है :—

शृंगार, करुण, अद्भुत, शान्त, वीर, रौद्र, भयानक, हास्य। (वीभत्स का अभाव ही है।)

गीतावली में तुलसीदास के रस-निरूपण में एक दोष है। वह यह कि उसमें शृंगार को छोड़ अन्य रसों में आत्मानुभूति नहीं है। परुष रसों की व्यञ्जना तो कहीं-कहीं केवल उद्दीपन विभावों के द्वारा ही की गई है। यह भी देखने में आता है कि स्थायी भाव के चित्रण के बाद तुलसीदास ने संचारी भावों के चित्रण का प्रयत्न बहुत कम किया है।

छंद—तुलसीदास ने गीतावली में छंद विशेष न रख कर २१ रागों की योजना ही की है। गीतावली में जिस क्रम से राग आए हैं, वह इस प्रकार है :—

आसावरी, जयतश्री, बिलावल, केदारा, सोरठ, धनाश्री, कान्हरा, कल्याण, ललित, विभास, नट, टोडी, सारंग, सूहा, मलार, गौरी, मारू भैरव, चचरी, वसन्त और रामकली।

विशेष— गीतावली में तुलसी की बहुत मधुर अनुभूति है। [illegible] पर मनोदशा के बड़े करुण चित्र हैं [illegible] ब्रजभाषा के माधुर्य का अलग [illegible]

कवित्तों की रचना हुई क्योंकि कवितावली में "मीन की सनीचरी" का वर्णन है जिसका समय सं० १६६९ से १६७१ माना गया है।[१] अतः कवितावली सम्यक् ग्रन्थ के रूप में न होकर समय-समय पर लिखे गए कवित्तों के संग्रह-रूप में है। यदि वेणीमाधवदास का प्रमाण न भी माना जाने तो कवितावली के कुछ कवित्तों का रचना-काल सं० १६६९ के लगभग तो ठहरता ही है।

---

१. The periodical time of Saturn is about thirty years. He enters Pisces (a token of great calamity) in Tulsi Das's time, on or about the 5th. of *Chaitra Sudi Sambat* 1640, and remained in that sign till *Jyeshtha* of 1642. He again entered it on about the 2nd of *Chaitra Sudi Sambat* 1669 and remained in it till *Jyeshtha* of 1671. These results are those given by the Makarand based on the *Surya Siddhanta*.

The sixty year cycle of Jupiter is divided into three periods of twenty years each, of which the first belongs to Bramha, the second to Vishnu and the third and the last to Mahadeva or Rudra In Tulsi Das's time the *Rudra Bisi* or twenty years belonging to Rudra commenced in Sambat 1655 and from about that time the Musalmans began more especially to profane Benares The poet frequently refers to this fact, and no doubt does so in the *K[illegible]* [illegible]

Accordingly it was [illegible]

[illegible]

विस्तार - कवितावली में ३२५ छंद हैं। सात कांडों में उनका विभाजन इस प्रकार है :—

बाल कांड	२२	छंद
अयोध्या कांड	२८	,,
अरण्य कांड	१	,,
किष्किंधा कांड	१	,,
सुन्दर कांड	३२	,,
लंका कांड	५८	,,
उत्तर कांड	१८३	,,

उत्तर कांड का विस्तार बहुत अधिक है। उसमें कवि की भिन्न विषयों पर स्फुट रचना है। शेष छः कांड मिलकर भी उत्तर कांड की समानता नहीं कर सकते। यह अनुपात-रहित विस्तार ग्रन्थ के स्फुट रूप होने का प्रबल प्रमाण है।

छंद—इसमें निम्नलिखित छंद प्रयुक्त किए गए हैं—सवैया, कवित्त, छप्पय और झूलना।

वर्ण्य-विषय

इसमें राम-कथा का वर्णन है। इस वर्णन में तुलसी ने राम के ऐश्वर्य का प्रधान स्थान दिया है। ऐश्वर्य और शक्ति का चित्रण पदों के कोमल और मधुर वातावरण में नहीं हो सकता था, इसीलिए तुलसीदास ने इस उद्देश्य से प्रेरित होकर कवित्त, छप्पय, झूलना आदि छंदों को चुना। वैष्णव धर्म के अन्तर्गत श्री कृष्णोपासना का जो रूप उपस्थित किया गया था, उसमें अधिकतर श्री और सौन्दर्य का चित्रण पदों में ही किया गया था। ग्राम्य-वातावरण में उनके मधुर जीवन की सृष्टि सख्य भाव के दृष्टिकोण से पदों में की गई थी। राम के चरित्र में मर्यादा-पुरुषोत्तम का भाव था। अतः तुलसीदास ने अपने दास्य भाव की उपासना करते हुए राम की शक्ति और मर्यादा का चित्रण करना

उचित समझा और ओजपूर्ण कवित्त-रचना की आवश्यकता अनुभव
की। गीतावली मे केवल राम के कोमल जीवन की अभिव्यक्ति ही
हुई है, परुप घटनाऐं एक बार ही छोड़ दी गई हैं। गीतावली की
उन छोड़ी हुई परुप घटनाओं का कवितावली मे विस्तृत विवरण है।
इसमे लंका-दहन और युद्ध का बड़ा ओजस्वी वर्णन है। गीतावली मे
राम का आकर्षक एवं सौन्दर्यपूर्ण चित्र है; कवितावली मे राम का
वीरत्व और शौर्य है। दोनो मे राम का चित्र अधूरा है। इन दोनो को
मिला देने से राम का चरित्र कोमल और परुप दोनो ही दृष्टिकोणो से
पूर्ण हो जाता है। आलोचको का कथन है कि कवितावली का प्रथम
शब्द 'अवधेश' ही कथावस्तु मे ऐश्वर्य की प्रधानता का सकेत करता है।
कवितावली स्पष्टतः एक संग्रह-ग्रंथ है। उसमे न तो नियमित रूप से
कथा का विस्तार ही है और न कथा का काडो मे नियमित विभाजन
ही। गीतावली की भाँति ही कवितावली मे भी अरण्यकांड और
किष्किधा कांड मे एक ही एक छन्द है। अतः कथासूत्र तो सम्पूर्णतः
ही छिन्न-भिन्न है, भावनाओ की परुपता का ही यथास्थान वर्णन है।
प्रारम्भ मे मंगलाचरण भी नहीं है। प्रस्तावना एवं पूर्व-कथा का
नितान्त अभाव है। उत्तर कांड से कथा का कोई सम्बन्ध भी नहीं है।
उसमे व्यक्तिगत घटनाऐं, तत्कालीन परिस्थितियाँ और [illegible]
के छन्द संग्रहीत है। प्रधान प्रसंगो की भी अवहेलना [illegible] है।
अतः कवितावली भिन्नकालीन कवित्त तथा [illegible]
संग्रह-ग्रन्थ ही है।

पं॰ सुधाकर द्विवेदी का कथन है कि [illegible]
कवित्त और सवैये जो तुलसीदास ने [illegible]
वली मे संकलित कर दिए हैं [illegible]
है। ऐसे छंद अधिकतर [illegible]
की अवस्था बाहु-पीर, [illegible]
स्तुति जानकी-स्तुति आदि [illegible]

कवितावली का बाल कांड राम के बाल-दर्शन से प्रारम्भ होत
केवल सात दुर्मिल सवैयों में उनके बाल रूप का वर्णन भर कर
जाता है, उसमें कोई विशेष मनोवैज्ञानिक चित्रण नहीं है। उसके
ही सीता-स्वयम्बर का वर्णन है। विश्वामित्र-आगमन और अ
उद्धार आदि की कथाएँ ही नहीं हैं। राम के द्वारा धनुर्भङ्ग और सी
विवाह संक्षेप में वर्णित हैं। धनुर्भङ्ग का वर्णन एक छप्पय में है जि
परुष-नाद की सृष्टि की गई है। २१ वें घनाक्षरी में कथा का सं
अवश्य कर दिया गया है :—

मख राखिबे के काज राजा मेरे संग दये,
जीते जातुधान जे जितैया विबुधेश के।
गौतम की तीय तारी, मेटे अघ भूरि भारी,
लोचन अतिथि भये जनक जनेस के ॥[1]

धनुर्भङ्ग के अन्त में मानस के समान ही लक्ष्मण-परशुराम संवा
है। इस कांड में तुलसीदास ने अनुप्रास-प्रियता बहुत दिखलाई है :—

छोनी में के छोनी पति छाजै जिन्हैं छत्रछाया,
छोना छोनी छाये छिति आए निमिराज के।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बर बेष बपु,
बरिबे को बोले बैदेही बरकाज के।[2]
[illegible]
[illegible][3]
[illegible][1]

अयोध्या कांड की कथा भी [illegible] है। इसमें [illegible]
[illegible] नहीं है, पर जिन प्रसंगों और [illegible] में राम की [illegible] और

१. कवितावली, [illegible]
२. वही, [illegible]
३. वही, [illegible]

ठहर-ठहर परे कहरि कहरि उठैं,

हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि के।[1]

(हनुमान के युद्ध की भयंकरता से बचने के लिए रावण के योद्धा झूठमूठ ही भूमि पर गिर कर कराहने लगते हैं। उन्हें इस अवस्था में देखकर शिव और सिद्ध आदि हँस पड़ते हैं।)

इन प्रसंगों के अतिरिक्त हास्य के लिए कवितावली में कोई स्थान नहीं है, क्योंकि कवि के दृष्टिकोण में राम के ऐश्वर्यपूर्ण चरित्र में हास्य की आवश्यकता नहीं थी। वीर, रौद्र, भयानक और वीभत्स रसों का कवितावली में उत्कृष्ट प्रयोग हुआ है, क्योंकि ये रस राम की 'शक्ति' से विशेष सम्बन्ध रखते हैं।

वीर रस

इस रस के लिए निम्न-लिखित प्रसंग देखे जा सकते हैं :—

१ परशुराम-कथन— बाल कांड छंद १८-१९-२०

२ हनुमान का सागर-लंघन किष्किंधा कांड, छंद १

३ अंगद वचन— लंका कांड, छंद १३

४ युद्ध— " छंद ३३-३५

यह वीर रस अधिकतर कुछ समय बाद रौद्र रस में परिवर्तित हो गया है।

रौद्र रस और भयानक रस—

ये रस कवितावली में जितने सुन्दर चित्रित किए गए हैं, उतने ही प्रभावशाली भी हैं। इनके दो प्रसंग बहुत सुन्दर हैं।

१ लंका दहन—सुन्दर कांड छंद ४ से २५

२ युद्ध— लंका कांड छंद १०-३१

रौद्र रस की प्रतिक्रिया ही भयानक रस में हुई है। हनुमान के लंका-दहन का इतना उत्कृष्ट वर्णन भयानक रस में किया गया है कि

[1] [illegible] कवितावली पृष्ठ [illegible]

रस—कवितावली में परुष रसों का ही यथेष्ट निरूपण हुआ है, क्यों इसमें राम के ऐश्वर्य और शौर्य का ही अधिक वर्णन किया गया है।[1] ऐश्वर्य के साथ ही साथ कवि राम के सौन्दर्य को भी नहीं भूला है। अतः जहाँ वीर रस राम के शौर्य का समर्थक है वहाँ शृंगार रस राम के सौन्दर्य का द्योतक है। कवितावली में प्रधानतः वीर और रौद्र एक दृष्टि से और शृंगार और शान्त दूसरी दृष्टि से प्रयुक्त हुए हैं। अन्य रस गौण रूप से हैं।

शृंगार रस

इस रस के निम्नलिखित प्रसंग हैं:—

(१) राम का बाल-वर्णन और विवाह— बालकांड, छंद १-७, १२-१७

(२) राम वनवास— अयोध्याकांड, छंद १२-२७

इन प्रसंगों में अधिकतर राम की शोभा का ही वर्णन है, अतः संयोग शृंगार का ही प्राधान्य है।

करुण रस—इसका कवितावली में वर्णन ही नहीं है।

हास्य रस

अयोध्याकांड के अन्त मे इस रस का एक ही उदाहरण है। जहाँ राम के पैदल चलने पर कहा गया है:—

> ह्वै हैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
>
> कीन्ही भली रघुनायक जू करुणा करि कानन को पगु धारे।[2]

एक स्थान पर लंकाकांड मे वीररस के अन्तर्गत हास्य संचारी भाव होकर आया है:—

---

1 It is devoted to the contemplation of the majestic side of Rama's character

Grierson—Notes on Tulsidas

२. तुलसी ग्रन्थावली दूसरा खंड (कवितावली) पृष्ठ १७०

ठहर-ठहर परे कहरि कहरि उठैं,

इहरि इहरि हर सिद्ध हँसे हेरि के।[१]

(हनुमान के युद्ध की भयंकरता से बचने के लिए रावण के योद्धा झूठमूठ ही भूमि पर गिर कर कराहने लगते हैं। उन्हे इस अवस्था मे देखकर शिव और सिद्ध आदि हँस पड़ते हैं।)

इन प्रसंगो के अतिरिक्त हास्य के लिए कवितावली मे कोई स्थान नहीं है, क्योंकि कवि के दृष्टिकोण मे राम के ऐश्वर्यपूर्ण चरित्र मे हास्य की आवश्यकता नहीं थी। वीर, रौद्र, भयानक और वीभत्स रसों का कवितावली मे उत्कृष्ट प्रयोग हुआ है, क्योंकि ये रस राम की 'शक्ति' से विशेष सम्बन्ध रखते है।

वीर रस

इस रस के लिए निम्न-लिखित प्रसंग देखे जा सकते हैं :—

१ परशुराम-कथन— वाल कांड छंद १८-१९-२०

२ हनुमान का सागर-लंघन किष्किंधा कांड, छंद १

३ अंगद वचन— लंका कांड, छंद १६

४ युद्ध— ,, छंद ३३-३१

यह वीर रस अधिकतर कुछ समय बाद रौद्र रस मे परिवर्तित हो गया है।

रौद्र रस और भयानक रस—

ये रस कवितावली मे जितने सुन्दर चित्रित किए गए हैं, उतने ही प्रभावशाली भी हैं। इनके दो प्रसंग बहुत सुन्दर हैं।

१ लका दहन—सुन्दर काड छंद ४ से २५

२ युद्ध— लका काड छंद १०-३१

रौद्र रस की प्रतिक्रिया ही भयानक रस मे हुई है। हनुमान के लका-दहन का इतना उत्कृष्ट वर्णन भयानक रस मे किया गया है कि

१ [illegible] ग्रन्थावली दूसरा खंड, कवितावली पृ० १६७

उतना साहित्य के किसी भी स्थल में प्राप्त नहीं होता। कवितावल
सुन्दर कांड साहित्य की अनुपम निधि है। भयानक रस का ऐसा
पण हिन्दी का अन्य कोई कवि नहीं कर सका।

लागि लागि आगि, भागि भागि चले जहाँ-तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार बसन उघारे, धूम धुन्ध अन्ध,
कहैं बारे बूढ़े 'बारि, बारि' बार बारहीं॥
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि पेलि, रौंदि खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
तात तात तौंसियत झौंसियत झारहीं॥
लपट कराल ज्वाल जाल माल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे।
पानी को ललात, बिललात, जरे गात जात,
परे पाइमाल जात, भ्रात तू निबाहि रे॥
प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ तू पराहि, बाप
बाप तू पराहि, पूत पूत तू पराहि रे।
तुलसी बिलोकि लोग ब्याकुल बेहाल कहैं,
लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे॥[1]

क्रोध और भय का अलग अलग वर्णन और उनका सम्मिश्र
तुलसीदास ने अभूतपूर्व ढंग से वर्णित किया है।

वीभत्स रस—

इस रस का वर्णन युद्ध में ही किया गया है। अतः कवितावली में इसका एक ही स्थल है। यह लंका कांड में ४९ वें और ५० वें छंद में आया है।

1 तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ [illegible]

सोनित सों सानि सानि गुदा खात सतुआ से,

प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।[१]

आदि पंक्तियाँ इस रस की पुष्टि करती है। इसके विशेष उद्दीपन विभाव नहीं लिखे गए।

अद्भुत रस

कवितावली की राम-कथा में राम के ब्रह्मत्व का निर्देश कम है, अतः अद्भुत रस की अधिक पुष्टि नहीं हो पाई। लंका-दहन में ही अद्भुत रस का सकेत अधिक मिलता है :—

'लघु ह्वै निबुक गिरि मेरु तें बिसाल भो'

आदि पंक्तियों में इस रस की स्थिति हुई है। इसी तरह हनुमान का युद्ध भी अद्भुत रस की सृष्टि करता है। यहाँ रौद्र रस से अद्भुत रस का सम्मिलन हुआ है, जिस कारण इन आश्चर्य-जनक घटनाओं को देखकर राम लक्ष्मण से कहते हैं :—

देखौ देखौ लखन, लरनि हनुमान की।[२]

अतः अद्भुत रस का परिपाक लंकाकांड के ४० से ४३ छंद तक अधिक हुआ है।

शान्त-रस

यह रस कवितावली के समस्त उत्तर काड में व्याप्त है, जिसमें कवि को राम-कथा से छुटकारा मिल गया है और वह विशेष रूप से अपने व्यक्तिगत जीवन की कठिनाइयाँ और दीनता अपने आराध्य के सामने रख रहा है। इसी दीनता के वशीभूत होकर उसने अपने जीवन का थोड़ा परिचय भी दे दिया है। देवताओं की स्तुतियों में यह रस प्रधान है। राम की स्तुति और वदना तो जैसे तुलसीदास ने अपने आंसुओं से ही लिखी है। समस्त राम-कथा में तुलसीदास ने भरत का नाम

१ वही पृष्ठ १६६

२. वही पृष्ठ १६५

उतना साहित्य के किसी भी स्थल मे प्राप्त नहीं होता। कवितावली का सुन्दर कांड साहित्य की अनुपम निधि है। भयानक रस का ऐसा चित्रण हिन्दी का अन्य कोई कवि नहीं कर सका।

लागि लागि आगि, भागि भागि चले जहाँ-तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार बसन उघारे, धूम धुन्ध अन्ध,
कहैं बारे बूढ़े 'बारि, बारि' बार बारहीं॥
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि पेलि, रौंदि खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
तात तात तौंसियत झौंसियत झारहीं॥
लपट कराल ज्वाल जाल माल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे।
पानी को ललात, बिललात, जरे गात जात,
परे पाइमाल जात, भ्रात तू निबाहि रे॥
प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ तू पराहि, बाप
बाप तू पराहि, पूत पूत तू पराहि रे।
तुलसी बिलोक लोग व्याकुल बेहाल कहैं,
लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे॥ [1]

क्रोध और भय का अलग अलग वर्णन और उनका सम्मिश्रण तुलसीदास ने अभूतपूर्व ढंग से वर्णित किया है।

वीभत्स रस—

इस रस का वर्णन युद्ध मे ही किया गया है। अतः कवितावली में इसका एक ही स्थल है। वह लंका कांड मे ४९ वे और ५० वें छंद में आया है।

1 तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ १७७-१७८

सोनित सों सानि सानि गुदा खात सतुआ से,

प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।[1]

आदि पंक्तियाँ इस रस की पुष्टि करती हैं। इसके विशेष उद्दीपन विभाव नहीं लिखे गए।

अद्भुत रस

कवितावली की राम-कथा में राम के ब्रह्मत्व का निर्देश कम है, अतः अद्भुत रस की अधिक पुष्टि नहीं हो पाई। लंका-दहन में ही अद्भुत रस का संकेत अधिक मिलता है:—

'लघु ह्वै निबुक गिरि मेरु तें बिसाल भो'

आदि पंक्तियों में इस रस की स्थिति हुई है। इसी तरह हनुमान का युद्ध भी अद्भुत रस की सृष्टि करता है। यहाँ रौद्र रस से अद्भुत रस का सम्मिलन हुआ है, जिस कारण इन आश्चर्य-जनक घटनाओं को देखकर राम लक्ष्मण से कहते हैं:—

देखौ देखौ लखन, लरनि हनुमान की।[2]

अतः अद्भुत रस का परिपाक लंकाकांड के ४० से ५२ छंद तक अधिक हुआ है।

शान्त-रस

यह रस कवितावली के समस्त उत्तर कांड में व्याप्त है, जिसमें कवि को राम-कथा से छुटकारा मिल गया है और वह विशेष रूप से अपने व्यक्तिगत जीवन की कठिनाइयाँ और दीनता अपने आराध्य के सामने रख रहा है। इसी दीनता के वशीभूत होकर उसने अपने जीवन का थोड़ा परिचय भी दे दिया है। देवताओं की स्तुतियों में यह रस प्रधान है। राम की स्तुति और वंदना तो जैसे तुलसीदास ने अपने आँसुओं से ही लिखी है। समस्त राम-कथा में तुलसीदास ने भरत का नाम

---

1 वही पृष्ठ १६६

2. वही पृष्ठ १६५

दो ही बार लिया है।[1] फिर उनके चरित्र मे अंकित शान्त-रस का निर्देश तो बहुत दूर की बात है। अतः शान्त रस का वर्णन कथा के अन्तर्गत न होकर कवि के स्वतंत्र व्यक्तिगत भावो ही मे हुआ है।

विशेष

कवितावली की रचना एक विस्तृत काल मे हुई थी, अतः उसमे तुलसी की विभिन्न शैलियो के दर्शन होते हैं। यदि बालकांड मे उनका भाषा-सौन्दर्य लक्षित है तो उत्तर कांड मे उनकी भाषा मे शाब्दिकता के पर्याय अर्थ-गांभीर्य का स्थान विशेष है। अतएव शैली की दृष्टि से कवितावली तुलसीदास का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। निम्नलिखित दोनों अवतरणों को मिलाने से कथन की स्पष्टता प्रकट होगी :—

(१) बोले बंदी विरुद, बजाइ बर बाजनेऊ,
बाजे बाजे बीर बाहु धुनत समाज।[2] (शाब्दिकता)

(२) राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजे बलि,
तुलसी तिहारो घरजायउ है घर को।[3] (अर्थ-गाम्भीर्य)

संक्षेप मे कवितावली का निष्कर्ष इस प्रकार है :—

१. इसमे कथा-सूत्र का अभाव है। न तो इसमें धार्मिक और दार्शनिक बातों का प्रतिपादन ही है और न भक्ति के सिद्धान्तो का स्पष्टीकरण ही।
२ इसमे राम-कथा के सभी उत्कर्ष-पूर्ण स्थलो का निरूपण है और राम की शक्ति और सौन्दर्य का विशेष विवरण है।
३. इसमे भयानक रस का वर्णन अद्वितीय है।

---

१. (अ) कहै मोहि मैया, कहौं मैं न मैया भरत की,
बलैया लैहौं, भैया, तेरी मैया कैकेयी है। अयोध्या कांड, छन्द १

(आ) भरत की कुसल अचल ल्यायो चलि कै॥ लंकाकांड छन्द ५५

२. बालकांड, छन्द ८

३ उत्तरकांड, छन्द १२२

४. इसमें राम-कथा से स्वतंत्र उत्तर कांड की रचना की गई है

निम्नलिखित भावनाओं की अभिव्यक्ति है :—

अ आत्मचरित का निर्देश।

आ. तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण।

इ. पौराणिक कथाएँ, भ्रमर-गीत, कलि से विवाद और देवताओं की स्तुति।

कवितावली की कवित्त और सवैया-शैली तुलसीदास ने प्रथम बार साहित्य में सफलता के साथ प्रयुक्त की और इसके द्वारा उन्होंने अपने आराध्य की मर्यादा स्पष्ट रीति से घोषित की।

विनयपत्रिका (विनयावली)

रचना-तिथि और विस्तार—वेणीमाधवदास ने विनयपत्रिका (विनयावली) का रचना-काल सं० १६२९ के लगभग दिया है, जब वे मिथिला-यात्रा के लिए प्रस्थान करने वाले थे :—

विदित राम विनयावली, पुनि तब निर्मित कीन्ह।
सुनि तेहि साखीयुत प्रभू, मुनिहि अभय कर दीन्ह ॥[1]
मिथिलापुर हेतु पयान किए। सुकृती जन को सुख शांति दिए॥

उसमें यह भी लिखा है कि कलियुग से सताए जाने पर तुलसीदास ने अपने कष्ट के निवारणार्थ इस ग्रन्थ की रचना की। ग्रन्थ से यह तो अवश्य ज्ञात होता है कि तुलसी ने अपनी दारुण व्यथा प्रकट करने के लिए यह ग्रन्थ लिखा, पर रचना-काल का निर्णय अन्तर्साक्ष्य से नहीं होता। रचना इतनी प्रौढ़ है कि वह हनुमान-बाहुक के समय में लिखी हुई ज्ञात होती है।

यह रचना सम्यक् ग्रन्थ के रूप में ज्ञात होती है क्योंकि इसमें मंगलाचरण है और क्रम से अन्य देवताओं की प्रार्थना है। उसके बाद राम की सेवा में विनयपत्रिका पहुँचा कर उसकी स्वीकृति ली गई है।

१ मूलगोसाईंचरित पृ० ४

नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित तुलसी ग्रन्थावली के दूसरे खंड मे विनयपत्रिका की पद-संख्या २७९ दी गई है। बाबू श्यामसुन्दरदास को विनयपत्रिका की एक प्राचीन प्रति प्राप्त हुई है, जो संवत् १६६६ की है अर्थात् यह प्रति तुलसीदास की मृत्यु के १४ वर्ष पूर्व की है। यह नहीं कहा जा सकता कि यह तिथि विनयपत्रिका की रचना की है या प्रतिलिपि की। बाबू साहब उसके सम्बन्ध में लिखते हैं :—

"इसमे केवल १७६ पद हैं जब कि और-और प्रतियो मे २८० पद तक मिलते हैं। यह कहना कठिन है कि शेष १०४ पदो मे से कितने वास्तव मे तुलसीदास जी के बनाए हैं और कितने अन्य लोगो ने अपनी ओर से जोड़ दिए हैं। जो कुछ हो, इसमे सन्देह नहीं कि इन १०४ पदों मे से जितने पद तुलसीदास जी के स्वयं बनाए हुए हैं, वे सब संवत् १६६६ और संवत् १६८० के बीच मे बने होंगे।"[1]

यदि यह प्रति प्रामाणिक है तो संवत् १६६६ ही विनयपत्रिका (विनयावली) का रचना-काल ज्ञात होता है।

वर्ण्य विषय—कुछ आलोचको का कथन है कि विनयपत्रिका भी कवितावली या गीतावली की भाँति संग्रह-ग्रन्थ है और इसके प्रमाण मे निम्नलिखित कारण दिए जाते हैं :—

(१) इसमे रचना-काल का निर्देश नहीं है।

(२) इसमे क्रम-हीन पदो का संग्रह है जो इच्छानुसार स्थानान्तरित किये जा सकते हैं।

(३) इसमे विचारो की भी विशृंखलता है। एक विचार का नियमित विकास नहीं हुआ है।

मेरे विचार से विनयपत्रिका एक पूर्ण रचना है, जिसकी रूप-रेखा ग्रंथ के रूप मे हुई। रचना-काल का निर्देश तो रामाज्ञा मे भी नहीं किया गया है, किन्तु इसी कारण से उसे स्फुट ग्रंथ के रूप मे नहीं

कहा जा सकता। साधारण रूप से देखने में पद क्रम-हीन जान पड़ते हैं, पर वास्तव में उनमें एक प्रवाह—एक क्रम है। प्रारम्भ में गणेश, सूर्य, शिव, पार्वती आदि की स्तुति है। तुलसीदास स्मार्त वैष्णव थे, अतः वे स्मार्त वैष्णवों के अनुसार पाँच देवताओं की पूजा में विश्वास करते थे, विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश।[1] इन्हीं पंच देवों की स्तुति से उन्होंने विनयपत्रिका प्रारम्भ की है। विष्णु रूप राम की स्तुति तो ग्रन्थ भर में है। प्रारम्भ में शेष चारों देवताओं की वन्दना की गई है। विचारों की विशृंखलता ग्रन्थ के स्फुट रूप होने का कोई कारण नहीं हो सकती। पदों में रचना होने के कारण प्रबन्धात्मकता की रक्षा नहीं की जा सकती। फिर इस रचना में कवि का आत्म-निवेदन है, जिसमें भावनाओं का अनियमन कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अतः इन सभी कारणों से विनयपत्रिका एक सम्यक ग्रन्थ है।

विनयपत्रिका की रचना गीतिकाव्य के रूप में है। इसे हम तुलसीदास की समकालीन प्रवृत्ति कह सकते हैं। गीति-काव्य अन्तर्जगत काव्य है। उसमें विचारों की एकरूपता संक्षिप्त होकर व्यक्तित्व को साथ ले संगीत के सहारे प्रकट होती है।

संगीत का आधार होने के कारण राग-रागिनियों का ही प्रयोग किया गया है। हर्ष और करुणा की भावना में जयतश्री, केदारा, सोरठ और आसावरी; वीर की भावना में मारू और कान्हरा, शृंगार की भावना में ललित, गौरी, बिलावल, सूहो और वसन्त; शान्त की भावना में रामकली; वर्णन में विभास, कल्याण, मलार, और टोड़ी का प्रयोग है।

---

[1] At an early date some organising genius persuaded the Smartas to make it a regular practice to ... gods *Panca...* ...

भावना विशेष के लिए विशेष रागिनी में रचना की गई है। इस तरह इक्कीस रागों में विनयपत्रिका का आत्म-निवेदन है। उन रागों के नाम हैं—बिलावल, धनाश्री, रामकली, वसन्त, मारू, भैरव, कान्हरा, सारंग, गौरी, दण्डक, केदारा, आसावरी, जयतश्री, विभास, ललित, टोड़ी, नट, मलार, सोरठ, भैरवी और कल्याण। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि भावों का अर्थ रस नहीं है। गीतावली में एक ही रस है, वह है शान्त। विविध भाव उसके संचारी बन कर ही आए हैं।

(अ) वर्ण्य विषय—विनयपत्रिका में कोई कथा नहीं है। एक भक्त की प्रार्थना है, जो उसने अपने आराध्य से अपने उद्धार के लिए की है। ग्रन्थ का नाम ही विनयपत्रिका है। इस विनयपत्रिका में छः प्रकार के पद हैं :—

१. प्रार्थना या स्तुति (गणेश से राम तक)
   (अ) गुण वर्णन—(१) कथाओं द्वारा
   (२) रूपकों द्वारा
   (आ) रूप वर्णन—अलंकारों द्वारा
   (इ) राम-भक्ति याचना—अन्तिम पंक्ति में

२. स्थानों का वर्णन
   (अ) चित्रकूट
   (आ) काशी

३. मन के प्रति उपदेश

४. संसार की असारता

५. ज्ञान वैराग्य वर्णन

६. आत्म-चरित्र चित्रण

राम की प्रार्थना मे निम्नलिखित अंग विशेष रूप मे पाये जाते है· –

१. मानव चरित्र (लीला)

२. नख शिख

३. हरि-शकरी रूप

४. दशावतारी महिमा

५. आत्म निवेदन

विनयपत्रिका मे पधान रूप से तुलसीदास की मनोवृत्ति का निरूपण है। न घटना की प्रबन्धात्मकता है और न कोई कथा-सूत्र ही ; ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सम्बन्धी विभिन्न विचारो का स्पष्ट प्रतिपादन है। राम-भक्ति ही इस ग्रंथ का आदर्श है। राम-भक्ति-प्राप्ति के सब साधन— चाहे उनका सम्बन्ध देवताओ से हो या स्थानो से – तुलसी द्वारा लिखे गए है। ज्ञात होता है, काशी का वर्णन एकमात्र शैव धर्म से प्रभावित होकर ही कवि ने किया है, क्योकि राम-भक्ति से काशी का कोई सम्बन्ध नही है। राम-भक्ति के लिए, तुलसी के मतानुसार, शिव-भक्ति आवश्यक है। इसीलिए परोक्ष रूप से राम भक्ति के लिए काशी का वर्णन किया गया है : –

तुलसी बसि हरिपुरी राम जपु, जो भयो चहै सुपासी ॥[1]

स्तोत्र और पदो के सहारे तुलसीदास ने तत्कालीन प्रचलित भक्ति-परम्परा की रक्षा की। उन्होने स्तोत्र का प्रयोग देवताओ के बल, विक्रम, शक्ति आदि प्रदर्शित करने के लिए किया । शील-सौन्दर्य वर्णन पदो मे हुआ है।

विनयपत्रिका की भावनाएँ बहुत स्वतन्त्र हैं। जहाँ एक ओर संसार की असारता का उल्लेख है वहाँ दूसरी ओर मन को उपदेश दिया गया है। कहीं कवि के व्यक्तिगत जीवन की झलक है तो कहीं दशावतारो से सम्बन्ध रखने वाली विष्णु की उपासना एवं भक्त-वत्सलता की पौराणिक

[1] विनयपत्रिका २२ ।

कहानियों की शृङ्खला है। अनेक पदों में तो गणिका, अजामिल, अहल्या आदि की कथाएँ इतनी बार दुहराई गई हैं कि उनमें नवीनता नहीं ज्ञात होती। यह आवर्तन प्रधानतः निम्नलिखित कारणों से है :—

१. तुलसी का हृदय बहुत ही भक्तिमय है जो आराध्य के गुण से नहीं थकता।

२ विनयपत्रिका गीति-काव्य के रूप मे है, जिसमें प्रत्येक पद स्वतंत्र है।

विनयपत्रिका का दृष्टिकोण बहुमुखी है। यद्यपि राम-भक्ति साध्य है, किन्तु साधना के रूप अनेक प्रकार से माने गए हैं।

(आ) रस

विनयपत्रिका में शान्त रस की बड़ी मार्मिक विवेचना है। सूरदास के विनय पद भी अनुभूति में तुलसी के पदों से गहरे नहीं हैं। तुलसी के स्थायी भाव की प्रौढ़ता सूर मे नहीं है, क्योंकि तुलसी की उपासना दास्य भाव की है। रस के आलम्बन विभाव को राम-चरित ने बहुत सहायता दी है, क्योंकि राम अवधेश और मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। इस प्रकार की सहायता कृष्ण-चरित से नहीं मिल सकी है। तुलसी की विनयपत्रिका शान्त रस के स्पष्टीकरण में जितनी सफल हो सकी, उतनी मानस को छोड़कर कवि की कोई भी कृति नहीं।

विनयपत्रिका मे केवल एक ही रस है। वह है शान्त रस। इस रस के प्राधान्य के कारण अन्य किसी रस की सृष्टि नहीं हो सकी। अन्य रसों के भाव चाहे किसी स्थान पर आ गए हों, पर वे सब शान्त रस के संचारी भाव बन गए हैं। यहाँ विनयपत्रिका की भावना को समझने के लिए शान्त रस का निरूपण करना युक्तिसंगत होगा :—

१) स्थायी भाव—निर्वेद

परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पन करि तुलसी, रघुपति पद कमल बसैहौं॥[1]

(२) विभाव

(अ) आलम्बन विभाव :—

(१) हरि-कृपा

ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरि कृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माँही॥[2]

(२) गुरु

सोजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि सेवक सुखद सदा बिरद बहत हौं।[3]

(आ) उद्दीपन विभाव :—

(१) देवता (विन्दुमाधव, पार्वती)

(विन्दुमाधव) नख सिख निरखि बिन्दुमाधव छवि, निरखहिं नयन अघाई।[4]

(पार्वती) देखो देखो बन बन्यो आजु उमाकंत।
मनो देखन तुमहिं आई ऋतु बसंत॥[5]

(२) स्थान (काशी, चित्रकूट)

(काशी) सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी।[6]

(चित्रकूट) तुलसी जो राम पद चहिय प्रेम।
सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम॥[7]

(३) नदी (गंगा, यमुना)

१	तुलसी ग्रन्थावली	दूसरा खण्ड	(विनय पत्रिका)	पद १०५
२	वही	,,	,,	पद ११६
३	,,	,,	,,	पद ७६
४	,,	,,	,,	पद ६२
५	,,	,,	,,	पद १४
६	,,	,,	,,	पद २२
७	,,	,,	,,	पद २३

(गंगा) तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुवंश वीर,
विचरत मति देहि मोह महिष कालिका ॥[1]

(यमुना) जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न ॥[2]

(अ) अनुभाव—रोमांच, कम्प

सुनि सीतापति सील सुभाउ ।

मोद न तन मन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ ॥[3]

(४) संचारी भाव

१ सुबुद्धि—देहि मा मोहि प्रण प्रेम यह नेम निज
राम घनश्याम तुलसी पपीहा ॥[4]

२ ग्लानि—कहँ लौं कहौं कुचाल दयानिधि जानत हौ निज मन की ।[5]

३ गर्व—तुलसिदास अनयास रामपद पाइहै प्रेम पसाउ ।[6]

४ दीनता—तुलसिदास निज भवन द्वार प्रभु दीजै रहन पर्‌यो ।[7]

५ हर्ष—पावन किय रावन रिपु तुलसिहु से अपत ।[8]

६ मोह— तुलसिहि बहुत भलो लागत जग जीवन राम गुलाम को ।[9]

७ विषाद—दीनदयाल दीन तुलसी की काहु न सुरति कराई ।[10]

८ चिन्ता—कलिमल ग्रसित दास तुलसी पर काहे कृपा बिसारी ।[11]

१.	तुलसी ग्रंथावली	दूसरा खंड	(विनय पत्रिका)	पद १७
२	,,	,,	,,	पद २१
३.	,,	,,	,,	पद १००
४.	,,	,,	,,	पद १५
५.	,,	,,	,,	पद ६०
६.	,,	,,	,,	पद १००
७.	,,	,,	,,	पद ६१
८	,,	,,	,,	पद १३०
९	,,	,,	,,	पद १५५
१०.	,,	,,	,,	पद १६५
११.	,,	,,	,,	पद १६६

विशेष

तुलसीदास के पूर्व हिन्दी साहित्य में केवल दो ही कवि थे, जिन्होंने गीति-काव्य में भक्ति की भावना उपस्थित की थी। ये दो कवि थे विद्यापति और कबीर। विद्यापति ने जयदेव का अनुसरण करते हुए गीत गोविन्द की शैली में राधाकृष्ण का वर्णन किया था। उनके सामने नायक-नायिका भेद की परम्परा थी और था गीत गोविन्द की रचना का आदर्श। *शृंगार रस की वासनामयी प्रवृत्ति एकमात्र उनकी कविता* की शासिका थी। उसमें भक्ति के लिए कोई स्थान नहीं था, यद्यपि राधा-कृष्ण का चरित्र-गान उन्होंने पदों में किया था।

कबीर की रचना भक्तिमयी होते हुए भी साकार रूप का निरूपण नहीं कर सकी। उनकी कविता में आत्म-समर्पण की भावना ही स्थिर नहीं हो सकी। रहस्यवाद की अनुभूति और एकेश्वरवाद की भावना दोनों ने मिलकर कबीर की भक्ति को बहुत कुछ उपासना का रूप दे दिया था।

इस प्रकार विद्यापति और कबीर तुलसी के सामने भक्ति का कोई आदर्श स्थापित नहीं कर सके। तुलसी के समकालीन कवियों ने पुष्टि-मार्ग का अवलम्बन कर भक्ति की विवेचना अवश्य की, किन्तु वह भक्ति सख्य भाव का सहारा लिए हुए थी। दोनों में भक्ति-भावना का समावेश होते हुए भी आत्म-समर्पण की भावना नहीं थी। अतएव विनयपत्रिका का आदर्श मौलिक रूप से साहित्य में अवतरित हुआ। उन्होंने दास्य-भाव की भक्ति में आत्मा की सभी वृत्तियों को सजीव रूप देकर विनयपत्रिका की रचना की।

रामचरितमानस

हिन्दी साहित्य का सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ रामचरितमानस है।

रचना-तिथि— मानस की रचना-तिथि अन्तर्साक्ष्य से संवत् १६३१ है।

"गोस्वामी जी ने रामचरित-मानस को समाप्त करके अन्त में चौपाइयों की संख्या इस प्रकार निर्धारित की है :—

सतपंच चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरें ।
दारुन अविद्या पंच जनित विकार श्री रघुपति हरें ॥

"अंकानां वामतो गतिः" की रीति से सत का अर्थ १०० और पंच का ५ लेकर ५१०० श्री रामचरणदास जी ने भी किया है...मानस मयंक में इससे मिलती-जुलती हुई व्याख्या यों दी है :—

एकावन सत विद्द है, चौपाई तहँ चार ।
छन्द सोरठा दोहरा, दस रित दस हजार ॥

अर्थात् चौपाइयों की संख्या ५१०० है और छन्द, सोरठा और दोहा सब मिलाकर दस कम दस हजार है । अर्थात् समस्त छंद संख्या ९९०० है ।"[1] पं० रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार चौपाइयों की संख्या ४६४७ और सम्पूर्ण छन्द संख्या ६१६७ है ।[2]

छंद—तुलसीदास ने मानस में प्रधान रूप से दोहा और चौपाई छन्द का ही प्रयोग किया है, पर उनके मानस में इन छन्दों के अतिरिक्त निम्नलिखित छंद भी प्रयुक्त हुए हैं :—

मात्रिक—सोरठा, तोमर, हरिगीतिका, चवपैया, त्रिभंगी ।

वर्णिक—अनुष्टुप्, रथोद्धता, स्रग्धरा, मालिनी, तोटक, वंशस्थ, भुजंग-प्रयात, नग-स्वरूपिणी, वसंत तिलका, इन्द्रवज्रा, शार्दूल विक्रीड़ित ।

इस प्रकार तुलसी के मानस में १८ छन्दों का प्रयोग हुआ है ।

वर्ण्य-विषय—रामचरित मानस में राम की कथा का सांगोपाग वर्णन है । इस कथा के लिखने में तुलसीदास ने निम्नलिखित ग्रन्थों का आधार प्रधान रूप से लिया है :—

---

[1] रामचरित मानस की भूमिका, पृ० ४, ६
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता १६८८
[2] तुलसीदास और उनकी कविता (पं० रामनरेश त्रिपाठी) पृ०

कवि ने बालकांड के प्रारम्भ मे ही लिखा है :—

संवत् सोरह सै इकतीसा, करौं कथा हरिपद धरि सीसा।[1]

अतः इस तिथि मे किसी प्रकार का संदेह नहीं है। वेणीमाधवदास ने भी इस ग्रंथ की रचना-तिथि यही लिखी है :—

राम-जन्म तिथि बार सब, जस त्रेता महँ भास।
तस इकतीसा महँ जुरे, जोग लग्न ग्रह रास॥

× × ×

यहि विधि भा आरंभ, रामचरित मानस विमल।
सुनत मिटत मद दंभ, कामादिक संशय सकल॥[2]

रघुराजसिंह ने अपनी राम रसिकावली मे भी यही तिथि दी है :—

कछु दिन करि कासी महँ वासा। गए अवधपुर तुलसीदासा॥
तहँ अनेक कीन्हेंउ सतसंगा। निसिदिन रँगे राम रति रंगा॥
सुखद राम नौमी जब आई। चैतमास अति आनन्द पाई॥
संवत सोरह सै इकतीसा। सादर सुमिरि भानुकुल ईसा॥
वासर भौम सुचित चित चायन। किय आरंभ तुलसी रामायन॥

अतः अन्तर्साक्ष्य और वहिर्साक्ष्य दोनों के द्वारा मानस का रचना काल संवत् १६३१ निश्चित है।

विस्तार—रामचरित-मानस मे राम की कथा सात कांडों मे लिखी गई है। इन सात कांडो की निश्चित पद्य-संख्या बतलाना कठिन है, क्योंकि ग्रन्थ मे बहुत से क्षेपक पाये जाते हैं। किन्तु मानस के समस्त छन्द लगभग दस हजार हैं। स्वर्गीय श्री रामदास गौड़ ने रामचरित-मानस की भूमिका मे लिखा है :—

1 तुलसी ग्रन्थावली, पहला खंड (मानस) पृष्ठ ··

2 मूल गोसाईं चरित दोहा ३८, सोरठा ११

"गोस्वामी जी ने रामचरित-मानस को समाप्त करके अन्त में चौपाइयों की संख्या इस प्रकार निर्धारित की है :—

सतपंच चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरैं ।
दारुन अविद्या पंच जनित विकार श्री रघुपति हरैं ॥

"अंकानां वामतो गतिः" की रीति से सत का अर्थ १०० और पंच का ५ लेकर ५१०० श्री रामचरणदास जी ने भी किया है...मानस मयंक में इससे मिलती-जुलती हुई व्याख्या यों दी है :—

एकावन सत सिद्ध है, चौपाई तहँ चारु ।
छन्द सोरठा दोहरा, दस रित दस हजारु ॥

अर्थात् चौपाइयों की संख्या ५१०० है और छन्द, सोरठा और दोहा सब मिलाकर दस कम दस हजार हैं । अर्थात् समस्त छंद संख्या ९९०० है ।"[1] पं० रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार चौपाइयों की सख्या ४६४७ और सम्पूर्ण छन्द सख्या ६१६७ है ।[2]

छंद—तुलसीदास ने मानस में प्रधान रूप से दोहा और चौपाई छन्द का ही प्रयोग किया है, पर उनके मानस में इन छन्दों के अतिरिक्त निम्नलिखित छंद भी प्रयुक्त हुए हैं :—

मात्रिक—सोरठा, तोमर, हरिगीतिका, चवपैया, त्रिभंगी ।

वर्णिक—अनुष्टुप्, रथोद्धता, स्रग्धरा, मालिनी, तोटक, वंशस्थ, भुजंग-प्रयात, नग-स्वरूपिणी, वसंत तिलका, इन्द्रवज्रा, शार्दूल विक्रीड़ित ।

इस प्रकार तुलसी के मानस में १८ छन्दों का प्रयोग हुआ है ।

वर्ण्य-विषय—रामचरित मानस में राम की कथा का सांगोपांग वर्णन है । इस कथा के लिखने में तुलसीदास ने निम्नलिखित ग्रन्थों का आधार प्रधान रूप से लिया है :—

---

१ रामचरित मानस की भूमिका, पृष्ठ ६४, ६५
(हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता १६८२)

२. तुलसीदास और उनकी कविता (पं० रामनरेश त्रिपाठी) पृष्ठ ३२३

वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी ।
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्वसिष्यसि ॥ ३० ॥[1]

[वायु का भक्षण कर निराहार रह कर भस्म-शायिनी तपते प्राणियों से अदृश्य हो कर आश्रम में निवास करोगी।]

अध्यात्म रामायण

दुष्टे त्वं तिष्ठ दुर्वृत्ते शिलायामाश्रमे मम ।
निराहारा दिवारात्रं तपः परमास्थिता ॥ २७ ॥
आतपानिलवर्षादिसहिष्णुः परमेश्वरम् ।
ध्यायन्ती राममेकाग्रमनसा हृदि संस्थितम् ॥ २८ ॥

.. ..

रामः पदा शिलां स्पृष्ट्वा तां चापश्यत्तपोधनाम् ।
ववन्दे राघवोऽहल्यां रामोऽहमिति चाब्रवीत् ॥ ३६ ॥[2]

[दुष्टे, दुराचारिणी, तू मेरे आश्रम में निराहार रात्रि-दिन तप करती हुई शिला पर खड़ी रह। धूप, पवन, वर्षा आदि सहकर एकाग्र मन से हृदय में स्थित परमेश्वर राम का ध्यान करती रह।... .

राम ने अपने चरण से स्पर्श करके उस तपस्विनी को देखा और अहल्या को यह कह कर प्रणाम किया कि मेरा नाम राम है।]

रामचरित-मानस

गौतम नारी साप बस उपल-देह धरि धीर ।
चरण कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुवीर ॥
परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही ।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही ॥[3]

---

१ वाल्मीकि रामायण [बालकाण्डे अष्टचत्वारिंश. सर्ग]

२. अध्यात्म रामायण [बालकाण्डे पंचम सर्ग]

३. तुलसी ग्रन्थावली, पहला खंड (मानस) पृष्ठ ६२

इन तीनो अवतरणों से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि रामायण मे अहल्या अदृश्य है और राम लक्ष्मण उसके चरण छूते हैं। अध्यात्म रामायण मे अहल्या शिला पर खड़ी होकर तपस्या करती है और राम उसे केवल प्रणाम करते हैं। अहल्या राम के चरणों का स्पर्श पाकर पति-लोक जाती है। मानस मे अहल्या पाषाण रूप होकर पड़ी रहती है और राम के पवित्र चरणों का स्पर्श पाकर 'अनन्द भरी' पति-लोक को जाती है। तुलसीदास ने कथा-भाग का रूप तो वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही रक्खा है, पर दृष्टिकोण अध्यात्म रामायण के अनुसार। तुलसीदास की अहल्या वाल्मीकि रामायण की अहल्या के अनुसार ही पाषाण-रूप है, पर अध्यात्म रामायण की अहल्या की भाँति राम के चरणों का स्पर्श करती है। अध्यात्म रामायण मे राम का व्यक्तित्व कुछ महान् हुआ है। वे अहल्या के चरणों का स्पर्श न कर केवल उसे प्रणाम करते हैं। मानस में राम पूर्ण ब्रह्म हैं, अतः वे अहल्या को प्रणाम भी नहीं करते, प्रत्युत गम्भीरता से अपने 'पावन पद' का स्पर्श उसे करा देते हैं। यह तुलसीदास का अपने आराध्य के प्रति भक्तिपूर्ण दृष्टिकोण है। इतने पर भी मानस भावना की दृष्टि से वाल्मीकि की अपेक्षा अध्यात्म रामायण के अधिक समीप है।

दूसरा स्थल कैकेयी के वरदान का है। उसका वर्णन इस प्रकार है :—

वाल्मीकि रामायण

गतोदके सेतुबन्धो न कल्याणि विधीयते।
उत्तिष्ठ कुरु कल्याणि राजानमनु दर्शय ॥ ५४ ॥
तथा प्रोत्साहिता देवी गत्वा मन्थरया सह।
क्रोधागारं विशालाक्षी सौभाग्य मद गर्विता ॥ ५५ ॥[1]

[1] वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्डे नवमः सर्गः

२:

वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी ।
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन् वसिष्यसि ॥ ३० ॥[1]

[वायु पान का आहार कर निराहार रह कर भस्म-शायिनी तुम प्राणियों से अदृश्य होकर आश्रम में निवास करोगी ।]

अध्यात्म रामायण

दुष्टे त्वं तिष्ठ दुर्वृत्ते शिलायामाश्रमे मम ।
निराहारा दिवारात्रं तपः परमास्थिता ॥ २७ ॥
आतपानिलवर्षादिसहिष्णुः परमेश्वरम् ।
ध्यायन्ती राममेकाग्रमनसा हृदि संस्थितम् ॥ २८ ॥

... ...

रामः पदा शिलां स्पृष्ट्वा तां चापश्यत्तपोधनाम् ।
ननाम राघवोऽहल्यां रामोऽहमिति चाब्रवीत् ॥ ३६ ॥[2]

[दुष्टे, दुराचारिणी, तू मेरे आश्रम में निराहार रात्रि-दिन तप करती हुई शिला पर खड़ी रह । धूप, पवन, वर्षा आदि सहकर एकाग्र मन से हृदय में स्थित परमेश्वर राम का ध्यान करती रह ।......

राम ने अपने चरण से स्पर्श करके उस तपस्विनी को देखा और अहल्या को यह कह कर प्रणाम किया कि मेरा नाम राम है ।]

रामचरित-मानस

गौतम नारी साप बस उपल-देह धरि धीर ।
चरण कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुबीर ॥
परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही ।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही ॥[3]

---

१ वाल्मीकि रामायण [बालकाण्डे अष्टचत्वारिंशः सर्गः]

२. अध्यात्म रामायण [बालकाण्डे पंचम सर्ग]

३ तुलसी ग्रन्थावली, पहला खण्ड (मानस) पृष्ठ ६२

इन तीनों अवतरणों से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि रामायण में अहल्या अदृश्य है और राम लक्ष्मण उसके चरण छूते हैं। अध्यात्म रामायण में अहल्या शिला पर खड़ी होकर तपस्या करती है और राम उसे केवल प्रणाम करते हैं। अहल्या राम के चरणों का स्पर्श पाकर पति-लोक जाती है। मानस में अहल्या पाषाण रूप होकर पड़ी रहती है और राम के पवित्र चरणों का स्पर्श पाकर 'अनन्द भरी' पति-लोक को जाती है। तुलसीदास ने कथा-भाग का रूप तो वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही रक्खा है, पर दृष्टिकोण अध्यात्म रामायण के अनुसार। तुलसीदास की अहल्या वाल्मीकि रामायण की अहल्या के अनुसार ही पाषाण-रूप है, पर अध्यात्म रामायण की अहल्या की भाँति राम के चरणों का स्पर्श करती है। अध्यात्म रामायण में राम का व्यक्तित्व कुछ महान् हुआ है। वे अहल्या के चरणों का स्पर्श न कर केवल उसे प्रणाम करते हैं। मानस में राम पूर्ण ब्रह्म है, अतः वे अहल्या को प्रणाम भी नहीं करते, प्रत्युत गम्भीरता से अपने 'पावन पद' का स्पर्श उसे करा देते हैं। यह तुलसीदास का अपने आराध्य के प्रति भक्तिपूर्ण दृष्टिकोण है। इतने पर भी मानस भावना की दृष्टि से वाल्मीकि की अपेक्षा अध्यात्म रामायण के अधिक समीप है।

दूसरा स्थल कैकेयी के वरदान का है। उसका वर्णन इस प्रकार है :—

वाल्मीकि रामायण

> गतोदके सेतुबन्धो न कल्याणि विधीयते ।
> उत्तिष्ठ कुरु कल्याणि राजानमनु दर्शय ॥ ५४ ॥
> तथा प्रोत्साहिता देवी गत्वा मन्थरया सह ।
> क्रोधागारं विशालाक्षी सौभाग्य मद गर्विता ॥ ५५ ॥[1]

[1] वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्डे नवमः सर्गः

२-

[(मन्थरा कैकेयी से बोली) हे कल्याणि, जल के बह जाने पर बाँध बाँधने से क्या लाभ ? अतः उठ, साधन-कार्य कर और महाराज की प्रतीक्षा कर ।]

इस प्रकार मन्थरा द्वारा प्रोत्साहित किये जाने पर विशालनेत्रा सौभाग्य-गर्विता कैकेयी कोप-भवन में गई ।

अध्यात्म रामायण

एतस्मिन्नन्तरे देवा देवीं वाणीमचोदयन् ।
गच्छ देवि भुवो लोकमयोध्याया प्रयत्नतः ॥४४॥
रामाभिषेक विघ्नार्थं यतस्व ब्रह्म वाक्यतः ।
मन्थरा प्रविशस्वादौ कैकेयीं च ततः परम् ॥४५॥
ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे ।
तथेत्युक्त्वा तथा चक्रे प्रविवेशाथ मन्थराम् ॥ ४६ ॥[1]

[इसके बाद देवताओं ने सरस्वती देवी से प्रेरणा की । हे देवि, यत्नपूर्वक तुम भूलोक में अयोध्या में जाओ । राम के अभिषेक में ब्रह्मा के वचन से विघ्न डालने का यत्न करो । पहले मन्थरा में प्रवेश करो बाद में कैकेयी में । विघ्न उत्पन्न होने पर हे शुभे, तुम पुनः स्वर्ग लौट आना । यह सुनकर सरस्वती ने कहा, ऐसा ही होगा । और उसने मन्थरा में प्रवेश किया ।]

मानस

सकल कहहिं कब होइहि काली ।
बिघन मनावहिं देव कुचाली ॥
तिन्हहिं सोहाव न अवध बधावा । चोरहिं चाँदिनि राति न भावा ॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं । बारहिं बार पाय लै परहीं ॥

---

१. अध्यात्म रामायण [अयोध्याकाडे द्वितीय सर्ग ।]

विपति हमारि बिलोकि बड़, मातु करिअ सोइ काजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि, होइ सकल सुर काजु ॥ १२ ॥

... ...

बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबुध मति पोची ॥
हरषि हृदय दसरथ पुर आई। जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई ॥

नामु मंथरा मंद मति, चेरी कैकेइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि ॥ २३ ॥[1]

इन अवतरणों को देखने से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि रामायण में मन्थरा और कैकेयी का जो मनोवेग है वह स्वाभाविक और लौकिक है। अध्यात्म रामायण में मन्थरा और बाद में कैकेयी की बुद्धि में विपर्यय सरस्वती द्वारा होता है। यहाँ कथा में अलौकिक प्रभाव है। तुलसीदास ने अपने मानस में यह प्रसंग अध्यात्म रामायण से ही लिया है। तुलसीदास की मन्थरा और कैकेयी सरस्वती के प्रभाव से अपनी सात्विक बुद्धि खो बैठती हैं। यह प्रसंग इस कारण विशेष रूप से तुलसीदास ने ग्रहण किया, क्योंकि इस अलौकिक प्रभाव से कैकेयी के दोष का परिमार्जन सरलता से हो जाता है। अयोध्या कांड में स्वयं भरद्वाज भरत से कहते हैं :—

तुम्ह गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति।
तात कैकेइहि दोसु नहिं, गई गिरा मति धूति ॥ २०७ ॥[2]

इन दोनों प्रसंगों से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास ने अपने मानस के दृष्टिकोण के लिए अधिकतर अध्यात्म रामायण का ही सहारा लिया है।

---

१. तुलसी ग्रन्थावली, पहला खंड (मानस) पृष्ठ १६२
२. वही " " पृष्ठ २

मानस की कथा वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण की कथा से भिन्न होकर आदर्श समाज और आदर्श धर्म की रूपरेखा बनाती है। इस कथा के पात्र-निर्माण में भी यही ध्यान है। तुलसीदास ने प्रत्येक पात्र को इस प्रकार चित्रित किया है कि वह अपने क्षेत्र के लोगों के लिए आदर्श रूप है। पात्र-निर्माण में तुलसी का ध्येय लोकशिक्षा है। इसी लोकशिक्षा का स्वरूप निर्धारित करने के उद्देश्य से तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म रामायण से स्वतन्त्रता ली है। यों तो मानस में अनेक स्थलों पर आदर्श लोक-व्यवहार की व्यंजना रक्खी है, पर यहाँ केवल एक ही पद्य से पात्र की चरित्र-रेखा स्पष्ट हो जायगी।

शिव—एहि तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं।
सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं॥[1] (भक्ति)

पार्वती—जनम कोटि लगि रगरि हमारी।
बरौं संभु नतु रहौं कुआँरी॥[2] (पातिव्रत)

दशरथ—रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्रान जाहु बरु बचनु न जाई॥[3] (सत्य-प्रतिज्ञा)

जनक—सुकृत जाइ जौं पन परिहरऊँ।
कुँअरि कुआँरि रहउ का करऊँ॥[4] (सत्य-व्रत)

कौशल्या—जौं केवल पितु आयसु ताता।
तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना।
तौ कानन सत अवध समाना॥[5] (प्रेम और धर्म)

१	तुलसी ग्रन्थावली,	पहला खण्ड	(मानस)	पृष्ठ २६
२	,,	,,	,,	पृष्ठ ३६
३	,,	,,	,,	पृष्ठ १६८
४.	,,	,,	,,	पृष्ठ १०८
५,	,,	,,	,,	पृष्ठ १७६

सुमित्रा—जौं पै सीय रामु बन जाहीं।
अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ॥[1] (धर्म-प्रेम)

सीता—जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते।
प्रिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते ॥[2] (पातिव्रत)

राम—सेवक सदन स्वामि आगमनू।
मंगल मूल अमंगल दमनू ॥[3] (गुरु-प्रेम)

सुनु जननी सोइ सुतु बड़ भागी।
जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥[4] (माता-पिता प्रेम)

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू।
बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ॥[5] (भ्रातृ-प्रेम)

एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं।
कालहु जीति निमिषि महँ आनौं ॥[6] (स्त्री-प्रेम)

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥[7] (प्रजा-प्रेम)

भरत—भरतहिं होइ न राजमदु
बिधि हरिहर पद पाइ।[8] (मर्यादा)

लक्ष्मण—तोरौं छत्रक दण्ड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर, न धरौं धनु भाथ ॥[9] (वीरत्व और भ्रातृ-प्रेम)

१	तुलसी ग्रन्थावली	पहला खंड	(मानस)	पृष्ठ १८६
२	”	”	”	पृष्ठ १८२
३	”	”	”	पृष्ठ १६१
४.	”	”	”	पृष्ठ १७३
५.	”	”	”	पृष्ठ १७३
६	”	”	”	पृष्ठ ३३२
७.	”	”	”	पृष्ठ १८५
८	”	”	”	पृष्ठ २४७
९	”	”	”	पृष्ठ १०६

अद्भुत—

देखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखंड।

रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ॥[1]

शान्त—

लसत मञ्जु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।

ज्ञान सभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंदु ॥[2]

इन रसों की व्यापकता बढ़ाने के लिए तुलसीदास ने प्रत्येक संचारी भाव का संकेत कर दिया है। संचारी भावों के सहयोग से रसोद्रेक और भी तीव्र हो गया है। उदाहरणार्थ तुलसीदास ने किस सरलता से संचारी भावों का संकेत किया है, यह निम्न प्रकार से है:—

१. निर्वेद—अब प्रभु कृपा करहु यहि भाँती। सब तजि भजन करौं दिन राती।
२. ग्लानि—भई गलानि मोरे सुत नाहीं।
३. शंका—शिवहिं विलोक ससंकेउ मारू।
४. असूया—तब सिय देखि भूप अभिलाखे। कूर कपूत मूढ़ मन माखे॥
५. श्रम—थके नयन रघुपति छवि देखो।
६. मद—जग योधा को मोहि समाना।
७. धृति—धरि बड़ धीर राम उर आनी।
८. आलस्य—रघुबर जाय सयन तब कीन्हा।
९. विषाद—सभय हृदय बिनवति जेहि तेही।
१०. मति—उपज्यो ज्ञान बचन तब बोला।
११. चिन्ता—चितवत चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गये नृप किसोर मन चीता॥
१२. मोह—लीन्ह लाय उर जनक जानकी।
१३. स्वप्न—दिन प्रति देखहुँ रात कुसपने। कहऊँ न तोहि मोह बस अपने।
१४. विबोध—विगत निशा रघुनायक जागे।

---

१. तुलसी ग्रन्थावली पहला खंड मानस पृष्ठ ८८
२. ” ” ” पृष्ठ २५०

१५. स्मृति – सुधि न तात सीता कै पाई।
१६. अमर्ष—जो राउर अनुशासन पाऊँ। कंदुक इव ब्रह्मांड उठाऊँ॥
१७ गर्व—भुजबल भूमि भूप बिन कीन्हीं। विपुल बार महिदेवन दीन्हीं॥
१८ उत्सुकता – वेगि चलिय प्रभु आनिए, भुजबल रिपु दल जीति।
१९. अवहित्थ—तन सकोच मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेम लखि परै न काहू।
२०. दीनता—पाहि नाथ कहि पाहि गुसाईं।
२१. हर्ष—जानि राम अनुकूल, सिय हिय हर्ष न जाय कहि।
२२. व्रीड़ा—गुरुजन लाज समाज बड़ि, देखि सीय सकुचानि।
२३. उग्रता—एक बार कालहु किन होई।
२४. निद्रा—ते सिय राम साथरी सोए।
२५. व्याधि -देखो व्याधि असाधि नृप, पर्‍यो धरणि धुनि माथ।
२६. मरण – राम राम कहि राम कहि, बालि कीन्ह तन त्याग।
२७. अपस्मार—अस कहि मुरछि परे महि राऊ।
२८. आवेग—उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥
२९ त्रास – भा निरास उपजी मन त्रासा।
३० उन्माद—लछिमन समझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती॥
३१ जड़ता—मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा। पुलक शरीर पनस फल जैसा॥
३२ चपलता—प्रभुहि चितै पुनि चितै महि, राजत लोचन लोल।
३३. वितर्क—लङ्का निशिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर वासा॥

विशेष—तुलसीदास ने मानस में सभी काव्य के गुण सज्जित कर दिए हैं। अलंकारों का प्रयोग भाव-तीव्रता और काव्य-सौन्दर्य के लिए यथास्थान हुआ है। यह प्रयोग काव्य में पूर्ण स्वाभाविकता और सौन्दर्य के साथ है। प्रायः सभी शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का निरूपण मानस के अंतर्गत है। तुलसी द्वारा प्रयुक्त अलंकारों के उदाहरण बड़ी सरलता से काव्य-ग्रंथों में पाये जा सकते हैं क्योंकि अलंकारों के भाव प्रकाशन में तुलसी की रचना बहुत ही सरल और सरस

> है। तुलसी की रचना में जहाँ अपरिमित गुण हैं वहाँ काव्य के दो एक दोष नगण्य हैं। दोषों में समास दोष, क्लिष्टत्व और अपुष्टार्थ के अन्तर्गत न्यूनपदत्व दोष ही तुलसीदास की रचना में कहीं पाये जा सकते हैं।

तुलसीदास का सबसे लोकप्रिय ग्रंथ मानस है, पर उसका पाठ भी संदिग्ध है। कहा जाता है कि तुलसीदास ने अपने मानस की दो प्रतियाँ की थीं। एक प्रति तो वे अपने साथ मलीहाबाद ले गए थे जहाँ उन्होंने कुछ दिनों निवास किया था। वहाँ उन्होंने यह प्रति किसी चारण कवि को भेंट कर दी थी। यह अब मलीहाबाद निवासी पं० जनार्दन के अधिकार में है। पं० जनार्दन उस प्रति को दिन का उजाला भी नहीं दिखलाना चाहते। ऐसा करने से उस प्रति के 'अपवित्र' हो जाने का भय है। प्रति की जो थोड़ी-बहुत परीक्षा हुई है उससे ज्ञात होता है कि पुस्तक तुलसीदास लिखित नहीं है। उसमें बहुत से क्षेपक भर दिए गए हैं। किन्तु यह अभी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता जब तक कि उसकी पूर्ण परीक्षा न हो जाय। दूसरी प्रति वे अपने साथ राजापुर (बाँदा) लेते गए थे। राजापुर की प्रति चोरी चली गई थी और जब चोर का पीछा किया गया तो उसने उस ग्रन्थ को यमुना में फेंक दिया था। सम्पूर्ण ग्रन्थ में से केवल अयोध्याकांड बहने से बचा लिया गया था, जिस पर पानी के छींटे पड़े हुए हैं और वे छींटे इस वृत्त को घोषित करते हैं। ये दोनो प्रतियाँ तुलसीदास जी द्वारा लिखी कही जाती हैं।

इनके अतिरिक्त एक तीसरी प्रति भी मिली है, जो बनारस के महाराजा बहादुर के राज्य-पुस्तकालय में सुरक्षित है। यह प्रति संवत् १७०४ में अर्थात् तुलसी की मृत्यु के २४ वर्ष बाद तैयार की गई थी। इसी प्रति के आधार पर मानस का एक संस्करण खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर से प्रकाशित किया गया है। पर आश्चर्य तो इस बात का है कि खड्गविलास प्रेस का संस्करण संवत् १७०४ वाली प्रति से अनेक

स्थानों में भिन्न है। कहा नहीं जा सकता कि यह भूल कैसे हो सकती है। आवश्यकता तो इस बात की है कि राजापुर और मलीहाबाद की प्रतियों तथा मानस की अन्य प्राप्त प्रतियों का परीक्षण किया जावे। खेद का विषय है कि जिस ग्रंथ ने तीन सौ वर्षों से अधिक भारतीय हृदय और मस्तिष्क पर शासन किया है, उसका पाठ आज भी अनिश्चित है।

रामचरितमानस की एक और विश्वसनीय प्रति अयोध्या में प्राप्त हुई है। कहा जाता है कि इस प्रति का प्रथम कांड संवत् १६६१ में लिखा गया था। अन्य काण्ड अपेक्षाकृत नवीन हैं। यह प्रति 'सावन कुंज' अयोध्या के बाबा छविकिशोर शरण के संरक्षण में है। पुस्तक के अंत में "संवत् १६६१ वैशाष सुदि ६ बुधवार" लिखा हुआ है। अतः यह ग्रंथ तुलसी की मृत्यु से १९ वर्ष पहले लिखा गया था। तुलसीदास ने अयोध्या ही में मानस का लिखना प्रारम्भ किया था, वे अयोध्या में बहुत दिन रहे भी थे; अतः यह प्रति उनके द्वारा या उन्हीं की देखरेख में लिखी गई कही जाती है। प्रति में अनेक स्थानों पर संशोधन भी है। यह संशोधन भी तुलसीदास के हाथ का कहा जाता है।

काशी के सरस्वती भवन में वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड की एक प्रति सुरक्षित है। उसकी पुष्पिका में प्रतिलिपिकार का नाम और समय दिया हुआ है :—

समाप्तं चेदं महाकाव्यं श्री रामायणमिति ॥ संवत् १६४१ समये मार्ग सुदि रवौ लि० तुलसीदासेन ॥

इससे लेखक का नाम तुलसीदास ज्ञात होता है, जिसने संवत् १६४१ में महाकाव्य रामायण की प्रतिलिपि तैयार की।[1] क्या ये तुलसीदास

---

१. इसका निर्देश वेणीमाधवदास ने भी अपने गोसाईं चरित में किया है —

लिखे बालमीकी बहुरि इकतालिस के मांहि।
मगसर सुदि सतमी रवौ, पाठ करन हित ताहि ॥ गो० च० दोहा ५५

मानसकार तुलसी ही थे ? स्वर्गीय रामदास गौड़ इस सम्बन्ध में लिखते हैं :—

"गोस्वामी जी ने जितनी कविता की है, सभी राम भक्ति पर। इन बातों पर ध्यान रख कर जब हम देखते हैं कि संवत् १६४१ में काशी जी में बैठ कर किसी विद्वान संस्कृतज्ञ "तुलसीदास" ने वाल्मीकीय रामायण की सुन्दर प्रतिलिपि की, हमें यह कहने में कोई विशेष युक्ति नहीं दीखती कि यह तुलसीदास कोई और थे जो गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे, जब किसी अन्य सुलेखक और विद्वान काशीवासी तुलसीदास की कहीं कभी चर्चा भी सुनने में नहीं आई। सुतरां यह न मानने का कोई सुदृढ़ कारण नहीं दीखता कि काशीवासी वाल्मीकीय उत्तरकांड की यह प्रति प्रातःस्मरणीय मानसकार गोस्वामी तुलसीदास की ही लिखी है।"[1]

गौड़ जी का यह मत निस्सन्देह युक्तिसंगत है। इस सम्बन्ध में एक प्रमाण और भी है। तुलसीदास ने अपने मित्र टोडर की मृत्यु पर उनके उत्तराधिकारियों में सम्पत्ति के बटवारे के लिए एक पंचनामा भी लिखा था। इस पंचनामा के ऊपर की छः पंक्तियाँ तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई कही जाती हैं। पंचनामे की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

श्री जानकी वल्लभो विजयते।

द्विश्शरं नाभि संधत्ते द्विस्स्थापयति नाश्रितान्।
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नैव भापते ॥१॥
तुलसी जान्यो दशरथहि धरम न सत्य समान।
रामु तजो जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान ॥१॥

---

1. रामचरित मानस की भूमिका—गोस्वामी जी की लिपि (श्री रामदास गौड़) पृष्ठ ६०-६१

[illegible] ।

[illegible] ॥४॥

यह पचनामा संवत् १६६९ में टोडर की मृत्यु पर तुलसीदास द्वारा लिखा हुआ कहा जाता है।[1] इस पचनामे के विषय में बाबू श्यामसुन्दरदास और डा० बड़थ्वाल लिखते हैं :—

'यह पचनामा ग्यारह पीढ़ी तक टोडर के वंश में रहा। ११वीं पीढ़ी में पृथ्वीपालसिंह ने उसे काशिराज को दे दिया। अब भी यह काशीराज के यहां अच्छी तरह सुरक्षित है।"[2] टोडर तुलसीदास के परम मित्र थे। उनकी मृत्यु पर तुलसीदास को अपना "कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछताना" प्रण तोड़ कर पद्य-रचना करनी पड़ी।[3]

पचनामे की प्रारम्भिक छः पंक्तियां उसी हस्ताक्षर में हैं जिसमें संवत् १६४१ की वाल्मीकि रामायण के उत्तर कांड की प्रतिलिपि है। अतः यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि पंचनामे के लेखक तुलसीदास ही

---

१ गोसाई चरित में भी इसका निर्देश है :—

पाँच मास बीते परे, तेरस सुदी कुआर।

सुत सुत टोडर बीच सुनि, बाँटि दिए घर बार॥ गो० च०, दोहा ८६

२. गोस्वामी तुलसीदास (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) पृष्ठ ११०.

३. चार गाँव को ठकुरो, मन को महा महीप।

तुलसी या कलिकाल में अथयो टोडर दीप॥

तुलसी राम सनेह को सिर पर भारो भार।

टोडर काँधा ना दियो सब कहि रहे उतार॥

तुलसी उर थाला विमल टोडर गुन गन बाग।

ये दोउ नयनन सींचिहौं समुझि समुझि अनुराग॥

राम धाम टोडर गए तुलसी भए असोच।

जियबो मीत पुनीत बिनु यही जानि संकोच॥

मानसकार तुलसी ही थे ? स्वर्गीय रामदास गौड़ इस सम्बन्ध में लिखते हैं :—

"गोस्वामी जी ने जितनी कविता की है, सभी राम भक्ति पर। इन बातों पर ध्यान रख कर जब हम देखते हैं कि संवत् १६४१ में काशी जी में बैठ कर किसी विद्वान संस्कृतज्ञ "तुलसीदास" ने वाल्मीकीय रामायण की सुन्दर प्रतिलिपि की, हमें यह कहने में कोई विशेष युक्ति नहीं दीखती कि यह तुलसीदास कोई और थे जो गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे, जब किसी अन्य सुलेखक और विद्वान काशीवासी तुलसीदास की कहीं कभी चर्चा भी सुनने में नहीं आई। सुतरां यह न मानने का कोई सुदृढ़ कारण नहीं दीखता कि काशीवासी वाल्मीकीय उत्तरकांड की यह प्रति प्रातःस्मरणीय मानसकार गोस्वामी तुलसीदास की ही लिखी है।"[1]

गौड़ जी का यह मत निस्सन्देह युक्तिसंगत है। इस सम्बन्ध में एक प्रमाण और भी है। तुलसीदास ने अपने मित्र टोडर की मृत्यु पर उनके उत्तराधिकारियों में सम्पत्ति के बटवारे के लिए एक पंचनामा भी लिखा था। इस पंचनामा के ऊपर की छः पंक्तियाँ तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई कही जाती हैं। पंचनामे की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

श्री जानकी वल्लभो विजयते।

द्विश्शरं नाभि संधत्ते द्विस्स्थापयति नाश्रितान्।
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नैव भाषते ॥१॥

तुलसी जान्यो दशरथहि धरम न सत्य समान।
रामु तजो जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान ॥१॥

---

1. रामचरित मानस की भूमिका—गोस्वामी जी की लिपि (श्री रामदास गौड़) पृष्ठ ६०-६१

यह पंचनामा संवत् १६६९ में टोडर की मृत्यु पर तुलसीदास द्वारा लिखा हुआ कहा जाता है।[1] इस पंचनामे के विषय में बाबू श्यामसुन्दरदास और डा० बड़थ्वाल लिखते हैं :—

'यह पंचनामा ग्यारह पीढ़ी तक टोडर के वंश में रहा। ११वीं पीढ़ी में पृथ्वीपालसिंह ने उसे काशिराज को दे दिया। अब भी यह काशिराज के यहां अच्छी तरह सुरक्षित है।"[2] टोडर तुलसीदास के परम मित्र थे। उनकी मृत्यु पर तुलसीदास को अपना "कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछिताना" प्रण तोड़ कर पद्य-रचना करनी पड़ी।[3]

पंचनामे की प्रारम्भिक छः पंक्तियां उसी हस्ताक्षर में हैं जिसमें संवत् १६४१ की वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड की प्रतिलिपि है। अतः यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि पंचनामे के लेखक तुलसीदास ही

१ गोसाईं चरित में भी इसका निर्देश है :—

पांच माघ बीते परे, तेरस सुदी कुवार।
दुग सुत टोडर बीच सुनि, बाँटि दिए पर गार॥ गो० च०, दोहा ८८

२ गोस्वामी तुलसीदास (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) पृष्ठ ११०

३ चार गाँव को ठाकुरो, मन को महा महीप।
तुलसी या कलिकाल में अथयो टोडर दीप॥
तुलसी राम सनेह को सिर पर भारी भार।
टोडर कांधा ना दियो सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर थाला विमल टोडर गुन गन बाग।
ये दोउ नयनन सींचिहौं समुझि समुझि अनुराग॥
राम धाम टोडर गए तुलसी भए असोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु यही जानि सकोच॥

तुलसीदास और राजनीति

तुलसीदास ने मानस में लोक-शिक्षा का बहुत व्यापक रूप रक्खा है। उन्होंने केवल व्यष्टि के लिए ही नहीं, समष्टि के लिए ऐसे नियमों की रूप-रेखा निर्मित की जो धर्म एवं समाज के लिए हितकर सिद्ध हो। वे एक महान् सुधारक थे। उन्होंने अपने आराध्य की महत्वपूर्ण कथा में जीवन के अंगो को घटित करते हुए आदर्श की ओर संकेत करने का स्थान निकाल ही लिया। उन्होंने जिस कुशलता से उपदेश का अंश कथा में मिलाया है, उससे शिक्षा और कला ने एक ही रूप धारण कर लिया है, यही कवि की प्रतिभा का द्योतक है।

तुलसीदास ने राजनीति के सिद्धान्तो का निरूपण अधिकतर मानस ही में किया है। पहले तो उन्होंने समकालीन परिस्थितियों का चित्रण कर—कलियुग के प्रभाव से—राजनीति की दुरवस्था का रूप खड़ा किया है, बाद में राम-राज्य वर्णन में राजनीति के आदर्श की ओर संकेत किया है। मानस में अनेक स्थानो पर राजनीति के सिद्धान्तो के दर्शन होते हैं। तत्कालीन राजनीति के चित्र चार स्थानो पर प्रधान रूप से मिलते है। दोहावली, कवितावली, विनय-पत्रिका और मानस में ये स्थल इस प्रकार हैं :—

(१) दोहावली

गोंड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल ॥[1]

(२) कवितावली

एक तो कराल कलिकाल सूलमूल तामें,
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।

[1] तुलसी ग्रन्थावली दूसरा खंड दोहावली दोहा ५५६ पृ० १४१

(१) राजा ईश्वर का अंश है :—

साधु सुजान सुशील नृपाला । ईश अंश भव रम कृपाला ॥[1]

(२) राजा का धर्म प्रजा का सुख ही है :—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥[2]

(३) राजा में समदृष्टि आवश्यक है :—

मुखिया मुखु सो चाहिए खान पान कहुँ एक ।
पालै पोषै सकल अंग तुलसी सहित विवेक ॥[3]

(४) राजा के कार्यों के लिए प्रजा-जन की सम्मति अपेक्षित है :—

मुदित महीपति मन्दिर आए । सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए ।
कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए । भूप सुमंगल बचन सुनाए ॥
प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू । रामहिं राय देहु जुवराजू ।
जौं पाँचहि मत लागइ नीका । करहु हरषि हिय रामहि टीका ॥[4]

(५) राजा में चार नीतियाँ होनी चाहिए :—

साम दाम अरु दण्ड विभेदा । नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा ॥[5]

(६) राजा का सत्यव्रत होना आवश्यक है :—

रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहु वरु बचनु न जाई ॥[6]

---

१ तुलसी ग्रन्थावली पहला खण्ड (मानस) पृष्ठ १७
२ " " " पृष्ठ १८५
३. " " " पृष्ठ २८०
४. " " " पृष्ठ १५६
५. " " " पृष्ठ ३८८
६. " " " पृष्ठ १६८

वेद-धर्म दूरि गए, भूमि चोर भूप भए,
साधु सीद्यमान जानि रीति पाप पीन की ॥[1]

(२) विनयपत्रिका

राज समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परिमिति पति, हेतुवाद हठि हेरि हई है ॥[2]

रावण के शासन की अनीतियों से तुलसीदास ने अपने समय में यवनों की राजनीतिक अनीतियों का संकेत बड़े कौशल से किया है :—

भुज बल विश्व वश्य करि, राखेसि कोउ न स्वतन्त्र।
मंडलीक मणि लंक पति, राज करइ निज मंत्र ॥ २१३ ॥
देव यक्ष गंधर्व नर, किन्नर नाग कुमारि।
जीति बरी निज बाहुबल, बहु सुन्दर बरनारि ॥ २१० ॥

... ...

जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला, सो सब करहिं वेद प्रतिकूला।
जेहि जेहि देश धेनु द्विज पावहिं, नगर गाँव पुर आग लगावहिं ॥

... ...

जप योग विरागा तप मख भागा, श्रवण सुनै दससीसा।
आपुन उठि धावै, रहै न पावै, धरि सब घालै खीसा ॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा, धर्म सुनिय नहिं काना।
तेहि बहु विधि त्रासै देश निकासै, जो कह वेद पुराना ॥

बरनि न जाय अनीति, घोर निशाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिनके पापहिं कवनि मिति ॥ २१५॥

राजनीति की इन दु:खपूर्ण परिस्थितियों से ऊब कर तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर राजनीति के आदर्शों का निरूपण किया है।

१. तुलसी ग्रन्थावली दूसरा खंड (कवितावली) छंद १७७, पृष्ठ २४०
२. " " (विनय-पत्रिका) छंद १३६, पृष्ठ ५३३

(१) राजा ईश्वर का अंश है :—

साधु सुजान सुशील नृपाला। ईश अंश भव परम कृपाला ॥[1]

(२) राजा का धर्म प्रजा का सुख ही है :—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥[2]

(३) राजा में समदृष्टि आवश्यक है :—

मुखिया मुखु सो चाहिए खान पान कहुँ एक।
पालै पोषै सकल अंग तुलसी सहित विवेक ॥[3]

(४) राजा के कार्यों के लिए प्रजा-जन की सम्मति अपेक्षित है :—

मुदित महीपति मन्दिर आए। सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए।
कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमंगल बचन सुनाए ॥
प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू। रामहिं राय देहु जुवराजू।
जौं पाँचहि मत लागइ नीका। करहु हरषि हिय रामहि टीका ॥[4]

(५) राजा में चार नीतियां होनी चाहिए :—

साम दाम अरु दण्ड विभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा ॥[5]

(६) राजा का सत्यव्रत होना आवश्यक है :—

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु बरु बचनु न जाई ॥[6]

१	तुलसी ग्रन्थावली	पहला खण्ड	(मानस)	पृष्ठ १७
२	”	”	”	पृष्ठ १८५
३.	”	”	”	पृष्ठ २८०
४.	”	”	”	पृष्ठ १५६
५	”	”	”	पृष्ठ ३८८
६.	”	”	”	पृष्ठ १६८

(१) राजा ईश्वर का अंश है :—

साधु सुजान सुशील नृपाला । ईश अंश भव परम कृपाला ॥[1]

(२) राजा का धर्म प्रजा का सुख ही है :—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥[2]

(३) राजा में समदृष्टि आवश्यक है :—

मुखिया मुखु सो चाहिए खान पान कहुँ एक ।
पालै पोषै सकल अंग तुलसी सहित विवेक ॥[3]

(४) राजा के कार्यों के लिए प्रजा-जन की सम्मति अपेक्षित है :—

मुदित महीपति मन्दिर आए । सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए ।
कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए । भूप सुमंगल बचन सुनाए ॥
प्रमुदित मोंहि कहेउ गुरु आजू । रामहिं राय देहु जुवराजू ।
जौं पाँचहि मत लागइ नीका । करहु हरषि हिय रामहि टीका ॥[4]

(५) राजा में चार नीतियां होनी चाहिए :—

साम दाम अरु दण्ड विभेदा । नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा ॥[5]

(६) राजा का सत्यव्रत होना आवश्यक है :—

रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहु वरु बचनु न जाई ॥[6]

१	तुलसी ग्रन्थावली	पहला खण्ड	(मानव)	पृष्ठ १३
२	”	”	”	पृष्ठ १८५
३.	”	”	”	पृष्ठ २८०
४.	”	”	”	पृष्ठ १५६
५	”	”	”	पृष्ठ ३८८
६.	”	”	”	पृष्ठ १६८

(६) राजा को निर्भीक और स्वावलंबी होना चाहिए :—

(अ) निज भुज बल मैं बैरु बढ़ावा । देइहौं उतरु जो रिपु चढ़ि आवा ॥[1]

(आ) जौं रन हमहिं पचारै कोऊ । लरहि सुखेन काल किन होऊ ॥[2]

(इ) निसिचर हीन करौं महि भुज उठाय पन कीन्ह ।[3]

(७) राजधर्म में आलस्य और असावधानी अक्षम्य है:—

बोली वचन क्रोध करि भारी । देस कोस कै सुरति बिसारी ॥
करसि पान सोवसि दिनु राती । सुधि नहिं तव सिर पर आराती ॥
राजुनीति बिनु धन बिनु धर्मा । हरिहि समरपे बिनु सतकर्मा ॥
विद्या बिनु विवेक उपजाए । श्रम फल पढ़े किए अरु पाए ॥
संग तें जती कुमंत्र तें राजा । मान तें ग्यान पान तें लाजा ॥
प्रीति प्रनय बिनु मद तें गुनी । नासहि वेग नीति असि सुनी ॥
रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिअ न छोट करि ।
अस कहि विविध विलाप, करि लागी रोदन करन ॥[4]

(८) राज्य में प्रजा की समृद्धि आवश्यक है : –

(अ) विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा । प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ।[5]

(आ) पंक न रेनु सोह असि धरनी । नीति निपुन नृप की जसि करनी ।[6]

(९) रक्तपात यथासम्भव बचाया जावे :—

मंत्र कहौं निज मति अनुसारा । दूत पठइअ बालि कुमारा ॥
काजु हमार तासु हित होई । रिपु सन करेहु बतकही सोई ॥[7]

१	तुलसी ग्रन्थावली	पहला खंड	(मानस)	पृष्ठ ४०७
२.	,,	,,	,,	,, १२१
३.	,,	,,	,,	,, २६३
४.	,,	,,	,,	,, ३०४
५.	,,	,,	,,	,, ३३२
६	,,	,,	,,	,, ३३२
७.	,,	,,	,,	,, ३७७

(आ) नारि पाइ फिरि जाहि जो, तो न बढ़ाइय रारि ।
नाहिं त सन्मुख समर महँ, तात करिय हठ मारि ॥[1]

(१०) वैर उसी से हो जो बुद्धि-बल से जीता जा सके :—

नाथ बैर कीजे ताही सों । बुधि बल सकिअ जीति जाही सों ॥[2]

(११) राजा को सभी कार्यों का श्रेय अपने सहायकों को देना चाहिए :—

(अ) सुनु कपि तोहि समान उपकारी । नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा । सन्मुख होइ न सकत मन मोरा ॥[3]

(आ) तुम्हरे बल मैं रावनु मारा । तिलकु विभीषन कहँ पुनि सारा ॥[4]

(१२) राजा को आश्रम-धर्म का पूर्ण पालन करना चाहिए :—

(अ) अन्तहु उचित नृपहिं बनवासू । वय विलोकि हिय होइ हरासू ॥[5]

(आ) संत कहहिं अस नीति दसानन । चौथे पन जाइहि नृप कानन ॥[6]

(१३) राजा को स्वदेश स्वर्ग से भी अधिक प्रिय होना चाहिए :—

जद्यपि सब वैकुंठ बखाना । वेद पुरान विदित जग जाना ।
अवध सरिस प्रिय मोंहि न सोऊ । यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ ॥[7]

इन उद्धरणों के अतिरिक्त मानस मे ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जहाँ राजनीति का वर्णन बड़े सरल शब्दों मे घटनाओं के वर्णन मे किया

---

१. तुलसी ग्रन्थावली पहला खंड (मानस) पृष्ठ ३७४
२ ,, ,, ,, ,, ३७२
३ ,, ,, ,, , ३५८
४ ,, ,, ,, ,, ४३२
५ , ,, , ,, २७६
६ ,, ,, , ३७३
७ ,, , ४५०

गया है। संक्षेप में राजा को प्रजा का निष्पन्न पालन, और दुष्टों का नाश करना चाहिए। उसे सत्यव्रती, निर्भीक, स्वावलम्बी, मेधावी, पराक्रमी, और स्वदेश-प्रेमी होना चाहिए।

तुलसीदास और समाज

तुलसीदास ने समाज की मर्यादा पर विशेष लिखा है। धर्म का पालन बिना समाज के मर्यादा-पालन के नहीं हो सकता। समाज के दो भाग। हैं—व्यक्तिगत और सार्वजनिक। इन दोनों क्षेत्रों में तुलसीदास ने अपनी असाधारण काव्य-शक्ति से महान संदेश दिया है। रामचरितमानस के पात्रों में तो लोक-शिक्षा का रूप प्रधान रूप से है। पारिवारिक जीवन का आचार मानस में यथास्थान सज्जित है। पिता, पुत्र, माता, पति, पत्नी, भाई, सखा, सेवक, पुरजन आदि का क्या पारस्परिक व्यवहार होना चाहिए, इस सबका उत्कृष्ट निरूपण तुलसीदास ने अपनी कुशल लेखनी से किया है। वाल्मीकि रामायण में मानवी भावनाओं के निरूपण के लिए आदि कवि ने अनेक प्रसंग लिखे हैं, जो स्वाभाविक होते हुए भी लोक-शिक्षा के प्रचारक नहीं हैं। लक्ष्मण का क्रोध, दशरथ के वचन आदि औचित्य का अतिक्रमण करते हैं। पर तुलसीदास ने ऐसे एक पात्र की भी कल्पना नहीं की, जिससे दुर्वासनाओं और अनाचारों की वृद्धि हो। उन्होंने तामसी पात्रों को भी सद्गुणों की वृद्धि करते हुए चित्रित किया है। सात्विक भावनाओं से भरे हुए पात्रों को तो उन्होंने मर्यादा का आधार ही अंकित कर दिया है। पारिवारिक जीवन के कुछ चित्र इस प्रकार है :—

(राम) वरष चारिदस विपिन बसि, करि पितु वचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान॥[1]

---

१. तुलसी ग्रन्थावली, पहला खंड (मानस) पृष्ठ १७५

(लक्ष्मण) उतरु न आवत प्रेम बस, गहे चरन अकुलाइ ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह, तजहु तो कहा बसाइ ॥[1]

(सीता) खग मृग परिजन नगर बनु, बलकल विमल दुकूल ।
नाथ साथ सुरसदन सम, परन साल सुखमूल ॥[2]

(भरत) बैठे देखि कुसासन, जटा मुकुट कृस गात ।
राम-राम रघुपति जपत, स्रवत नयन जलजात ॥[3]

(दशरथ)
सो तनु राखि करबि मैं काहा । जेहि न प्रेम, प्रनु मोर निबाहा ॥[4]

(कौशल्या)
धीरजु धरिअ त पाइअ पारू । नाहिं त बूड़िहि सब परिवारू ।
जौं जिय धरिअ विनय पिय मोरी । राम लखनु सिय मिलिहिं बहोरी ॥[5]

(सुमंत) तात कृपा करि कीजिअ सोई । जाते अवध अनाथ न होई ।
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा । तात धरम मतु तुम्ह सब सोधा ॥[6]

(निषाद) नाथ आजु मैं काह न पावा । मिटे दोष दुख दारिद दावा ।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी । आजु दीन्ह विधि बनि भलि भूरी ॥[7]

(हनुमान) सुनि प्रभु वचन बिलोकि मुख, हृदय हरषि हनुमंत ।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि-त्राहि भगवंत ॥[8]

(प्रजा) सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं । राम लखन सिय बिनु सुख नाहीं ॥
जहाँ राम तहँ सबुइ समाजू । बिन रघुबीर अवध नहिं काजू ॥[9]

१	तुलसी ग्रन्थावली	पहला खण्ड	(मानस)	पृष्ठ १८५
२	”	”	”	पृष्ठ १८३
३	”	”	”	पृष्ठ ४३८
४	”	”	”	पृष्ठ २१८
५	”	”	”	पृष्ठ [illegible]
६	”			पृष्ठ १६[illegible]
७		”	”	पृष्ठ [illegible]
८	”	”	”	पृष्ठ ३[illegible]
९	”	”	”	पृष्ठ [illegible]

(विभीषण) जिन्ह पायन्ह के पादुकन्ह, भरत रहे मन लाइ।
ते पद आज बिलोकिहौं, इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥ [1]

इन पात्रो की चरित्र-रेखा के साथ अन्य अनेक पात्रों में तुलसीदास ने जिस आदर्शवाद का स्तर (Standard) निर्धारित किया है, वह समाज को सयमशील बनाने में बहुत सहायक हुआ। यही कारण है कि हिन्दू जीवन मे मानस के पात्र आज भी उत्साह और शक्ति की स्फूर्ति पहुँचा रहे हैं।

उत्तर कांड मे तुलसी ने राम राज्य मे समाज का जो चित्र खींचा है, वह वर्णाश्रम धर्म से युक्त है। जब समाज में इस धर्म का पालन किया जावेगा, तभी उसमे सुख-समृद्धि होगी और वह राम-राज्य के समान हो जावेगा। तुलसीदास ने राम-राज्य में आदर्श समाज का जो वर्णन किया है वह इस प्रकार है :—

बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई॥
बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखी, नहिं भय शोक न रोग॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती, चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।
सब उदार सब पर उपकारी। विप्र चरण सेवक नर नारी॥
एक नारि व्रत रह सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥
दण्ड यतिन कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जितहु मनहि सुनिअ जग रामचन्द्र के राज॥ [2]

बालकांड मे भी समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए आदरपूर्ण स्थान का निर्देश है। सीता के स्वयम्बर मे पुरजनो को यथास्थान बिठलाने का निर्देश करते समय तुलसीदास ने लिखा है :—

१ तुलसी ग्रन्थावली पहला खड मानस पृष्ठ ३६०
२ " " " पृष्ठ ४५०

देखी जनक भीर भै भारी। सुचि सेवक सब लिए हँकारी।
तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू। आसन उचित देहु सब काहू॥
कहि मृदु बचन विनीत तिन्ह, बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि॥[1]

तुलसी ने नारि जाति के प्रति बहुत आदर-भाव प्रकट किया है। पार्वती, अनुसुइया, कौशल्या, सीता, ग्राम-वधू आदि की चरित्र रेखा पवित्र और धर्म पूर्ण विचारों से निर्मित की गई है। कुछ आलोचकों का कथन है कि तुलसीदास ने नारी जाति की निन्दा की है और उन्हें "ढोल, गँवार" की श्रेणी में रक्खा है। किन्तु यदि मानस पर निष्पक्ष दृष्टि डाली जाय तो ज्ञात होगा कि नारी के प्रति भर्त्सना के ऐसे प्रमाण उसी समय उपस्थित किए गए हैं, जब नारी ने धर्म के विपरीत आचरण किया है। अथवा निन्दात्मक वाक्य कहने वाले व्यक्ति वस्तु-स्थिति देखते हुए नीतिमय वाक्य कहते हैं। ऐसी स्थिति में वे कथन तुलसीदास के न होकर परिस्थिति-विशेष में पड़े हुए व्यक्तियों के समझने चाहिए। जैसे—

(१) ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥[2]

(२) नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं। अवगुण आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक अशौच, अदाया॥[3]

पहली उक्ति सागर ने अपनी क्षुद्रता बतलाने के लिए राम से कही और दूसरी रावण ने अपनी महत्ता बतलाने के लिए मन्दोदरी से कही।

तुलसीदास ने समाज का आदर्श इसीलिए और भी लिखा, क्योंकि उन्होंने अपने समय में समाज की दुरवस्था देखी थी। समाज-सुधार के लिए ही उन्होंने रामायण की चरित्र-रेखा को अपने मानस में

---

[1] तुलसी ग्रन्थावली पहला खण्ड (मानस) पृष्ठ १०४
[2] " " " पृष्ठ ३६६
[3] " " " ३५६

परिष्कृत कर नवीनता के साथ रख दिया। तुलसीदास की यही मौलिकता थी। उन्होंने अपने मानस में तत्कालीन समाज की दशा का चित्रण बहुत स्पष्टता के साथ किया है :—

दोहावली—बादहिं सूद्र द्विजन सन, "हम तुम तें कछु घाटि ?
जानहिं ब्रह्म सो बिप्रवर" आँखि दिखावहिं डाटि ॥[1]

कवितावली—बबुर बहेरे को बनाइ बाग लाइयत,
रूँधिबे को सोई सुरतरु काटियत है।
गारी देत नीच हरिचन्द हू दधीच हू को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियत है ॥
आप महापातकी, हँसत हरिहर हू को,
आपु है अभागी भूरि भागी डाटियत है।
कलि को कलुष मन मलिन किये महत,
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत है ॥[2]

विनय-पत्रिका

आस्रम बरन धरम बिरहित जग, लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखण्ड पाप रत, अपने अपने रंग रई है ॥
साति सत्य सुभरीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है ॥[3]

मानस

बरन धरम नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नरनारी।
द्विज स्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुशासन ॥[4]

1 तुलसी ग्रन्थावली दूसरा खंड (दोहावली) पृष्ठ १५२
२ ,, ,, (कवितावली) पृष्ठ २२६
३ ,, दूसरा खण्ड (विनयपत्रिका) पृष्ठ ५३२
४ ,, पहला खण्ड (मानस) पृष्ठ ४८२

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा।
व्यापक विश्व रूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपालु प्रनत अनुरागी॥[१]

यहाँ एक अनीह और अरूप ब्रह्म भक्तों के लिए अवतार लेता है। अद्वैतवाद के रूप में उनका ब्रह्म इस प्रकार है:—

(अ) गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।[२]
(आ) नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥[3]
(इ) व्यापकु एकु ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥[४]
(ई) ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥[५]
(उ) निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहम्।
चिदाकाशमाकाश वासं भजेऽहम्॥[६]

इसी अद्वैत ब्रह्म को जब तुलसीदास विशिष्ट बनाते हैं तब वे सती से प्रश्न कराते है:—

ब्रह्म जो व्यापकु बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद॥[७]

और इसका उत्तर वे आगे चल कर इस प्रकार देते हैं:—

सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा। गावहि मुनि पुरान बुध वेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम-बस सगुन सो होई॥

इस पद से ज्ञात होता है कि वे शंकर के अद्वैतवाद के प्रतिपादक होते हुए भी उसे 'भ्रम' मानते थे। जो हो, विनयपत्रिका मे 'दर्शन' के कुछ सिद्धान्तो का निर्देश अवश्य है, पर उसमे अधिकतर विनय और प्रेम का अंश ही अधिक है।

मानस मे तुलसी का दर्शन बहुत विस्तृत, व्यापक और परिमार्जित है। उन्होने घटना-प्रसंग मे भी दर्शन का पुट दे दिया है। जहाॅ कहीं भी उन्हे भावनाओ के बीच मे अवकाश मिला है, उन्होने दर्शन की चर्चा छेड़ दी है। बालकांड के प्रारम्भ मे तो ईश्वर-भक्ति का निरूपण करते हुए उन्होने अपनी दार्शनिकता के अंग-अंग स्पष्ट किए हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण-निषाद संवाद, राम-नारद संवाद, वर्षा-शरद वर्णन, राम-लक्ष्मण संवाद, गरुड़ और कागभुशुंडि संवाद मे तुलसी ने अपनी दार्शनिकता का परिचय दिया है।

उनका दर्शन किस 'वाद' के अंतर्गत आता है, यह विवाद-ग्रस्त है। कुछ समालोचको ने इधर सिद्ध किया है कि तुलसी अद्वैतवाद के पोषक थे, कुछ कहते है कि वे विशिष्टाद्वैतवादी थे। किन्तु अभी तक कोई भ. मत स्पष्ट नहीं हो पाया।

तुलसी के दर्शन सम्बन्धी अवतरणो को देखने से ज्ञात होता है कि वे राम को "विधि हरि शंभु नचावन हारे" के रूप मे मानते थे। अतः वे आदि ब्रह्म हैं। इस ब्रह्म के लिए उन्होने उन सभी विशेषणो का प्रयोग किया है, जो अद्वैतवाद के ब्रह्म के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इस अद्वैतवाद की व्याख्या मे माया के लिए भी स्थान है, जिसका वर्णन तुलसीदास ने अनेक बार किया है। यह तो स्पष्ट है कि तुलसीदास वैष्णव थे, अत वे अवतारवादी भी थे। इसका प्रमाण उनके मानस मे अनेक बार है। वे अपने ब्रह्म को अद्वैतवाद के शब्दो मे तो व्यक्त करते हैं, पर उसे विशिष्टाद्वैत के गुण से युक्त कर देते है :—

एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानन्द परधामा ।

ब्यापक विश्व रूप भगवाना । तेहि धरि देह चरित कृत नाना ॥

सो केवल भगतन हित लागी । परम कृपालु प्रनत अनुरागी ॥[1]

यहाँ एक अनीह और अरूप ब्रह्म भक्तों के लिए अवतार लेता है। अद्वैतवाद के रूप में उनका ब्रह्म इस प्रकार है :—

(अ) गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न ।[2]

(आ) नाम रूप दुइ ईस उपाधी । अकथ अनादि सुसामुझि साधी ॥[3]

(इ) ब्यापकु एकु ब्रह्म अविनासी । सत चेतन घन आनँद रासी ॥[4]

(ई) ईश्वर अंश जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥[5]

(उ) निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहम् ।

चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहम् ॥[6]

इसी अद्वैत ब्रह्म को जब तुलसीदास विशिष्ट बनाते हैं तब वे सती से प्रश्न कराते हैं :—

ब्रह्म जो ब्यापकु बिरज अज, अकल अनीह अभेद ।

सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत बेद ॥[7]

और इसका उत्तर वे आगे चल कर इस प्रकार देते हैं :—

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ।

अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम-बस सगुन सो होई ॥

[1] तुलसी ग्रंथावली पहला खण्ड (मानस) पृष्ठ १०
[2] [illegible]
[3] [illegible]
[4] [illegible]
[5] [illegible]
[6] [illegible]
[7] [illegible]

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे । जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे ।
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा । तेहि किमि कहिय बिमोह प्रसंगा ॥

... ...

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीस ग्यान गुन धामू ॥
जासु सत्यता तें जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया ॥
रजत सीप महुँ भास जिमि, यथा भानु कर वारि ।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकै कोउ टारि ॥[1]
एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई । जदपि असत्य देत दुखु अहई ।
जौ सपने सिर काटै कोई । बिन जागे न दूरि दुख होई ॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई । गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई ॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा । मति अनुमान निगम अस गावा ॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना । कर बिनु करम करै बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ योगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा । गहै घ्रान बिनु बास असेखा ॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाय नहिं बरनी ॥
जेहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोइ दशरथ सुत भगतहित, कोसलपति भगवान ॥[2]

इस प्रकार तुलसीदास ने अद्वैतवाद के भीतर ही विशिष्टाद्वैतवाद की सृष्टि कर दी है। रामचरितमानस के समस्त अवतरणों को देखने से ज्ञात होता है कि तुलसीदास अद्वैतवाद को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हुए भी रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत के अनुयायी थे। उन्होंने सभी स्थलों पर राम नाम के साथ नारायण के गुणों का समन्वय कर दिया है। पं० रामचन्द्र शुक्ल का भी यही मत है। वे लिखते हैं :—

"साम्प्रदायिक दृष्टि से तो वे रामानुजाचार्य के अनुयायी थे ही,

१ तुलसी ग्रन्थावली पहला खंड (मानस) पृष्ठ ५६०-५५
२ ,, ,, ,, पृष्ठ ५५

जिनका निरूपित सिद्धान्त भक्तों की उपासना के बहुत अनुकूल दिखाई पड़ा।"[1]

तुलसीदास ने ब्रह्म की व्यापकता के लिए उसे अद्वैतवाद का रूप अवश्य दिया और उसे माया से समन्वित किया भी, पर वे उसे उस रूप मे ग्रहण नहीं कर सके। वे भक्त थे, अतः भक्ति का सहारा लेकर उन्हें ब्रह्म को विशिष्टाद्वैत मे निरूपित करना ही पड़ा। इसीलिए जहाँ कहीं भी उन्हें अद्वैतवाद से ब्रह्म-निरूपण की आवश्यकता पड़ी, वहाँ उसके बाद उन्होंने उसे भक्तिमार्ग का आराध्य भी मान लिया। यह इसीलिए किया गया, क्योंकि वे अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट बतला देना चाहते थे। अरण्य-कांड मे जब लक्ष्मण ने श्रीरामचन्द्र से पूछा—

"ईश्वर जीवहिं भेद प्रभु, कहहु सकल समुझाइ ॥[2]

उस समय राम ने--

माया ईस न आपु कहँ जान कहिअ सो जीव।
बन्ध मोच्छ प्रद सर्वपर माया प्रेरक सीव ॥[3]

कहकर भी यह स्पष्ट घोषित किया –

जातें बेगि द्रवौं मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई ॥[4]

पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के मतानुसार "दार्शनिक सिद्धान्तों मे श्री गोस्वामी जी श्री शंकराचार्य के अद्वैतवाद के अनुगामी हैं।"[5] अपने प्रमाण मे उन्होंने मानस के प्रायः सभी दर्शन से सम्बन्ध रखने वाले स्थल उपस्थित कर दिए हैं। उनके विचारों से विषय बहुत स्पष्ट हो जाता है, पर यह सिद्ध नहीं हो पाता कि तुलसीदास विशिष्टाद्वैत के समर्थक नहीं थे।

१ तुलसी ग्रन्थावली तीसरा खंड
२ पहला खंड मानस पृ० [illegible]
३ " पृ० [illegible]
४ पृ० [illegible]
५ तीसरा खंड पृ० [illegible]
पृ० [illegible]

तुलसीदास ने अद्वैतवाद का निरूपण अवश्य किया है, पर वे उसे अपना मत नहीं मान सके। मानस में अद्वैतवाद की भावना लाने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :—

(१) तुलसीदास ने राम के ब्रह्मत्व का संकेत ही शिव-पार्वती के संवाद में दे दिया था। उसी तत्व-निरूपण में उन्हें राम को विशिष्टाद्वैत के विशेषणों से संयुक्त करना पड़ा।

(२) तुलसीदास धार्मिक सिद्धान्तों में बहुत सहिष्णु थे। अतः उन्होंने अद्वैतवादियों और विशिष्टाद्वैतवादियों का विरोध दूर करने के लिये राम के व्यक्तित्व में दोनों 'वादों' को सम्मिलित कर दिया।

(३) तुलसीदास रामानन्द की शिष्य-परम्परा में थे। रामानन्द की शिष्य-परम्परा में अध्यात्म रामायण आधारभूत धार्मिक पुस्तक थी।[1] अध्यात्म रामायण की समस्त कथा में अद्वैतवाद की भावना है। अतः तुलसीदास ने जब अध्यात्म रामायण को अपने मानस का आधार बनाया तो वे उसकी अद्वैत भावना की अवहेलना भी नहीं कर सके। यही कारण है कि मानस में स्थान-स्थान पर अद्वैत भावना का निरूपण है। इस निरूपण के बाद यह कहा जा सकता है कि तुलसीदास विशिष्टाद्वैतवादी थे।

तुलसीदास ने जिस ब्रह्म का निरूपण किया है उसकी मर्यादा विशिष्टाद्वैत से ही निर्मित है।

सियाराममय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

---

1 It has been frequently assumed that Ramananda taught the Visishtadvaita system of Ramanuja noeof the characteristics of the whole movement that springs from him is a constant use of advaita phrases, a clinging to advaita concepts while holding hard by the personality of Ram and we remember the advaita theology of the Adhyatma Ramayana

An Outline of the Religious Literature of India, page 326.

इस चौपाई में विशिष्टाद्वैत की प्रधान भावना सन्निहित है। चित्, अचित् ये ईश्वर के ही रूप हैं। ये उससे किसी प्रकार भी अलग नहीं रह सकते। जब ईश्वर आदि रूप में रहता है, तब चित् और अचित् (संसार) सूक्ष्म रूप से ईश्वर में व्याप्त रहता है और जब ईश्वर अपना विकास करता है तब वह स्थूल रूप धारण करता है। अतः चित् अचित् में ईश्वर की व्याप्ति सब काल के लिए है।[1] इसी में 'सिया राममय सब जग जानी' की सार्थकता है।

विशिष्टाद्वैत के अनुसार ईश्वर का स्वरूप पाँच प्रकार का है, पर व्यूह, विभव, अंतर्यामी और अर्चावतार। तुलसीदास ने अपने ब्रह्म राम को इन्हीं पांच रूपों में चित्रित किया है :—

१. पर—यह वासुदेव स्वरूप है। यह ऐसा रूप है, जो परमानन्दमय है और अनन्त है। 'मुक्त' और 'नित्य' जीव उसी में लीन हैं। यह षड्गुण्य विग्रह (ऐश्वर्य, शक्ति, तेज, ज्ञान, बल और वीर्य से युक्त शरीर) रूप है। इसीलिए राम को यही रूप दिया गया है और उनके प्रत्येक कार्य पर देवता (नित्य जीव) फूल बरसाते और अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं।[2]

---

1 According to this school, matter and soul are insepara-ble from God at all times. Before the Evolution of the [illegible] they to m the attributes of God, remaining in their [illegible] (subtle form), and after Evolution they [illegible] sthula (gross form), so that the distinction [illegible] as regards the *Condition* of [illegible] these two aspects, is styled सूक्ष्मचिद- [illegible] न चिदचिद्विशिष्टं ब्रह्म, and the term [illegible] *Brahman* [illegible]

[illegible]

2 [illegible] रामचरित मानस, बालकांड, पृष्ठ [illegible]

गगन विमल संकुल सर जूथा। गावहिं गुन गंधर्व बरूथा॥
बरसहिं सुमन सुअंजलि साजी। गहगहि गगन दुंदुभी बाजी॥

इस पर-रूप का वर्णन मानस में इस प्रकार है :—

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन विगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद॥[1]

२. व्यूह

यह स्वरूप विश्व की सृष्टि और उसके लय के लिए ही है। 'षड्गुण्य विग्रह' में से केवल दो गुण ही स्पष्ट होते है। वे गुण चाहे ज्ञान और बल हों, चाहे ऐश्वर्य और वीर्य या शक्ति और तेज हों। तुलसीदास व्यूह के वर्णन में लिखते हैं :—

जाके बल विरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अण्ड कोस समेत गिरि कानन॥[2]

३. विभव

इस रूप में विष्णु के अवतार मुख्य हैं। यह रूप विशेष रूप से नर-लीला के निमित्त होता है। इसमें "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्" का उद्देश्य रहता है। तुलसीदास ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है :—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा, तुम्हहि लागि धरिहौं नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा, लेहौं दिनकर बंस उदारा॥
हरिहौं सकल भूमि गरुआई, निरभय होहु देव समुदाई॥[3]

विभव के निरूपण ही में तुलसीदास ने लिखा है :—

१ तुलसी ग्रन्थावली (रामचरित मानस, बालकाड) पृष्ठ ८७
२ वही ,, ,, पृष्ठ ३५१
३ वही ,, ,, पृष्ठ ८२

निज इच्छा प्रभु अवतरै, सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ, रहै मोच्छ सुख त्यागि।[1]

४. अन्तर्यामी

इस रूप में ईश्वर समस्त ब्रह्मांड की गति जानता है। वह जीवों के अंतःकरण में प्रवेश कर उनका नियमन भी करता है। इसी रूप में राम ने अवतार के रहस्यों को सुलझाया है। तुलसीदास ने अंतर्यामी राम का चित्रण मानस में अनेक स्थानों पर किया है। उदाहरणार्थ अरण्य-कांड में यह निर्देश है :—

तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुरकाज सँवारन॥[2]

५. अर्चावतार

—यह ब्रह्म का वह रूप है, जो भक्तों के हृदय में अधिष्ठित है। वे जिस रूप से ब्रह्म को चाहते हैं, ब्रह्म उसी रूप से उन्हें प्राप्त होता है, तभी तो ब्रह्म की भक्ति सब कालों और सब परिस्थितियों में सुलभ होती है। तुलसीदास ने इसका वर्णन राम-जन्म के समय कौशल्या से कराया है :-

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजिय सिसुलीला अति प्रिय सीला, यह सुख परम अनूपा॥
सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना, होइ बालक सुर भूपा।
यह चरित जे गावहि हरिपद पावहि ते न परहि भव कूपा॥[3]

इस भांति तुलसीदास ने मानस में राम को उपर्युक्त पाँच रूपों में प्रस्तुत किया है। लोकाचार्य ने अपने तत्वत्रय में भगवान की देह का जो रूप लिखा है, वही तुलसीदास ने राम के व्यक्तित्व में निरूपित किया है —

[1] तुलसी ग्रन्थावली, रामचरित मानस पृष्ठ ३३६
[2] वही, पृष्ठ ३०८
[3] वही, पृष्ठ ८४

"भगवान का शरीर सकल जगत को मोहने वाला है। उस रूप के दर्शन से सांसारिक समस्त भोग्य पदार्थों के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो जाती है। यह तीनों तापों का नाश करने वाला है। नित्य मुक्तों से सतत ध्यान करने योग्य यह भगवान का स्वरूप है। दिव्य भूषणों से तथा दिव्य अस्त्रों से सदैव यह शरीर युक्त रहता है। यह भक्तों का रक्षक है। धर्म की रक्षा के लिए जब कोई जगत में अवतार लेता है तो वह भगव-देह से ही आविर्भूत होता है।'[1]

अतः तुलसीदास दार्शनिक सिद्धान्तों में विशिष्टाद्वैतवादी थे।

तुलसीदास और धर्म

तुलसीदास ने ऐसे समय जन्म लिया था जब भारत की धार्मिक परिस्थिति अनेक प्रभावों से शासित हो रही थी। मुसलमानों का राज्य-काल धार्मिक दृष्टिकोण से हिन्दुओं के लिए हितकर नहीं रहा। यदि कुछ साधु-प्रकृति शासकों ने हिन्दुओं पर अत्याचार नहीं किए तो उनके धर्माचार को प्रोत्साहित भी नहीं किया। अकबर ही एक ऐसा शासक था जिसने धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया, पर अकबर के पूर्व शासकों की जो नीति थी उसके फल-स्वरूप जनता में धार्मिक विद्वेष की आग अभी भी कहीं-कहीं दीख पड़ती थी। यह विरोध धार्मिक शान्ति का विरोधक था। किन्तु इसी समय हिन्दू धर्म के महान् आचार्यों ने जन्म लिया और प्रतिक्रिया के रूप में अपने धर्म को और भी उत्कृष्ट बना दिया। मुसलमानी प्रभाव उन्हें किसी प्रकार भी अपने धर्म-मार्ग से विचलित नहीं कर सका और वे हिन्दू धर्म के महान् संदेश-वाहक हुए। ऐसे ही महान् आचार्यों में तुलसीदास का स्थान है।

---

१. प्राचीन वैष्णव संप्रदाय - डा० उमेश मिश्र, एम० ए०, डी० लिट०
(हिन्दुस्तानी—१६३७, पृष्ठ ४२६)

मुसलमानी प्रभाव के अतिरिक्त तुलसीदास के सामने धर्म की समस्या विचित्र रूप में आई। उन्होंने "गोंड गँवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल" की विषम परिस्थिति में अपनी धार्मिक मर्यादा का आदर्श उपस्थित करते हुए अनेक मतों और पंथों से भी समझौता किया। तुलसीदास की यह कुशल नीति थी। उनके समय में शैव, शाक्त और पुष्टिमार्गी प्रधान रूप से अपने विचारों का प्रचार कर रहे थे और प्रत्येक क्षेत्र में वैष्णवों से प्रतिद्वंद्विता कर रहे थे। तुलसीदास ने इनसे विरोध की नीति का पालन न कर उन्हें अपने ही आदर्शों में सम्मिलित कर लिया। तुलसीदास की इस सहिष्णु नीति ने धार्मिक भेदों का एकदम ही विनाश कर दिया। वैष्णव धर्म के इस सिद्धान्त-संगठन ने हिन्दू धर्म को इस्लाम की प्रतिद्वद्विता में विशेष बल प्रदान किया।

तुलसीदास ने वैष्णव धर्म को इतना व्यापक रूप दिया कि उसमें शैव, शाक्त और पुष्टि-मार्गी सरलता से सम्मिलित हो गए। तुलसीदास की इस धार्मिक नीति ने राम-भक्ति के प्रचार का अवसर भी विशेष दिया और रामचरित-मानस को साहित्यिक होने के साथ-साथ धार्मिक ग्रन्थ होने के योग्य बनाया। मानस के वे स्थल धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, जो शैव, शाक्त और पुष्टि मार्गी को वैष्णव धर्म के अन्तर्गत करने के लिए लिखे गए हैं :—

शैव—

(अ) करिहौं इहाँ संभु थापना। मोरे हृदय परम कलपना॥

... ...

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहु मोहि न पावा॥

संकर विमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥

संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।

ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महुँ बास॥[1]

---

१ तुलसी ग्रन्थावली पहला खंड (मानस) पृ० २१

(आ) औरउ एक गुपुत मत सबहिं कहहुँ कर जोरि ।
संकर भजन बिना नर भगति न पावै मोरि ॥[1]

शाक्त—

नहिं तव आदि मध्य अवसाना । अमित प्रभाव वेद नहिं जाना ॥
भव-भव विभव पराभव कारिनि । विस्व विमोहनि स्ववस विहारिनि ॥[2]

पुष्टि-मार्गी—

(अ) अब करि कृपा देहु वर ऐहू । निज पद सरसिज सहज सनेहू ॥[3]

(आ) सोइ जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई ॥
तुम्हरिहि कृपा तुमहि रघुनन्दन । जानहि भगत भगत उर चन्दन ॥[4]

(इ) राम भगति मनि उर बस जाके । दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके ॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं । जे मनि लागि सुजतन कराहीं ॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई । राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई ।[5]

राम के व्यक्तित्व मे शैव, शाक्त और पुष्टि-मार्गियों के आदर्शों की पूर्ति कर तुलसीदास ने राम-भक्ति मे व्यापकता के साथ ही साथ शक्ति भी ला दी । शैव और वैष्णवों की विचार-भिन्नता की समाप्ति तुलसीदास की लेखिनी से हुई ।

तुलसीदास स्मार्त वैष्णव थे । वे पंच देवताओं की पूजा मे विश्वास करते थे, इसका प्रमाण उनकी विनयपत्रिका मे दिया ही जा चुका है । इस दृष्टिकोण से उनकी भक्ति की मर्यादा का रूप और भी स्पष्ट हो गया था । उनके सामने ज्ञान का उतना महत्व नहीं था जितना

1. तुलसी ग्रन्थावली पहला खड मानस पृष्ठ ६६०
2. " " " पृष्ठ १०२
3. " " " पृष्ठ १६६
4. " " " पृष्ठ २०२
5. " " " पृष्ठ ४६२

भक्ति का, यद्यपि उन्होंने ज्ञान और भक्ति में कोई विशेष अन्तर नहीं माना। ज्ञान की अपेक्षा उन्होंने भक्ति को विशेष महत्व दिया है, जिसके विवेचन में उन्होंने उत्तरकांड का उत्तरार्ध लिखा। गरुड़ ने "भुसुंडि" से यही प्रश्न किया था :—

एक बात प्रभु पूछौं तोही। कहौ बुझाइ कृपानिधि मोही ॥
ग्यानहि भगतिहि अन्तर केता। सकल कहौ प्रभु कृपा निकेता ॥[1]

और इसका उत्तर सुजान 'काग' ने इस प्रकार दिया :—

भगतिहिं ग्यानिहि नहि कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा ॥
नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु विहगवर ॥[2]

और यह अंतर केवल इतना है कि भक्ति स्त्री है और ज्ञान पुरुष है।

ग्यान विराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना ॥

... ...

मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥
माया भगति सुनहु प्रभु दोऊ। नारिवर्ग जानहिं सब कोऊ ॥
पुनि रघुवीरहिं भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी ॥
भगतहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया ॥[3]

अतः भक्ति पर माया का कोई प्रभाव नहीं हो सकता। भक्त की "रघुपति कृपा सपनेहु मोह न होइ" की भावना तुलसीदास ने अपने मानस में रक्खी है।

ज्ञान की साधना है भी बड़ी कठिन। जो इस कठिन साधना में सफल होते हैं, उन्हें मुक्ति अवश्य मिलती है, पर यह सफलता प्राप्त करना बहुत कष्ट-साध्य है —

[1] तुलसी ग्रंथावली पहला खंड (मानस) पृष्ठ [illegible]
[2] " " " [illegible]
[3] " " " [illegible]

ग्यान के पंथ कृपान के धारा । परत खगेस होइ नहिं बारा ॥
जौं निरविघ्न पंथ निरबहई । सो कैवल्य परमपद लहई ॥[1]

इस भाँति तुलसी ने ज्ञान से भक्ति की श्रेष्ठता स्पष्ट की है। इस भक्ति का चरम उद्देश्य सेवक-सेव्य भाव की सृष्टि करना है, जो तुलसीदास का आदर्श है। इस आदर्श के सम्बन्ध में तुलसीदास ने स्पष्ट रूप से घोषित किया है :—

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि ।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धांत विचारि ॥[2]

तुलसीदास ने ज्ञान और भक्ति का यह विरोध दूर कर धार्मिक परिस्थितियों में महान ऐक्य की सृष्टि की। ज्ञान भी मान्य है, पर भक्ति की अवहेलना करके नहीं। इसी प्रकार भक्ति का विरोध भी ज्ञान से नहीं। दोनों में केवल दृष्टिकोण का थोड़ा सा अन्तर है। इसे समझाते हुए श्रीरामचन्द्र ने अरण्यकांड में नारद से कहा है :—

सुनु मुनि तोहि कहौं सहरोसा । भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥
करौं सदा तिन्ह कै रखवारी । जिमि बालकहिं राख महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई । तहँ राखै जननी अरु गाई ॥
प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता । प्रीति करै नहिं पाछिलि बाता ॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी । बालक सुत सम दास अमानी ॥
जनहिं मोर बल निज बल नाहीं । दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आहीं ॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं । पाएहु ग्यान भगति नहिं तजहीं ॥[3]

ज्ञान प्राप्त करने पर भी भक्ति की उपेक्षा नहीं होना चाहिए, यही तुलसी का दृष्टिकोण है। इस भाँति ज्ञान और भक्ति में साम्य उपस्थित कर तुलसीदास ने बहुत से वितंडावादों की जड़ काट दी।

---

१ तुलसी ग्रन्थावली, पहला खण्ड (मानस) पृष्ठ ४६७
२. " " " "
३. " " " पृष्ठ ३१६

उन्होंने ज्ञान और भक्ति दोनों को मानते हुए भक्ति की ओर ही अपनी प्रवृत्ति प्रदर्शित की है और इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं अपने आराध्य श्रीरामचन्द्र के मुख से लक्ष्मण के प्रति कहलाया है :—

> धर्म तें विरति जोग तें ग्याना । ग्यान मोक्षप्रद वेद बखाना ॥
> जातें वेगि द्रवौं मैं भाई । सो मम भगति भगत सुखदाई ॥
> सो सुतंत्र अवलंब न आना । तेहि आधीन ग्यान विग्याना ॥
> भगति तात अनुपम सुखमूला । मिले जो सन्त होहिं अनुकूला ॥[1]

इस भाँति वे 'ग्यान विग्यान' को भी भक्ति के आधीन समझते हैं। भक्ति से ज्ञान की सृष्टि होती है और ज्ञान प्राप्त करने पर भी भक्ति की स्थिति रहती है। दोनों एक दूसरे पर अवलम्बित है, दोनों में किसी प्रकार का भी विरोध नहीं है, यही तुलसीदास के भक्ति-ज्ञान प्रकरण का निष्कर्ष है। यह इस प्रकार स्पष्ट है :—

> जे असि भगति जानि परिहरहीं । केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं ॥
> ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी । खोजत आक फिरहि पय लागी ॥[2]

भक्ति के अनेक साधन तुलसीदास ने बतलाए हैं। वे सभी वर्णाश्रम धर्म के दृष्टिकोण से है। तुलसीदास के अनुसार भक्ति के साधन निम्न-लिखित हैं, जो स्वयं श्रीरामचन्द्र के मुख से कहलाए गए हैं :—

> भगति के साधन कहौं बखानी । सुगम पथ मोहिं पावहि प्रानी ॥[3]

(१) प्रथमहिं विप्र चरन अति प्रीती ॥[4]

(२) निज निज धरम निरत श्रुति रीती ।

(३) यहि कर फल पुनि विषय विरागा । तब मम चरन उपज अनुरागा ॥
श्रवनादिक नव भगति दृढाहीं । मम लीला रति अति मन माहीं ॥

१ तुलसी ग्रन्थावली (पहला खंड), मानस पृष्ठ २६६
२ " " " पृष्ठ २६[illegible]
३ " " " पृष्ठ २६६
४ " " " पृष्ठ २६६

(४) संत चरन पंकज अति प्रेमा । मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा ॥
(५) गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा । सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥
(६) मम गुन गावत पुलक सरीरा । गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
(७) काम आदि मद दंभ न जाके । तात निरन्तर बस मैं ताके ॥

वचन करम मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम ।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करौं सदा विश्राम ॥[1]

भक्ति की सर्वोच्च साधना ही तुलसीदास के धर्म की मर्यादा है। तुलसीदास ने सरल साधन के सहारे जिस प्रकार धर्म की रूप रेखा निर्धारित की थी, उसमे दोषो के आ जाने का सन्देह था। भक्ति करते हुए भी लोग वाह्याडंवर और छल-कपट न करें, इसलिए तुलसीदास ने अपने धर्म के स्वरूप को अक्षुण्ण रखने के लिए संतो के लक्षण भी लिख दिये हैं—

नारद ने श्री रामचन्द्र से पूछा :—

संतन्ह के लच्छन रघुवीरा । कहहु नाथ भंजन भव भीरा ॥[2]

तव श्री रामचन्द्र जी ने उत्तर दिया—

सुनु मुनि सतन्ह के गुन कहऊँ । जिन्ह ते मैं उन्ह के वस रहऊँ ।
पट विकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ॥
अमित बोध अनीह मित भोगी । सत्य सार कवि कोविद जोगी ।
सावधान मानद मद हीना । धीर भगति पथ परम प्रवीना ॥

गुनागार संसार दुख रहित विगत सन्देह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय जिन्ह कहुँ देह न गेह ॥

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं । पर गुन सुनत अधिक हरपाहीं ॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती । सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती ॥
जप तप व्रत दम सजम नेमा । गुरु गोबिंद विप्र पद प्रेमा ॥

---

१. तुलसी ग्रन्थावली पहला खंड (मानस) पृष्ठ २६६
२ ,, ,, ,, पृष्ठ ३२०

श्रद्धा छमा मइत्री दाया । मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥
विरति बिवेक विनय बिग्याना । बोध जथारथ वेद पुराना ॥
दम्भ मान मद करहिं न काऊ । भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला । हेतु रहित पर हित रत सीला ॥
मुनि सुनु साधुन के गुन जेते । कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ॥[1]

सक्षेप मे तुलसीदास के धर्म की व्याख्या यही है कि—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥[2]

तुलसीदास और साहित्य

तुलसीदास ने जिस समय लेखनी उठाई थी उस समय उनके सामने चारणकाल के वीर-गाथात्मक ग्रंथ और प्रेम-काव्य तथा संत-काव्य के मुसलमानी प्रभाव से प्रभावित धार्मिक ग्रंथ थे। चारणकाल मे तो काव्य की भाषा ही स्थिर नहीं हुई थीं, अतः उसमे साहित्यिक सौन्दर्य बहुत कम था। प्रेम-काव्य की दोहा चौपाई की प्रबन्धात्मक रचना मे शैली का सौन्दय अधिक था और भावो का कम। संत साहित्य मे तो एकमात्र एकेश्वरवाद और गुरु की वन्दना थी। उसमे धर्म-प्रचार की भावना अधिक थी, साहित्य-निर्माण की कम। कृष्ण-काव्य के आदर्श भी बन रहे थे, वे अभी पूर्णता को प्राप्त नहीं हुए थे। अतः तुलसीदास के समय मे साहित्य बहुत ही साधारण कोटि का था। उन्होने उसे केवल अपनी प्रतिभा से उत्कृष्ट बना दिया, जबकि उनके सामने साहित्यिक आदर्श न्यून मात्रा मे थे। यही तुलसीदास की अपरिमित शक्ति थी।

भाषा—तुलसीदास के पूर्व अवधी मे काव्य रचना हो चुकी थी, क्योकि सूफी कवियो ने उसमे प्रेम-गाथाओ की रचना की थी। पर यह अवधी ग्रामीण थी, उसमे साहित्यिक परिष्करण नहीं था। तुलसीदास ने अवधी मे रामचरितमानस लिख क

१. तुलसी ग्रन्थावली पहला खण्ड मानस पृ० ३०० ३
२. ,, ,, ,, पृ० ४५८

उसे उतना ही सुसंस्कृत और मधुर बना दिया जितना ब्रज-भाषा में लिखा गया सूरसागर। सूरसागर का दृष्टिकोण तो सीमित है, पर मानस का दृष्टिकोण मनुष्य-जीवन का सम्पूर्ण आलिंगन किए हुए है। अतः मानस का महत्व सूरसागर से कहीं अधिक है। तुलसीदास के समय में कृष्ण-काव्य की रचना ब्रजभाषा में होने लगी थी। तुलसी-दास ने ब्रजभाषा में भी गीतावली, कृष्णगीतावली, कविता-वली और विनयपत्रिका की रचना कर अपनी प्रतिभा और काव्य-शक्ति का परिचय दिया। कवितावली और विनय-पत्रिका की ब्रजभाषा इतनी परिष्कृत और सम्बद्ध है कि वैसी कृष्ण-काव्य के प्रमुख कवियों से भी नहीं बन पड़ी।

अवधी और ब्रजभाषा के अतिरिक्त तुलसीदास ने अन्य भाषाओं को भी अपनी रचनाओं में स्थान दिया, यद्यपि उन्होंने उनमें से किसी में भी स्वतंत्र ग्रंथ नहीं लिखे। विनयपत्रिका में भोजपुरी का यह नमूना कितना सरस और स्वाभाविक है :—

राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे।
नाहिंत भव बेगारि महँ परिहौ, छूटत अति कठिनाई रे॥
बाँस पुरान साज सब अटखट, सरल तिकोन खटोला रे॥
हमहिं दिहल करि कुटिल करम चँद मंद मोल बिनु डोला रे॥
विषम कहार मार मदमाते चलहिं न पाँव बटोरा रे।
मंद बिलंद अभेरा दलकन, पाइय दुख झकझोरा रे॥
काँट कुराय लपेटन लोटन ठावहिं ठाव बझाऊ रे।
जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे॥
मारग अगम संग नहिं सम्बल नाउँ गाउँ कर भूला रे।
तुलसिदास भवत्रास हरहु अब होहु राम अनुकूला रे॥[1]

---

१. तुलसी ग्रन्थावली दूसरा खण्ड (विनयपत्रिका) पृष्ठ १८६

इसी प्रकार तुलसीदास ने बुन्देलखंडी के शब्दों का प्रयोग भी स्वाभाविकता से किया है :—

ए दारिद्र परिचारिका करि पालिबी करुना मई।
अपराध छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीठ्यो कई ॥[1]

.. ..

परिवार परिजन मोहिं राजहिं प्रान प्रिय सिय जानिबी।
तुलसी सुसील सनेह लखि निज किंकरी करि मानिबी ॥[2]

हिन्दी की प्रांतीय बोलियों के अतिरिक्त तुलसीदास ने मुगलकालीन अरबी, फारसी शब्दों का प्रयोग भी बड़े कौशल से अपनी रचनाओं में किया है। जहां कहीं शब्द काव्य में बैठ नहीं सके वहाँ उनका परिष्कार भी कर दिया गया है। इस प्रकार वे शब्द सम्पूर्ण रूप से अपने बना लिए गए हैं। नीचे लिखे अवतरणों में विदेशी शब्द किस सुन्दरता से स्वदेशी बनाए गए हैं :—

१. असमंजस अस मोहि अँदेसा (अँदेशा)
२. सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे ॥ (कागज़)
३. लोकप जाके बन्दी खाना। (खाना)
४. गई बहोर गरीब निवाजू।
सरल सबल साहिब रघुराजू ॥ (गरीबनिवाज़, [illegible])
५. जो जाने जनु गरदन मारी। ([illegible])
६. मनहुँ वारिनिधि बूड़ जहाजू ॥ (जहाज़)
७. जे जड़ चेतन जीव जहाना। ([illegible])
८. जगमगत जीन जड़ाव जोति सुमोति मनि मानिक लगे। ([illegible])
९. सजहु बरात बजाव निसाना। ([illegible])
१०. बाज नफीरी भेरि अपारा। ([illegible])

१. तुलसी ग्रन्थावली [illegible]
२. [illegible]

११.	गवने भरत पयादेहि पाये।	(प्यादा)
१२	कुम्भकरन कपि फौज बिडारी	(फौज)
१३	बना बजारु न जाय बखाना।	(बाजार)
१४.	भइ बकसीस जाचकन दीन्हा।	(बखशीश)
१५	जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू।	(बेहाल)
१६	जो कह झूठ मसखरी जाना	(मसखरी)
१७	सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाय	(रुख)
१८	रिपुदल बधिर भये सुनि सोरा	(शोर)
१९.	आज करऊँ तोहि काल हवाले	(हवाले)

ये तो मानस के कुछ ही उदाहरण हैं। तुलसीदास ने अपने अन्य ग्रंथों में भी अरबी फारसी के अनेक शब्द बड़ी स्वतन्त्रता से प्रयुक्त किए हैं। वे अपनी रचना को जनता की वस्तु बनाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना सरल से सरल भाषा में की। उनका काव्य-आदर्श भी यही था—

> "सरल कवित कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान।
> सहज बयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान ॥"[1]

तुलसीदास ने अपना मानस भाषा में लिखते समय यह अनुभव अवश्य किया था कि वे साहित्य और धर्म की भाषा संस्कृत छोड़ कर 'भाषा' को स्वीकार कर रहे हैं। पर कवि का लक्ष्य राम-कथा का घर घर में प्रचार करना था। संस्कृत में राम-कथा केवल पंडितों तक ही सीमित थी। वे समकालीन राजनीतिक प्रभाव की प्रतिद्वन्द्विता में जनता के हृदय में धार्मिक भावना जाग्रत कर देना चाहते थे। इसी-लिए जहाँ उन्होंने आदि कवि वाल्मीकि को प्रणाम किया है वहाँ उन्होंने प्राकृत और भाषा के कवियों की वन्दना करते हुए अपनी भाषा में लिखने की प्रवृत्ति भी स्पष्ट कर दी है।—

1. तुलसी ग्रन्थावली पहला भाग (मानस) पृष्ठ १०

१. भाषा भनित मोरि मति भोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी ॥[1]
२ भनित भदेस वस्तु भल बरनी। राम कथा जग मंगल करनी ॥[2]
३. गिरा ग्राम सिय राम जस, गावहिं सुनहिं सुजान ॥[3]
४ राम सुकीरति भनित भदेसा। असमंजस अस मोहि अन्देसा ॥[4]
५ सुजनि सुहावनि टाट पटोरे ॥[5]
६ तौ फुर होउ जो कहउँ सब भाषा भनित प्रभाव ॥[6]
७ भाषाबद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई ॥[7]

इन उद्धरणों से ज्ञात होता है कि उस समय भाषा में जो रचना की जाती थी वह हास्यास्पद और आदरहीन मानी जाती थी। तुलसीदास ने राम-कथा का सहारा लेकर इस भावना के विरुद्ध अपनी लेखनी उठाई। इससे तुलसीदास के हृदय में संतोष भी हुआ क्योंकि संस्कृत में राम-कथा उन्हें "प्रबोध" नहीं दे सकती थी।

भाषा में लिखने के कारण तुलसीदास ने संस्कृत के तत्सम शब्दों को भी सरल बनाकर तद्भव कर दिया था। कुछ शब्द तो प्राकृत से होकर तद्भव बन ही गए थे और कुछ तुलसीदास ने अक्षरों के उच्चारण की सरलता देकर तद्भव-सा बना दिया था। ऐसे शब्दों में ग्यान (ज्ञान) और रिसि (ऋषि) आदि हैं। इस शैली का अनुसरण करने के कारण तुलसीदास की वर्णमाला निम्न प्रकार से होगी :—

स्वर—अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं

व्यंजन—क ख ग घ

च छ ज झ

ट ठ ड ढ

त थ द ध न

प फ ब भ म

य र ल व

स ह ड़ ढ़

अलंकार, रस और गुण—तुलसीदास की रचनाओं में भावों का प्रकाशन जिस कौशल से होता है, उसमें अलंकार की आवश्यकता नहीं। सरल स्वाभाविक और विदग्धतापूर्ण वर्णन तुलसीदास की शैली की विशेषता है, पर तुलसीदास की प्रतिभा इतनी उच्चकोटि की है कि उसमें अलंकार स्वाभाविक रूप से चले आते हैं। अलंकारों के स्थान के लिए भावों की अवहेलना नहीं करनी पड़ती। उसका कारण यह है कि तुलसीदास का भाव-विश्लेषण इतना अधिक मनोवैज्ञानिक है कि उसकी भाव-तीव्रता या सौन्दर्य-वर्णन के लिए अलंकार की आवश्यकता नहीं रह जाती। पर तुलसीदास एक कुशल कलाकार की भाँति अलंकार के रत्नों को सरलता से उठाकर काव्य में रख देते हैं। उनका रखना नंददास के 'जड़ने' से श्रेष्ठ है। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय लिखते हैं—"रामचरित मानस की कोई चौपाई भले ही बिना उपमा की मिल जाय, किन्तु उसका कोई पृष्ठ कठिनता से ऐसा मिलेगा, जिसमें किसी सुन्दर उपमा का प्रयोग न हो। उपमाएँ साधारण नहीं हैं। वे अमूल्य रत्न राजि हैं।[1]

---

१. तुलसीदास की उपमाएँ—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'माधुरी' वर्ष २, खंड १, संख्या १, पृष्ठ ७४

जहाँ अर्थालंकारों से भाव-व्यंजना को सहायता मिली है, वहां शब्दालंकारों से भाषा के सौन्दर्य में भी वृद्धि हुई है। सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग तुलसीदास की कुशल लेखनी से कलापूर्ण हुआ है। अलंकार-प्रयोग में एक बात अवश्य है। कुछ अलंकार संस्कृत काव्य-ग्रंथों से ले लिए गए हैं। कहीं-कहीं तो वे अपने पूर्व रूप में ही ले लिए गए हैं, पर कहीं-कहीं उनमें परिवर्तन कर दिया गया है। उदाहरणार्थ कुछ अलंकार लीजिए :—

> लछिमन देखहु मोर गन, नाचत बारिद पेखि।
> गृही बिरति रत हरष जस, बिष्नु भगत कहँ देखि ॥[1]

यह उपमा श्रीमद्भागवत से अपने संस्कृत रूप में ही ली गई है :—

> मेघा गमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः।
> गृहेषु तप्ता निर्विण्णाः यथाऽऽच्युत जनाऽगमे ॥[2]

यहां 'यथाऽऽच्युत जनाऽगमे' को तुलसीदास ने विष्णु भक्त कर दिया, क्योंकि वे वैष्णव थे, किन्तु अलंकार का प्रयोग और भाव वही है। इसी प्रकार जयदेव के प्रसन्नराघव की "यदि खद्योत भासापि समुन्मीलति पद्मिनी' का रूपान्तर तुलसीदास ने मानस में—

> जुगु दशमुख, खद्योत प्रकासा।
> कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा ॥[3]

कर दिया। अन्य स्थलों पर तुलसीदास के अलंकार उत्कृष्ट रूप में प्रयुक्त हुए हैं। रस-निरूपण का परिचय तुलसीदास के ग्रन्थों की विवेचना में हो ही चुका है। मनोवैज्ञानिकता के साथ रस की पूर्णता तुलसीदास की काव्य-कला की सबसे बड़ी सफलता है। रस की अभिव्यक्ति गुण के सहारे कितनी अच्छी हो सकती है, इसके उदाहरण मानस में अनेक

१ तुलसी ग्रन्थावली', पहला खण्ड [illegible] पृष्ठ [illegible]
२ श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध अध्याय [illegible]
३ तुलसी ग्रन्थावली' पहला खण्ड मानस [illegible]

स्थानों पर मिलते हैं। शृङ्गार रस के अंतर्गत माधुर्य गुण, वीर और रौद्र रस के अंतर्गत ओज गुण और अद्भुत, शान्त तथा अन्य कोमल रसों के अंतर्गत प्रसाद गुण बड़ी कुशलता से प्रयुक्त हुए हैं :—

माधुर्य गुण

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा विस्व विजय कहँ कीन्ही॥[1]

.. ...

विमल सलिल सरसिज बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृङ्गा॥[2]

ओज गुण

भट कटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाखंड॥
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड॥[3]

× × ×

रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धरु धरु धरु करहिं भयकर गिरा॥[4]

प्रसाद गुण

राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय वचन सकल सनमाने॥
प्रभुहिं जोहार बहोरि बहोरी। वचन विनीत कहहिं कर जोरी॥
अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमनु राउर कोसल राय॥[5]

---

१ तुलसी ग्रन्थावली पहला खंड (मानस) पृष्ठ ६६
२ ,, ,, ,, पृष्ठ ६८
३. ,, ,, पृष्ठ ३०३
४. ,, ,, ,, पृष्ठ ३०३
५ ,, ,, ,, पृष्ठ २१०

गुणों के साथ-साथ तुलसीदास ने वर्ण-मैत्री का भी ध्यान रक्खा है। जहाँ काव्य मे प्रयुक्त वर्ण-मैत्री प्रवाह को सहायता देती है, वहाँ दूसरी ओर अर्थ मे चमत्कार भी उत्पन्न करती है। इन दोनो बातो के निर्वाह के लिए उच्च कोटि की काव्य-प्रतिभा चाहिए। इसका मानस मे से एक उदाहरण लीजिए :—

> जौं पट तरिय तीय महँ सीया। जग अस जुवति कहाँ कमनीया।
> गिरा मुखर तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥

इस चौपाई मे लघु वर्णों की आवृत्ति प्रवाह के लिए कितनी सरस और उपयुक्त है! अर्थ-सौन्दर्य की दृष्टि से तुलसीदास सरस्वती, पार्वती और रति तीनो को सीता से हीन और लघु प्रदर्शित करना चाहते है। यह लघुता ही लघु वर्णों से बहुत अच्छी तरह व्यक्त हुई है। सीता सबसे श्रेष्ठ और महान हैं, अतः उनके लिए "सीया" गुरु वर्ण प्रयुक्त किए गए हैं :—

सीता=तीय महँ सीया (दूसरे ही पद में स्त्रियों की हीनता प्रकट करने के लिए 'तीय' शब्द 'जुवति' के लघु अक्षरों में परिवर्तित हो गया है।

गिरा=मुखर (सभी अक्षर लघु)

भवानी=तनु अरध "

रति=अति दुखित अतनु पति जानी (इसमें भी सभी अक्षर लघु हैं)

यदि ध्यान से मानस का अध्ययन किया जावे तो तुलसीदास के पांडित्य की अनेक बातें ज्ञात होगी।

मनोवैज्ञानिक परिचय—तुलसीदास ने मानव-हृदय की सूक्ष्म प्रवृत्तियों का कितना अधिक अन्वेषण किया था और वे उनका प्रकाशन कितनी कुशलता से कर सकते थे, यह उनके मानस के विद्यार्थी जानते हैं। रसो के अन्तर्गत—संचारी भाव के भेदों के अन्तर्गत हृदय की न जाने कितनी भावनाएं भरी हुई हैं।

मानवी संसार की विभिन्न परिस्थितियों की मनोदशा का अधिकारपूर्ण ज्ञान तुलसीदास के कवित्व की सब से बड़ी व्याख्या है। उदाहरण के लिए उनके मनोदशा-चित्रण के दो-एक चित्र लीजिए :—

(१) तब रामहिं बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही ॥[1]

(आतुरता में हृदय की अस्थिरता इतनी बढ़ जाती है कि योग्य और अयोग्य व्यक्तियों से भी मनुष्य इच्छित वस्तु की याचना करने लगता है। 'सभय हृदय बिनवत जेहि तेही' का भाव कितने थोड़े शब्दों में कितना महान है !)

(२) दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयेउ पाक बरतोरू।[2]

(यहाँ शब्दों की ध्वनि में भाव का कितना उत्कृष्ट प्रकाशन है ! पके हुए बालतोड़ के छू जाने की क्रिया 'दलकि उठेउ' से कितनी स्पष्ट की गई है।)

(३) कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुँह मोरी ॥
मांगु मागु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत सन्देहु ॥[3]

(तुलसीदास जैसे विरक्त सन्यासी से स्त्री की यह भाव-भंगिमा भी देख ली गई।)

(४) बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किसोर देखि किन लेहू ॥[4]

(यह व्यंग कितना गहरा है !)

(५) हमहि देखि मृग निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं।
तुम्ह आनन्द करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए ॥[5]

१	तुलसी ग्रन्थावली	पहला खण्ड	(मानस)	पृष्ठ ११०
२.	"	"	"	" १६८
३	"	"	"	" १६८
४	"	"	"	" १०१
५.	"	"	"	" ३१६

(कंचन मृग मारने की उमंग में ही श्रीराम ने सीता खो दी थी। उसी को स्मरण कर श्रीराम के हृदय का क्षोभ कितना करुण और हृदय-द्रावक है!)

इस प्रकार के अनेक चित्र तुलसीदास के ग्रंथों में पाये जा सकते हैं। यह तो केवल संकेत मात्र है।

वाल्मीकि रामायण के विषय में कहा गया है :—

"रामायण में जिन विषयों का प्रतिपादन किया गया है, उनमें एक भी विषय अतात्विक नहीं है। योग दृष्टि से समस्त वस्तुओं का यथा-योग्य निरीक्षण करके ही सबका वर्णन किया गया है। कहा भी है :—

'वाल्मीकेर्वचनं सर्वं सत्यम्'[1]

जो बात वाल्मीकि रामायण के सम्बन्ध में कही गई है वही अक्षरशः तुलसीदास के रामचरितमानस के सम्बन्ध में कही जा सकती है। तुलसीदास ने अपने अध्ययन और काव्य-ज्ञान से साहित्य के आदर्शों को ग्रहण करते हुए भी अपनी मौलिकता रक्खी है।

"राम तो वही हैं जो वाल्मीकि, कालिदास या अध्यात्म रामायण के हैं, किन्तु तुलसी के राम वही होते हुए भी उन सबसे भिन्न हैं—वे केवल तुलसी ही के राम हैं। उनके चरित्र में उन्होंने समाज की आदर्श-भूत आवश्यकताओं का समावेश किया है। जिसे अनुपयोगी समझा उसे छोड़ दिया, जिसे उपयोगी समझा उस पर विशेष ज़ोर दिया और जिसे आवश्यक समझा उसे जोड़ भी दिया है।[2]

---

१ वाल्मीकि रामायण की विशेषता—पं० बालकृष्ण जी मिश्र
कल्याण (श्री रामायणाङ्क) श्रावण १९८९, पृष्ठ ३०

२. गुसाईं जी और सीता वनवास—श्री पोद्दार राजेन्द्रसिंह जी
कल्याण (श्री रामायणाङ्क) श्रावण १९८९, पृष्ठ १७६.

केशवदास

केशवदास हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवियों में हैं। इन्होंने साहित्य की मीमांसा शास्त्रीय पद्धति पर कर काव्य-रचना का पाण्डित्यपूर्ण आदर्श रक्खा[1]। इन्होंने जहाँ एक ओर राम-काव्य के अंतर्गत रामचन्द्रिका की रचना की वहाँ रीति काव्य के अंतर्गत कविप्रिया और रसिक प्रिया की भी रचना की। साथ ही इन्होंने चारणकाल के आदर्शों को ध्यान में रख कर जहाँगीर जस चन्द्रिका और वीरसिंह देव चरित भी लिखे। इस प्रकार केशवदास ने अपने काव्य-आदर्शों में चारणकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल के आदर्शों का समुच्चय उपस्थित किया। इसी दृष्टिकोण से केशवदास के काव्य का महत्व है।

केशवदास ने स्वयं अपना परिचय रामचन्द्रिका में इस प्रकार दिया है :—

सुगीत छंद ॥ सनाढ्य जाति गुनाढ्य है जगसिद्ध शुद्ध स्वभाव।
कृष्णदत्त प्रसिद्ध हैं महि मिश्र पंडित राव ॥
गणेश सो सुत पाइयो बुध काशिनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारि कै जिन पाइयो मत साध ॥

---

1. Keshava Das is known to us as the author of Ram Chandrika and as the first of those writers who devoted themselves to the technical development of the art of poetry and as he is one of the greatest masters of the poetic art and his works are master pieces of Hindi literature, he will be noticed under each of these heads

Selections from Hindi Literature, Book I page 50

दोहा ॥ उपज्यो तेहि कुल मन्दमति शठ कवि केशवदास ।
रामचन्द्र की चन्द्रिका भाषा करी प्रकास ॥[१]

इस वर्णन के अनुसार केशव का वंश-परिचय यह है :—

कृष्णदत्त (सनाढ्य जाति)
|
काशीनाथ
|
केशवदास

अतः केशवदास सनाढ्य ब्राह्मण श्रीकृष्णदत्त के पौत्र और शीघ्रबोध बनाने वाले श्रीकाशीनाथ के पुत्र थे। नखशिखवाले प्रसिद्ध कवि बलभद्र इनके बड़े भाई थे।

केशवदास का जन्म संवत् १६१२ के लगभग टेहरी में हुआ था। इनकी कुल परम्परा में कविता का वरदान था। ये ओरछा-नरेश के दरबार कवि, मंत्र-गुरु एवं मंत्री थे। वीरसिंहदेव के छोटे भाई इन्द्रजीतसिंह के दरबार में इन्होंने बहुत सन्मान पाया। कहा जाता है कि इन्होंने अपनी नीति-कुशलता एवं सभा-चातुरी से इन्द्रजीतसिंह पर अकबर के द्वारा किया हुआ एक करोड़ रुपये का जुरमाना माफ़ करा दिया था।[२] ये तुलसीदास के समकालीन

थे। वेणीमाधवदास के अनुसार तुलसीदास और केशवदास की भेंट दो बार हुई। पहली बार काशी में 'मौन की सनीचरी' के बाद सं० १६४३ के लगभग और दूसरी बार सं० १६६९ के पूर्व (गोसांई चरित में ठीक संवत् नहीं दिया गया), जब तुलसीदास ने केशवदास को प्रेत-योनि से मुक्त किया था।[1] वेणीमाधवदास के अनुसार जब सं० १६४३ के लगभग तुलसीदास की भेंट केशवदास से हुई थी तभी रामचन्द्रिका की रचना का सूत्रपात हुआ था। तुलसीदास के अनुसार केशवदास 'प्राकृत कवि' थे। केशवदास ने इस लाञ्छन से मुक्त होने के लिए ही एक रात्रि में रामचन्द्रिका की रचना कर तुलसीदास के दर्शन किए थे।

> कवि केसवदास बड़े रसिया। घनस्याम सुकुल नभ के बसिया ॥
> कवि जानि कै दरसन हेतु गये। रहि बाहिर सूचन भेजि दिये ॥
> सुनि कै जु गोसांई कहै इतनो। कवि प्राकृत केसव आवन दो ॥
> फिरिगे झट केसव सो सुनि कै। निज तुच्छता आपुइ ते गुनि कै ॥
> जब सेवक टेरेउ गे कहि के। हौं भेंटिहौं काल्हि विनय गहि कै ॥
> घनस्याम रहे घासिराम रहे। बलभद्र रहे विस्राम लहे ॥
> रचि राम सुचन्द्रिका रातिहि में। जुरे केसव जू असि घातिहि में ॥
> सतसंग जमी रस रंग मची। दोउ प्राकृत दिव्य विभूति पची ॥
> मिटि केसव को संकोच गयो। उर भीतर प्रीति की रीति रयो ॥[2]

Bawani and Bira Sinha Deva Charita. He once visited the court of the Emperor Akbar to get remitted the fine which that monarch had imposed upon Madhukara Saha

Search for Hindi Manuscripts, 1906-1907, 1908, page l

1 उधरे केसवदास, प्रेत हतो ? मुनिहि।
उधरे तिनहिं प्रयास, चढ़ि विमान सुरलोकहि गयो ॥
—मूल गोसाईं चरित, दोहा १८

2 मूल गोसाईं चरित दोहा ८४ के बाद की चौपाइयाँ।

इससे दो बातें ज्ञात होती हैं। एक तो रामचन्द्रिका की रचना तुलसी-दास को प्रसन्न करने के लिए की गई थी और दूसरे रामचन्द्रिका का रचनाकाल संवत् १६४२ के लगभग है। किन्तु जब रामचन्द्रिका का साक्ष्य लिया जाता है तो ज्ञात होता है कि दोनों बातें ही अशुद्ध हैं। केशवदास रामचन्द्रिका की रचना का कारण निम्नलिखित बतलाते हैं :—

बालमीकि मुनि स्वप्न में दीन्हों दरसन चारु।
केसव तिन सों यों कह्यो, क्यों पाऊँ सुख सारु॥[१]

वाल्मीकि ने केशवदास से कहा :—

नगस्वरूपिणी छंद ॥ भलो बुरो न तू गुनै। वृथा कथा कहै सुनै॥
न रामदेव गाइहै। न देवलोक पाइहै॥

षट्पद ॥ बोलि न बोल्यो बोल, दयो फिरि ताहि न दीन्हों।
मारि न मारयो शत्रु, क्रोध मन वृथा न कीन्हों।
जुरि न मुरे संग्राम, लोक की लीक न लोपी।
दान सत्य सन्मान सुजस दिसि विदिसा ओपी।
मन लोभ मोह मद काम बस, [illegible]
सोइ परब्रह्म श्रीराम हैं, [illegible]

दोहा ॥ मुनिपति यह उपदेस दै [illegible]
केसवदास [illegible]

इसके बाद कवि रामचन्द्रिका [illegible] :—

चतुष्पदी छंद ॥ [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

१ रामचन्द्रिका पू[illegible], [illegible]
२ " " [illegible]
३ " " [illegible]

थे। वेणीमाधवदास के अनुसार तुलसीदास और केशवदास की भेंट दो वार हुई। पहली वार काशी में 'मौन की सनीचरी' के वाद सं० १६४२ के लगभग और दूसरी वार सं० १६६९ के पूर्व (गोसांई चरित में ठीक संवत् नहीं दिया गया), जब तुलसीदास ने केशवदास को प्रेत-योनि से मुक्त किया था।[1] वेणीमाधवदास के अनुसार जब सं० १६४२ के लगभग तुलसीदास की भेंट केशवदास से हुई थी तभी रामचन्द्रिका की रचना का सूत्रपात हुआ था। तुलसीदास के अनुसार केशवदास 'प्राकृत कवि' थे। केशवदास ने इस लान्छन से मुक्त होने के लिए ही एक रात्रि में रामचन्द्रिका की रचना कर तुलसीदास के दर्शन किए थे।

कवि केशवदास बड़े रसिया। घनस्याम सुकुल नभ के बसिया॥
कवि जानि कै दरसन हेतु गये। रहि बाहिर सूचन भेजि दिये॥
सुनि कै जु गोसाईं कहै इतनो। कवि प्राकृत केसव आवन दो॥
फिरिगे झट केसव सो सुनि कै। निज तुच्छता आपुइ तें गुनि कै॥
जब सेवक टेरेउ गे कहि कै। हौं भेंटिहौं काल्हि बिनय गहि कै॥
घनस्याम रहे घासिराम रहे। बलभद्र रहे बिसराम लहे॥
रचि राम सुचन्द्रिका रातिहि में। जुरे केसव जू अघि घाटिहि में॥
सतसंग जमी रस रंग मची। दोउ प्राकृत दिव्य बिभूति पची॥
मिटि केसव को सन्देह गयो। उर आनंद प्रीति की रीति रयो॥[2]

[1] [illegible] Devi Charita. He once visited the [illegible] the time which [illegible]
[illegible] 1 07, 1 08, [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] गोसाईं चरित, [illegible]

[2] [illegible] गोसाईं चरित [illegible]

इसके अनुसार केशवदास ने रामचन्द्रिका की रचना वाल्मीकि मुनि के आदेशानुसार की, तुलसीदास के आदेशानुसार नहीं। यदि "कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो" के अनुसार तुलसी ही को वाल्मीकि मानें तब भी वस्तुस्थिति नहीं सुलझती, क्योंकि केशवदास के अनुसार वाल्मीकि ने उन्हे स्वप्न दिया था और वेणीमाधवदास के अनुसार तुलसीदास ने उनसे मिलना ही कठिनता से स्वीकार किया था।

वेणीमाधवदास के अनुसार रामचन्द्रिका की रचना-तिथि भी अशुद्ध है। रामचन्द्रिका के प्रारम्भ में ग्रन्थ की रचना-तिथि संवत् १६५८ दी गई है:—

> सोरह सै अट्ठावन कातिक सुदि बुधवार।
>
> रामचन्द्र की चन्द्रिका तब लीन्हो अवतार॥[1]

रामचन्द्रिका में वर्णित कवि का अभिप्राय ही प्रामाणिक मानना उचित है। अतः केशवदास के सम्बन्ध में वेणीमाधवदास का कथन नितान्त अशुद्ध है।

ओरछा नगर बसाने वाले राजा रुद्रप्रताप सूर्य वंश में हुए। उनके पुत्र मधुकरशाह थे। मधुकरशाह ने ही केशवदास के पिता काशीनाथ का सन्मान किया था। मधुकर शाह के नौ पुत्र हुए जिनमें सब से बड़े रामशाह और सब से छोटे इन्द्रजीत थे। रामशाह ने राज्य-भार इन्द्रजीत पर ही छोड़ दिया था। इन्हीं इन्द्रजीत के समय में केशवदास की मान-मर्यादा बढ़ी। इन्द्रजीत ने केशव को अपना गुरु मान लिया था और उन्हे २१ गाँव उपहार में दिए थे।

> गुरु करि मान्यो इन्द्रजित तन मन कृपा विचारि।
>
> ग्राम दये इकवीस तब, ताके पायँ पखारि॥[2]

और केशवदास ने इन्द्रजीत की प्रशंसा करते हुए लिखा है:—

[1] रामचन्द्रिका सटीक, पृष्ठ १

[2] कविप्रिया, पृष्ठ १० (नवल किशोर प्रेस, लखनऊ पांचवी बार १९२५)

भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत जीवै जुगजुग
केसोदास जाके राज राज सो करत है।[1]

केशवदास संस्कृत के आचार्य थे, अतः संस्कृत का ज्ञान इनके कवित्व के लिए बहुत सहायक हुआ। यद्यपि रीतिशास्त्र का प्रारम्भ मुनिलाल के 'राम प्रकाश' और कृपाराम की 'हित तरंगिनी' से हुआ था, पर उसे व्यवस्थित रूप देने का श्रेय केशवदास ही को है।[2] इन्होंने काव्य के सभी अंगों का निरूपण पूर्ण रीति से किया। काव्य में रस की अपेक्षा अलंकार को ये अधिक श्रेष्ठ मानते थे। इसीलिए इन्होंने संस्कृत के दंडी और रुय्यक आदि का आदर्श ही अपनी रचनाओं में अपनाया।

केशवदास के सात ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं :—विज्ञान गीता, रतनबावनी, जहाँगीर जस चन्द्रिका, वीरसिंह देव चरित्र, रसिक प्रिया, कविप्रिया और रामचन्द्रिका।

लाला भगवानदीन के अनुसार इनकी आठवीं पुस्तक नखशिख है, जो विशेष महत्व की नहीं है। इन ग्रन्थों में रामचन्द्रिका, कविप्रिया और रसिकप्रिया बहुत प्रसिद्ध हैं। इनसे इन्होंने साहित्य का शृंगार किया है। प्रबंधात्मक रचनाओं में रामचन्द्रिका, वीरसिंह देव चरित और रतनबावनी मान्य हैं।[3]

केशव कवि के नाम से दो ग्रन्थ और मिलते है। उन ग्रन्थों के नाम हैं :—बालि चरित्र और हनुमान जन्म लीला, पर दोनों ग्रंथों की रचना इतनी शिथिल और निकृष्ट है कि वे महाकवि केशवदास द्वारा रचित नहीं कहे जा सकते।[1]

रसिकप्रिया की रचना संवत् १६४८ और कविप्रिया की रचना सं० १६५८ मे हुई। रसिक प्रिया मे शृंगार रस का विस्तृत निरूपण है, कविप्रिया मे काव्य के सभी अंगो का विधिपूर्वक वर्णन है इन दोनों मे काव्य के विविध अंगो की विस्तारपूर्वक समीक्षा की गई है। इनकी विस्तृत विवेचना रीतिकाल के अन्तर्गत ही होगी, क्योंकि इनका विषय ही रीति-शास्त्र है। वीरसिंहदेवचरित्र, जहाँगीर जस चन्द्रिका, रतनबावनी और विज्ञान गीता बहुत साधारण ग्रंथ है। केशवदास की प्रतिभा देखते हुए इन चारो ग्रंथो की रचना साधारण कोटि की है। रामचन्द्रिका राम-काव्य का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, अतः उस पर यहाँ विस्तारपूर्वक विचार होगा।

रामचन्द्रिका के प्रारम्भ मे केशवदास ने वाल्मीकि के स्वप्न-दर्शन का संकेत किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि उन्होंने केवल वाल्मीकि रामायण का आधार ही लिया होगा। पर रामचन्द्रिका देखने से ज्ञात होता है कि केशवदास वाल्मीकि रामायण के पथ पर ही नहीं चले, वे हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव से भी बहुत प्रभावित हुए। इतना

Bavani This last mentioned historical work of the celebrated author was discovered for the first time in the course of the search carried on during the period under report

Search for Hindi Manuscripts 1906, 1907, 1908

1 Keshava Kavi, the writer of the Hanuman Janma Lila is an unknown Poet He was certainly not the famous poet of Orchha.

Search for Hindi Manuscripts, 1909, 1910, 1911.

अवश्य ज्ञात होता है कि वाल्मीकि रामायण की वे अवहेलना नहीं कर सके। लवकुश-प्रसंग उन्होंने वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही लिखा।

> पैंतीसवें प्रकाश में अश्वमेध किय राम।
> सोहन लव शत्रुन्न को ह्वै है संगर धाम ॥[1]

इसी प्रकार परशुराम-आगमन उन्होंने राम के विवाह के बाद मार्ग ही में वर्णन किया है।

> विश्वामित्र विदा भये, जनक फिरे पहुँचाय।
> मिले आगलो फौज को, परशुराम अकुलाय ॥[2]

१. रचना-तिथि—अन्तर्साक्ष्य से ही ज्ञात होता है कि रामचन्द्रिका की रचना कार्तिक शुक्ल संवत् १६५८ में हुई थी।

२. विस्तार- रामचन्द्रिका में ३९ प्रकाश हैं। प्रत्येक प्रसंग में कथा-भाग का नाम देकर उसका वर्णन किया गया है।

३. छंद—केशवदास ने रामचन्द्रिका में अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। एक गुरु (S) के श्री छंद से लेकर केशवदास ने अनेक वर्णों और मात्राओं के छंदों का प्रयोग किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि केशवदास छन्दों के निरूपण के लिए ही रामचन्द्रिका लिख रहे हैं। छंदों का परिवर्तन भी बहुत शीघ्र किया गया है। कथा का तारतम्य छंद-परिवर्तन से बहुत कुछ भंग हो गया है।

४. वर्ण्य विषय—केशवदास ने रामचन्द्रिका में राम की समस्त कथा वाल्मीकि रामायण के आधार पर कही है, यद्यपि अनेक स्थलों पर अन्य संस्कृत ग्रन्थों का भी प्रभाव पड़ा है। इन

---

१. रामचन्द्रिका सटीक, पृष्ठ ३३३
२ ,, ,, ६५

ग्रन्थों में प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक मुख्य हैं। यह प्रभाव प्रकरी या पताका रूप ही में अधिक हुआ है, सामान्य रूप से कथा का विकास वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही है। कथा का विभाजन कांडों में न होकर प्रकाशों में है, पर कथा का विस्तार अनियमित है। उसमें प्रबन्धात्मकता नहीं है। प्रारम्भ में न तो रामावतार के कारण ही दिए गए हैं और न राम के जन्म का ही विशेष विवरण है। राजा दशरथ का परिचय देकर और रामादि चारों भाइयों के नाम गिना कर विश्वामित्र के आने का वर्णन कर दिया गया है। ताड़का और सुबाहु-बध आदि का वर्णन संकेत रूप में ही है। हाँ, जनकपुर में धनुष-यज्ञ का वर्णन सांगोपांग है। केशव का सम्बन्ध राज दरबार से होने के कारण, यह वर्णन स्वाभाविक और विस्तृत है। ऋतुवर्णन और नखशिख आदि ग्रन्थ में विस्तारपूर्वक दिए गए है, क्योंकि ये काव्यशास्त्र से संबन्ध रखते है और केशवदास काव्यशास्त्र के आचार्य हैं। शेष वर्णन कथा-भाग में आवश्यक होते हुए भी प्रायः छोड़ दिए गए हैं, जिससे पात्रों की चरित्र-रेखा स्पष्ट नहीं हो पाई। रामचन्द्रिका में न तो कोई दार्शनिक और धार्मिक आदर्श है और न लोक-शिक्षा का कोई रूप ही, जैसा मानस में है। इसी कारण रामचन्द्रिका मानस की भाँति लोकप्रिय नहीं हो सकी। मनोवैज्ञानिक चित्रण भी उतने विदग्धतापूर्ण नहीं जितने मानस में। मानस में कैकेयी के हृदय का स्पष्ट निरूपण है, उस चरित्र में दैवी भाव रहते हुए भी एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक सत्य है, पर रामचन्द्रिका में यह प्रकरण पूर्ण उपेक्षा से देखा गया है। समस्त प्रसंग कितने क्षुद्र रूप में लिखा गया है :—

दिन एक कह्यो शुभ शोभ रयो । हम चाहत रामहिं राज दयो ।
यह बात भरत्थ कि मात सुनो । पठऊँ वन रामहिं बुद्धि गुनी ॥
तेहि मंदिर में नृप सो विनयो । वरु देहु हतो हमको जो दयो ।
नृप बात कही हँसि हेरि हियो । वर मागु सुलोचनि मैं जो दियो ॥
॥ केकयी ॥ नृपता सुविशेषि भरत्थ लहैं । वरषै वन चौदह राम रहैं ॥
यह बात लगी उर वज्र तूल । हिय फाट्यो ज्यों जीरण दुकूल ॥
उठि चले विपिन कहँ सुनत राम । तजि तात मात तिय बन्धु धाम ॥

मानस मे यह प्रकरण बहुत विस्तारपूर्वक और मनोवैज्ञानिक ढंग से वर्णित है। यहां सात पंक्तियों मे समस्त प्रकरण कह दिया गया है। कैकेयी का चरित्र कितना ओछा है। ऐसा ज्ञात होता है जैसे कैकेयी यह अवसर ही खोज रही थी। कैकेयी का चरित्र यहाँ मर्यादाहीन है।

केशव ने संवाद अवश्य बहुत लम्बे लिखे हैं, क्योकि वे स्वयं संवाद का मर्म जानते थे। रामचन्द्रिका मे निम्नलिखित संवाद बहुत बड़े हैं :—

१. सुमति विमति संवाद (पृष्ठ २९-३२)
२. रावण वाणासुर संवाद (पृष्ठ ३३-३८)
३. राम परशुराम संवाद (पृष्ठ ६९-७८)
४. रावण अंगद संवाद (पृष्ठ १६५-१७१)
५ लवकुश भरतादि संवाद (पृष्ठ ३४४-३४७)

कथा की दृष्टि से रामचन्द्रिका मे प्रसंगों का नियमित विस्तार नहीं है। जहाँ अलंकार-कौशल का अवसर अथवा वाग्विलास का प्रसंग मिला है वहाँ तो केशवदास ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और जहाँ कथा की घटनाओं की विचित्रता है वहाँ कवि मौन हो गया है। अतः रामचन्द्रिका की कथावस्तु में काव्य चातुर्य स्थान स्थान पर देखने को तो अवश्य मिलता है, पर चरित्र चित्रण या कथा की प्रबन्धात्मकता के दर्शन नहीं होते। भक्ति की जैसी भावना मानस में स्थान-स्थान पर मिलती है, वैसी रामचन्द्रिका के किसी भी स्थल पर नहीं है। फलत

ग्रन्थों में प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक मुख्य हैं। यह प्रभाव प्रकरी या पताका रूप ही में अधिक हुआ है, सामान्य रूप से कथा का विकास वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही है। कथा का विभाजन कांडों में न होकर प्रकाशों में है, पर कथा का विस्तार अनियमित है। उसमें प्रबन्धात्मकता नहीं है। प्रारम्भ में न तो रामावतार के कारण ही दिए गए हैं और न राम के जन्म का ही विशेष विवरण है। राजा दशरथ का परिचय देकर और रामादि चारों भाइयों के नाम गिना कर विश्वामित्र के आने का वर्णन कर दिया गया है। ताड़का और सुबाहु-वध आदि का वर्णन संकेत रूप में ही है। हाँ, जनकपुर में धनुष-यज्ञ का वर्णन सांगोपांग है। केशव का सम्बन्ध राज दरबार से होने के कारण, यह वर्णन स्वाभाविक और विस्तृत है। ऋतुवर्णन और नखशिख आदि ग्रन्थ में विस्तारपूर्वक दिए गए है, क्योंकि ये काव्यशास्त्र से संबन्ध रखते है और केशवदास काव्यशास्त्र के आचार्य हैं। शेष वर्णन कथा-भाग में आवश्यक होते हुए भी प्रायः छोड़ दिए गए हैं, जिससे पात्रों की चरित्र-रेखा स्पष्ट नहीं हो पाई। रामचन्द्रिका में न तो कोई दार्शनिक और धार्मिक आदर्श है और न लोक-शिक्षा का कोई रूप ही, जैसा मानस में है। इसी कारण रामचन्द्रिका मानस की भाँति लोकप्रिय नहीं हो सकी। मनोवैज्ञानिक चित्रण भी उतने विदग्धतापूर्ण नहीं जितने मानस मे। मानस मे कैकेयी के हृदय का स्पष्ट निरूपण है, उस चरित्र मे दैवी भाव रहते हुए भी एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक सत्य है, पर रामचन्द्रिका मे यह प्रकरण पूर्ण उपेक्षा से देखा गया है। समस्त प्रसंग कितने क्षुद्र रूप में लिखा गया है :—

दिन एक कह्यो शुभ शोभ रयो । हम चाहत रामहिं राज दयो ।
यह बात भरत्थ कि मात सुनी । पठऊँ वन रामहिं बुद्धि गुनी ॥
तेहि मंदिर में नृप सो विनयो । वर देहु हतो हमको जो दयो ।
नृप बात कह्यो हँसि हेरि हियो । वर मांगु सुलोचनि मैं जो दियो ॥
॥ केकयी ॥ नृपता सुविशेषि भरत्थ लहैं । बर्षे वन चौदह राम रहैं ॥
यह बात लगी उर वज्र तूल । हिय फाट्यो ज्यों जीरण दुकूल ॥
उठि चले विपिन कहँ सुनत राम । तजि तात मात तिय बन्धु धाम ॥

मानस मे यह प्रकरण बहुत विस्तारपूर्वक और मनोवैज्ञानिक ढंग से वर्णित है। यहाँ सात पंक्तियो मे समस्त प्रकरण कह दिया गया है। कैकेयी का चरित्र कितना ओछा है। ऐसा ज्ञात होता है जैसे कैकेयी यह अवसर ही खोज रही थी। कैकेयी का चरित्र यहाँ मर्यादाहीन है।

केशव ने संवाद अवश्य बहुत लम्बे लिखे हैं, क्योंकि वे स्वयं संवाद का मर्म जानते थे। रामचन्द्रिका में निम्नलिखित संवाद बहुत बड़े हैं :—

१. सुमति विमति संवाद (पृष्ठ २९-३२)
२. रावण वाणासुर संवाद (पृष्ठ ३३-३८)
३. राम परशुराम संवाद (पृष्ठ ६९-७८)
४. रावण अंगद संवाद (पृष्ठ १६५-१७५)
५ लवकुश भरतादि संवाद (पृष्ठ ३४४-३४७)

कथा की दृष्टि से रामचन्द्रिका मे प्रसंगो का नियमित विस्तार नहीं है। जहाँ अलंकार-कौशल का अवसर अथवा वाग्विलास का प्रसंग मिला है वहाँ तो केशवदास ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और जहाँ कथा की घटनाओ की विचित्रता है वहाँ कवि मौन हो गया है। अत रामचन्द्रिका की कथावस्तु मे काव्य चातुर्य स्थान स्थान पर देखने को तो अवश्य मिलता है, पर चरित्र-चित्रण या कथा की प्रबन्धात्मकता के दर्शन नहीं होते। भक्ति की जैसी भावना मानस मे स्थान-स्थान पर मिलती है, वैसी रामचन्द्रिका के किसी भी स्थल पर नहीं है। फलत.

रामचन्द्रिका से न तो कोई दार्शनिक सिद्धान्त निकलता है और न कोई धार्मिक ही।

आचार्यत्व—केशवदास ने रामचन्द्रिका में अपने पूर्ण आचार्यत्व का प्रदर्शन किया है। इसके पीछे उन्होंने भक्ति, दर्शन आदि के आदर्शों की उपेक्षा तक कर दी है। उन्होंने केवल छंद-निरूपण के लिए ही पद-पद पर छंद बदले हैं जिससे कथा के प्रवाह में व्याघात हो गया है। इसी प्रकार अलंकार निरूपण के सामने उन्होंने भावों की अवहेलना कर दी है।

> कुंतल ललित नील भृकुटी धनुष नैन,
> कुमुद कटाक्ष बाण सबल सदाई है।
> सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषणन,
> मध्यदेश केशरी सुगज गति भाई है॥
> विग्रहानुकूल सब लक्ष लक्ष ऋक्ष बल,
> ऋक्षराज मुखी मुख केशोदास गाई है।
> रामचन्द्र जू की चमू राजश्री विभीषण की,
> रावण की मीचु दर कूच चली आई है॥[१]

यहाँ श्री रामचन्द्र की सेना का ओजपूर्ण वर्णन नहीं है, वरन् केशवदास के पाण्डित्य का निदर्शन है। कवि ने प्रत्येक शब्द में तीन-तीन अर्थों की सृष्टि की है, जिससे वे सेना, राज्यश्री और मृत्यु तीनों में घटित होते हैं। केशवदास ने सेना के बन्दरों के नाम में श्लेष रक्खा है। कुंतल, ललित, नील, भृकुटी, धनुष, नैन, कुमुद कटाक्ष, बाण, सबल, सुग्रीव, तार, अंगद, मध्यदेश, केशरी, सुगज, विग्रह, अनुकूल, ऋक्षराज, इन नामों में श्लेष के द्वारा तीन अर्थ केशवदास ने निकाले। यहाँ केशवदास का पाण्डित्य भले ही हो, पर उनके वर्ण्य विषय का कोई सौन्दर्य नहीं।

[१] रामचन्द्रिका सटीक, पृष्ठ १६०

इसी प्रकार वर्षा-वर्णन में केशवदास ने कालिका और वर्षा दोनों का एक साथ वर्णन किया है :—

भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूषण जराय ज्योति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा शशी की नैन,
अमल कमल दल दलित निकाई है॥
केशवदास प्रबल करेणुका गमन हर,
मुकुत सुहंसक शबद सुखदाई है।
अम्बर वलित मति मोहैं नीलकण्ठ जू की,
कालिका की बरषा हरषि हिय आई है॥[1]

यहाँ केशवदास के पाण्डित्य में वर्षा का उद्दीपन विभाव बिल्कुल छिप गया है।

कुछ स्थल तो वास्तव में उत्कृष्ट हैं, जहाँ केशवदास ने अलंकार के द्वारा भाव-व्यंजना और चित्र की स्पष्टता प्रदर्शित की है। उस स्थल पर ऐसा ज्ञात होता है कि कवि अलंकारों का पूर्ण शासक है और वह आवश्यकतानुसार चाहे जिस भाव का स्पष्टीकरण चाहे जिस अलंकार से कर सकता है। बादलों के समूह और उनके गर्जन का चित्रण कितना स्पष्ट है :—

घनघोर घने दशहू दिशि छाये। मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये॥
अपराध बिना छिति के तन ताये। तिन पीड़त पीड़ित है उठि धाये॥[2]

शब्दालंकार के द्वारा केशव ने परशुराम की कठोरता कितनी स्पष्ट की है —

अब कठोर दशकंठ के, काटहुं कंठ कुठार॥[3]

१ रामचन्द्रिका सटीक, पृष्ठ १२७
२ ,, ,, १२६
३ ,, ,, ६५

श्रीसीता की दशा कितनी स्पष्ट और करुणाव्यंजक है :—

घरे एक वेनी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक सो काढ़ि डारी॥

मृणाली पंक के संसर्ग से जैसी मैली है, वैसी ही उखड़ जाने से कान्तिहीन हो रही है। वह क्षण-क्षण सूखती जा रही है। "मृणाली मनो पंक सो काढ़ि डारी" में श्रीसीता का जितना सुन्दर बाह्य चित्र है उतना ही सुन्दर आन्तरिक चित्र भी है।

अपनी अलंकार-प्रियता से केशव ने रस के उद्रेक में बाधा पहुँचाई है। जहाँ शृङ्गार रस है, वहाँ का स्थायी भाव विरोधी संचारी भावों के द्वारा नष्ट हो जाता है और पूर्ण रस की सृष्टि नहीं हो पाती। समस्त वर्णन किसी रस विशेष में न होकर भिन्न-भिन्न भावों में ही विशृंखल रीति से उपस्थित किया जाता है। उदाहरणार्थ जनकपुर प्रवेश करने पर लक्ष्मण ने अनुराग युक्त सूर्य का वर्णन किया है जिसमें शृंगार रस का उद्दीपन हो सकता था, पर केशवदास ने उसमें अपनी उत्प्रेक्षा लाने के लिए अनेक भावों का मिश्रण कर दिया :—

अरुण गात अति प्रात, पद्मिनी प्राणनाथ भय।
मानहु केशवदास कोकनद कोक प्रेम मय॥
परिपूरण सिन्दूरपूर कैधौं मंगल घट।
किधौं इन्द्र को छत्र मढ्यो माणिक मयूख पट॥
कै शोणित कलित कपाल यह, किल कपालिका काल को
यह ललित लाल कैधों लसत दिग्भामिनि के भाल को॥[1]

यहाँ सभी शृंगारपूर्ण भावनाओं के बीच में 'शोणित कलित कपाल' की वीभत्स भावना अलंकार-प्रियता के कारण अनावश्यक रूप से रख दी गई है।

---

१ रामचन्द्रिका सटीक पृष्ठ ८०

केशवदास की भाषा बुंदेलखंडी मिश्रित ब्रजभाषा है। इस ब्रजभाषा में उच्चकोटि का स्वाभाविक माधुर्य नहीं आ पाया, क्योंकि केशवदास ने अपने पाण्डित्य दिखलाने की चेष्टा में भाषा का प्रभाव बहुत कुछ खो दिया है। उनका निवास-स्थान बुंदेलखंड के अंतर्गत ओरछा होने के कारण, कविता में बहुत से प्रचलित बुंदेलखंडी शब्द आ गए हैं। उदाहरणार्थ 'सर्वभूषण-वर्णन' में बुंदेलखडी शब्दों की पंक्ति देखिए :—

> बिछिया अनौट बाँके घुंघरू जराय जरी
>
> जेहरि छबीली छुद्र घंटिका की जालिका।
>
> मुंदरी उदार पौंची कंकन वलय चुरी,
>
> कंठ कंठमाल हार पहिरे गुपालिका॥
>
> वेणी फूल शीश फूल कर्ण फूल मांग फूल,
>
> खुटिला तिलक नकमोती सोहै बालिका।
>
> केशोदास नील बास ज्योति जगमगि रही,
>
> देह धरे श्याम संग मानो दीप मालिका॥[1]

केशव का प्रकृति-चित्रण बहुत व्यापक है। उन्होंने अपने सूक्ष्म निरीक्षण और अलंकार के प्रयोग से प्रकृति के दृश्य बहुत सुन्दर रीति से प्रस्तुत किए हैं। ये वर्णन अधिकतर बालकांड में हैं। जहाँ :—

> कछु राजत सूरज अरुण खरे। जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे॥[2]

में मानसिक चित्र है, वहाँ

> चढ़्यो गगन तरु धाय, दिनकर बानर अरुण मुख।
>
> कीन्हों झुकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिन॥[3]

में कल्पनात्मक सौन्दर्य है। कहीं-कहीं प्रकृति चित्रण में इन्होंने

१ कविप्रिया, अथ नखशिख वर्णन, पृष्ठ १४८

२. रामचन्द्रिका सटीक, पृष्ठ ४०

३ ,, ,, ४१

श्रीसीता की दशा कितनी स्पष्ट और करुणाव्यंजक है :—

धरे एक वेनी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक सो काढ़ि डारी॥

मृणाली पंक के संसर्ग से जैसी मैली है, वैसी ही उखड़ जाने से कान्तिहीन हो रही है। वह क्षण-क्षण सूखती जा रही है। "मृणाली मनो पंक सो काढ़ि डारी" में श्रीसीता का जितना सुन्दर बाह्य चित्र है उतना ही सुन्दर आन्तरिक चित्र भी है।

अपनी अलंकार-प्रियता से केशव ने रस के उद्रेक में बाधा पहुँचाई है। जहाँ शृङ्गार रस है, वहाँ का स्थायी भाव विरोधी संचारी भावों के द्वारा नष्ट हो जाता है और पूर्ण रस की सृष्टि नहीं हो पाती। समस्त वर्णन किसी रस विशेष में न होकर भिन्न-भिन्न भावों में ही विशृंखल रीति से उपस्थित किया जाता है। उदाहरणार्थ जनकपुर प्रवेश करने पर लक्ष्मण ने अनुराग युक्त सूर्य का वर्णन किया है जिसमें शृंगार रस का उद्दीपन हो सकता था, पर केशवदास ने उसमें अपनी उत्प्रेक्षा लाने के लिए अनेक भावों का मिश्रण कर दिया :—

अरुण गात अति प्रात, पद्मिनी प्राणनाथ भय।
मानहु केशवदास कोकनद कोक प्रेम मय॥
परिपूरण सिन्दूरपूर कैधौं मंगल घट।
किधौं इन्द्र को छत्र मढ्यो माणिक मयूख पट॥
कै शोणित कलित कपाल यह, किल कपालिका काल को
यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनि के भाल को॥[1]

यहाँ सभी शृंगारपूर्ण भावनाओं के बीच में 'शोणित कलित कपाल' की वीभत्स भावना अलंकार-प्रियता के कारण अनावश्यक रूप से रख दी गई है।

---

१ रामचन्द्रिका सटीक पृष्ठ ४०

केशवदास की भाषा बुंदेलखंडी मिश्रित ब्रजभाषा है। इस ब्रजभाषा मे उच्चकोटि का स्वाभाविक माधुर्य नहीं आ पाया, क्योंकि केशवदास ने अपने पाण्डित्य दिखलाने की चेष्टा मे भाषा का प्रभाव बहुत कुछ खो दिया है। उनका निवास-स्थान बुंदेलखंड के अंतर्गत ओरछा होने के कारण, कविता मे बहुत से प्रचलित बुंदेलखंडी शब्द आ गए है। उदाहरणार्थ 'सर्वभूषण-वर्णन' मे बुंदेलखडी शब्दो की पंक्ति देखिए :—

बिछिया अनौट बाँके घुंघरू जराय जरी
जेहरि छबीली छुद्र घंटिका की जालिका।
मुंदरी उदार पौंची कंकन वलय चुरी,
कंठ कंठमाल हार पहिरे गुपालिका॥
वेणी फूल शीश फूल कर्ण फूल माग फूल,
खुटिला तिलक नकमोती सोहै बालिका।
केशोदास नील बास ज्योति जगमगि रही,
देह धरे स्याम संग मानो दीप मालिका॥[1]

केशव का प्रकृति-चित्रण बहुत व्यापक है। उन्होंने अपने सूक्ष्म निरीक्षण और अलंकार के प्रयोग से प्रकृति के दृश्य बहुत सुन्दर रीति से प्रस्तुत किए हैं। ये वर्णन अधिकतर बालकांड मे हैं। जहाँ :—

कछु राजत सूरज अरुण खरे। जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे॥[2]

मे मानसिक चित्र है, वहाँ

चढ्यो गगन तरु धाय, दिनकर बानर अरुण मुख।
कीन्हों झुकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिन॥[3]

मे कल्पनात्मक सौन्दर्य है। कहीं-कहीं प्रकृति चित्रण मे इन्होंने

---

[1] कविप्रिया, अथ नखशिख वर्णन, पृष्ठ १४८
[2] रामचन्द्रिका सटीक, पृष्ठ ४०
[3] ,, ४१

श्लेष से बड़ी अस्वाभाविक और अशुद्ध कल्पना भी कर ली है, जैसे दंडकवन के वर्णन में वे लिखते हैं :—

बेर भयानक सी अति लगै। अर्क समूह तहाँ जगमगैं॥

... ...

पांडव की प्रतिमा सम लेखो। अर्जुन भीम महामति देखो॥[1]

इसमें बेर, अर्क, अर्जुन और भीम शब्दों के श्लेष से प्रकृति का चित्र खींचा गया है जो अनुपयुक्त है।

[बेर=(१) बेरफल (२) काल

अर्क=(१) धतूरा (२) सूर्य

अर्जुन=(१) ककुभ वृक्ष (२) पांडु पुत्र

भीम (१) अम्ल वेतस वृक्ष (२) ,,

शब्दों की बाजीगरी में यहाँ प्रकृति का चित्र नष्ट-भ्रष्ट हो गया है।

विशेष—केशवदास ने रामचन्द्रिका लिखकर भी अपने सामने भक्ति का आदर्श नहीं रक्खा। वे कवि और आचार्य के सम्बद्ध व्यक्तित्व से युक्त थे। रामचन्द्रिका के छब्बीसवें प्रकाश में उन्होंने वशिष्ठ के मुख से रामनाम का तत्त्व और धर्मोपदेश अवश्य कराया है, पर उनमें कवि का कोई सिद्धान्त नहीं है। केशव की अन्य रचनाओं से ज्ञात होता है कि वे शृंगार रस के उत्कृष्ट कवि थे।

केशवदास के परिचितों में बीरबल और प्रवीनराय पातुर का नाम लिया जाता है। बीरबल ने तो केशव को एक ही कवित्त पर छः लाख रुपया दिया था।[2]

१· रामचन्द्रिका पृष्ठ, १०५-१०६

२. वह कवित्त निम्नलिखित कहा जाता है :—

पावक पच्छि पसू नग नाग,

नदी नद लोक रच्यो दस चारी।

केशवदास की रचना अलंकार और काव्य के अन्य गुणों से युक्त रहने के कारण बहुत कठिन होती है जिसका अर्थ बड़े से बड़ा पंडित आसानी से नहीं लगा सकता। इसी के फल-स्वरूप यह बात प्रसिद्ध है :—

> कवि कहँ दीन न चहै बिदाई। पूछै केशव की कविताई ॥[1]

केशवदास के बाद राम-काव्य के अन्य कवियों पर विचार करना आवश्यक है।

स्वामी अग्रदास—ये गलता (जयपुर) निवासी प्रसिद्ध भक्तमाल के लेखक नाभादास के गुरु थे। इनका आविर्भाव संवत् १६३२ में हुआ था। ये प्रसिद्ध कवि थे। इन्होंने पाँच पुस्तकें लिखी थीं। एक नवीन पुस्तक जो प्रकाश में लाई गई है वह 'हितोपदेश उपाख्यान बावनी' है। यह कुंडलिया छंद में लिखी गई है। इस ग्रन्थ का कुंडलिया छन्द इतना सफल हुआ है कि पुस्तक का वास्तविक नाम 'हितोपदेश उपाख्यान बावनी' प्रसिद्ध न होकर कुंडलिया या कुंडलिया रामायण ही प्रसिद्ध हुआ, यद्यपि इस ग्रन्थ में रामचरित की चर्चा नहीं है। बावनी नाम से कुंडलियों की संख्या ५२ होना चाहिए पर यह संख्या ६८ हो गई है। सम्भव है, किसी कवि ने १६ छंद बाद में जोड़ दिए हों। कुंड-लियों के अन्त में लोकोक्तियाँ हैं जिनसे रचना और भी सरस हो गई है।

केशव देव अदेव रच्यो नर—
देव रच्यो रचना न निवारी ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[1] [illegible] केशवदास [illegible]

ध्यान मञ्जरी में ६९ पद हैं, जिनमें राम और अन्य भाइयों के सौन्दर्य-वर्णन के साथ सरयू और अयोध्या का भी ध्यान है।

ये तुलसी के समकालीन थे। यद्यपि ये अष्टछाप के श्रीकृष्णदास जी पयहारी के शिष्य थे, तथापि इनकी प्रवृत्ति रामोपासना की ओर अधिक थी।

नाभादास—इनका वास्तविक नाम नारायणदास था। ये जाति के डोम थे। इनका आविर्भाव काल संवत् १६५७ माना जाता है। ये स्वामी अग्रदास के शिष्य थे। ये भी रामोपासक थे और रामभक्ति के संबन्ध में इन्होंने बहुत सुन्दर पद लिखे हैं। किन्तु उन पदों की अपेक्षा इनका भक्तमाल अधिक प्रसिद्ध है जिसमें २०० भक्तों का परिचय ३१६ छप्पयों में दिया गया है। इन छप्पयों में कोई तिथि आदि का निर्देश नहीं है। भक्तों की कुछ प्रधान और प्रसिद्ध बातों का ही वर्णन किया गया है। यह ज्ञात होता है कि इस पुस्तक द्वारा नाभादास जी कवियों और भक्तों के यश का प्रचार करना चाहते थे। इसी भक्तमाल की टीका प्रियादास ने संवत् १७६९ में की। भक्तमाल की टीका का संवत् प्रियादास इस प्रकार देते हैं :—

> संवत प्रसिद्ध दस सात सत उनहत्तर,
>
> फागुन मास वदि सप्तमी बताय के।

प्राणचन्द चौहान—इनका समय संवत् १६६७ माना गया है। इन्होंने रामायण महानाटक नाम की एक रचना की, जिसमें राम की कथा सम्वाद रूप में कही गई है। रचना में वर्णनात्मकता अधिक और काव्य-सौन्दर्य कम है। इनकी अन्य कोई रचना ज्ञात नहीं। ये जहाँगीर के समकालीन थे।

हृदय राम—इन्होंने संवत् १६२३ में हनुमन्नाटक नामक एक नाटक की रचना की। यह नाटक संस्कृत के इसी नाम के नाटक के आधार पर लिखा गया है। इसमें राम-भक्ति बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त

की गई है। तुलसीदास के प्रभाव से राम-भक्ति सम्बन्धी रचनाओं में हनुमन्नाटक की रचना महत्वपूर्ण है। यह रचना कवित्त और सवैयों में है।

बलदास—इन्होंने ब्रह्म सृष्टि ज्ञान तथा योगसाधन वर्णन पर चित्राबोधन नामक ग्रन्थ तुलसीदास की शैली पर लिखा। इनका काल संवत् १६८७ माना गया है।

लालदास—ये बरेली निवासी थे। इन्होंने अवध विलास नामक ग्रंथ अयोध्या में लिखा, जिसमें श्री सीताराम की विविध लीलाओं का वर्णन तथा ज्ञानोपदेश है। इनका आविर्भाव-काल संवत् १७०० है। रचना साधारण है।

बाल-भक्ति—ये राम साहित्य के कवि थे। मिश्रबन्धुओं के अनुसार इनका काल संवत् १७१० है। राम और सीता का पारस्परिक प्रेम ही इनके ग्रन्थ नेहप्रकाश का विषय है। इनका लिखा हुआ एक ग्रन्थ और कहा जाता है, उसका नाम है दयाल मंजरी। ये नव-परिचित कवि हैं।

रामप्रिया शरण—इनका आविर्भाव काल संवत् १७६० है। ये जनकपुर के महन्त थे। इन्होंने सीतायण नामक पुस्तक की रचना की, जिसमें श्री जानकीजी तथा उनकी सखियों का चरित्र वर्णन है। साथ ही राम का चरित्र भी संक्षेपतया वर्णित है। सीतायण का नाम इन्होंने सीताराम प्रिया भी रक्खा है।

जानकी रसिक शरण—इनका आविर्भाव काल भी संवत् १७६० माना गया है। ये प्रमोदवन अयोध्या के निवासी थे। इन्होंने अवधी सागर नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ पर कृष्ण काव्य का यथेष्ट प्रभाव है। श्रीरामचन्द्र और सीता का प्रणयराम वर्णन कर उनका राग, नृत्य विहार आदि भी वर्णित है। रचना सरस और मनोहर है

प्रियादास—इनका आविर्भाव-काल संवत् १७६९ है। ये बड़े प्रसिद्ध कवि और टीकाकार थे। इन्होंने नाभादास के प्रसिद्ध भक्तमाल की टीका लिखी है।

कलानिधि—इनका वास्तविक नाम श्रीकृष्ण था। इनका आविर्भाव काल भी संवत् १७६९ है। ये उत्कृष्ट कोटि के कवि थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की। बूंदी के राव बुद्धसिंह के आश्रित रहकर इन्होंने बहुत से ग्रन्थ लिखे। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ निम्नलिखित हैं :—

१. शृंगार रस माधुरी—इसमें इन्होंने शृंगार रस का व्यापक वर्णन किया है।
२. वाल्मीकि रामायण—बालकांड, युद्धकांड, उत्तरकांड-वाल्मीकि रामायण के इन तीन कांडों का पद्यबद्ध हिन्दी अनुवाद।
३. रामायण सूचनिका—इसमें रामायण की प्रधान-प्रधान घटनाओं की पद्यात्मक सूची है।
४. वृत्त चन्द्रिका—इसमें छन्द शास्त्र का वर्णन है। मेरु मर्कटी आदि के वर्णन चित्र रूप में लिखे गए हैं।
५. नवशाई—इसमें शृंगार वर्णन है।
६. समस्यापूर्ति—इसमें अनेक समस्यापूर्तियाँ हैं। कहीं-कहीं इसी नाम के अन्य कवियों की भी समस्या-पूर्तियाँ सम्मिलित हो गई हैं।

रचनाएँ सरस और सुन्दर है।

महाराज विश्वनाथसिंह

ये रीवाँ-नरेश राम के प्रसिद्ध भक्त थे। इनका आविर्भाव काल संवत् १७९० है। ये कवियों के आश्रयदाता थे और स्वयं कवि थे। प्रसिद्ध कवि महाराज रघुराजसिंह इन्हीं के पुत्र थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की। इनकी रचनाएँ दो भागों में विभाजित की जा सकती हैं। प्रथम भाग में वे रचनाएँ हैं जो संत साहित्य से सम्बन्ध रखती हैं और

दूसरे भाग में वे है जो राम-साहित्य पर लिखी गई है। रीवाँ मे कबीरपथ की एक गद्दी है और कबीर के शिष्य धरमदास ने स्वय रीवाँ मे आकर अपने मत का प्रचार किया था। अतः रीवाँ नरेश परम्परा से कबीर का महत्त्व मानते है। महाराज विश्वनाथसिह रामोपासक भी थे। यहाँ तक कि कबीरबीजक की टीका उन्होंने साकार राम के अर्थ मे लिखी है। इनकी ३२ रचनाएँ कही जाती है। प्रधान ग्रंथो की सूची इस प्रकार है :—

(अ) संत-काव्य संबंधी

(१) शब्द
(२) ककहरा
(३) चौरासी रमैनी
(४) बसंत चौतीसी
(५) आदि मंगल

(आ) राम-काव्य सबंधी

(१) आनन्द रघुनन्दन नाटक
(२) संगीत रघुनन्दन
(३) आनन्द रामायण
(४) रामचन्द्र की सवारी
(५) गीता रघुनन्दन
(६) रामायण

ये उद्भट लेखक और विद्याप्रेमी थे। भारतेन्दु जी के अनुसार आनन्द रघुनन्दन हिन्दी का प्रथम नाटक है।[१] इस दृष्टि से विश्वनाथसिह हिन्दी के कवि-नाटककार है। इनकी कविता सरल और उपदेशपूर्ण है।

[१] भारतेंदु नाटकावली, पृष्ठ ८३०
(इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग १९२७)

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने आनन्द रघुनन्दन नाटक के विषय में लिखा है :—

रीवाँ के स्वर्गवासी महाराज विश्वनाथसिंह जू देव का बनाया यह नमूना है बुंदेलखंड के महाराजाओं की हिन्दी का। इस नाटक में सात अंकों में राम जन्मोत्सव से लेकर राम-राज्य तक की कथा है। परन्तु इसमें असली नाम के ठिकाने दूसरे नाम लिखे हैं। जैसे श्रीरामचन्द्र की जगह हितकारी, लक्ष्मण की जगह डोलधराधर, रावण की जगह दिकशिरा इत्यादि।[1]

सितार-ए-हिन्द के कथन की स्पष्टता के लिए आनन्द रघुनन्दन का कुछ अंश उद्धृत किया जाता है :—

राक्षस आकर। दिगशिर की आज्ञा है तुम अकेले हितकारिही सों जुद्ध करि कै मारि आवो जो हितकारी सांचे होइं तो अकेलहीं कढ़ि हमसों जुद्ध करैं।

हितकारी। धनुष चढ़ाकर दौड़ता है।

त्रेतामल्ल। भुजभूषण देखो तो हितकारी के मण्डलाकार चांप ते चारों ओर कैसे सर कढ़े हैं जैसे चरखी तें अनल के फुहारे मनमुल धाइ-धाइ सेना कैसी नास होत जाइ है जैसे बाड़व वन्हि में वारिधि वारि।

भुजभूषण। त्रेतामल्ल देखो देखो अस्त्र छोड़ि स्वामी बड़ो कौतुक कियो ये निश्चर परस्पर पेखि आपुसि ही में लरि मरि गये।

(जय जय करके सब हितकारी की पूजा करते हैं)

मुगल। महाराज अपूर्व यह अस्त्र कौन है।

हितकारी। यह गंधर्वास्त्र मोको ही चलावें को आवे है।

(दिक्शिरा सेना समेत आता है)

[1] नया गुटका (हिस्सा ?) (राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द) पृष्ठ १५६

I | Lawrence to Benet

रोला छंद

महा मोद की उमँग अंग भारिहुँ समाति नहि।
उछलि-उछलि अरकाश पिले पादप पहार गहि॥
जनु तकि प्रभु मुख चन्द बीर रस वारिधि भाये।
सहित सैन दिगसीस बेस थल बोरन धाये॥

नराच छंद

लियो सो बान विस्नु चाप चाप देव वर्ज्ज सो।
लने सुभट तज्जि तज्जि गज्जि गज्जि गर्ज्ज सो॥
पिले संग्राम के उछाह पौन सो उमडि कै।
अनन्द ह्वै अनन्त मेह ज्यों चलैं घुमंडि कै॥

दिक्शिरा सूत से। करु मेरो रथ आगे।
सुगल। भुजभूपण देखो तो यह दिगशिर हमारी सेना मे कैसे परो जैसे
सूखे वन आगि।[1]

आनन्द रघुनन्दन मे पद्य के साथ व्रजभाषा गद्य का प्रयोग है।
इसी कारण प्राचीन हिन्दी नाटकों में आनन्द रघुनन्दन का स्थान महत्व-
पूर्ण है।

प्रेमसखी—इनका आविर्भाव-काल संवत् १७९१ है। ये सखी
सम्प्रदाय के वैष्णव थे। इनकी भक्ति-भावना बड़ी उत्कृष्ट है। इनके
तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध है. जानकी राम को नखशिख, होरी छन्दादि प्रबन्ध
और कवित्तादि प्रबन्ध। प्रथम ग्रन्थ मे श्री सीताराम के नखशिख की
शोभा है और दूसरे तथा तीसरे ग्रन्थों मे श्री राम और सीता की शोभा,
क्रीड़ा, फाग प्रेम आदि पर बरवै और कवित्तादि है रचना सरस है।

ग्रन्थ में गंगा जी का जन्म माहात्म्य, बलिचरित्र तथा रामचरित्र वर्णित है। इनका आविर्भाव काल संवत् १८२६ है।

रामचरणदास—ये अयोध्या के वैष्णव महन्त थे। इनका आविर्भाव काल संवत् १८३३ है। ये अच्छे कवि थे। इनके पाँच ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। दृष्टान्त बोधिका, कवित्तावली रामायण, पदावली और रामचरित्र तथा रस मालिका। अपने ग्रन्थों में इन्होंने रामनाम महिमा श्रीराम सीता का गूढ़ रहस्य और माहात्म्य वर्णन किया है। पदावली में इन्होंने विशेष रूप से नायक नायिका भेद लिखा है। कवित्तावली रामायण में इन्होंने कवित्तों और अन्य छन्दों में रामचरित्र का वर्णन किया है। नीति, उपासक भाव और वैराग्य भी यत्र-तत्र पाया जाता है। इनकी रचना सरस और मनोहर है।

मधुसूदनदास—इनका आविर्भाव संवत् १८३५ माना जाता है। इनका जीवन वृत्त कुछ विशेष ज्ञात नहीं।

इनकी रामाश्वमेध रचना बहुत प्रसिद्ध है। तुलसीदास की रचना से इसका बहुत साम्य है। रचना भी दोहा चौपाई में की गई है। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कवि ने रामचरितमानस का आदर्श अपने सामने रक्खा है। रचना मनोहारिणी है। भाषा भी मँजी हुई और सरल है।

कृपानिवास- इनका आविर्भाव-काल संवत् १८४३ माना जाता है। ये रामोपासक थे और उनके सभी ग्रन्थ धार्मिक सिद्धान्तों से संबन्ध रखते हैं। ये अयोध्या निवासी थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। एक ग्रन्थ राधाकृष्ण पर भी है, शेष ग्रन्थ सीता राम पर है। इनके मुख्य ग्रन्थ निम्नलिखित है :—

भावना पचीसी—इसमें श्रीराम और सीता की सखियों का वर्णन और प्रातःकाल की क्रिया आदि का वर्णन है।

समय प्रबन्ध—इसमें श्री सीताराम की आठ पहर की लीलाओं का ध्यान और उनकी उपासना का वर्णन है।

माधुरी प्रकाश—इसमें राम और सीता के अंगों की छटा, शोभा और माधुरी का वर्णन है।

जानकी सहस्र नाम—इसमें भी जानकी जी के सहस्र नाम और उनके जपने का माहात्म्य वर्णन है।

लगन पचीसी—इसमें राम के प्रेम के लगन संबन्धी पद हैं। रचना साधारणतः अच्छी है।

गंगाप्रसाद व्यास उदैनियाँ—इनका लिखा हुआ राम आग्रह ग्रंथ प्रसिद्ध है। यह योग वाशिष्ठ का एक भाग मात्र है। इस ग्रन्थ की रचना समथर के राजा विष्णुदास की प्रार्थना पर संवत् १८४५ में हुई। अतः यही समय कवि का आविर्भाव काल मानना चाहिए।

सर्व सुख शरण—इनका आविर्भाव-काल संवत् १८५७ माना जाता है। इनके दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं:—

१. बारहमासा विनय - जिसमें अधिकतर राम के प्रति विरह-वर्णन है।

२. तत्त्वबोध—इसमें रामभक्ति के साथ ज्ञान और वैराग्य का निरूपण है।

भगवानदासी खत्री—इनका आविर्भाव काल संवत् १८५७ माना जाता है। इन्होंने महारामायण नामक ग्रन्थ योग वाशिष्ठ के आधार पर हिन्दी गद्य में लिखा। रचना बहुत साधारण है। मिश्र-बन्धु के अनुसार ये अभी तक जीवित हैं

गंगाराम—इनका समय संवत् [illegible]८५७ माना गया है। इन्होंने [illegible] ब्रह्म नामक पुस्तक लिखी, जिसमें भक्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन है। रचना उत्कृष्ट है।

रामगोपाल—इनका आविर्भाव-काल संवत् १८५७ है। इन्होंने अष्टयाम नामक ग्रन्थ लिखा है, जिसमे श्री राम और सीता की आठों पहर की लीला वर्णित है। रचना साधारण है।

परमेश्वरीदास—इनका जन्म-संवत् १८६० और मृत्यु-संवत् १९१२ है। ये कालिंजर के कायस्थ थे। इन्होंने कवितावली नामक पुस्तक लिखी जिसमे श्री सीताराम का अष्टयाम या आठों पहर की लीलाएँ वर्णित है। रचना साधारण है।

पहलवानदास—इनका आविर्भाव-काल संवत् १८६० है। ये भीखीपुर (बाराबंकी) के निवासी थे। इनके गुरु दुलारेदास सतनामी मत के प्रवर्त्तक जगजीवनदास के शिष्य थे। इन्होंने मसलेनामा नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसमे ज्ञान और राम-नाम महिमा का वर्णन है। इसमे पहेलियाँ आदि भी हैं, जिनमे ईश भजन की ध्वनि है। इस क्षेत्र मे ये स्वामी अग्रदास के अनुयायी थे।

गणेश—इनका आविर्भाव सं० १८६० माना जाता है। ये काशी-नरेश महाराज उदितनारायणसिंह के आश्रित थे। इन्होंने 'वाल्मीकि रामायण श्लोकार्थ प्रकाश' की रचना की, जिसमे इन्होंने रामचरित्र के कुछ अंशो का पद्यानुवाद किया। कविता साधारणतः अच्छी है। उसमे भक्ति भावना की पुट भी है।

रामसहायदास—इनका आविर्भाव संवत् १८६० माना जाता है। ये भवानीदास कायस्थ के पुत्र थे और काशी-नरेश उदितनारायणसिंह के आश्रित थे।

रचना—इन्होंने राम सतसई की रचना की जिसके लिए इन्होंने बिहारी सतसई का आदर्श अपने सामने रक्खा। ये दोहे लिखने मे बहुत कुशल थे। कहीं-कहीं तो बिहारी के दोहों मे और इनके दोहों मे अन्तर ही नहीं जान पड़ता। भाषा मे वैसा

ही सौष्ठव है। हाँ, सौन्दर्य-निरीक्षण की दृष्टि उतनी गहरी नहीं है जितनी बिहारी की। रचना सरस है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इन्होंने अलङ्कार पर वाणीभूषण और पिंगल पर वृत्ततरङ्गिणी नामक ग्रन्थ लिखे। इनका ककहरा नामक ग्रन्थ भी मिलता है, जो वर्णों के क्रम से नीति और वैराग्य के भावों से भरा हुआ है। इनका आविर्भाव सं० १८६५ है।

ललकदास—इनका आविर्भाव काल संवत् १८७० माना जाता है। ये लखनऊ निवासी थे। बेनी कवि ने एक परिहास में कहा है—"बाजे बाजे ऐसे डलमऊ में बसत, जैसे मऊ के जुलाहे लखनऊ के ललकदास।"

रचना—सत्योपाख्यान इनका ग्रन्थ कहा जाता है। इसमें रामचन्द्र के जन्म से विवाह तक का चरित्र दोहे और चौपाइयों में लिखा गया है। अनेक स्थानों पर इन्होंने संस्कृत और भाषा के कवियों के भाव अपना लिए हैं। इनकी भाषा सरल है, किन्तु उसमें ऊंचा कवित्व नहीं। इनका आविर्भाव सं० १८७० है।

रामगुलाम द्विवेदी—ये मिर्जापुर निवासी थे। इनका आविर्भाव-काल संवत् १८७० है। ये उत्कृष्ट रामोपासक थे। इन्होंने तुलसीकृत मानस की अच्छी विवेचना की। इन्होंने स्वयं इस विषय में प्रबन्ध रामायण शीर्षक ग्रंथ की रचना की। इनका विनयनवपंचिका ग्रंथ प्रौढ़ है जिसमें इन्होंने हनुमान, श्रुतिकीर्ति, उर्मिला, मांडवी, शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत, जानकी और राम की विनय लिखी।

जानकीचरण—ये अयोध्या निवासी थे। इनके गुरु का नाम श्रीराम-चरण जी था। इनका आविर्भाव-काल संवत् १८[illegible] माना गया है। इनके दो ग्रंथ प्रसिद्ध हैं, प्रेम प्रधान और सियाराम रस मञ्जरी। प्रेम प्रधान में राम और सीता का जन्म प्रेम और

रत्नावली। श्रीरामायण शतक मे वाल्मीकि और नारद संवाद द्वारा श्रीरामचन्द्र के गुणो का वर्णन किया गया है गुणो के वर्णन के साथ राम-चरित की सभी घटनाएं सारस्प वर्णित कर दी है। पुस्तक के तीन भाग किए गए है, रामायण-शतक, तत्व-विचार और ज्ञान-शतक। तत्व-विचार मे तत्वो का निरूपण है और आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का गुण वर्णन किया गया है। ज्ञान-शतक मे वैराग्य सबन्धी बाते हैं। रामरत्नावली मे श्रीरामचन्द्र जी के बाल्यावस्था से खाने पीने और रहन सहन आदि का वर्णन किया गया है। रचना सरस और प्रौढ़ हैं। ये सफल कवि है।

लक्ष्मण—इनका आविर्भाव-काल संवत् १९०७ है। ये अयोध्या के गोड़ ब्राह्मण थे और श्रीरामानुजाचार्य के मतानुयायी। इन्होने रामरत्नावली नामक पुस्तक मे श्री रामनाम महिमा लिखी है। रचना साधारण है।

रघुवरशरण—इनका आविर्भाव-काल संवत् १९०७ है। इनके तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। राममन्त्र-रहस्य, जानकी जी को मङ्गलाचरण और बना (दूलह राम)। प्रथम पुस्तक मे श्रीराम मन्त्र का गूढ़ार्थ वर्णन हैं।

गिरिधरदास—इनका जन्म संवत् १८.. मे हुआ था। ये भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पिता थे। इनका वास्तविक नाम ...

रामनाथ—इनका आविर्भाव काल संवत् १९०० है। ये पटियाला के महाराज नरेश के समकालीन थे। इनके तीन ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। रसभूषण, महाभारतगाथा और जानकी पचीसी। जानकी पचीसी में इन्होंने श्री जानकी जी का अवतार और उनकी अनुपम छवि का वर्णन किया है।

जनकलाड़िली शरण—इनका आविर्भाव काल संवत् १९०० है। इन्होंने टीका नेह प्रकाश नामक बाल अली जू कृत नेह प्रकाश की टीका लिखी है। ये जनकराज किशोरी शरण के समकालीन थे।

जनकराज किशोरी शरण—(रसिक अलि) ये [illegible] दास के शिष्य थे। इनका आविर्भाव काल संवत् १९०० है। यह काल मिश्रबन्धुओं के अनुसार संवत् १८८८ है। इनकी तीन पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। १ अष्टयाम (श्री सीताराम की अष्टयाम लीला), २. सीताराम सिद्धान्त मुक्तावली (श्री सीताराम भक्ति, महिमा तथा माहात्म्य वर्णन—इसके साथ ही [illegible]), ३ सीताराम सिद्धान्त अनन्य-तरंगिणी ([illegible] महिमा और युगल नामावली, धामादि वर्णन आदि)। [illegible] है।

[illegible]प्रसाद दास—इनका आविर्भाव-काल संवत् १९०० है। ये [illegible] कृष्णभक्त थे, पर इन्होंने गोस्वामी तुलसीदास की [illegible] पत्रिका पर गद्य और पद्य में टीका लिखी। ये [illegible] और [illegible] मिश्र के पुत्र थे, जो स्वयं कृष्णभक्त थे।

[illegible]सिंह—इनका आविर्भाव-काल संवत् [illegible] माना जाता है। [illegible] इनके पिता का नाम [illegible] और [illegible] का नाम [illegible] था। [illegible] श्री रामायण [illegible] और [illegible]

रत्नावली। श्रीरामायण शतक में वाल्मीकि और नारद
संवाद द्वारा श्रीरामचन्द्र के गुणों का वर्णन किया गया है
गुणों के वर्णन के साथ राम-चरित को सभी घटना
सारूप वर्णित कर दी हैं। पुस्तक के तीन भाग किए गए
हैं, रामायण-शतक, तत्त्व-विचार और ज्ञान-शतक। तत्त्व-
विचार में तत्त्वों का निरूपण है और आकाश, वायु, अग्नि,
जल और पृथ्वी का गुण वर्णन किया गया है। ज्ञान-शतक
में वैराग्य सम्बन्धी बातें हैं। रामरत्नावली में श्रीरामचन्द्र
जी के बाल्यावस्था से खाने पीने और रहन सहन आदि का
वर्णन किया गया है। रचना सरस और प्रौढ़ है। ये सफल
कवि हैं।

लक्ष्मण—इनका आविर्भाव-काल संवत् १९ ७ है ये अयोध्या के गौड़
ब्राह्मण थे और श्रीरामानुजाचार्य के मतानुयायी। इन्होंने
रामरत्नावली नामक पुस्तक में श्री रामनाम महिमा लिखी है।
रचना साधारण है।

रघुवरशरण—इनका आविर्भाव-काल संवत् १९०५ है। इनके तीन ग्रन्थ
प्रसिद्ध हैं। राममंत्र-रहस्य, जानकी जी को मंगलाचरण और
बना (दूलह राम)। प्रथम पुस्तक में श्रीराम मन्त्र का गूढ़ार्थ
वर्णन है।

गिरिधरदास इनका जन्म संवत् १८८० में हुआ था। ये भारतेन्दु
बाबू हरिश्चन्द्र के पिता थे। इनका वास्तविक नाम बाबू
गोपालचन्द्र था।

रचना—भारतेन्दु ने इनके ग्रन्थों की संख्या ४० दी है। वे सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में अपना परिचय लिखते हुए अपने पिता का भी निर्देश करते हैं—"जिन श्री गिरिधरदास कवि रचे ग्रन्थ चालीस"—पर ये चालीस ग्रन्थ अभी तक देखने में नहीं आए। भारतेन्दु के दौहित्र श्री व्रजरत्नदास ने अठारह पुस्तकों की सूची दी है, जिनमें अधिकतर धार्मिक पुस्तकें ही हैं। रचना में अधिकतर यमक और अनुप्रास पाया जाता है। शब्दालङ्कारों के प्राधान्य से कहीं-कहीं भाव-व्यञ्जना में बाधा पड़ जाती है और कहीं-कहीं अर्थ ही स्पष्ट नहीं होता, पर जहाँ भावों का प्रकाशन हो सका है वहाँ रचना अत्यन्त सरस है। इन्होंने अधिकतर धार्मिक कथामृत, लिखे, जैसे वाराह कथामृत, नृसिंह कथामृत, वामन कथामृत, परशुराम कथामृत, कलि कथामृत आदि। भारती भूषण में अलङ्कार पर, भाषा व्याकरण में पिंगल पर भी इनकी रचनाएँ हुईं। इन्होंने नहुष नामक नाटक भी लिखा, जो भारतेन्दु द्वारा हिन्दी का सर्वप्रथम नाटक कहा गया है। वे लिखते हैं, विशुद्ध नाटक-रीति से पात्र प्रवेशादि नियम-रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्यचरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द्र जी) का है।[1]

राम-साहित्य हिन्दी के इतिहास में उस प्रकार अपना विकास नहीं कर सका जिस प्रकार कृष्ण-साहित्य। इसका कारण था तो राम-साहित्य की गम्भीरता और मर्यादा, दूसरे तुलसीदास का अद्वितीय काव्य-कौशल जिसके कारण अन्य कवियों का उस ओर [illegible] का साहस नहीं हुआ था। [illegible] ने रामचन्द्रिका लिखा [illegible],

[1] [illegible]

पर वे अपना दृष्टिकोण भक्तिमय रख ही नहीं सके। उनके पात्र भी अपने चरित्र की श्रेष्ठता अक्षुण्ण न रख सके और राम साहित्य का सारा भक्ति उन्मेष काव्य-प्रणाली की निश्चित धाराओं में केशव का नीरस पाण्डित्य लेकर बह गया। इस प्रकार राम-साहित्य अपनी भक्ति-भावना के साथ हमारे सामने तुलसी की कविता में ही बन्दी होकर रहा, उसे अपने विस्तार का अवसर ही नहीं मिला।

तुलसी की भक्ति भावना का सूत्रपात इस बीसवीं शताब्दी में मिश्र के कोशलकिशोर, 'जोतिसी' के श्री रामचन्द्रोदय और मैथिलीशरण जी के साकेत से हुआ। श्री मैथिलीशरण जी ने राम को ईश्वर का विश्वव्यापी रूप देकर अपना आराध्य मान लिया। वे प्रारंभ में ही कहते है :—

राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या ?
विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या ?
तब मैं निरीश्वर हूँ ईश्वर क्षमा करे।
तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे॥

साकेत वास्तव में रामचरित का सुन्दर निरूपण है। यद्यपि इसमे लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदि कुछ पात्रों का चित्रण शिष्टता की मर्यादा का उल्लंघन अवश्य कर गया है, पर जहाँ तक राम और सीता के चरित्र से सम्बन्ध है वहाँ तक वह आदर्शों और वर्तमान सामाजिक

रचना—भारतेन्दु ने इनके ग्रन्थों की संख्या ४० दी है। वे सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में अपना परिचय लिखते हुए अपने पिता का भी निर्देश करते हैं—"जिन श्री गिरिधरदास कवि रचे ग्रन्थ चालीस"—पर ये चालीस ग्रन्थ अभी तक देखने में नहीं आए। भारतेन्दु के दौहित्र श्री व्रजरत्नदास ने अठारह पुस्तकों की सूची दी है, जिनमें अधिकतर धार्मिक पुस्तकें ही हैं। रचना में अधिकतर यमक और अनुप्रास पाया जाता है। शब्दालङ्कारों के प्राधान्य से कहीं-कहीं भाव-व्यञ्जना में बाधा पड़ जाती है और कहीं-कहीं अर्थ ही स्पष्ट नहीं होता, पर जहाँ भावों का प्रकाशन हो सका है वहाँ रचना अत्यन्त सरस है। इन्होंने अधिकतर धार्मिक कथामृत लिखे, जैसे वाराह कथामृत, नृसिंह कथामृत, वामन कथामृत, परशुराम कथामृत, कल्किकथामृत आदि। भारती भूषण में अलङ्कार पर, भाषा व्याकरण में पिंगल पर भी इनकी रचनाएँ हुईं। इन्होंने नहुष नामक नाटक भी लिखा, जो भारतेन्दु द्वारा हिन्दी का सर्वप्रथम नाटक कहा गया है। वे लिखते हैं, विशुद्ध नाटक रीति से पात्र प्रवेशादि नियम-रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्यचरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द्र जी) का है।[1]

राम-साहित्य हिन्दी के इतिहास में उस प्रकार अपना विकास नहीं कर सका जिस प्रकार कृष्ण-साहित्य। उसका कारण था तो राम-साहित्य की गम्भीरता और मर्यादा, दूसरे तुलसीदास का अद्वितीय काव्य-कौशल जिसके कारण अन्य कवियों का उस क्षेत्र में [illegible] का साहस ही न हुआ था। [illegible] ने रामचन्द्रिका लिखी अवश्य,

[1] [illegible]

पर वे अपना दृष्टिकोण भक्तिमय रख ही नहीं सके। उनके पात्र भी अपने चरित्र की श्रेष्ठता अक्षुण्ण न रख सके और राम साहित्य का सारा भक्ति उन्मेष काव्य-प्रणाली की निश्चित धाराओं मे केशव का नीरस पाण्डित्य लेकर बह गया। इस प्रकार राम-साहित्य अपनी भक्ति-भावना के साथ हमारे सामने तुलसी की कविता मे ही बन्दी होकर रहा, उसे अपने विस्तार का अवसर ही नहीं मिला।

तुलसी की भक्ति भावना का सूत्रपात इस बीसवीं शताब्दी मे मिश्र के कौशलकिशोर, 'जोतिसी' के श्री रामचन्द्रोदय और मैथिलीशरण जी के साकेत से हुआ। श्री मैथिलीशरण जी ने राम को ईश्वर का विश्वव्यापी रूप देकर अपना आराध्य मान लिया। वे प्रारंभ मे ही कहते है:—

राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या ?
विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या ?
तब मैं निरीश्वर हूँ ईश्वर क्षमा करे।
तुम न रमो तो मन तुममे रमा करे॥

साकेत वास्तव मे रामचरित का सुन्दर निरूपण है। यद्यपि इसमें लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदि कुछ पात्रों का चित्रण शिष्टता की मर्यादा का उल्लंघन अवश्य कर गया है, पर जहाँ तक राम और सीता के चरित्र से सम्बन्ध है वहाँ तक वह आदर्शों और वर्तमान सामाजिक नीति के सिद्धान्तों के भी अनुकूल है। साकेत की सब से महान सफलता कैकेयी का चरित्र-चित्रण है। उसमें मानव हृदय का स्वाभाविक वात्सल्य और पश्चात्ताप जितनी सफलता के साथ चित्रित किया गया है, उतनी सफलता से शायद साकेत की कोई भी घटना नहीं। उर्मिला का चित्र तो किसी अंश में रीति काल की प्रोषितपतिका के विरह-चित्रण की शैली पर हो गया है। हाँ, यह बात निस्संदेह कही जा सकती है कि नवम सर्ग के कुछ पद जो उर्मिला ने अपने विरह में कहे हैं, वे वस्तुतः ही हिन्दी साहित्य के अमर रत्न हैं।

प्रचार में जन समूह की भाषा की उपयोगिता ने राम साहित्य को विकसित होने का यथेष्ट अवसर दिया। तुलसीदास ने अपनी महान् और असाधारण प्रतिभा के द्वारा राम-काव्य को धर्म और साहित्य के सर्वोत्कृष्ट शिखर पर पहुँचा दिया। उसी समय वल्लभाचार्य की कृष्ण भक्ति में सूरदास के स्वरों में गूँजकर साहित्य का निर्माण कर रही थी। अतः ऐसा ज्ञात होता है कि विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में धर्म-क्षेत्र ही में नहीं, प्रत्युत साहित्य के क्षेत्र में भी प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। इसका संकेत चौरासी वैष्णवन की वार्ता में भी मिलता है, जहाँ तुलसीदास नन्ददास की कृष्ण-भक्ति पर आक्षेप कर उन्हें राम की भक्ति करने के लिए प्रेरित करते हैं और नन्ददास कृष्ण-भक्ति की प्रशंसा कर राम-भक्ति की अवहेलना करते हैं।

दोनों काव्यों के दृष्टिकोण भी अलग हैं। राम-काव्य का दृष्टिकोण दास्य भक्ति है और कृष्ण काव्य का दृष्टिकोण है सख्य भक्ति। दोनों की अलग-अलग दो भाषाएँ भी हो जाती हैं। रामकाव्य की भाषा है अवधी और कृष्ण काव्य की ब्रजभाषा। किसी भी कृष्णभक्त ने अवधी में कृष्ण-कथा नहीं लिखी, किन्तु तुलसी ने अपनी धार्मिक सहिष्णुता से प्रेरित होकर ब्रजभाषा में भी राम ही की नहीं, वरन् कृष्ण की कथा भी लिखी। अतः तुलसीदास ने राम साहित्य को ऐसा व्यापक रूप दिया कि वह सच्चे वैष्णव साहित्य का प्रतिनिधि होकर धर्म और साहित्य के इतिहास में अमर हो गया।

वर्ण्य [illegible]—राम-काव्य या [illegible] विष्णु के राम रूप की भक्ति [illegible] है। [illegible] जहाँ दार्शनिक और धार्मिक [illegible] विवेचना की गई है [illegible] राम के [illegible] अनेक रूपों में [illegible] गई है। राम [illegible] स्वरूप [illegible] रामानन्द के द्वारा [illegible] किया गया है। रामानन्द के द्वारा [illegible]

की परिभाषा में राम-कथा का विकास हुआ है, यद्यपि तत्का-
लीन प्रचलित धार्मिक सिद्धान्तों का भी निर्देश यथास्थान
कर दिया गया है। इस काव्य के सर्वोत्कृष्ट कवि तुलसीदास
हुए जिन्होंने राम चरित्र का दृष्टिकोण अध्यात्म रामायण
से लेकर राम को पूर्ण ब्रह्म घोषित किया। रामकाव्य के
अन्य परिवर्ती कवियों ने तुलसीदास को ही अपना पथ
प्रदर्शक मान कर राम-काव्य की रचना की। केशवदास अवश्य
राम को तुलसी की दृष्टि से नहीं देख सके। उन्होंने न तो
राम के उस ब्रह्मत्व को स्थापित किया जो अध्यात्म रामायण
से रामचरित मानस के द्वारा होकर आया था और न राम
के लोक-रक्षक स्वरूप ही की स्थापना की। वे अधिकतर
वाल्मीकि रामायण के कथा-सूत्र पर ही निर्भर रहे हैं और
उन्होंने स्थान स्थान पर भक्ति-भावना का प्रदर्शन न कर
अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है। इसीलिए धार्मिक
दृष्टिकोण के विचार से ही नहीं, काव्य की कठिनता के
विचार से भी केशव की रामचन्द्रिका साहित्य में वह स्थान
न पा सकी जो तुलसी के रामचरित मानस को मिला।
तुलसी को छोड़कर राम-साहित्य में कोई भी कवि ऐसी रचना
नहीं कर सका जो धर्म और साहित्य की दृष्टि से अमर
होती। तुलसीदास की सर्वोत्कृष्ट प्रतिभा ने किसी अन्य
राम कवि को प्रसिद्ध होने का अवसर नहीं दिया। तुलसीदास
ही राम-काव्य के एक-छत्र अधिपति हैं।

छन्द—राम-काव्य की रचना दोहा-चौपाई ही में अधिक हुई। जो
छन्द-परम्परा सूफी कवियों ने प्रेम-काव्य लिखने में प्रसिद्ध
की थी, उसी छन्द-परम्परा को राम-काव्य के कवियों ने भी
स्वीकार किया, क्योंकि दोहा-चौपाई में प्रबन्धात्मकता का
अच्छा निर्वाह होता है और राम की कथा प्रबन्धात्मक ही

है। दोहा-चौपाई के अतिरिक्त अन्य छन्द भी प्रयुक्त हुए है, जिनमे प्रधानतः कुंडलिया, छप्पय, सोरठा, सवैया, घनाक्षरी, तोमर त्रिभंगी आदि छन्द है। केशवदास ने तो रामचन्द्रिका लिखने मे छन्द शास्त्र का मंथन कर प्रस्तार के अनुसार अनेक छन्दो मे राम कथा लिखी। ऐसे छन्द राम की कथा की उतनी अभिव्यक्ति नहीं करते जितनी केशव की काव्य-कला की। रामचरित-मानस मे जहाँ श्लोक लिखे गए है वहाँ वर्णवृत्त छन्दो मे भी रचना है, पर वे छन्द एक ही दो बार प्रयुक्त हुए है। परवर्ती कृष्ण-काव्य के कवियो ने अधिकतर मात्रिक छन्दो का ही प्रयोग किया है।

भाषा रामकाव्य की भाषा प्रधानतः अवधी है क्योकि उसमे राम-काव्य का आदर्श ग्रन्थ रामचरित-मानस लिखा गया। तुलसी-दास ने अवधी के अतिरिक्त व्रजभाषा का प्रयोग भी अपने अन्य ग्रन्थो मे किया है। केशवदास ने तो व्रजभाषा ही मे रामचन्द्रिका लिखी है। अतः रामकाव्य की दो भाषाएँ माननी चाहिए—अवधी और व्रजभाषा। इन दोनो भाषाओ के प्रवाह मे अन्य भाषाओ की शब्दावली, वाग्धाराएँ और क्रियाएँ आदि प्रयुक्त हुई है। ऐसी भाषाओ मे बुन्देली, भोजपुरी, और फारसी तथा अरबी भाषाएँ हैं। इन भिन्न भाषाओ की सहायता से अवधी या व्रजभाषा का रूप अधिक व्यापक हो गया है। उनमे सरलता के साथ भावाभिव्यञ्जना भी हुई है।

[illegible] व्रजभाषा का जो स्वरूप राम-काव्य मे है वह पूर्ण [illegible] काव्य [illegible] राम [illegible] का [illegible] अवधी और व्रजभाषा [illegible] भाषा म

रस—राम-काव्य मे नव रसो का प्रयोग है। राम का जीवन ही इतने भागो मे विभाजित है कि उससे संपूर्ण रसो की अभिव्यक्ति होती है। वाल्मीकि रामायण महाकाव्य है—राम की समस्त कथा महाकाव्य के रूप ही मे मानस मे वर्णित है, अतः महाकाव्य के लक्षण के अनुसार सभी रसो का निरूपण होना चाहिए। इसीलिए मानस मे सभी रसो का समावेश है। रामचन्द्रिका मे भी नवरस वर्णन है। राम-काव्य के अन्य ग्रन्थो मे भी विविध रसो का निरूपण है। दास्य भक्ति की प्रधानता होने के कारण संत-काव्य की भाँति राम-काव्य मे भी शान्त रस का प्राधान्य है। राम विष्णु के अवतार है—वे राजकुमार है—उनका सीता से विवाह होता है, अतः उनमे सौन्दर्य और माधुर्य की भावना है। इसीलिए राम काव्य मे शृङ्गार रस भी प्रधान है। शान्त और शृङ्गार इन दो प्रधान रसों से राम-काव्य लिखा गया है। अन्य रस गौण रूप से प्रयुक्त हुए हैं।

विशेष—वैष्णव धर्म का जैसा विकास उत्तर मे हो रहा था, वैसा ही दक्षिण मे भी हो रहा था। अन्तर केवल भक्ति-भाव के दृष्टिकोण और आराध्य के रूप का था। दक्षिण के मराठा भक्त ईश्वर की साकारोपासना करते हुए भी उसे वैसा ही आदि ब्रह्म मानते हैं, जैसा तुलसीदास ने राम को माना है, जो विधि हरि हर से भी ऊपर है। महाराष्ट्र मे ईश्वर संबन्धी विशेषणों के साथ राम की भक्ति भी दक्षिण मे प्रचलित थी, यद्यपि इस भक्ति का कोई विशेष दार्शनिक सिद्धान्त नहीं था।[1] इन मराठा भक्तो मे तुकाराम प्रमुख

अधिक प्रसिद्ध हैं। उनका सिद्धान्त कुछ इस प्रकार रक्खा जा सकता है :—

"तुकाराम जी के मत मे सारा संसार तीन रूपों में विभक्त था। जड़ सृष्टि, चैतन्ययुक्त जीव, और ईश्वर। ईश्वर, जड़ सृष्टि तथा सचेतन जीवों का अन्तर्यामी अर्थात् अन्तः संचालक है। यह दोनों प्रकार की सृष्टि, जो उसी की इच्छा से निर्मित हुई है, ईश्वर की देह स्वरूप है और ईश्वर उस देह का आत्मा है। सृष्टि उत्पन्न होने के पूर्व ईश्वर अत्यन्त सूक्ष्म रूप से रहता है। जैसे देह मे विकारादि आत्मा को विकृत नहीं कर सकते, वैसे ही जड़, सृष्टि तथा जीवों के गुणों से ईश्वर स्वरूप विकृत नहीं होता। वह सब दोषों से तथा अवगुणों से अलिप्त रहता है। वह नित्य है, जीवों तथा जड़ सृष्टि मे ओत-प्रोत भरा हुआ है, सबों का अन्तर्यामी है और शुद्ध आनन्द स्वरूप है। ज्ञान ऐश्वर्य इत्यादि सद् गुणों से वह युक्त है। वही सृष्टि का निर्माण करता है, वही उसका पालन करता है तथा अंत मे वही उसका संहार भी करता है। भक्त जनों का वह शरण्य है। उसके गुणों का आकलन न होने के कारण ही उसे अगुण या निर्गुण कह सकते हैं।"[1]

तुकाराम की ईश्वर-संबन्धी यह व्याख्या रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत से बहुत मिलती है। अतः उसका निर्देश राम-काव्य के अन्तर्गत ही होना चाहिए। मराठे संतों की उपासना मे विशिष्टाद्वैत से यदि कुछ विशेषता है तो वह यह कि वह एकेश्वरवाद की ओर कुछ अधिक झुकी हुई है।

philosophical thinking may be traced, he tends to be a monist

An Outline of the Religious History of India Page 300.

J. N. Farquhar

1. संत तुकाराम (हरि रामचन्द्र दिवेकर) पृष्ठ १२०

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद १९३७

इन भक्तो के आराध्य का रूप भी राम न होकर पांडुरंग, विट्ठोबा या विट्ठल है। पांडुरंग तो शिव का नाम है[1] जो वैष्णव उपासना मे मराठे भक्तो द्वारा प्रयुक्त है। विट्ठोबा या विट्ठल संस्कृत शब्द नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि विट्ठल' बहुत ही बाद की रचना है।[2] विट्ठल का शब्द है "ईंट पर खड़ा हुआ" (मराठी-विट्=ईंट)। भंडारकर विट्ठल को विष्णु का अपभ्रंश रूप ही मानते है। महाराष्ट्र मे इस नाम की व्युत्पत्ति यो कही जाती है कि भीमा नदी के तीर पर पुंडलीक नाम का एक व्यक्ति रहता था जो अपने माता पिता की बहुत सेवा करता था। इस भक्ति से प्रसन्न होकर कृष्ण उसे साक्षात् दर्शन देने के लिए उसके पास आए। पुंडलीक अपने माता-पिता की भक्ति में व्यस्त था। जब उसे ज्ञात हुआ कि स्वयं श्रीकृष्ण दर्शन देने आये हैं तब उसने अपने पास पड़ी हुई ईंट श्रीकृष्ण के पास फेक कर कहा—कृपया इस पर विश्राम कीजिए। माता-पिता की सेवा के बाद मैं आप की ओर देख सकूँगा। श्रीकृष्ण उस भक्त की आज्ञा मान कर ईंट पर खड़े होगए और कमर पर हाथ रख कर पुंडलीक की ओर देखने लगे। यही विट्ठल की मूर्ति है। वे ईंट पर खड़े हुए अपनी कमर पर हाथ रखे एकटक देख रहे हैं। कहा जाता है कि पुंडलीक के कारण ही विष्णु का विट्ठल रूप से अवतार हुआ और पुंडलीक या पुंडरीक के नाम पर भीमा नदी का गांव पुंडलीकपुर या पंढरपुर कहा जाने लगा।

उपासना और आराध्य का रूप कुछ भिन्न होते हुए भी मराठी भक्तों की भावना राम-काव्य से बहुत मिलती-जुलती है। तुकाराम ने तो अपनी हिन्दी कविता की रचना में राम का नाम भी अनेक बार प्रयुक्त किया है :—

राम कहे सो मुख भला रे, बिन राम से बीख।
आव न जानू रमते बेरा, जब काल लगावे सीख ॥[1]
तुकादास राम का मन में एकहि भाव।
तो न पलट्ट आवे, येही तन जाय ॥[2]

बार-बार काहे मरत अभागी। बहुरि मरन से क्या तोरे भागी ॥ १ ॥
एहि तन करते क्या ना होय। भजन भगति करे वैकुण्ठ जाय ॥ २ ॥
राम नाम मोल नहिं वेचे कवरी। वोहि सब माया छुरावत सगरी ॥ ३ ॥
कहे तुका मन सुं मिल राखो। राम रस जिह्वा नित चाखो ॥ ४ ॥[3]

महाराष्ट्र के भक्त कवियों ने मराठी अभंगों के साथ[4] हिन्दी में भी रचना की। इन रचनाओं में साहित्य का सौन्दर्य न होकर केवल भक्ति का ही सौन्दर्य है। ऐसे महाराष्ट्र भक्तों में निम्नलिखित प्रसिद्ध हैं :—

१. जनार्दन (समय संवत् १५९०)

२. भानुदास (समय संवत् १५५५) इनकी प्रभातियाँ तुलसीदास की प्रभातियों के समान ही हैं। हिन्दी कविता में ये राम और

---

१. संत तुकाराम, पृष्ठ १५७

२. ,, पृष्ठ १५७

३. ,, पृष्ठ १५६

४ The metre used by him was that which is known by the name of Abhanga, the measure of which is by no means strict or regular, but which is characterised by the use of rhyming words at specific intervals.

Vaisnavism, S. S. Page 93.

श्याम दोनों ही को समान रूप से मानते हैं :—

झमत-झमत राम श्याम, सुंदर मुख तव ललाम,

पातो की छूट कछु भानुदास पाई ॥[1]

३. एकनाथ (समय संवत् १६००) ये बड़े लोकप्रिय वैष्णव थे। इन्होंने भक्ति का सबसे अधिक प्रचार किया। ज्ञानेश्वरी का प्रचार इनके द्वारा महाराष्ट्र के कोने-कोने में हो गया। इन्होंने एकनाथी भागवत और भावार्थ रामायण की रचना की। इनकी हिन्दी कविता भी बहुत प्रसिद्ध है, जिसमें तत्कालीन फारसी शब्द भी आ गए हैं।

४. तुकाराम (समय संवत् १६६४-१७०६) इनका जीवन तुलसीदास के जीवन से बहुत मिलता है। गृहस्थाश्रम के बाद वैराग्य लेने पर इन्होंने भक्ति का विशेष प्रचार किया। इन्होंने 'वारकरी' नामक पंथ भी चलाया। इनके अभंग महाराष्ट्र में बहुत प्रसिद्ध हैं।[2] महाराज शिवाजी इनके सम्पर्क में आये थे और दीक्षित होना चाहते थे पर तुकाराम ने यह स्वीकार नहीं किया। ये वीतराग ही रहे।

५. नारायण (समय सं० १६६१—१७२८) इन्होंने रामदास नाम से वैष्णव भक्ति का प्रचार किया। सम्भवतः यह रामानन्द के प्रभाव के कारण ही हुआ। इन्होंने शिवाजी को बहुत

---

1 हिन्दी साहित्य के इतिहास के अप्रकाशित परिच्छेद (श्रीभास्कर रामचन्द्र भालेराव) पृष्ठ ६

2 केशव स्मारक संग्रह (नागरी प्रचारिणी सभा काशी) १९८५

प्रभावित किया। इसीलिए इनका नाम समर्थ गुरु रामदास हुआ। इनके सिद्धान्तों पर रामदासी पन्थ चल निकला। इनका ग्रन्थ 'दशबोध' रामदासी मत मे बहुत प्रसिद्ध हुआ। इनके उत्साह भरे उपदेश ने महाराष्ट्र को शक्ति से समन्वित कर मुसलमानी सत्ता के सामने निर्भीक और साहसी बना दिया। शिवाजी का शौर्य गुरु रामदास की वाणी का विकसित रूप है।

इनके अतिरिक्त महाराष्ट्र मे अन्य वैष्णव भक्त भी हुए, जिन्होंने कुछ हिन्दी रचना की। उन भक्तों मे कन्हावा, जयराम, रघुनाथ व्यास विशेष प्रसिद्ध हैं।

उत्तर और दक्षिण भारत मे वैष्णव धर्म की इस लहर ने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों मे भी हिन्दू जीवन को सुरक्षित रक्खा और धर्म और साहित्य के गौरव की रक्षा की। वैष्णव धर्म का राम काव्य कृष्ण-काव्य से श्रेष्ठ रहा, क्योंकि राम-काव्य मे किसी प्रकार की कलुषता नहीं आने पाई। कृष्ण-काव्य ने आगे चल कर शृङ्गार रस के वासनामय आतङ्क के सामने सिर झुका दिया। उसमे धर्म की पवित्रता नहीं रह गई। साहित्य के दृष्टिकोण से भी उत्तरकालीन कृष्ण-काव्य केवल मनोरञ्जन और विलासिता का साधन बन कर रह गया।

———

सातवाँ प्रकरण

कृष्ण-काव्य

श्रीकृष्ण की भावना का आविर्भाव ईसा की चौथी शताब्दी पूर्व ही हो चुका था। श्रीकृष्ण के अनेक नामो मे वासुदेव नाम भी था। हापकिन्स का कथन है कि महाभारत मे श्रीकृष्ण केवल मनुष्य के रूप मे ही आते है, वाद मे वे देवत्व के पद पर अधिष्ठित हुए। पर कीथ के विचारानुसार महाभारत मे श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व पूर्णरूप से देवत्व की भावना से युक्त है।[1] इतना तो निश्चित है कि ईसा के चार सौ वर्ष पूर्व के लगभग कृष्ण मे दैवत्व की भावना आ गई थी, क्योकि पाणिनि के व्याकरण मे वासुदेव और अर्जुन देव-युग्म है। प्रसिद्ध यात्री मैगस्थनीज़ ने भी लिखा है कि कृष्ण की पूजा मथुरा और कृष्णपुर मे होती थी। यह काल ईसा के ३०० वर्ष पूर्व का है। यदि वासुदेव कृष्ण की पूजा प्रथम मौर्य के समय मे प्रचलित थी तब तो इस पूजा का प्रारम्भ मौर्य वंश की स्थापना के बहुत पहले हो गया होगा। संभवतः इस पूजा का प्रारम्भ उपनिषदो के साथ ही हुआ, क्योकि महानारायण उपनिषद मे विष्णु का पर्यायवाची शब्द वासुदेव है। कृष्ण वासुदेव का ही पर्यायवाची है, अत कृष्ण ही विष्णु का द्योतक हैं।

सर भंडारकर वासुदेव और कृष्ण मे अन्तर मानते है। उनका विचार है कि सात्वत एक क्षत्रिय वंश का नाम था जिसे वृष्णि भी कहते थे। वासुदेव [illegible] सात्वत वंश के एक महापुरुष थे और उनका समय ईसा [illegible] पूर्व है। उन्होने ईश्वर के एकत्व भाव का [illegible] किया था।

(३) त्वं प्राणसंशितमसि—तू प्राणियों का जीवनदाता है।]

यदि कृष्ण भी आंगिरस थे तो ऋग्वेद के समय से छांदोग्य उपनिषद् के समय तक उनके संबन्ध में जनश्रुति चली आती होगी। इसी जनश्रुति के आधार पर कृष्ण का साम्य वासुदेव से हुआ होगा जब वासुदेव देवत्व के पद पर अधिष्ठित हुए होंगे। कृष्ण और वासुदेव के एकत्व का एक कारण और है। जातकों की गाथा के भाष्यकार का मत है कि कृष्ण एक गोत्र-नाम है और यह क्षत्रियों द्वारा भी यज्ञ समय में धारण किया जा सकता था।[1] इस गोत्र का पूर्ण रूप है कार्ष्णायन। वासुदेव इसी कार्ष्णायन गोत्र के थे, अतः उनका नाम कृष्ण हो गया। इस प्रकार कृष्ण ऋषि का समस्त वेद-ज्ञान और देवकी का पुत्र-गौरव वासुदेव के साथ सम्बद्ध हो गया क्योंकि वे अब कृष्ण के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

ईसा के दो सौ वर्ष पूर्व से दो सौ वर्ष बाद, इन चार सौ वर्षों में महाभारत में कृष्ण दैवी अवतार के रूप में ज्ञात होते हैं। सभा पर्व में भीष्म श्रीकृष्ण को अव्यक्त प्रकृति एवं सनातन कर्ता कहते हैं, वे उन्हें समस्त भूतों से परे मानते हैं :—

एव प्रकृतिरव्यक्ता कर्ता चैव सनातनः।
परश्च सर्व भूतेभ्यः तस्मात्पूज्य तमोऽच्युत. ॥ [2]

आगे चल कर वे उन्हें परब्रह्म भी कहते हैं :—

एतत्परमकं ब्रह्म एतत्परमकं यशः।
एतदक्षरमव्यक्तं एतत् वै शाश्वत महः ॥ [3]

भीष्म द्वारा श्रीकृष्ण की इस प्रशंसा में गोकुल में की हुई कृष्ण की लीलाओं का निर्देश नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि महाभारत मे परब्रह्म कृष्ण की भावना है गोपाल-कृष्ण की नहीं। सभापर्व में शिशुपाल अवश्य श्रीकृष्ण की गोकुल-सम्बन्धी लीलाओं का निर्देश करता है, पर वे पंक्तियाँ प्रक्षिप्त जान पड़ती हैं, क्योंकि महाभारत के समय तक कृष्ण के देवत्त्व का उतना ही विकास हुआ था जितना भीष्म द्वारा वर्णित है। महाभारत में कृष्ण के लिए एक नाम और आता है। वह नाम है गोविन्द। पर इस शब्द का अर्थ गो (गाय) से संबन्ध रखने वाला नहीं है। आदि पर्व में गोविन्द का अर्थ वाराह अवतार के प्रसङ्ग में है जहाँ विष्णु ने पानी मथ कर पृथ्वी को निकाला है। शान्ति पर्व में भी वासुदेव कृष्ण ने अपना नाम गोविन्द बतलाते हुए पृथ्वी के उद्धार की बात कही है। अतः महाभारत के काल में गायों से संबन्ध रखने वाले 'गोविन्द' की कथाएँ प्रचलित नहीं थीं। गोविन्द का वास्तविक इतिहास 'गोविद्' शब्द से है जो ऋग्वेद मे इन्द्र के लिए प्रयुक्त है, जिसने गायों की खोज की थी।

महाभारत मे विष्णु के महत्त्व की पूर्ण घोषणा है। यह बात अवश्य है कि विष्णु के साथ ब्रह्मा और शिव का भी निर्देश है, किन्तु विष्णु का महत्व दोनो से अधिक है, क्योंकि विष्णु की भावना में अवतारवाद है। महाभारत मे कृष्ण विष्णु के ही अवतार माने गए है। इसी समय बौद्ध धर्म के महायान वर्ग मे बुद्ध सम्पूर्ण ईश्वर बन जाते है। ऐसा ज्ञात होता है कि बौद्ध मत प्रधानतः महाभारत की ईश्वरीय भावना से ही प्रभावित है।

महाभारत के बाद भगवद्गीता में भी श्रीकृष्ण विष्णु के पूर्ण अवतार हैं। वे पूर्ण परब्रह्म हैं :—

मत्त परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनञ्जय । मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥[1]

---

१ श्रीमद्भगवद्गीता ७।७

इन अवतारों में उपर्युक्त ६ अवतारों के अतिरिक्त सनत्कुमार, नारद, कपिल, दत्तात्रेय, ऋषभ, धन्वन्तरि आदि हैं। ये ऋषभ संभवतः जैन धर्म के तीर्थंकर ज्ञात होते हैं।[1]

(६) नृसिंहपुराण—१० अवतार जो वाराह और अग्नि पुराण में हैं। पर इन अवतारों में कृष्ण के साथ बलराम का नाम भी जोड़ दिया गया है। और इस नाम की सार्थकता अध्याय ५३ के इस श्लोक से की गई है :—

प्रेषयामास द्वे शक्ती सित कृष्णे स्वके नृप।
तयोः सिता च रोहिण्यां वसुदेवाद्बभूव ह॥
तद्वत्कृष्णा च देवक्यां वसुदेवाद्बभूव ह।
रौहिणेयोऽथ पुण्यात्मा रामनामाश्रितो महान्॥
देवकीनन्दनः कृष्ण .... ॥

अर्थात् पृथिवी के भार उतारने के हेतु श्री विष्णु भगवान ने अपनी दो शक्तियों को पृथिवी पर भेजा एक सफेद, दूसरी काली। श्वेत शक्ति रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न होकर 'राम' नाम से प्रसिद्ध हुई और काली शक्ति देवकी के गर्भ से उत्पन्न होकर 'कृष्ण' नाम से प्रसिद्ध हुई।[2]

इन अवतारों में उपर्युक्त : अवतारों के अतिरिक्त सनत्कुमार, नारद, कपिल, दत्तात्रेय, ऋषभ, धन्वन्तरि आदि हैं। ये ऋषभ संभवतः जैन धर्म के तीर्थंकर ज्ञात होते हैं।[१]

(६) नृसिंहपुराण—१० अवतार जो वाराह और अग्नि पुराण में हैं। पर इन अवतारों में कृष्ण के साथ बलराम का नाम भी जोड़ दिया गया है। और इस नाम की सार्थकता अध्याय ५३ के इस श्लोक से की गई है :—

प्रेषयामास द्वे शक्ती सित कृष्णे स्वके नृप।
तयोः सिता च रोहिण्यां वसुदेव बाद्बभूव ह॥
तद्वत्कृष्णा च देवक्यां वसुदेवाद्बभूव ह।
रौहिणेयोऽथ पुण्यात्मा रामनामा श्रितो महान्॥
देवकीनन्दनः कृष्ण .... ॥

अर्थात् पृथिवी के भार उतारने के हेतु श्री विष्णु भगवान ने अपनी दो शक्तियों को पृथिवी पर भेजा एक सफेद, दूसरी काली। श्वेत शक्ति रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न होकर 'राम' नाम से प्रसिद्ध हुई और काली शक्ति देवकी के गर्भ से उत्पन्न होकर 'कृष्ण' नाम से प्रसिद्ध हुई।[२]

---

१ The doct[illegible] of the incarnations had also become an article of [illegible] and the found[illegible] of [illegible] the first T[illegible] came later to be re[illegible]

की ज्ञानामृत सार संहिता मे कृष्ण की वाल-लीलाओं का निर्देश है। ज्ञानामृत सार संहिता का रचना-काल सर भंडारकर द्वारा ईसा की चौथी शताब्दी के बाद ही निर्धारित किया गया है।[1] अतः इस समय आभीरो का आतंक अवश्य ही अपने उत्कर्ष पर होगा और उसी आतंक से प्रेरित होकर वासुदेव कृष्ण की सत्ता गोपाल कृष्ण के समस्त वाल-चरित्र मे लीन हो गई। इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र मे श्रीकृष्ण की भावना का विकास हुआ।

मैकनीकाल के अनुसार कृष्ण की ईश्वरीय सृष्टि सर्वप्रथम 'वनदेव' (Vegetation deity) की भावना में मानी जानी चाहिए।[2] प्रकृति मे वसन्तश्री से नवीन जीवन की सृष्टि होती है, नवीन पल्लवों मे सौन्दर्य फूट पड़ता है। इस नवीन जीवन को उत्पन्न करने वाली शक्ति के प्रति प्राचीनतम काल के असंस्कृत हृदय मे भक्ति का उद्रेक होना स्वाभाविक है। हमे ज्ञात है कि आर्यों ने प्रकृति के अनेक रूपो को देवताओ के रूप में मान इन्द्र, वरुण, अग्नि, मरुत् आदि देवों की कल्पना की है। उसी भाँति मृत्यु से जीवन का आविर्भाव करने वाली शक्ति भी किस प्रकार कृष्ण के रूप मे आई, यही हमे देखना है।

(अ) कृष्ण के जीवन की भावना स्पष्ट रूप से गोपरूप मे है, जिसका सम्बन्ध गौवों से है। प्रकृति के जीवो की रक्षा करने वाले और प्रकृति के प्रागण मे विहार करने वाले देवताओं की कल्पना तो हमारे भक्ति काल के साहित्य मे भी मिलती है। गाएँ प्रकृति की निर्दोष सरल और करुण प्रतिमाएँ है। श्रीकृष्ण उनके पोषक है। इसलिए वे आदि-भावना से गोप रूप होने के कारण वन देव के रूप मे आप से आप आ जाते है। उनका नाम इसीलिए गोपाल अथवा गोपेन्द्र है। यही कारण है न

होता है कि श्रीकृष्ण के हृदय में श्रीवत्स चिन्ह है। यह चिह्न हृदय पर रोओं के चक्र से निर्मित है जिसके लिए 'भौंरी' एक विशिष्ट शब्द है। यह गाय और बैलों की छाती पर अक्सर रहा करता है। इसी भावना पर कवि बिहारी ने श्लेष से व्यक्त किया था :—

चिरजीवी जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ए वृषभानुजा वे हलधर के बीर॥[1]

(आ) कृष्ण के भाई का नाम बलराम है। वे भी ऋतु के देव माने गए हैं। उनका सम्बन्ध विशेष कर धान्यादिकों से है। उनका आयुध भी हल है। अतएव कृष्ण-बलराम प्रकृति की सृजन शक्ति के प्रतिनिधि हैं।

(इ) गोवर्धन पूजा का भी यही तात्पर्य है जिसमें अनाज की पूजा का प्रधान विधान है। उस उत्सव का दूसरा नाम अन्नकूट भी है। उसका प्रारंभ श्रीकृष्ण के द्वारा होना कहा गया है जिस कारण उन्हें इन्द्र का कोप-भाजन बनना पड़ा।

इससे यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल के ये सब सिद्धान्त जो प्रकृति के प्रति आदर के भाव से परिपूर्ण थे, कृष्ण के देवत्व का निर्माण करने में पूर्ण सहायक थे। बाद में अन्य सिद्धान्तों के मिश्रण से कृष्ण अनेक विचारों के प्रतीक बने किन्तु उनका आदि रूप निश्चय ही 'वनदेव' से लिया गया जान पड़ता है क्योंकि वे आभीर जाति के आराध्य थे।

यह कहा ही जा चुका है कि यदि रामानुजाचार्य से प्रभावित होकर उनके अनुयायी रामानन्द ने विष्णु और नारायण का रूपान्तर कर राम-भक्ति का प्रचार किया तो निम्बार्क, मध्व और विष्णु स्वामी के आदर्शों को सामने रख कर उनके अनुयायी चैतन्य और वल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण की ही भक्ति का प्रचार किया। यह भक्ति भागवत पुराण से ली गई है

1 बिहारी रत्नाकर, पृष्ठ १७८-२७८

जिनमें ज्ञान की अपेक्षा प्रेम का ही अधिक महत्व है, आत्म चिन्तन की अपेक्षा आत्मसमर्पण की भावना का प्राधान्य है। ईसा की १६वीं शताब्दी में कृष्ण भक्ति का जो प्रचार हुआ उसमें वल्लभाचार्य का बहुत बड़ा हाथ था। उन्होंने जहां दार्शनिक क्षेत्र में शुद्धाद्वैत की स्थापना की वहां भक्ति के क्षेत्र में पुष्टि मार्ग की, दोनों के योग से उन्होंने श्रीकृष्ण को ब्रह्म मान कर उन्हीं की कृपा पर जीव के मुक्त स्थिति के अतिरिक्त आनन्द रूप की कल्पना की। उनके पुष्टि सम्प्रदाय में अनेक वैष्णव दीक्षित हुए जिन्होंने श्रीकृष्ण की भक्ति पर उत्कृष्ट रचना की। इसमें अष्टछाप बहुत प्रसिद्ध है जिसकी स्थापना श्री वल्लभाचार्य के पुत्र श्री विट्ठलनाथ ने की थी। इसी अष्टछाप में सूरदास, नन्ददास आदि ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि थे जो भक्ति के क्षेत्र में यशस्वी और लोकप्रिय हुए। वल्लभाचार्य ने अपनी गद्दी अपने आराध्य श्रीकृष्ण की जन्मभूमि ब्रज ही में स्थापित की। इस गद्दी का सब से बड़ा प्रभाव यह हुआ कि श्रीकृष्ण की भक्ति के साथ साथ ब्रजभाषा का भी बहुत प्रचार हुआ, और वह शीघ्र ही काव्य-भाषा के पद पर अधिष्ठित हो गई। ब्रजभाषा में ऐसे सुन्दर गेय पदों की रचना हुई कि उसके द्वारा कृष्ण भक्ति उत्तरीय भारत के कोने कोने में व्याप्त हो गई। कृष्ण-भक्ति के द्वारा ब्रजभाषा का प्रचार हुआ और ब्रजभाषा के द्वारा कृष्ण भक्ति का। इस तरह कृष्ण भक्ति और ब्रजभाषा ने पारस्परिक रूप से एक दूसरे को महत्व दिया। श्री वल्लभाचार्य से प्रभावित होकर जिन कवियों ने श्रीकृष्ण-भक्ति पर रचना की उनमें श्री सूरदास सब से अधिक प्रसिद्ध है।

श्रीकृष्ण की भावना के विकास के साथ ही साथ राधा के इतिहास पर भी दृष्टि डालना युक्ति संगत होगा।

महाभारत में श्रीकृष्ण के जीवन का चित्रण है, वहां राधा [illegible] महाभारत में कृष्ण का जीवन महत्वपूर्ण है, [illegible] में जन्म लेते हैं कंस के साथ अन्य असुरों को मारते हैं [illegible] वध के बाद द्वारिका चले जाते हैं। उनके पिता का नाम

वसुदेव और माता का नाम देवकी है, पर उनके गोप-जीवन की गाथा और उनके अलौकिक कृत्यों की कथा महाभारत में नहीं है। गोप जीवन के अभाव में राधा का उल्लेख भी नहीं है।

महाभारत के बाद ईसा की दशम शताब्दी में भागवत पुराण की रचना हुई। उसके आधार पर नारद भक्ति सूत्र और शाण्डिल्य भक्ति सूत्र का निर्माण हुआ। इनमें भक्ति का विकास पूर्ण रूप से हुआ किन्तु इन ग्रन्थों में भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति होते हुए भी भक्ति की साकार मूर्ति राधा का निर्देश कृष्ण के साथ नहीं है। भागवत पुराण में कृष्ण का बाल-जीवन ही वर्णित है, उत्तर जीवन का विवरण ही नहीं है, केवल संकेत मात्र है। जिस बाल-जीवन का वर्णन भागवत में है वह बहुत विस्तार से है। भागवत में गोपियों का निर्देश अवश्य है, पर राधा का नहीं। यह बात अवश्य है कि श्रीकृष्ण के साथ एकान्त में विचरण करने वाली एक गोपी का विवरण अवश्य है, पर उसका नाम नहीं दिया गया। अन्य गोपियाँ उस गोपी की प्रशंसा करती है कि उसने पूर्व जन्म में श्रीकृष्ण की आराधना अवश्य की होगी तभी तो वह श्रीकृष्ण को इतनी प्रिय है। महाराष्ट्र के सन्त ज्ञानेश्वर और उसी वर्ग के अन्य गायकों ने राधा का वर्णन नहीं किया।[1] भागवत पुराण के आधार पर पहला संप्रदाय माधव संप्रदाय है जिसमें द्वैतवाद के सिद्धान्त पर कृष्णोपासना पर विशेष जोर दिया गया है, पर इसमें भी राधा का उल्लेख

---

1 The God is Vitthal or Vithoba .....Vitthal has several consorts installed near him, each in a separate shrine, Rakmabai (Rukmini), Radha, Satyabhama, and Lakshmi, but it is noteworthy that Radha takes no place in Marathi literature

[illegible] An O. R. H. Page 301

नहीं है। माधव सम्प्रदाय श्री मध्वाचार्य द्वारा प्रतिपादित हुआ जिनका समय सम्वत् १२५६ से १३३५ (सन् ११९९-१२७८) माना गया है।[1]

भागवत पुराण के आधार पर जिन अन्य पुराणों की रचना की गई है उनमें राधा का निर्देश है। भागवत पुराण में एक विशेष गोपी का निर्देश अवश्य है जिसने पूर्व जन्म में श्रीकृष्ण की आराधना की है जिस कारण वह श्रीकृष्ण को विशेष प्रिय है। इसी 'आराधना' शब्द से राधा की उत्पत्ति ज्ञात होती है। राधा शब्द संस्कृत धातु राध् से बना है जिसका अर्थ सेवा करना या प्रसन्न करना है। किस ग्रन्थ में राधा का नाम पहले पहल इस अर्थ में आता है यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, पर पहला ग्रन्थ जिसका परिचय अभी तक प्राप्त हो सका है वह है गोपालतापनी उपनिषद्। इसमें राधा का वर्णन कृष्ण की प्रेयसि के रूप में है। यह ग्रन्थ राधा-सम्प्रदाय के लोगों में बहुत मान्य है। गोपालतापनी उपनिषद् की रचना मध्व के भाष्य और अनुव्याख्यान के बाद ही हुई होगी क्योंकि मध्व ने राधा का उल्लेख नहीं किया।

माधव संप्रदाय के बाद जो अन्य संप्रदाय हुए (जिनमें कृष्ण का ब्रह्मत्व स्वीकार किया गया) वे विष्णु स्वामी और निम्बार्क संप्रदाय हुए। इन दोनों संप्रदायों में राधा का निर्देश है। निम्बार्क संप्रदाय में जयदेव हुए जिन्होंने राधा और कृष्ण के विहार में गीतगोविन्द की रचना की। राधा की उपासना के संबन्ध में फर्कुहार का यह मत है कि राधा की उपासना भागवत पुराण के आधार पर वृन्दावन में ईसा सन् ११०० के लगभग प्रारंभ हो गई होगी और वहीं से वह बङ्गाल

---

1. A O R H page 235

के जीवन पर कुछ अधिक प्रकाश डाला गया है।[1] इनके जीवन की अधिकांश घटनाएँ अलौकिक है और वे अधिकतर जनश्रुति के आधार पर ही हैं। इनके जीवन के विषय मे प्रामाणिक रूप से यही कहा जा सकता है कि इनका जन्म किन्दुबिल्व (वीरभूमि, बङ्गाल) में हुआ था। इनके पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम राधादेवी (रामादेवी ?) था। बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन के दरबार मे इन्होंने बड़ी प्रसिद्धि पाई। राजा लक्ष्मण सेन का समय सन् ११७० (सं १२२७) है। अतः जयदेव का समय भी यही मानना चाहिए।[2] श्री भक्तमाल सटीक के वार्तिक प्रकाशकार श्री सीताराम शरण भगवानप्रसाद ने जयदेव का समय सन् १०२५ से १०५० ई० (अर्थात् संवत् १०८२ से ११०७) के मध्य माना है।[3] मानियर विलियम्स ने जयदेव का

शुभ संत सरोरुह खंड को पद्मावति सुख जनक रवि।
जयदेव कवि नृप चक्कवै खेंड मॅडलेश्वर आन कवि।

भक्तमाल सटीक, पृष्ठ ३२७

१. प्रियादास के २० कवित्त—१४४ से १६३ कवित्त

भक्तमाल सटीक, पृष्ठ ३२८-३४६

२. He became the most famous of the five distinguished poets who lived at the court of Lakshman Sen, King of Bengal, who dates from the year 1170 of the Christian era.

The Sikh Religion Vol VI
M A. Macauliffe (190)

३. इनका समय सन् १०२५ ई० से १०५० ईसवी तक निर्णय किया गया है, अर्थात् विक्रमी सम्वत् १०८२ तथा ११०७ के मध्य।

भक्तमाल सटीक, पृष्ठ ३४७

समय ईसा की बारहवीं शताब्दी माना है।[1] इतिहास के साक्ष्य से मैकालिफ के द्वारा दिया गया समय ठीक ज्ञात होता है। लक्ष्मणसेन के राज्यारोहण का समय सन् ११?९ दिया गया है।[2] मुहम्मद बिन बख्तियार ने बिहार पर ११९७ में चढ़ाई की थी उसके पूर्व लक्ष्मणसेन की मृत्यु हो गई थी। अतः लक्ष्मण सेन का राजत्व काल सन् ११९७ के पूर्व मानना चाहिए। ऐसी परिस्थिति में सन् ११७० (सम्वत् १२२७) में जयदेव का लक्ष्मणसेन के संरक्षण में रहना संभव है। अतः जयदेव का समय विक्रम की तेरहवीं शताब्दी का प्रारम्भ मानना चाहिए।

प्रियादास ने जयदेव के वैराग्य, पद्मावती से विवाह, गृहस्थाश्रम, गीत गोविन्द की रचना, ठग-मिलन, पद्मावती की मृत्यु और पुनर्जीवन आदि प्रसङ्गो पर विस्तार मे लिखा है जिनमे अनेक अलौकिक घटनाओं का मिश्रण है, पर इतना निश्चित है कि जयदेव ने गीत गोविन्द की रचना संस्कृत मे लक्ष्मणसेन के राजत्वकाल ही मे की थी। गीत

---

१. The poet Jayadeva, who is also supposed to have lived in the twelfth century, may have been his (Nimbarka's) disciple.

M. Williams—Brahmanism and Hinduism Page 116.

२. Ballalsena was succeeded about the year 1119 A D. by his son Lakshamanasena who died long before the raid of Muhammad bin-Bakhtiyar described by Minhaj-us-Siraj in his Tabqat-i-Nasiri. The Musalman general raided Bihar in 1197 and proceeded against Nudiah probably in 1199 A D.

Mediaeval India, Page 26.

Dr. Ishwari Prasad

गोविन्द मे जयदेव ने राधा और कृष्ण का मिलन, कृष्ण की मधुर लीलाएं और प्रेम की मादक अनुभूति सरस और मधुर शब्दावली मे लिखी है। गीत गोविन्द के द्वारा राधा का व्यक्तित्व पहली बार मधुर और प्रेमपूर्ण बना कर साहित्य मे प्रस्तुत किया गया है। गीत-गोविन्द की पदावली मधुर है। उसमे कामदेव के बाणों की मीठी पीड़ा है। कीथ गीतगोविन्द की प्रशसा करते हुए कहते हैं कि उसकी शब्दावली इतनी मधुर और भावो के अनुकूल है कि उसका अनुवाद अन्य किसी भाषा मे ठीक तरह से हो ही नहीं सकता।[1]

जयदेव ने संस्कृत मे गीत गोविन्द की रचना कर अपने भाषाधिकार और भाव-प्रदर्शन की कुशलता का परिचय अवश्य दिया, पर हिन्दी मे उन्होने अपनी यह कुशलता नहीं दिखलाई? अपने अनुपम वाग्विलास से उन्होने विद्यापति और सूरदास जैसे महान कवियो को प्रभावित अवश्य किया। पर वे स्वयं हिन्दी मे उत्कृष्ट कोटि की रचना नहीं कर सके। संस्कृत की कमल कान्त पदावली मे उन्होने जिस सङ्गीत की सृष्टि अपने काव्य गीत-गोविन्द मे की, वह हिन्दी मे नहीं हो सकी। संस्कृत के गीतकाव्य मे गीतगोविन्द अमर है। उसमे यमक और अनुप्रास से जिस प्रकार भावव्यञ्जना की गई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उदाहरणार्थ तृतीयावलोकनम् में राधा का विरह निवेदन लीजिए :—

---

१. Jayadeva is a master of form and diction, and above all he is not merely of remarkable skill in metre, but he is able to blend sound to emotion in a manner that renders any effort to represent his work in translation utterly inadequate

A Kieth

Classical Sanskrit Literature (Heritage of India Series)

Page 12L

विद्यापति

विद्यापति बङ्गाली कवि नहीं थे, वे मिथिला के निवासी थे और मैथिली में उन्होंने अपनी कविता लिखी। लगभग चालीस वर्ष पहले बङ्गाली विद्यापति को अपना कवि समझते थे, पर जब से उनके जीवन की घटनाओं की जाँच-पड़ताल बाबू राजकृष्ण मुकर्जी और डाक्टर ग्रियर्सन ने की है तब से बङ्गाली अपने अधिकार को अव्यव स्थित पाते हैं।

विद्यापति एक विद्वान् वंश के वंशज थे। उनके पिता गणपति ठाकुर ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक गंगा-भक्ति-तरंगिनी अपने मृत संरक्षक मिथिला के महाराजा गणेश्वर की स्मृति मे समर्पित की थी। गणपति के पिता जयदत्त संस्कृत विद्वत्ता के लिये ही प्रसिद्ध नहीं थे वरन् एक बड़े सन्त थे। उन्हें इसी कारण योगेश्वर की उपाधि मिली थी। जयदत्त के पिता वीरेश्वर थे, जिन्होंने मैथिल ब्राह्मणों की दिनचर्या के लिये नियम संबद्ध किए थे।

विद्यापति बिसपी के रहनेवाले थे। यह दरभङ्गा ज़िले में है। यह गाँव विद्यापति ने राजा शिवसिंह से उपहार-स्वरूप पाया था। विद्यापति ने शिवसिंह; लखिमा देवी, विश्वास देवी, नरसिंह देवी और मिथिला के कई राजाओं की संरक्षिता पाई थी। ताम्र-पत्र द्वारा बिसपी गाँव का दान शिवसिंह ने अभिनव जयदेव की उपाधि सहित सन् १४०० ई० मे विद्यापति को दिया था।[1]

---

१. स्वतिश्रीगजरथन्यादि समस्त प्रक्रिया विराजमान श्रीमद्रामेश्वरी वरलब्ध प्रसाद भवानी भव भक्ति भावना परायण—रूप नारायण महा राजाधिराज—श्रीमच्छिवसिंह देव पादाः समरविजयिनो जरै लतप्पायां बिसपी ग्रामवास्तव्य सकल लोकान भूकर्षकाश्च समादिशन्ति ज्ञातमस्तु भवताम्। ग्रामोऽय म स्माभि' सप्रक्रिया भिनव जयदेव—महाराज पण्डित ठक्कुर—श्री विद्यापतिभ्य शासनीकृत्य प्रदत्तोऽत

कई विद्वान् इस ताम्रपत्र को जाली समझते हैं। इस लेख की अक्षराकृति उस समय के अक्षरों से नहीं मिलती, जब कि यह दान दिया गया होगा। इस प्रमाण के आधार पर ताम्रपत्र अप्रमाणिक सिद्ध किया जाता है। जो हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि विसपी गाँव विद्यापति को शिवसिंह ने दान में दिया था। कवि स्वयं इस दान को अपने एक पद्य में लिखता है।[1] उस स्थान पर प्रचलित जन-श्रुति भी इस दान का समर्थन करती है।

विद्यापति के आविर्भाव के संबन्ध में डा० उमेश मिश्र लिखते हैं:—

"इनके पिता गणपति ठाकुर महाराज गणेश्वरसिंह के राज-सभासद थे और राजसभा में अपने पुत्र विद्यापति को ले जाया करते थे। महाराज गणेश्वर की मृत्यु २५२ ल० सं० में हुई थी। अतः विद्यापति उस समय अंततः १० या ११ वर्ष की अवस्था के अवश्य रहे होंगे जिसमें उनका राजदरबार में आना-जाना हो सकता था। दूसरी बात यह है कि विद्यापति के प्रधान आश्रयदाता शिवसिंह का जन्म २४३ ल० सं० में हुआ और ५० वर्ष की अवस्था में राजगद्दी पर बैठे यह माना जाता है और यह भी लोगों की धारणा है कि कवि विद्यापति उनसे दो वर्ष मात्र बड़े थे। तीसरी बात यह है कि विद्यापति ने कीर्तिलता में अपने को 'खेलन कवि' कहा है, इसलिए वह अवश्य कीर्तिसिंह या वीरसिंह की दृष्टि में अल्पवयस के साथ साथ खेलने के लायक रहे

प्रामकस्या ग्यमेनेषा वचनकरी भूकर्ष कादिकर्म्म करिष्यथेति लक्ष्मणसेन सम्वत २९३ श्रावण सुदि ७ गुरौ।

१ ... देहाधिप शिवसिंह भूप कृपा करि लेल निज पास।
विसपी ग्राम दान करल मोहि रहइत राजसनिधान ॥
—पदावली

जो पद लिखे हैं, उनमें भक्ति न होकर वासना है। इस क्षेत्र में जयदेव की शृंगार भावना ने विद्यापति को बहुत अधिक प्रभावित किया है। कुमारस्वामी ने विद्यापति के ऐसे पदों को लेकर यह सिद्ध करना चाहा है कि विद्यापति की कविता ईश्वरोन्मुख है और इसमें रहस्यवाद की अनुपम छटा है। किन्तु श्री विनयकुमार सरकार ने कुमारस्वामी के इस मत के विरुद्ध ही अपनी सम्मति प्रकट की है।[1] विद्यापति के पदों को देखते हुए विनयकुमार सरकार का मत ही समीचीन ज्ञात होता है, क्योंकि विद्यापति की कविता में भौतिक प्रेम की छाया स्पष्ट है।

विद्यापति की पदावली संगीत के स्वरों में गूँजती हुई राधाकृष्ण के चरणों पर समर्पित की गई है। इन्होंने प्रेम के साम्राज्य में अपने हृदय के सभी विचारों को अन्तर्हित कर दिया है। इन्होंने शृंगार

---

[1] Coomaraswamy would have been very happy if he could interpret the whole Radha-Krishna literature as an expression of spiritual or Godward love. But the earthly element, the physical beauty, the 'dirt', the 'dust', the 'imperfection', 'the heart of a woman', 'the human love', the pleasures of sense are too many to be ignored. Really, it is impossible to recognise any other pleasures in the world of Vidyapati. Coomaraswamy feels this and has tried to whitewash it according to his ideas of Hindu morality, H[illegible] the Hindu traditional [illegible] has been [illegible]

by [illegible] Sarkar

[illegible], Page [illegible]

रस पर ऐसी लेखिनी उठाई है जिससे राधाकृष्ण के जीवन का तत्व प्रेम के सिवाय कुछ भी नहीं रह गया है।

विद्यापति की कविता गीतिकाव्य के स्वरों में है। गीतिकाव्य का यह लक्षण है कि उसमें व्यक्तिगत विचार भावोन्माद, आशा-निराशा की धारा अबाध रूप से बहती है। कवि के अन्तर्जगत के सभी विचार व्यापार और उसके सूक्ष्म हृदयोद्गार उस काव्य में संगीत के साथ व्यक्त रहते हैं। विद्यापति की कविता में यद्यपि अधिक व्यक्तिगत विचार नहीं है, पर उसमें भावोन्माद की प्रचंड धारा वर्षाकालीन नदी के वेग से किसी प्रकार भी कम नहीं है। वयःसन्धि, नखशिख, अभिसार मान-विरह आदि से कवि की भावना इस प्रकार संबद्ध हो गई है मानो नायक-नायिका के कार्य-व्यापार कवि की वासनामयी प्रवृत्ति के अनुसार हो रहे हैं। विचार इतने तीव्र हो गये हैं कि उनके सामने राधा और कृष्ण अपना सिर झुका कर उन्हीं विचारों के अनुसार कार्य करते हैं।

विद्यापति की कविता में शृङ्गार का प्रस्फुटन स्पष्ट रूप से मिलता है। भाव, आलम्बन विभाव, उद्दीपन विभाव अनुभाव और सञ्चारी भावों का दिग्दर्शन उनकी पदावली में सुन्दर रीति से मिल सकता है। उनके सामने विश्व के शृङ्गार में राधा और कृष्ण की ही मूर्तियाँ हैं। स्थायी भाव रति तो पदावली में आदि से अन्त तक है ही। आलम्बन विभाव में नायक कृष्ण और नायिका राधिका का मनोहर चित्र खींचा गया है। इसके बीच में ईश्वरीय अनुभूति की भावना नहीं मिलती। एक ओर नवयुवक चंचल नायक हैं और दूसरी ओर यौवन और सौन्दर्य की सम्पत्ति लिये राधा।

कि आरे नव जौवन अभिरामा।

जत देखल तत कहए न पारिअ, छओ अनुपम इक ठामा...

उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत निम्नलिखित किए गए हैं :—

मान म[illegible] नयन भोर भ केलि रइ मलल [illegible]।

[illegible] पवन मन ध्यान उगारए किशलय कुसुम परागे,

सुललित हार मञ्जरि घन कज्जल [illegible] हुलसे।

[illegible] रितु [illegible] विद्यापति कवि गावे,

राजा शिवसिंह रूप नरायन सकल कला मन भावे।

और अनुभाव इस प्रकार हैं :—

सुन्दरि नहि हिय दहु परना। नहु दिस सखि सबहर परना॥

आदहु हार दुटिए गेल ना। भूखन बसन मलिन भेल ना॥

रोए रोए काजर दहाए देल ना। अदरहि सिंदुर मिटाए देलना॥

जारतिहु लागु परम डर ना। जइसे ससि काँप राहु डर ना॥

विद्यापति ने राधा कृष्ण का जो चित्र खींचा है, उसमें वासना का रङ्ग बहुत ही प्रखर है। आराध्य देव के प्रति भक्त का जो पवित्र विचार होना चाहिए, वह उसमें लेशमात्र भी नहीं है। सख्यभाव से जो उपासना की गई है, उसमें कृष्ण तो यौवन में उन्मत्त नायक की भाँति है और राधा यौवन की मदिरा में मतवाली एक मुग्धा नायिका की भाँति। राधा का प्रेम भौतिक और वासनामय प्रेम है। आनन्द ही उसका उद्देश्य है और सौन्दर्य ही उसका कार्य-कलाप। यौवन ही से जीवन का विकास है।

अङ्गरेजी कवि बाइरन के समान विद्यापति का भी यही सिद्धान्त है कि—"यौवन के दिन ही गौरव के दिन हैं।"*

विद्यापति ने जीवन में शृङ्गार की प्रधानता मानी है। जीवन मानों दो धाराओं में बह गया है। एक धारा का नाम है पुरुष और दूसरी का स्त्री। इन्हीं दोनों के मिलाप में जीवन का तत्व सन्निहित है: किन्तु

*The days of our youth are the days of our glory.

Byron

जिस यौवन का रूप चित्रित किया गया है, उसमें वासना की प्रधानता है। राधा का तनै. शनैः विकास, उसकी वयः सन्धि, दूती की शिक्षा, दूती से मिलन, मान विरह आदि सभी प्रकार लिखे गए हैं, जिस प्रकार किसी साधारण स्त्री का भौतिक प्रेम चित्रण। कृष्ण भी एक कामी नायक की भांति हमारे सामने आते हैं। कवि के इस वर्णन में हमें जरा भी ध्यान नहीं आता कि यही राधा कृष्ण हमारे आराध्य हैं। उनके प्रति भक्ति भाव की जरा भी सूचना नहीं है। निम्नलिखित अवतरण में उपासना का स्वरूप है अथवा वासना का?

> मोर पिया सखि गेल दुरि देस।
> जौबन दए गेल साल सँदेस॥
>
> मास असाढ़ उनत नव मेघ।
> पिया बिसलेस रहओं निरथेघ॥
>
> कौन पुरुष सखि कौन से देस।
> करब मोय तहाँ जोगिन भेस॥

कृष्ण और राधा साधारण पुरुष-स्त्री हैं। राधा तो उस सरिता के समान है, जिसमें भावनाएँ तरंगों का रूप लेकर उठा करती हैं। राधा स्त्री है, केवल स्त्री है, और उसका अस्तित्व भौतिक संसार ही में है। उसका वाह्य रूप जितना अधिक आकर्षक है उतना आंतरिक नहीं। वाह्य सौन्दर्य ही उसका सब कुछ है, सौन्दर्य ही उसका स्वरूप है मानो सुनहले स्वप्न मनुष्य के रूप में अवतरित हुए हैं। जहाँ उसके पैर पड़ते हैं, वहाँ कमल खिल उठते हैं, वह प्रसन्नता से पूर्ण है, उसकी चितवन में कामदेव के बाण हैं, पाँच नहीं वरन् सभी दिशाओं में छूटे हुए सहस्र बाण।

विद्यापति ने अन्तर्जगत का उतना हृदयग्राही वर्णन नहीं किया, जितना बहिर्जगत का। उन्हें अन्तर्जगत की सूक्ष्म वृत्तियाँ बहुत कम सूझी हैं। उन्हें उनसे मतलब ही क्या? उन्हें तो सद्यः स्नाता अथवा वयः सन्धि के चचल और कामोद्दीपक भावों की लड़ियाँ गूँथनी थीं।

कामिनि करए स्नाने । हेरतहि हृदय हनए पंचबाने ॥

विद्यापति का संसार ही दूसरा है। वहाँ सदैव कोकिलाएँ ही कूजन करती हैं। फूल खिला करते हैं; पर उनमें काँटे नहीं होते। राधा रात भर जागा करती हैं। उसके नेत्रों ही से रात समा जाती है। शरीर में सौन्दर्य के सिवाय कुछ भी नहीं है। पद्य है, उसमें भी गुलाब है, सेना है, उसमें भी गुलाब है, शरीर है उसमें भी गुलाब। सारा संसार ही गुलाबमय है। उनके संसार में फूल फूलते हैं, काँटों का अस्तित्व ही नहीं है। यौवन-शरीर के आनन्द ही उनके आनन्द हैं।

सौन्दर्य की वस्तु ही आनन्ददायिनी है। विद्यापति के इस बाल संसार में भगवत् भजन कहाँ, इस वयःसन्धि में ईश्वर की सन्धि कहाँ, सद्यः स्नाता में ईश्वर से नाता कहाँ, और अभिसार में भक्ति का सार कहाँ! उनकी कविता विलास की सामग्री है, उपासना की साधना नहीं। उससे हृदय मतवाला हो सकता है, शान्त नहीं। हम उन भावों में आत्म विस्मृत हो सकते है, पर हममें जागृति नहीं आ सकती।

विद्यापति के भक्त-हृदय का रूप उनकी वासनामयी कल्पना के आवरण में छिप जाता है। वे एक कल्पित राज्य में विहार करते हैं। वे अपनी कल्पना के सौन्दर्य में ऐसे डूब गये है कि किसी दूसरी ओर उनकी दृष्टि भी नहीं जाती। यहाँ कवि की कलामात्र है, उसका भक्ति-भावमय व्यक्तित्व नहीं। विद्यापति की राधा प्रेम करती है इसलिये कि वह स्त्री है और स्त्रियाँ प्रेम करना जानती हैं। राधा प्रेम करती है इसलिये कि कृष्ण सुन्दर है और सुन्दरता से प्रेम होना स्वाभाविक है पर उसके प्रेम में एक दोष आ गया है और वह यह कि इस प्रेम में सदाचार की मात्रा कम है। विद्यापति की राधा सदाचार करना जानती ही नहीं। कवि भक्ति भावना में उत्तेजित होकर नहीं वरन् आनन्द में आकर कहता है :—

अधर मंगइते अओंध कर माथ। सहए न पार पयोधर हाथ॥

[illegible] कारण है, विद्यापति [illegible] के [illegible] करते थे। यद्यपि राधाकृष्ण और [illegible] अधिक [illegible] उन्हें तो — "[illegible]" की ओर विशेष आकर्षण था। इसीलिये कदाचित् उन्होंने अपने [illegible] के [illegible] विलास का ही अधिक ध्यान था। [illegible] अलंकारों और भाव, विभाव, अनुभावादि रसों पर उन्होंने अपनी कविता की नींव [illegible] की। यही कारण है कि उन्होंने अपने कला-नैपुण्य प्रदर्शन के लिये साहित्य शास्त्र का मन्थन तो कर डाला, पर जीवन का रहस्य जानने के लिये मनुष्य समाज के अन्तर्दृष्टियों की गवेषणा नहीं की। विद्यापति की कविता में स्त्रीत्व और पुरुषत्व की भावना जिस प्रबल वेग से चलती है, वैसी हम हिन्दी साहित्य के किसी भी स्थल में नहीं पा सकते।

शृङ्गारिक कविताओं के अतिरिक्त विद्यापति के भक्ति सम्बन्धी पद बहुत कम हैं। ये पद शिव, दुर्गा और गङ्गा की भक्ति में लिखे गए हैं। इनमें नचारी पद भी हैं जो शिव जी की भक्ति में नृत्य के साथ गाए जाते हैं। काल सम्बन्धी पद शिवसिंह के राज्याभिषेक और युद्ध आदि पर लिखे गए हैं। इन दोनों वर्गों की कविता में विद्यापति की वर्णनात्मकता ही है कोई विशेष भाव-विन्यास नहीं। कवि ने अपनी विशेष प्रतिभा राधा-कृष्ण संबन्धी पदों ही में प्रदर्शित की है।

विद्यापति अपने समय के बड़े सफल कवि थे। अतः उन्हें इनके प्रशंसकों ने उपाधियाँ बहुत सी दीं। ये उपाधियाँ प्रधानतः १६ हैं—

(१) अभिनव जयदेव (२) दशविधान (३) कविशेखर (४) कण्ठहार (५) कवि (६) नवकविशेखर (७) सरस कवि (८) खेलन कवि (९) सुकवि कण्ठहार (१०) महाराज पण्डित (११) राज पंडित (१२) कवि रतन (१३) कवि कण्ठहार (१४) कविवर (१५) सुकवि (१६) कवि रञ्जन।

विद्यापति की लोकप्रियता चैतन्य देव के कारण ही बढ़ी। प्रोफेसर जनार्दन मिश्र एम० ए० लिखते हैं :—

'विद्यापति के प्रचार का सब से बड़ा कारण चैतन्य महाप्रभु हुए। बङ्गाल मे वैष्णव सम्प्रदाय के ये सब से बड़े नेता हुए। इन पर लोगों की इतनी श्रद्धा थी कि ये विष्णु के अवतार समझे जाते थे। विद्यापति के ललित और पवित्र भावनाओ से पूर्ण पदो को गाकर ये इस प्रकार भाव मे निमग्न हो जाते थे कि इन्हे मूर्छा सी आ जाती थी। इनके हाथो विद्यापति के पदों की ऐसी प्रतिष्ठा होने के कारण लोगों में विद्यापति के प्रति आदर का भाव बहुत बढ़ गया। इसलिए बङ्गाल में विद्यापति का आश्चर्य जनक प्रचार हुआ।[1]'

अभी तक विद्यापति की पदावली के तीन अच्छे संस्करण प्रकाशित हुए हैं :—

(१) ब्रजनन्दन सहाय का आरा संस्करण

(२) बेनीपुरी का लहेरियासराय संस्करण

(३) नगेन्द्रनाथ गुप्त का बङ्गला संस्करण

ब्रजभाषा मे कृष्ण काव्य की रचना का समस्त श्रेय श्री [illegible] को होना चाहिए, क्योंकि उन्ही के द्वारा प्रचारित पुष्टि [illegible] होकर सूरदास आदि अष्टछाप के कवियो ने कृष्ण-साहित्य [illegible] की। वल्लभाचार्य ने पुष्टि-मार्ग का प्रचार किया, जिसके [illegible] श्रीकृष्ण की भक्ति कर उनकी कृपा और अनुग्रह की [illegible] आचार्य ने अपने 'निरोध लक्षणम्' मे लिखा है :—

अहं निरुद्धो रोधेन निरोध पदवीं गतः।
निरुद्धाना तु रोधाय निरोधं वर्णयामि ते ॥६॥

... ...

---

[1] विद्यापति (प्रोफेसर जनार्दन मिश्र एम० [illegible] ([illegible]

हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्ना भव सागरे ।
ये निरुद्धास्त एवात्र मोदमायान्त्यहर्निशं ॥११॥[1]

[मैंने निरोध की पदवी प्राप्त करली है क्योंकि मैं रोध से निरुद्ध हूँ। किन्तु निरोध मार्गियों की निरोध-सिद्धि के लिए मैं निरोध का वर्णन करता हूँ। भगवान के द्वारा जो छोड़ दिए गए हैं, वे संसार-सागर में डूब गए हैं और जो निरुद्ध किए गए हैं वे रात दिन आनन्द में लीन हैं]

भारतेन्दु इस निरोध के विषय में लिखते हैं :—

"इस वाक्य से यह दिखाया कि निरुद्ध होना स्वसाध्य नहीं है जिनको वह (ईश्वर) चाहता है निरुद्ध करता है नहीं तो उसे छोड़ देता है। मनुष्य का बल केवल उस मार्ग पर प्रवृत्त होना है, परन्तु इससे निराश न होना चाहिए कि जब अंगीकार करना वा न करना उसी के आधीन है तो हम क्यों प्रयत्न करें। हमारे क्लेश करने पर भी वह अंगीकार करे या न करे ऐसी शंका कदापि न करना।"[2]

इस श्लोक के अनुसार निरोध-मार्गी और पुष्टिमार्गी पर्यायवाची शब्द हैं। पुष्टिमार्गी हरि के अनुग्रह-पात्र हैं। पुष्टि का विशेष विवरण श्री वल्लभाचार्य के 'पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेदः' में दिया गया है। प्रारम्भ में ही कहा गया है :—

कश्चिदेव हि भक्तो हि "योमद्भक्त" इतीरणात् ।
सर्वत्रोत्कर्ष कथनात्पुष्टिरस्तीति निश्चयः ॥४॥[3]

---

१. षोडश ग्रन्थ (निरोध लक्षणम्) पृष्ठ ९-११
[श्रीनृसिंहलाल जी ब्रजभाषा टीका, मुंबई सं० १९५८.]

२. श्री हरिश्चन्द्र कला, चतुर्थभाग (तदीय सर्वस्व) पृष्ठ ६
[खड्ग विलास प्रेस, बाकीपुर सं० १९८५]

३. षोडश ग्रन्थ (पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेदः) पृष्ठ ४

इसी प्रकार उन्होंने अपने अनुभाष्य में कहा है :—

कृति सार्म्यं शा स्त्रं ज्ञान भक्ति एवं शास्त्रेण बोध्यते। ताभ्या विहिताभ्या मुक्तिर्मर्यादा। तद्वि हितानामपि स्व स्वरूप बलेन स्वप्रापणं पुष्टिरित्युच्यते।

[शास्त्र कहते हैं कि ज्ञान से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है—और तद्विहित साधन से भक्ति मिलती है। इन साधनो से प्राप्त की हुई मुक्ति का नाम 'मर्यादा' है। ये साधन सर्वसाध्य नहीं। अतः अपनी ही शक्ति से (स्व स्वरूप बलेन) ब्रह्म जो मुक्ति भक्तो को प्रदान करता है, वह पुष्टि कहलाती है।]

अतः पुष्टि का सम्बन्ध शरीर से नहीं है। उसका सम्बन्ध हरि के अनुग्रह से है।[1]

श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य ने गोपी जनो को ही पुष्टिमार्ग का गुरु माना है। वे ही कृष्ण से प्रेम करना जानती थीं और उन्होंने ही कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त किया था। अतः पुष्टिमार्गी भक्त को गोप-गोपियो के कृत्यो का ही अनुकरण करना चाहिए, उन्हीं के सुखदुख को ग्रहण करने की शक्ति होनी चाहिए। वल्लभाचार्य निरोध लक्षणम् मे इसी भाव को इस प्रकार लिखते है :—

---

1. Owing to the ignorance of the preachings of Vallabha some people think that the word *Pushti* means nourishment of the body. This is quite wrong. The word is used by Vallabha in its technical sense of the Grace of the Almighty or Kripa or Anugraha कृपा, अनुग्रह It is by loving God without any selfish motives that the grace is [illegible] and the grace is called *Pushti* The way in which the [illegible] acquired is called *Pushti Bhakti Marga*

[illegible] Parekh Shrimad Vallabhacharya, The [illegible] Religions in India (1909), Page 33

यच्च दुःखं यशोदाया नन्दादीनां च गोकुले ।
गोपिकानां च यद्दुःखं तद्दुःखं स्यान्मम क्वचित् ॥१॥
गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनाम् ।
यत्सुखं समभूतन्मे भगवान् किं विधास्यति ॥२॥
उद्धवागमने जात उत्सवः सुमहान् यथा ।
वृन्दावने गोकुले वा तथा में मनसि क्वचित् ॥३॥[1]

[जो दुःख यशोदा नन्दादिकों एवं गोपीजनों को गोकुल में हुआ था, वह दुःख मुझे कब होगा ? गोकुल में गोपीजनों एवं सभी व्रजवासियों को जो भली-भाँति सुख हुआ वह सुख भगवान कब मुझे देंगे ? उद्धव के आने पर वृन्दावन और गोकुल में जैसे महान् उत्सव हुआ था, क्या वैसा मेरे मन में कभी होगा ?]

यही कारण है कि पुष्टिमार्गी सभी भक्त कवि श्रीकृष्ण के चरित्र में वैसा ही आनन्द लेना चाहते हैं जैसा स्वयं गोपी और गोपजन लेते थे। फलतः वे सभी कृष्णचरित्र सच्ची अनुभूति से वर्णन करते हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर सूरदास ने श्रीमद्भागवत का अनुवाद करते हुए भी सूरसागर में दशम स्कन्ध को बड़े विस्तार से वर्णन किया है। कृष्ण की कथा को वे भाव के परमोत्कर्ष से वर्णन करते हैं। यही कृष्ण-भक्ति है।

नारद भक्ति सूत्र में भक्ति की विस्तृत व्याख्या की गई है। उसमें कहा गया है :—

ॐ त्रिसत्यस्य भक्ति देव गरीयसी भक्ति देव गरीयसी ।[2]

ॐ गुण माहात्म्यासक्ति रूपासक्ति पूजासक्ति स्मरणासक्ति दास्यासक्ति सख्यासक्ति कान्तासक्ति वात्सल्यासक्ति आत्मनिवेदनासक्ति तन्मयतासक्ति परम विरहासक्ति रूपा एकधाप्येकादशधा भवति ।[3]

---

१ षोडश ग्रन्थ (निरोध लक्षणम्) पृष्ठ २-४

२. नारद भक्ति सूत्र—सूत्र नं ८०

३. ,, सूत्र नं ८१

[तीनो कालों मे सत्य (ईश्वर) की भक्ति ही बड़ी है, भक्ति ही बड़ी है। यह भक्ति एक रूप ही होकर गुण माहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति सख्यासक्ति कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्म निवेदनासक्ति और परम विरहासक्ति, रूप मे ग्यारह ार की है।]

यही ग्यारह प्रकार की आसक्ति वल्लभाचार्य ने कृष्ण के प्रति स्थापित की है। कृष्ण के प्रति यशोदा, नन्द, गोप-गोपियों की जो आसक्ति है, वह इन्हीं रूपों मे रक्खी गई है। सूरदास ने इस आसक्ति वर्ग को अपने सूरसागर मे इस प्रकार रक्खा है :—

१ गुण माहात्म्यासक्ति	भ्रमर गीत[1]
२ रूपासक्ति	दान लीला[2]
३ पूजासक्ति	गोवर्धन धारण[3]
४ स्मरणासक्ति	गोपिका वचन परस्पर[4]
५ दास्यासक्ति	मुरली स्तुति[5]
६ सख्यासक्ति	गौचारन[6]
७ कान्तासक्ति	गोपिका विरह[7]
८ वात्सल्यासक्ति	यशोदा विलाप[8]

१. संक्षिप्त सूरसागर (बेनीप्रसाद) इण्डियन प्रेस, प्रयाग, सन् १६२२ पृष्ठ ३३५
२ " पृ० १२८
३ " पृष्ठ १०५
४ " पृ० ३६५
५ " पृ० ६२
६ " पृ० ६
७ " पृ० ३०५
८ " पृ० ०६१

९ आत्म निवेदनासक्ति भ्रमर गीत[1]

१० तन्मयतासक्ति भ्रमर गीत[2]

११ परम विरहासक्ति भ्रमर गीत[3]

महाप्रभु वल्लभाचार्य के मत से प्रधान शिष्य सूरदास थे। अतः पहले उन्हीं पर विचार करना आवश्यक है।

सूरदास

हिन्दी साहित्य में काव्य-सौन्दर्य का अथाह सागर भरने वाले महाकवि सूरदास का काल-निर्णय अभी तक अन्धकार में है, उसका निर्णय अभी तक नहीं हुआ। जो कुछ भी विचार हुआ है वह सूरदास के कुछ पदों एवं किम्वदन्तियों के आधार पर। सूरदास के काल-निर्णय के विषय में पहले अन्तर्साक्ष्य पर विचार करना चाहिए।

सूरदास ने दृष्टि कूट संबन्धी जो पद लिखे हैं उनमें एक पद उनके जीवन-विवरण से संबन्ध रखता है।[4]

प्रथम ही प्रथ जगाते भे प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्म राव विचार ब्रह्मा नाम राखि अनूप॥
पान पय देवी दयो शिव आदि सुर सुख पाय।
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति सुख पाय॥

---

१. संक्षिप्त सूरसागर पृष्ठ ३१५

२. ,, पृष्ठ ४०२

३. ,, पृष्ठ ३३२

४. श्री सूरदास का दृष्टि कूट सटीक (जिसका उत्तमोत्तम तिलक श्री महाराजाधिराज काशिराज श्री महीश्वरी प्रसाद नारायण सिंहाज्ञानुसार श्री सरदार कवि ने किया है)

पद नं० ११०, पृष्ठ ७१-७२

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ (चौथी बार) सन् १८९२

शुभ-पार पायन सुरन पितु के सहित अस्तुति कीन ।
तासु बंश प्रशंस शुभ में चन्द चारु नवीन ॥
भूप पृथ्वीराज दीन्ह्यो तिन्हैं ज्वाला देश ।
तनय ताके चार कीन्यो प्रथम आप नरेश ॥
दूसरे गुणचन्द ता सुत शीलचन्द स्वरूप ।
वीर चन्द्र प्रताप पूरण भयो अद्भुत रूप ॥
रन्तभार हमीर भूपत सग सुख अवदात ।
तासु बंश अनूप भो हरचन्द्र अति विख्यात ॥
आगरे रहि गोपचल में रहो तासुत बीर ।
पुत्र जनमें सात ताके महाभट गम्भीर ॥
कृष्ण चन्द्र उदार चन्द्र जो रूप चन्द्र सुभाइ ।
बुध चन्द्र प्रकाश चौथो चन्द्र भे सुखदाइ ॥
देवचन्द्र प्रबोध षष्टम चन्द्र ताको नाम ।
भयो सातो नाम सूरज चन्द मन्द निकाम ॥
सो समर कर साहि से,सब गये विधि के लोक ।
रहो सूरज चन्द्र दृग से हीन भर वर शोक ॥
परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार ।
सातवें दिन आइ यदुपति कियो आप उधार ॥
दिव्य चख दै कही शिशु सुन योग बर जो चाइ ।
हैं कहो प्रभु भगति चाहत शत्रु नाश स्वभाइ ॥
दूसरो ना रूप देखे देख राधा श्याम ।
सुनत करुणासिन्धु भाषी एवमस्तु सुधाम ॥
प्रबल दच्छिन विप्रकुल तें शत्रु ह्वै है नास ।
अखिल बुद्धि विचारि विद्यामान मानैं मास ॥
नाम राखे है सु सूरजदास, सूर, सुश्याम ।
भये अन्तरधान बीते पाछली निशि याम ॥
मोहि मनसा इहै ब्रज की बसी सुख चित थाप ।

श्री गुसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप ॥
विप्र प्रथ ते जगा को है भाव सूर निकाम ।
सूर है नँदनन्द जू को लियो मोल गुलाम ॥

इसमे सूरदास ने अपने को चंद का वंशज माना है। उनके छः भाई थे, जो युद्ध मे मारे गये। सूरदास अन्धे थे। कुएँ में गिरने पर श्रीकृष्ण द्वारा निकाले गए। "जब श्रीकृष्ण ने वर माँगने को कहा तो मैंने उत्तर दिया कि आपको छोड़ कर मै किसी दूसरे को न देखूँ। श्रीकृष्ण ने एवमस्तु कह कर यह बतला दिया कि दक्षिण के ब्राह्मण कुल से शत्रु का नाश होगा। वे मेरा नाम सूरजदास या सूरश्याम रख कर अन्तर्धान हो गए। मैंने फिर ब्रजवास की इच्छा की और श्रीगोसांई (विट्ठलनाथ) ने मेरी अष्टछाप मे स्थापना की। मैं जगात कुल का ब्राह्मण हूँ। और व्यर्थ होते हुए भी नन्द नन्दन का मोल लिया हुआ गुलाम हूँ।"

'प्रबल दच्छिन विप्र कुल' के संबन्ध मे कहा गया है कि "शिवाजी के सहायक पेशवा का कुल जिसने पीछे मुसलमानों का नाश किया"।[1] अष्टछाप के कवियों मे सूरदास का नाम प्रसिद्ध ही है।

मुंशी देवीप्रसाद ने सूरदास को ब्राह्मण न मान कर भाट कुल का ही माना है जिसकी पदवी 'राव' है। वे लिखते हैं :—

"२०-२५ वर्ष पहले मैंने भी एक प्रतिष्ठित राव से जो जम्बू की तरफ से टौंक मे आया था, यह बात सुनी थी कि ये ३ महाकाव्य राव लोगो के बनाये हुए हैं :—

१ पृथ्वीराज रासा।

२ सूरसागर

३ भाषा महाभारत, जो काशी मे बनी है।

---

१. श्री सूरदास का जीवन चरित्र, पृष्ठ ४

(श्री सूरसागर—काशी निवासी श्री राधाकृष्णदास द्वारा शुद्ध प्रतियों से संशोधित) खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई सं० १९५०

मैंने बूंदी के विख्यात कवि राव गुलाबसिंह जी से भी इस विषय में पूछा था, उन्होंने आषाढ़ वदि १ संवत् १९५६ को यह उत्तर दिया कि सूरदास जी को मैं भी ब्राह्मण ही जानता था, परन्तु राज्य के काम को रींवां गया था, वहां के सब कवीश्वर मेरे पास आते थे, उन्होंने कहा कि सूरदास जी राव थे...।"[१]

यदि दृष्टिकूट संबन्धी यह पद प्रामाणिक है तो इससे यह तो स्पष्ट होता है कि सूरदास भाट कुल मे उत्पन्न हुए थे और 'राव' थे। पं० राधाकृष्णदास ने पं० राधाकृष्ण संग्रहीत सारस्वत ब्राह्मण की जाति-माला में "प्रथ जगात", "प्रथ" वा "जगात" नाम पर विचार करते हुए लिखा है कि इस जाति वा गोत्र के सारस्वत ब्राह्मण सुनने में नहीं आए..."जगा व जगातिया" तो भाट को कहते हैं।[२] अतः श्री राधाकृष्णदास के अनुसार भी सूरदास भाट कुल मे उत्पन्न हुए थे। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त पद की अन्तिम पंक्ति में जो 'विप्र' शब्द है उसका अर्थ क्या होगा? इस पद में 'विप्र' और 'ब्रह्मराव' दोनो विरोधी शब्दों का साथ ही साथ उल्लेख है। अतः यह विरोध पद की प्रामाणिकता में सन्देह उपस्थित करता है। सूरदास ने अपने वृहत् सूरसागर में अपनी जाति के संबन्ध मे कुछ नहीं लिखा।

सूरदास के एक अन्य पद से उनके अंधे होने का प्रमाण मिलता है:—

> भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
> श्रीवल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग माझि अंधेरो॥
> साधन और नहीं या कलि में जासों होत निबेरो।

१. महात्मा सूरदास जी का जीवन चरित, भारत जीवन प्रेस, काशी संवत् १९५२ प्रथमबार।

२. सूरदास जी का जीवन चरित, पृष्ठ ।

सूर कहा कहि दुबिध आँधिरी बिना मोल की चेरी ॥[1]

सूर ने 'दुविधि आँधिरो' का अर्थ चर्मचक्षु और मानस चक्षु लिया है। इससे यह ज्ञात तो नहीं होता कि सूरदास जन्म से ही अंधे थे[2] पर इतना स्पष्ट है कि वे मृत्यु के समय अवश्य अंधे हो गए थे। सूरदास के पदों से उनके काल का भी निरूपण किया गया है।

सूरदास जी ने सूरसागर के अतिरिक्त दो ग्रन्थ और लिखे हैं, साहित्य लहरी और सूरसारावली। ये दोनों ग्रन्थ सूरसागर के पीछे बने होंगे; क्योंकि साहित्यलहरी के पदों का सङ्कलन सूरसागर में कहीं नहीं है, प्रत्युत साहित्यलहरी ही में सूरसागर के कुछ पदों का सङ्कलन है। सूरसारावली भी सूरसागर के पीछे बनी होगी; क्योंकि सारावली सूरसागर की विषयसूची ही है और ग्रन्थ सम्पूर्ण होने के बाद ही उसकी कथा का संकेत दिया जा सकता है। अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि साहित्य लहरी और सूरसारावली ये दोनों ग्रन्थ सूर-सागर के बाद लिखे गए। साहित्य लहरी में उन्होंने उसकी रचना का संवत् इस प्रकार दिया है :—

मुनि पुनि रसन के रस लेख।

दसन गौरी नन्द को लिखि सुबल सम्बत पेख ॥

× × ×

तृतिय ऋक्ष सुकर्म योग विचारि सूर नवीन।

नन्द नन्दन दास हित साहित्यलहरी कीन ॥[3]

---

१. चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ २८८-२८६

(गंगा विष्णु श्री कृष्णदास मुंबई, संवत् १६८४)

२ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सूरदास को जन्मान्ध लिखते हैं —"यह इस असार संसार को न देखने के वास्ते आँख बन्द किए हुए थे।"

—चरितावली पृष्ठ (दूसरी बार १६१७)

३ साहित्य लहरी छन्द नं० १०६।

काव्य के नियमानुसार इस पद में से [मुनि=७, रसन (जिसमें रस नहीं)=०, रस=६, दसन गौरी नन्द=१] १६०७ संवत् निकलता है अर्थात् साहित्य लहरी की रचना का संवत् १६०७ था। सूरसारावली में एक स्थान पर है :—

गुरु प्रसाद होत यह दरसन, सरसठि बरस प्रवीन।
शिव विधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन ॥[1]

अर्थात् सूरसारावली लिखते समय सूरदास की अवस्था ६७ वर्ष की थी। यदि हम सूरसारावली और साहित्य लहरी का रचना-काल एक ही मानें (जैसा कि बहुत सम्भव है, क्योंकि दोनों पुस्तकें सूरसागर के बाद ही बनीं) तो संवत् १६०७ में सूरदास की आयु ६७ वर्ष की रही होगी अर्थात् उनका जन्म संवत् १५४० में हुआ होगा। जितना अन्तर सूरसारावली और साहित्य लहरी के रचना-काल में होगा उतना ही अन्तर जन्म संवत् में पड़ जायगा, पर अनुमान से यह कहा जा सकता है कि दोनों के रचना-काल में अधिक वर्षों का अन्तर नहीं हो सकता। अतएव सूरदास के पदों के अनुसार उनका जन्म संवत् १५४० या उसके आस-पास ठहरता है।

अब बहिर्साक्ष्य पर विचार करना है। सूरदास के समकालीन लेखकों ने निम्नलिखित ग्रन्थों में उनका निर्देश किया है :—

१ भक्तमाल—नाभादास
२. चौरासी वैष्णवन की वार्ता—गोकुलनाथ
३. आईन अकबरी
४. मुन्तखिब-उल-तवारीख़
५ मुन्शियात-अबुलफ़ज़ल
६ गोसाईं चरित

---

[1] सूर सारावली छन्द नं० १००२

भक्तमाल में सूरदास के संबन्ध में एक ही छप्पय है। वह इ
प्रकार है।

> सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै॥
> उक्ति, चोज, अनुप्रास, वरन अस्थिति अति भारी।
> वचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुक धारी॥
> प्रतिविम्बित दिवि दिष्टि हृदय हरि लीला भासी।
> जनम करम गुनरूप सबै रसना परकासी॥
> विमल बुद्धि गुन और की, जो वह गुन श्रवननि धरै।
> सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै॥[1]

इस छप्पय मे सूरदास के केवल काव्य की प्रशंसा की गई है। उनके जन्म, वंश, जाति, मृत्यु आदि पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता अवश्य ऐसा ग्रन्थ है जो सूर के जीवन पर यथेष्ट प्रकाश डालता है; पर उसमे भी तिथि आदि का कोई संकेत नहीं है। संक्षेप मे चौरासी वैष्णवन की वार्ता के वे अंश उद्धृत किए जाते हैं, जिनमे सूरदास के जीवन की किसी घटना-विशेष का परिचय मिलता है:—

(१) सो गऊघाट ऊपर सूरदास जी को स्थल हुतौ सो सूरदास जी स्वामी है आप सेवक करते सूरदास जी भगवदीय हैं गान बहुत आछौ करते तावे बहुत लोग सूरदास जी के सेवक भये हुते।[2]

(२) तव सूरदास जी अपने स्थल तें आय के श्री आचार्य जी महाप्रभून के दर्शन को आये तव श्री आचार्य जी महाप्रभून ने कह्यौ जो सूर आवौ वैठौ तव सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून के दर्शन करिके आगे आय वैठे तव श्री आचार्य

१. श्रीभक्तमाल सटीक, पृष्ठ ५३९-५४०

२. चौरासी वैष्णवन की वार्ता पृष्ठ २७२

महाप्रभून ने कही जो सूर कछु भगवद्यश वर्णन करौ तब सूरदास जी ने कही जो आज्ञा......सो सुनि कें श्री आचार्य जी महाप्रभून ने कह्यो जो सूर है के ऐसो घिघियात काहे को है कछु भगवल्लीला वर्णन करि। तब सूरदास ने कह्यो जो महाराज हों तो समझत नाहीं तब श्री आचार्य जी महाप्रभून ने कह्यौ जो जा स्नान करि आउ हम तोकों समझावेगे तब सूरदास जी स्नान करि आये तब श्री महाप्रभू जी ने प्रथम सूरदास जी को नाम सुनायौ पाछें समर्पण करवायौ .....तब सूरदास जी ने भगवल्लीला वर्णन करी।[1]......सो जैसो श्री आचार्य जी महाप्रभून ने मार्ग प्रकाश कियौ हो ताके अनुसार सूरदास जी ने पद कीये।[2]

(३) और सूरदास जी ने सहस्रावधि पद कीये हैं ताको सागर कहिये सो सब जगत में प्रसिद्धि भये।[3]

(४) सो सूरदास जी के पद देशाधिपति ने सुने सो सुनि के यह विचारी जो सूरदास जी काहू विधि सो मिले तो भलो सो भगवदिच्छाते सूरदास जी मिले सो सूरदास जी सों कह्यो देशाधिपति ने जो सूरदास जी मैं सुन्यो है जो तुमने विसनपद बहुत कीये हैं जो मोको परमेश्वर ने राज्य दीयो है सो सब गुनीजन मेरो जस गावत है ताते तुमहू कछु गावो तब सूरदास जी ने देशाधिपति के आगे कीर्तन गायौ[4]..... ।

(५) और सूरदास जी ने या पद के समाप्त मे गायौ। "तो जो सूर ऐसे दर्श पोइ मरत लोचन प्यास"। यह गायौ सो देशाधिपति

१ चौरासी वैष्णवन की वार्ता पृष्ठ २७४–२७५
२. " पृष्ठ २७६
३ " पृष्ठ २७६
४. " पृष्ठ २७६

ने पूछौ जो सूरदास जी तुम्हारे लोचन तो देखियत नाहीं ... प्यासे कैसें मरत हैं और बिन देखे तुम उपमा कौ देत हौ ... तुम कैसे देत हौ तब सूरदास जी कछु बोले नाहीं। तब ... देशाधिपति बोलौ जो इनके लोचन हैं सो तो परमेश्वर ... पास हैं सो उहाँ देखत है सो वर्णन करत हैं[1]।

(६) अब सूरदास जी ने श्रीनाथ जी की सेवा बहुत कीनी बहुत दि... ताई ता उपरांत भगवदिच्छा जानी जो अब प्रभून की इच्छा ... बुलायवे की है यह विचारि कें......जो परासोली तहाँ सूरदास जी आये... ..तब श्री गुसांई जी ने अपने सेवकन सों कह्यो ... पुष्टिमार्ग कों जिहाज जात है जाकों कछू लेनो होय तौ लेउ[2]।

(७) और चत्रभुजदास हू ठाढ़े हुते तब चत्रभुजदास ने कह्यो ... सूरदास जी ने बहुत भगवत् जश वर्णन कीयौ परि श्री आचार्य जी महाप्रभून की जस वर्णन ना कीयो तब यह वचन सुनि ... सूरदास जी बोले जामें तो सब श्री आचार्य जी महाप्रभून ... ही जस वर्णन कीयो है कछू न्यारो देखूँ तो न्यारो करूँ[3]।

इन सात अवतरणों से सूरदास के जीवन के संबन्ध में निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं :—

१- सूरदास बड़े गायक थे। वे गऊघाट पर निवास करते थे और विनय पद गाते थे। महाप्रभू वल्लभाचार्य ने उन्हें पुष्टिमार्ग में दीक्षित किया और कृष्ण लीला गाने की प्रेरणा की। उन्होंने कृष्ण लीला के 'सहस्रावधि' पद लिखे जिनकी प्रसिद्धि सुनकर देशाधिपति (अकबर) उनसे मिले। सूरदास अन्धे थे। वे ईश्वर और गुरु में कोई अन्तर नहीं मानते थे। उन्होंने परासोली में प्राण त्याग किए।

१ चौरासी वैष्णवन की वार्ता पृष्ठ २८०–२८१
२ " पृष्ठ २८७
३ " पृष्ठ २८८

चौरासी वैष्णवन की वार्ता प्रामाणिक ग्रंथ है, अतः सूरदास के संबन्ध की ये बातें सत्य हैं। इस विवरण में जहाँ सूरदास के जीवन की विविध घटनाओं का निर्देश है, वहाँ तिथि संवत् का एकान्त अभाव है

अबुल फ़ज़ल [1] ने आइन-ए-अकबरी में केवल इतना ही लिखा है कि रामदास नामक गाने वाला अकबर के दरबार में गाता था, उसका लड़का सूरदास भी अपने पिता के साथ आया करता था। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

मुन्तख़िबुत तवारीख़ में भी रामदास का नाम गायकों में है।[2] बैरम खाँ ने उसे एक लाख टके का पुरस्कार दिया था। ये रामदास सूरदास के पिता थे, अत. सूरदास भी अपने जीवन काल में अकबर के समकालीन थे।

अबुल फ़ज़ल ने एक ग्रन्थ और लिखा है, उसका नाम है मुंशियात अबुल फ़ज़ल। उसमें बहुत से पत्रों का संग्रह है। उसके अन्त में एक पत्र सूरदास के नाम का भी है, जो बादशाह की आज्ञा से सूरदास को काशी में अबुल फ़ज़ल ने लिखा था। उस पत्र में कोई तिथि नहीं दी गई है, पर मुंशी देवीप्रसाद अकबरनामा के अनुसार अकबर का प्रयाग में

---

१. Badoni says, Ramdas came from Lakhnau. He appears to have been with Bairam Khan during his rebellion, and he received once from him one lakh of Tankahs, [illegible] Bairam Khan's treasure chest was. He was first [illegible] court of Islam Shah and is looked upon as second [illegible] Tansen. His son Sur Das is mentioned below.

Ain-i-Akbari Vol I Page No-612-[illegible]

translated by Blochmann (1873)

२ Muntakhab-ut-Tawarikh Vol II page 37

आना और किला तथा बाँध बनवाना सं० १६४२ मे समझते हैं। उस समय सूरदास अकबर से मिले होंगे।

गोसाईं चरित मे वेणीमाधवदास ने सूरदास का तुलसीदास से मिलन संवत् १६१६ मे लिखा है। इस अवसर पर सूरदास ने अपना सूरसागर भी तुलसीदास को दिखलाया था।

सोरह सै सोरह लगे कामद गिरि ढिग बास।
सुचि एकांत प्रदेस महँ आए सूरसुदास॥
कवि सूर दिखायउ सागर को, सुचि प्रेम कथा नट नागर को॥[1]

गोसाईं चरित की प्रामाणिकता मे सन्देह है।

वहिर्साक्ष्य के आधार पर सूरदास के जीवन और उनकी मृत्यु पर कुछ प्रकाश डाला जा सकता है।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास महाप्रभु वल्लभाचार्य से पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए थे। सूरदास ने संवत् १५८७ के पूर्व ही दीक्षा ग्रहण की होगी, क्योंकि संवत् १५८७ में महाप्रभु वल्लभाचार्य का निधन हो गया था।[2] अतः सूरदास का आविर्भाव काल संवत् १५८७ के बाद ही मानना उचित है।

सूरदास का निर्देश आईन अकबरी और मुंशियात अबुलफज़ल में विशेष रूप से है। इस निर्देश से यह ज्ञात होता है कि सूरदास गायक थे और अकबर के दरबार में अपने पिता बाबा रामदास ग्वालेरी गोयंदा (गवैया) के बाद उसी पद पर नौकर थे। यदि अकबर के दरबार मे वे नौकर न होते तो उनके नाम निर्देश की आवश्यकता नहीं थी। तुलसीदास जी भी तो अकबर के समकालीन उत्कृष्ट कवि और

---

१ गोसाईं चरित दोहा २६ और बाद की चौपाई।

२. श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता

(गोस्वामि श्री हरिराय जी महाराज कृत)

श्रीनाथ द्वारा संवत् १६७६

गायक थे, पर उनका निर्देश आईन अकबरी में नहीं है। अतः अकबर के दरबार में सूरदास का नौकर रहना ही निर्देश का कारण हो सकता है। अकबर के दरबार में गाने वालों में जो चार गायक थे उनमें सूरदास का नाम भी है [१]:—

१ बाबा रामदास ग्वालेरी गोचंदा (गवैया)

२ नायक जरजू (सरजू ?) ग्वालेरी गोयंदा (गवैया)

३ सूरदास बाबा रामदास का बेटा गो० (गवैया)

४ रंग सेन आगरे वाला।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता में जो सूरदास का देशाधिपति (अकबर) से मिलने का निर्देश है उससे यह ध्वनि निकलती है कि सूरदास अकबर के दरबार में नौकर नहीं थे, वरन् स्वतंत्र संत थे। देशाधिपति (अकबर) ने सूरदास का गान सुनने की इच्छा की और सूरदास ने आकर अकबर की प्रशंसा न कर 'मन रे करु माधो से प्रीति' या 'नाहिन रह्यो मन में ठौर' पद सुनाए। अकबर ने सूरदास को कुछ देना चाहा, पर सूरदास कुछ भी न स्वीकार कर श्री गोवर्द्धन चले आए।

जोधपुर के कविराज मुरारीदान का कथन है कि अकबर ने सीकरी में सूरदास को बुलाकर उनका गाना सुना। सूरदास ने गाया "सीकरी में कहा भगत को काम।" सूरदास की गान विद्या सुनकर अकबर ने प्रसन्न होकर 'एकसदी' मनसब दिया। सूरदास ने पहले तो स्वीकार नहीं किया, बाद में अकबर के आग्रह के कारण उन्हें स्वीकार करना ही पड़ा। इसी कारण आईन-अकबरी में सूरदास का निर्देश है।

कविराज मुरारीदान के कथन से चौरासी वार्ता और आईन अकबरी दोनों के मतों की पुष्टि हो जाती है। पर सीकरी में गाना सुनने की वार्ता ता कुम्भनदास के सम्बन्ध में कही जाती है, सूरदास के सम्बन्ध में नहीं। जो हो, सूरदास का अकबर के दरबार से पिता के द्वारा ही

[१] सूरदास जी का जीवन चरित्र (मुंशी देवीप्रसाद) पृष्ठ २०

संबन्ध रहा हो, क्योंकि इस स्थान पर आईन अकबरी का मत ही अधिक प्रामाणिक मानना चाहिए। चौरासी वार्ताकार ने पुष्टि मार्ग के संत सूरदास का महत्व घोषित करने के लिए उन्हें किसी के संरक्षण में लाना स्वीकार न किया हो। यदि सूरदास का अकबर के दरबार से कुछ संबन्ध था तो उनका प्रसिद्धि-काल संवत् १६१३ के बाद ही होना चाहिए, क्योंकि इस संवत् में ही अकबर ने राज्य-सिंहासन प्राप्त किया था।

सूरदास की मृत्यु गोसाईं विट्ठलनाथ के सामने ही हुई थी जैसा चौरासी वैष्णवन की वार्ता में लिखा हुआ है। विट्ठलनाथ की मृत्यु संवत् १६४२ में हुई, अतएव सूरदास जी संवत् १६४२ में या उसके पहले ही मरे होंगे। मुंशियात अबुल फ़जल के दूसरे दफ्तर में जो पत्र है वह अबुल फज़ल द्वारा सूरदास को लिखा गया है। उस समय सूरदास बनारस में थे। उस पत्र के एक अंश का अनुवाद मुंशी देवीप्रसाद के शब्दों में इस प्रकार है :—

"हज़रत बादशाह शीघ्र ही इलाहाबाद को पधारेंगे। आशा है कि आप भी सेवा में उपस्थित होकर सच्चे शिष्य होवें और ईश्वर को धन्यवाद दें कि हज़रत भी आपको परम धर्मज्ञ जान कर मित्र मानते हैं और जब हज़रत मित्र मानते है तो इस दरगाह के चेलों और भक्तों का उत्तम बर्ताव मित्रता के अतिरिक्त और क्या होगा। ईश्वर शीघ्र ही आपके दर्शन करावे कि जिसमें हम भी आपकी सत्सङ्गति और चित्ताकर्षक वचनों से लाभ उठावें।

यह सुन कर कि वहाँ का करोड़ी आपके साथ अच्छा बर्ताव नहीं करता हज़रत को भी बुरा लगा है और इस विषय में उसके नाम कोपमय फर्मान भी जा चुका है और इस तुच्छ शिष्य अबुल फ़ज़ल को भी आज्ञा हुई है कि आपको दो चार अक्षर लिखे, यह करोड़ी यदि [illegible] शिक्षा नहीं मानता हो तो हम उसका काम उतार लें और जिसको आप उचित समझें जो दीन दुखी और सम्पूर्ण प्रजा की पूरी

सँभाल कर सके उसका नाम लिख भेजें तो अर्ज करके नियत करा दूँ। हजरत बादशाह आपको .खुदा से जुदा नहीं समझते, इसलिए उस जगह के काम की व्यवस्था आपकी इच्छा पर छोड़ी हुई है। वहाँ ऐसा हाकिम (शासक) चाहिए कि जो आपके अधीन रहे और जिस प्रकार से आप स्थिर करें काम करे आप से यही पूछना है सत्य कहना और सत्य करना है। खत्रियो वगैरह मे से जिस किसी को आप ठीक समझें कि वह ईश्वर को पहिचान कर (प्रजा का) प्रतिपाल करेगा उसी का नाम लिख भेजें तो प्रार्थना करके भेजूँ। ईश्वर के भक्तों को ईश्वर सम्बन्धी कामो मे अज्ञानियो के तिरस्कार करने का संशय नहीं होता है सो ईश्वर कृपा से आप का शरीर ऐसा ही है। परमेश्वर आप को सत् कर्मों की श्रद्धा देवे और सत्कर्म के ऊपर स्थिर रक्खे और ज्जादा (ज्यादा) सलाम।" [१]

इस पत्र मे कोई तिथि नहीं दी गई है किन्तु अकबरनामा के तीसरे दफ्तर से इलाहाबाद बसाने और "एक कोस लम्बा ४ गज चौड़ा १४ गज ऊँचा एक बाँध" बँधवाने का समय ११ शहरेवर सन ३० (भादों सुदी १० सम्वत् १६४२) के "दो महीने कुछ दिन" पूर्व स्थिर होता है (अर्थात् श्रावण कृष्ण सम्वत् १६४२) क्योंकि बादशाह इलाहाबाद शहर बसाने के बाद दो महीने और कुछ दिन वहाँ रहे तब उन्हे एक विधि से काबुल के बल्वे को दबाने के लिए कूच करना पड़ा। अतः सम्वत् १६४२ के श्रावण कृष्ण मे सूरदास के अबुल फ़ज़ल द्वारा यह पत्र लिखा गया। ऊपर लिखा जा चुका है कि सूरदास गोसाईं विट्ठलनाथ के पूर्व ही मरे थे। विट्ठलनाथ की मृत्यु सम्वत् १६४२ में ही हुई—किस मास में हुई, यह निश्चित नहीं। इस पत्र से ज्ञात होता है कि सूरदास श्रावण कृष्ण स १६[illegible] [illegible] अतः विट्ठलनाथ की मृत्यु श्रावण सम्वत् १[illegible] [illegible]

[१] [illegible]

सकती। श्रावण से फाल्गुन १६४२ तक सूरदास और विट्ठलनाथ दोनों की मृत्यु हुई होगी, पहले सूरदास परसोली में मरे होंगे। उनकी मृत्यु के कुछ दिन या कुछ महीने बाद विट्ठलनाथ भी सम्वत् १६४२ में मरे होंगे।

अतः इस प्रमाण से सूरदास की मृत्यु श्रावण सम्वत् १६४२ के बाद ही हुई। अभी तक के प्रमाणों से ज्ञात होता है कि सूरदास का जन्म-सम्वत् १५४०, प्रसिद्धि-संवत् १६८७ और मृत्यु-संवत् १६४२ है। इस प्रकार सूरदास ने १०२ वर्ष की आयु पाई।

मिश्रबन्धु के अनुसार दृष्टिकूट मे जो पद है, वह प्रक्षिप्त है। "हमारा खयाल है कि उनसे लगभग दो सौ वर्ष पीछे, पेशवाओं का अभ्युदय और मुग़लो का पतन देखकर किसी भाट ने लगभग बालाजी बाजीराव के समय मे ये छंद बना कर सूरदास की कविता में रख दिये है। इन छंदो के कपोल-कल्पित होने का दूसरा बड़ा भारी प्रमाण यह है कि श्री गोकुलनाथ ने अपने चौरासी चरित्र में और मियाँसिंह ने भक्त विनोद मे सूरदास को ब्राह्मण कहा है।...फिर यह भी बहुधा सम्भव नहीं कि यदि इनके छे भाई मारे गये होते, तो ये दोनो लेखक उस बात को न लिखते।"[1]

इन विचारो के आधार पर मिश्रबन्धु चौरासी वार्ता का प्रमाण देते हुए सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण मानते हैं। शिवसिंह सेंगर ने भी अपने सरोज मे सूरदास को ब्राह्मण लिखा है :—

९५. सूरदास ब्राह्मण ब्रजवासी बाबा रामदास के पुत्र, वल्लभाचार्य के शिष्य सं० १५४० मे उ०।[2]

---

१ हिन्दी नवरत्न (महात्मा सूरदास) पृष्ठ २३६
मिश्रबन्धु—चतुर्थ संस्करण सं० १९९१

२. शिवसिंह सरोज (सेंगर) पृष्ठ ५०२
लखनऊ, १९२६

सूरदास के ग्रन्थ

सूरदास का प्रधान ग्रन्थ सूरसागर है, पर खोज करने पर उनके नाम से अन्य ग्रंथ भी मिले हैं। संक्षेप में इनका विवरण इस प्रकार है :—

१ गोवर्धनलीला बड़ी

पद्य संख्या २००

विषय—"श्रीकृष्ण की गोवर्धन लीला अथवा श्रीकृष्ण का गोवर्धन को उँगली पर सात दिनों तक रखे हुए ब्रजभूमि को इन्द्र के कोप से बचा लेना।"[1]

२ दशम स्कंध टीका

पद्य संख्या १९१३

विषय—भागवत की कथा।[2]

३ नागलीला

पद्य संख्या ४०

विषय कालीदह की कथा।[3]

४ पद संग्रह

पद्य संख्या [illegible]

विषय—नीति, धर्म उपदेश।[4]

५ प्राणप्यारी

पद्य संख्या [illegible]

विषय—प्यास सगाई।[5]

---

१ [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

४ [illegible]

५ [illegible]

६ ब्याहलो

पद्य-संख्या — २३

विषय— विवाह।[1]

७ भागवत

पद्य-संख्या — ११२६

विषय—कृष्ण की कथा।[2]

[विशेष—यह प्रति खंडित है। पूर्व के २५६ पृष्ठों का पता नहीं है। पृष्ठ २५६ से अंश दशम स्कन्ध का है अन्त में द्वादश की समाप्ति है।]

८ सूर पचीसी

पद्य-संख्या — २८

विषय— ज्ञानोपदेश के पद[3]

९ सूरदासजी का पद

विशेष विवरण ज्ञात नहीं।[4]

१० सूरसागर

पद्य-संख्या — ७१०००

विषय—श्रीभागवत की कथा।[5]

[विशेष—इस ग्रन्थ की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ हुई हैं।]

---

1 खोज रिपोर्ट सन १९०६ १९०७-१९०८ पृष्ठ ३२३
२ ,, १९१७-१९१८ १९१९ पृष्ठ २७०
३ ,, १९१० १९ ३-१९१४ पृष्ठ २२४
४ ,, १९०२
५ ,, १९१७-१९१८-१९१९ पृष्ठ २७०

११ सूरसागर सार

पद्य-संख्या ३५०

विषय—ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का वर्णन[1]

[विशेष सूरसागर सार होने पर भी ग्रन्थ का प्रारम्भ 'श्रीरामाय नमः' से होता है। प्रारम्भ और अंत के पद भी श्री रामचन्द्र से ही संबन्ध रखते हैं : –

प्रारम्भ -विनती कोई विधि प्रभुहिं सुनाऊँ।

महाराज रघुवीर धीर को, समय न कबहुं पाऊँ॥

अन्त—सियाराम लछमन निरपत सूरदास के नयन सिराये॥

राम का ऐसा निर्देश सूरसागर सार के संबन्ध में सन्देह उत्पन्न करता है।]

सूरजदास के नाम से भी दो ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। अगर ये सूरजदास सूरदास ही है तो निम्नलिखित दो ग्रन्थ भी सूरदास के ग्रन्थों में सम्मिलित करना चाहिए। वे दो ग्रन्थ निम्नलिखित हैं:—

१२ एकादशी माहात्म्य

पद्य-संख्या ६३

विषय—वंदना, हरिश्चन्द्र और रोहितास्व की प्रशंसा कथा वार्ता आदि का वर्णन।[2]

---

1 A new work by him, the Sur Sagar Sar(सूरसागर सार) has now been unearthed, which appears to be his genuine production. It covers 54 pages of about 70 slokas in extent.

Shyam Behari Misra

Search for Hindi Manuscripts 1909-1 ...

१३ राम जन्म

पद्य संख्या ९४०
विषय—राम चरित्र वर्णन।[1]

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त सूरदास के तीन ग्रंथ और कहे जाते हैं, जिनके नाम हैं सूर सागरवली, साहित्य लहरी और नल दमयन्ती।[2] इस प्रकार कुल मिलाकर सूरदास के नाम से १६ ग्रन्थ हैं। इनमें से सूर सागर ही पूर्ण प्रामाणिक है। अन्य ग्रन्थ सूर सागर के ही अंश हैं या सूरसागर की कथावस्तु के रूपान्तर। कुछ ग्रंथ तो अप्रामाणिक होंगे। इन ग्रन्थों के परीक्षण की आवश्यकता है।

सूरसागर की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज मे प्रधानतः आठ प्रतियो की प्राप्ति हुई है:-

(१) खोज रिपोर्ट सन् १९०६

(१) सूरसागर (संरक्षण स्थान अज्ञात)
लिपि सवत् १७३५

(२) सूरसागर (,, ,,) ,, ,, १८१६

(२) खोज रिपोर्ट सन् १९०६– ९०७--१९०८

(१) सूरसागर (दतिया राज्य पुस्तकालय)
लिपि संवत् अज्ञात

(२) सूरसागर ,, ,,

(३) सूरसागर विजावर राज्य पुस्तकालय)
लिपि सवत् १८७३

---

१. खोज रिपोर्ट सन १९१७-१९१८-१९१९ पृष्ठ ३०१

२ ,, १९०९-१०-११ पृष्ठ ८ (रिपोर्ट)

(३) खोज रिपोर्ट सन् १९१२-१९१३ १९ ४

(१) सूरसागर (पं० लालमणि वैद्य, पुवायाँ, सहारनपुर) लपि संवत् १९००

(४) खोज रिपोर्ट सन् १९१७-१९१८-१९१९

(१) सूरसागर (ठा० रामप्रताप सिंह वरौली, भरतपुर) लिपि संवत् १७९८

(२) सूरसागर (मतंगध्वजप्रसाद सह, विसवाँ अलीगढ़) दो भाग—लिपि सवत् १८७६

बाबू राधाकृष्णदास ने जो सूरसागर का सम्पादन किया था उसके लिए उन्होंने तीन प्रतियों का उल्लेख किया है[1] :—

(१) "श्री भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के पुस्तकालय में पुस्तकों को उलटते पलटते एक बस्ते में सूरसागर का केवल दशम स्कंध का पूर्वार्द्ध हाथ आया।"

(२) "बीच बांकीपुर जाने का संयोग हुआ और वहाँ मित्रवर बाबू रामदीन सिंह जी के यहाँ सूरसागर का प्रथम से नवम स्कंध तक देखने में आया।"

(३) "दशम उत्तरार्ध और एकादश द्वादश स्कंध श्री १०८ महाराज काशिराज बहादुर के पुस्तकालय से मंगाया गया।"

ये तीनों प्रतियाँ किस संवत् की हैं, यह [illegible] नहीं। [illegible] श्रीकृष्णदास ने भी अपने निवेदन में "एक प्राचीन पुस्तक [illegible] ज्ञानचन्द्र जी की कोठी में है" का निर्देश किया है [illegible] बार सूरसागर का [illegible] प्रकाशित किया गया। [illegible] कोई संवत् नहीं दिया गया। [illegible]

[illegible]

श्री १०८ गोस्वामि बालकृष्ण लाल जी महाराज कांकरौली नरेश ने आज्ञा दी है कि मेरे पुस्तकालय में पूरे सवा लाख पद हैं और उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा की है कि यदि तुम चाहोगे तो मैं उसे न करने की आज्ञा दूँगा। यदि श्री वेंकटेश्वर भगवान् से प्रेरित हुए ह ग्राहकों से उत्साह पाकर उत्साहित हुआ मैं उसे छापने की इ करता हुआ उस ग्रंथ को प्राप्त करने का उद्योग करूँगा।"

किन्तु न तो यह 'उद्योग' ही हुआ और न यही ज्ञात हुआ कि कांकरौली नरेश के यहाँ की प्रति प्राप्त हो सकी या नहीं।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अप्रैल सन् १९३४ में प्रकाशि सूरसागर की प्रथम संख्या मे निम्नलिखित प्रतियों का आधार लि गया है:—

प्रकाशित

(१) कलकत्ता और लखनऊ दोनों स्थानों की प्रति संवत् १८८१
(२) वेंकटेश्वर प्रेस बंबई की प्रति संवत् १९६४

हस्तलिखित

(१) बाबू केशवदास शाह काशी की प्रति संवत् १७५३
(२) वृन्दावन वाली प्रति " १८१३
(३) पं० गणेश बिहारी मिश्र (मिश्र बन्धु) की प्रति " १८५४
(४) श्री श्याम सुंदरदास अग्रवाल, मशकगंज की प्रति " १८६६
(५) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की प्रति " १८८०
(६) राय राजेश्वरबली, दरियाबाद की प्रति " १८८२
(७) कालाकांकर राज्य पुस्तकालय की प्रति " १८८१
(८) जानीमल खानचद, काशी की प्रति " १९०२
(९) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की प्रति " १९०१
(१०) कांकरौली राज्य की प्रति " १९१२

(९) नागरी प्रचारिणी सभा काशी की प्रति — संवत् १९९६

(१०) राय कृष्णदास बनारस की प्रति — ,, [illegible]

इन प्रतियों के अतिरिक्त, कुछ हस्तलिखित प्रतियाँ और भी हैं जिनमें संवत् नहीं दिया गया है :—

(१) पं० रामरति मिश्र, (शाहजहाँपुर) की प्रति

(२) बाबू गोकुलदास, काशी की प्रति

(३) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की प्रति

(४) बाबू पूर्णचन्द्र नाहर, कलकत्ता की प्रति

(५) राय बहादुर श्यामसुंदर दास की प्रति

इन प्रतियों में बाबू केशवदास शाह, काशी की प्रति सब से पुरानी और सब से विस्तृत है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी का यह प्रकाशन अपेक्षाकृत प्रामाणिक है। स्वर्गीय जगन्नाथदास रत्नाकर ने पहले इसके सम्पादन की सामग्री जुटाई थी, पर वे असामयिक मृत्यु के कारण ऐसा न कर सके। उन्होंने जितना सम्पादन किया उसमें "पाठ शुद्धि के अन्तर्गत छंदों का संशोधन, चरणों का क्रम निरूपण, तथा पद प्रयोगों की निश्चित पद्धति का अनुसरण" पर ध्यान दिया गया था। इसके संपादन के लिए सभा ने पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, पंडित केशवप्रसाद मिश्र, प्रकाशन मंत्री तथा सम्पादक पंडित नंददुलारे वाजपेयी की एक उपसमिति बनाई है। इस कार्य को पंडित नंददुलारे वाजपेयी उक्त समिति के तत्वावधान में, तथा पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय के निरीक्षण में और उनके परामर्श के अनुसार कर रहे हैं।'

रचनाकाल—सूरसागर का रचनाकाल संवत् १५८० के बाद ही होना चाहिए, जिस समय सूरदास श्रीवल्लभाचार्य से दीक्षित हुए। दीक्षित होने से पहले वे "घिघियाते" थे, बाद में वे भगव-

---

' निवेदन, सूरसागर संख्या १, अप्रैल १९३४

ल्लीला' वर्णन करने में समर्थ हुए। इसी 'भगवल्लीला' वर्णन करने में उन्होंने सूरसागर की रचना की। यह ग्रन्थ किसी तिथि विशेष में नहीं लिखा गया होगा। समय-समय पर पदों की रचना होती रही और अन्त में उनका संकलन कर दिया गया। सूरसारावली की रचना देखने से ज्ञात होता है कि सूरदास के जीवन-काल ही में सूरसागर की समाप्ति हो गई थी।

कर्मयोग पुनि ज्ञान उपासन सब ही भ्रम भरमायो।
श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो॥
ता दिन ते हरि लीला गाई एक लक्ष पद बन्द।
ताको सार सूरसारावलि गावत अति आनन्द॥
तब बोले जगदीश जगत गुरु सुनो सूर मम गाथ।
तू कृत मम यश जो गावैगो, सदा रहै मम साथ॥[1]

विस्तार—श्री राधा कृष्णदास लिखते हैं—"सूरदास जी के सवा लक्ष पद बनाने की किम्वदन्ती जो प्रसिद्ध है वह ठीक विदित होती है, क्योंकि एक लाख पद तो श्री वल्लभाचार्य के शिष्य होने के उपरान्त और सारावली के समाप्त होने तक बनाये इसके आगे-पीछे के अलग ही रहे।"[2]

इस कथन के अनुसार सूरसागर की रचना सूरदास के जीवन-काल ही में समाप्त हो गई थी और उसमे एकलक्ष पद भी थे। चौरासी वैष्णवन की वार्ता में इनका निर्देश दूसरी भाँति से दिया गया है :—

१. सूरसारावली पद ११०२, ११०३, ११०४
२ श्री सूरदास जी का जीवन चरित, पृष्ठ २

"और सूरदास जी ने सहस्रावधि पद कीये हैं ताको सागर कहिये सो सब जगत मे प्रसिद्ध भये ।"[1]

इस उद्धरण मे 'सहस्रावधि' है लक्षावधि' नहीं । अतः इन पदो की संख्या निश्चित रूप से निर्धारित नहीं हो सकती । शिवसिंह सेंगर ने अपने शिवसिंह सरोज मे लिखा है :—

"इनका बनाया सूरसागर ग्रन्थ विख्यात है । हमने इनके पद ६० हजार तक देखे हैं । समग्र ग्रन्थ कहीं नहीं देखा ।"[2]

किन्तु इनके प्राप्त पदो की संख्या अधिक से अधिक ५१३२ है । सूर-सागर श्रीमद्भागवत के आधार पर लिखा गया है । इसलिए सूरसागर में १२ स्कन्ध हैं पर उन स्कन्धो का विस्तार सूरदास ने अपनी काव्य-दृष्टि के अनुसार ही किया है । नीचे के विवरण से ज्ञात हो जायगा कि सूरसागर का विस्तार स्कन्धो की दृष्टि से कितना असमान है ।[3]

प्रथम स्कन्ध	२१९ पद	सप्तम स्कन्ध	८ पद
द्वितीय ,,	३८ ,,	अष्टम ,,	१४ ,,
तृतीय ,,	१८ ,,	नवम ,,	१७२ ,,
चतुर्थ ,,	१२ ,,	दशम ,, पूर्वार्ध	३८२४ ,,
		उत्तरार्ध	१३८ ,,
पञ्चम ,,	४ ,,	एकादश ,,	६ ,,
षष्ठ ,,	४ ,,	द्वादश ,,	५ ,,

वर्ण्य-विषय

प्रथम स्कन्ध मे अधिकतर विनय-पद है । इसमे सूरदास के समस्त विनय-पद संग्रहीत ज्ञात होते है । यह रचना वल्लभाचार्य का शिष्यत्व

१. चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृ० २७६
(कल्याण मुंबई संवत् १९८५)

२ शिवसिंह सरोज, पृ० ५०२
(नवल किशोर प्रेस, लखनऊ) सन् १९२६

३ श्री सूरसागर (वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई) सम्वत् १९८०

ग्रहण करने के पूर्व ही सूरदास ने की होगी । इन पदों में सूर का दास्य-भक्तिमय दृष्टिकोण है । काव्य की दृष्टि से भी यह स्कन्ध उत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता । विनय पदों में सगुणोपासना का प्रयोजन, भक्ति की महानता, मायामय संसार आदि पर अनेक पद हैं । विनय पदों के अतिरिक्त विष्णु के चौबीस अवतारों पर भी अच्छी रचना है ।

द्वितीय स्कन्ध में भी कोई विशेष कथा नहीं । भक्ति संबंधी पदों की ही प्रमुखता है । द्वितीय स्कन्ध के बाद अष्टम स्कन्ध तक विष्णु के अवतारों तथा अन्य पौराणिक कथाओं का निरूपण हैं । नवम स्कन्ध मे रामावतार की कथा है । यह कथा अधिक विस्तार से नहीं है । इसका कारण सम्भवतः यह हो कि राम-कथा का महत्व उस समय स्पष्ट रूप से साहित्य मे घोषित न हुआ था अथवा पुष्टिमार्ग मे दीक्षित होने के कारण सूरदास ने कृष्ण-भक्ति की महत्ता राम-भक्ति से अधिक घोषित की थी। जिस प्रकार का दृष्टिकोण चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे है। वैसा ही दृष्टिकोण सूरदास ने अपने सामने रक्खा। इस राम-कथा पर तुलसीदास के मानस का किंचित प्रभाव भी लक्षित नहीं है। सूरसागर की रामकथा अधिकतर वाल्मीकि रामायण से प्रभावित है। परशुराम का राम से मिलन विवाह के बाद ही न होकर अयोध्या को लौटते हुए मार्ग मे हुआ है, जैसा प्रसङ्ग वाल्मीकि रामायण मे है। सूरसागर मे इस प्रसङ्ग का वर्णन निम्नलिखित है :—

मार्ग विपे परशुराम को रामजी सों मिलाप परस्पर विवाद

परशुराम तेहि अवसर आयो ।
कठिन पिनाक कह्यो किन तार्यो क्रोधवन्त यह वचन सुनायो ॥

[illegible] रघुबीर धरे [illegible] [illegible] हरि सिर नायो ।
[illegible] जिन के [illegible] गुरजन [illegible] [illegible] उठि धाये ॥
[illegible] पूजा हमारे हम तुम कौन लराई ।
[illegible] इनके नहीं लिये मानहु धनुष चढ़ाई ॥
तबहूँ रघुपति रोष न कीनो, धनुष बान सँभार्‌यो ।
सूरदास प्रभु [illegible] [illegible] मुनि परशुराम पग धार्‌यो ॥[1]

सूरदास द्वारा वर्णित रामकथा में लोक-शिक्षा अथवा धार्मिक एवं सामाजिक मर्यादा का भी विचार नहीं है जैसा तुलसीदास के मानस में है। सूरसागर में दशरथ अपने सत्य पर दृढ़ रहने के बदले राम से अयोध्या में रुक जाने की याचना करते हैं :—

राम जू प्रति दशरथ विलाप ।

रघुनाथ पियारे आज रहो हो।[2]

अतः यह सिद्ध है कि सूरसागर के नवम स्कन्ध पर मानस का प्रभाव और उसका आदर्श नहीं है।

सूरसागर में दशम स्कन्ध का प्राधान्य है क्योंकि उस स्कन्ध में श्रीकृष्ण का चरित्र है। श्रीकृष्ण सूर के आराध्य हैं अतः उन्होंने अपने आराध्य का चित्र उत्कृष्ट रूप से चित्रित किया है। दशम स्कन्ध के दो भाग हैं पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। सूरसागर में पूर्वार्ध उत्तरार्ध से बहुत बड़ा है। पूर्वार्ध में पद संख्या ३४९४ है और उत्तरार्ध में केवल १३८। इस विषमता का कारण यह है कि दशम स्कन्ध के पूर्वार्ध में गोकुल और व्रज में विहार करने वाले श्रीकृष्ण का चरित्र है और उत्तरार्ध में द्वारिका-गमन से मृत्यु तक श्रीकृष्ण की जीवनी है। सूरदास के आराध्य बालकृष्ण ही थे, अतः उन्होंने श्रीकृष्ण के

---

१. सूरसागर, पृष्ठ ७३
२. ,, पृष्ठ ७४

ग्रहण करने के पूर्व ही सूरदास ने की होगी । इन पदों में सूरदास का दास्य-भक्तिमय दृष्टिकोण है। काव्य की दृष्टि से भी यह स्कन्ध उत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता। विनय पदों में सगुणोपासना के प्रयोजन, भक्ति की प्रधानता, मायामय संसार आदि पर अच्छे प है। विनय पदों के अतिरिक्त विष्णु के चौबीस अवतारों पर भी अच्छी रचना है।

द्वितीय स्कन्ध में भी कोई विशेष कथा नहीं। भक्ति संबन्धी पदों की ही प्रचुरता है। द्वितीय स्कन्ध के बाद अष्टम स्कन्ध तक विष्णु के अवतारों तथा अन्य पौराणिक कथाओं का निरू पण है। नवम स्कन्ध में रामावतार की कथा है। यह कथ अधिक विस्तार से नहीं है। इसका कारण सम्भवतः यह हो कि राम-कथा का महत्व उस समय स्पष्ट रूप से साहित्य में घोषित न हुआ था अथवा पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के कारण सूरदास ने कृष्ण-भक्ति की महत्ता राम-भक्ति से अधिक घोषित की थी। जिस प्रकार का दृष्टिकोण चौरासी वैष्णवन की वार्ता में है। वैसा ही दृष्टिकोण सूरदास ने अपने सामने रक्खा। इस राम-कथा पर तुलसीदास के मानस का किंचित प्रभाव भी लक्षित नहीं है। सूरसागर की रामकथा अधिकतर वाल्मीकि रामायण से प्रभावित है। परशुराम का राम से मिलन विवाह के बाद ही न होकर अयोध्या को लौटते हुए मार्ग में हुआ है, जैसा प्रसङ्ग वाल्मीकि रामायण में है। सूरसागर में इस प्रसङ्ग का वर्णन निम्न लिखित है :—

मार्ग विषे परशुराम को रामजी सों मिलाप परस्पर विवाद

परशुराम तेहि अवसर आयो ।

कठिन पिनाक कह्यो किन तोर्‌यो क्रोधवन्त यह वचन सुनायो ॥

विप्र जानि रघुवीर धीर दोउ हाथ जोरि शिर नायो ।
बहुत दिनन को हुतो पुरातन हाथ छुवत उठि आयो ॥
तुम तौ द्विज कुल पूज्य हमारे हम तुम कौन लराई ।
क्रोधवन्त कछु सुन्यो नहीं लियो सायक धनुष चढ़ाई ॥
तबहूँ रघुपति क्रोध न कीनो धनुष बान सँभार्यो ।
सूरदास प्रभु रूप समुझि पुनि परशुराम पग धार्यो ॥[1]

सूरदास द्वारा वर्णित रामकथा मे लोक-शिक्षा अथवा धार्मिक एवं सामाजिक मर्यादा का भी विचार नहीं है जैसा तुलसीदास के मानस मे है। सूरसागर मे दशरथ अपने सत्य पर दृढ़ रहने के बदले राम से अयोध्या मे रुक जाने की याचना करते है :—

राम जू प्रति दशरथ विलाप।

रघुनाथ पियारे आज रहो हो।[2]

अतः यह सिद्ध है कि सूरसागर के नवम स्कन्ध पर मानस का प्रभाव और उसका आदर्श नहीं है।

सूरसागर मे दशम स्कन्ध का प्राधान्य है क्योकि उस स्कन्ध मे श्रीकृष्ण का चरित्र है। श्रीकृष्ण सूर के आराध्य हैं अतः उन्होने अपने आराध्य का चित्र उत्कृष्ट रूप से चित्रित किया है। दशम स्कन्ध के दो भाग है पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। सूरसागर मे पूर्वार्ध उत्तरार्ध से बहुत बड़ा है। पूर्वार्ध मे पद संख्या ३४९४ है और उत्तरार्ध मे केवल १३८। इस विषमता का कारण यह है कि दशम स्कन्ध के पूर्वार्ध मे गोकुल और ब्रज मे विहार करने वाले श्रीकृष्ण का चरित्र है और उत्तरार्ध मे द्वारिका-गमन से मृत्यु तक श्रीकृष्ण की जीवनी है। सूरदास के आराध्य बालकृष्ण ही थे, अतः उन्होने श्रीकृष्ण के

---

१ सूरसागर, पृष्ठ ७३

२. ,, पृष्ठ ७४

वधाया, आदि अनेक लौकिक आचारों मे
सामग्री मिलती है वहाँ ग्राम्य वातावरण की
उत्कृष्ट बना देती है। ग्राम मे दूध-दही क
लीलाओ को कितना प्रश्रय देता है।

३. साम्प्रदायिक आचार

पुष्टिमार्ग मे कीर्तन का विशेष स्थान है। सू . पुष्टिमार्गी थे अतः वे श्रीनाथ और नवनीतप्रिया जी के समक्ष कीर्तन किया करते थे इस कीर्तन मे सूरसागर के अनेक पदो की रचना हुई। अतः पुष्टिमार्ग मे श्रीकृष्ण का दैनिक कार्यक्रम—प्रभाती से उठना, शृङ्गार करना, गोचारण, भोजन, शयन आदि पदो मे वर्णित होने के कारण—श्रीकृष्ण के स्वाभाविक ग्रामीण जीवन को और भी स्पष्ट करता था। जहाँ मन्दिर की मूर्ति के सामने भजन करने की भावना थी, वहाँ श्री कृष्ण के जीवन-की ललित लीलाओ को वर्णन करने की भी भावना थी। नित्य कीर्तन मे श्रीकृष्ण की दैनिक चर्या की चर्चा थी और नैमित्तिक कीर्तन मे हिंडोला, चांचर, फाग और वसन्त के क्रिया-कलाप थे। इस प्रकार इन पदो मे जहाँ श्री कृष्ण की लीला गान करने का उद्देश्य था वहाँ साथ ही साथ पुष्टि मार्ग के साम्प्रदायिक आचार 'कीर्तन' की भी पूर्ति थी। इसीलिए अनेक स्थानों पर श्री कृष्ण की भोज्य-सामग्री मे अनेक प्रकार के व्यञ्जनो का वर्णन है क्योकि पुष्टि मार्ग के आचार में श्री कृष्ण को 'भोग समर्पण' की प्रथा है और उस 'भोग' मे अनेक प्रकार के व्यञ्जनो का रहना आवश्यक है।

४. साहित्यिक परम्परा

सूर के आराध्य कृष्ण का चित्रण जयदेव और विद्यापति कर चुके थे। इन दोनो महाकवियो ने रस के दृष्टिकोण से श्रीकृष्ण की लीला गाई थी। गीत गोविन्दकार जयदेव ने तो शृङ्गार रस के अन्तर्गत कृष्ण की अनेक परिस्थितियों का चित्रण किया था। विद्यापति ने भी नख-

पूर्वार्ध जीभु, दूती, मिलन आदि अनेक प्रसङ्ग शृङ्गार रस के दृष्टिकोण सामने रखे थे। इस साहित्यिक परम्परा का प्रभाव सूरदास पर भी पड़ा और उन्होंने नायक नायिका के आलम्बन विभाव में श्री कृष्ण और राधा को खड़ा किया। उद्दीपन विभाव में ऋतु-वर्णन और नख-शिख वर्णन किया। अनुभाव में स्वेद और कम्प लिखा। इस प्रकार उन्होंने रस-निरूपण का सौन्दर्य भी अपने काव्य में यथास्थान सुसज्जित किया। यदि उनका दृष्टिकोण धार्मिक के साथ साथ साहित्यिक न होता तो वे चित्र काव्य के अन्तर्गत दृष्टि-कूट पद ही क्यों लिखते? श्रीमद्भागवत में राधा नहीं हैं। सूरदास ने नायिका के आलम्बन के लिए शृङ्गार रस के उत्कर्ष में राधा को स्थान दिया। यद्यपि जयदेव ने भी राधा को कृष्ण के समीप उपस्थित किया है, पर उनमें धार्मिक भावना का प्रधान स्थान नहीं है। सूरदास ने धार्मिक भावना के साथ ही साथ साहित्यिक आदर्श की रक्षा के लिए राधा को भी कृष्ण के साथ प्रमुख स्थान दिया। अतः मौलिकता के दृष्टिकोण से सूरदास के सूरसागर में चार प्रसंग बहुत उत्कृष्ट हैं :—

(१) बाल कृष्ण का मनोवैज्ञानिक चित्रण।
(२) शृङ्गार रसान्तर्गत ऋतु-वर्णन और नख-शिख।
(३) श्री कृष्ण और राधा का रति-भाव।
(४) वियोग शृङ्गार के अन्तर्गत भ्रमर गीत।

इन प्रसङ्गों की रूप-रेखा भागवत में अवश्य है, पर वह केवल कंकालवत् है। उसमें सौन्दर्य भरने का समस्त श्रेय सूरदास ही को है।

५. आध्यात्मिक संकेत

श्रीकृष्ण की मुरली 'योगमाया' है। रास वर्णन में इसी मुरली की ध्वनि से गोपिका रूप आत्माओं का आह्वान होता है जिससे समस्त बाह्याडम्बरों का विनाश और लौकिक सबन्धों का परित्याग कर दिया जाता है। गोपियों की परीक्षा, उसमें उत्तीर्ण होने पर उनके

साथ रास क्रीड़ा, १६ सहस्र गोपिकाओं के बीच में श्री कृष्ण, जिस प्रकार असंख्य आत्माओं के बीच में परमात्मा है। यही रूपक है। लौकिक चित्रण के पीछे सूरदास की यही अलौकिक भावना छिपी हुई है।

सूरदास के पदों को इन पाँच प्रधान दृष्टिकोणों से देखने पर समस्त सूरसागर का सौन्दर्य स्पष्ट हो जाता है।

कवित्व

सूरदास हिन्दी-साहित्य के महाकवि है, क्योंकि उन्होंने न केवल भाव और भाषा के दृष्टिकोण से साहित्य को सुसज्जित किया, वरन् धार्मिक क्षेत्र में ब्रजभाषा के सहारे कृष्ण काव्य की एक विशिष्ट परम्परा को जन्म दिया। अतः वे केवल व्यक्तिगत काव्य के आदर्शों को लेकर ही कवि नहीं है प्रत्युत साहित्य के क्षेत्र में प्रवृत्तियों को नवीन रूप देने वाले कलाकार भी हैं। उनकी प्रतिभा यद्यपि सर्वतोमुखी नहीं है, तथापि जिस क्षेत्र में वे लिखते है उसके वे एकमात्र अधिपति हैं। यदि जीवन की गंभीर विवेचना में सूरदास तुलसीदास से आगे नहीं बढ़ सके, तो बाल-जीवन के चित्रण में तुलसीदास सूरदास की किसी प्रकार भी समता नहीं कर सके। तुलसीदास की भाँति सूरदास अनेक भाषाओं में कविता नहीं कर सके, पर जिस ब्रज में सूरदास ने रचना की वह उनकी लेखनी में बहुत मधुर होकर प्रवाहित हुई।

भाषा के विचार से सूरदास प्रथम कवि है, जिन्होंने भाषा को साहित्यिक रूप दिया। उस समय की ब्रजभाषा केवल विचार के पारस्परिक आदान-प्रदान ही में व्यवहृत हुआ करती थी। कुछ गाने वालों के स्वरों में पाई जाती थी, पर सौष्ठव के विचार से सम्भवतः भाषा पर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया था। महाप्रभु वल्लभाचार्य के पौत्र श्रीगोकुलनाथ ने अपनी ८४ वैष्णवन की वार्ता और २५२

वैष्णवन की वार्ता में ब्रजभाषा का प्रयोग अवश्य किया है, पर वह ब्रजभाषा का बहुत साधारण रूप है, जिसमें साहित्यिक छटा का अभाव है। उसका कारण यही था कि गोकुलनाथ पुष्टि मार्ग का प्रतिपादन कर रहे थे। वे यह चाहते थे कि धर्म का जितनी सरलता से प्रचार हो सके उतना ही अच्छा है। धर्म का प्रतिपादन ऐसी भाषा में होना चाहिए, जो सरलता से प्रत्येक की समझ में आ सके। ऐसी परिस्थिति में उनकी भाषा में सरलता का साम्राज्य होना आवश्यक था और ऐसा हुआ भी है। अतः उन्होंने साहित्यिक सौन्दर्य के विचार से अपनी 'वार्ताएँ' नहीं लिखीं। ऐसी स्थिति में हम उन्हें साधारण भाषा लिखने अथवा साहित्यिक सहृदयता से शून्य होने का दोष नहीं लगा सकते। उस समय की ब्रजभाषा का उदाहरण इस प्रकार है :—

"तब नारायणदास को बंदीखाने में ते बुलाये सो बुलाय कै पातसाह के पास ठाडो कीयो तब नारायणदास ते पातसाह ने पूछी जो नारायणदास आज थैली क्यों नाहीं आई पाछे थोड़ो मों गाढ़ी कोरड़ा करिकें कोरड़ावारो बुलायो और पातसाह ने पाँच सौ कोरड़ा को हुक्म दीयो और पातसाह बोल्यो जो नारायणदास साँच कहि जो आज थैली क्यों नाहीं आई द्वारपाल ने तो मुहर छाप करिकें तेरे हवाले कीनी और तैने यह कहा कीयो तू साँच कहि नाहीं तो कोरड़ा लागत हैं।"[1]

इसी समय सूरदास ने अपने गीतिकाव्य में जिस भाषा का प्रयोग किया वह संस्कृत-मिश्रित साहित्यिक भाषा है। गोकुलनाथ और सूरदास की भाषा में वही अन्तर है, जो मलिक मुहम्मद जायसी और तुलसीदास की भाषा में है। जिस प्रकार गोकुलनाथ की ब्रजभाषा गँवारू और सूरदास की साहित्यिक है, उसी प्रकार मलिक मुहम्मद की भाषा गँवारू अवधी और तुलसीदास की साहित्यिक अवधी है।

---

१. चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ २२८।

सूरदास ने यद्यपि गंवारू शब्दों का भी प्रयोग किया है[1] पर अन्ततः उनकी भाषा में साहित्यिकता है। उनके लिखने का ढङ्ग पाण्डित्य-पूर्ण है।

सूरदास ने विशेषतः शृङ्गार और शान्त रस का वर्णन किया है। शान्त रस का वर्णन तो वे उस समय तक विशेष रूप से करते रहे, जब तक कि वल्लभाचार्य ने सूरदास का गान सुनकर यह नहीं कहा :— "जो सूर है कें ऐसो घिघियात काहे को है कछू भगवल्लीला वर्णन करि।" वल्लभाचार्य से दीक्षित होने पर उन्होंने श्रीकृष्ण-लीला गाई। श्रीकृष्ण-लीला-वर्णन मे उन्होंने शृङ्गार रस के वियोग पक्ष पर अधिक दृष्टि डाली और उसी भावोन्माद मे गोपियो का विरह-वर्णन साहित्य मे उत्कृष्टता को पहुँचा दिया। संयोग शृङ्गार मे भी सूरदास ने हृदय के भावो मे मादकता भर दी है, श्रीकृष्ण के प्रति माता यशोदा की प्रेम-भावना का मनोमोहक चित्र खींच दिया है। किस प्रकार माता यशोदा श्रीकृष्ण को पालने मे झुलाती हुई 'जोई सोई'—कभी यह कभी वह—जो कुछ मुँह मे आया, वही गा रही है। किस प्रकार नींद से विनती करती है—आकर मेरे कान्ह को सुला जा वह तुझे बुला रहा है। नींद पर क्रुद्ध सी होकर "तू काहे न वेगि सी आवै" कह कर जोर दे रही। कभी यशोदा ईश्वर से विनती करती है कि वह कौन सा दिन होगा जब मेरा लाल 'घुटुरुवनि' चलेगा।

दूसरी ओर श्रीकृष्ण भी सुन्दर क्रीड़ा करते हैं। "हरि किलकत जसुदा की कनियाँ" मे एक शिशु का उल्लास-पूर्ण रूप से अंकित है। श्रीकृष्ण के कुछ बड़े होने पर यशोदा का मन कितना पुलकित होता है उसकी बाल-लीला देखकर यशोदा कितना सुख पाती है!

> भीतर ते बाहर लौ आवत।
>
> घर आँगन अति चलत सुगम भयो देहरी में अटकावत॥

---

[1] लरिक सलोरी, लँगराई, माट, पाव्रपद, पतूखी, छाक।

गिरि गिर परत जात नहिं उलँघी अति श्रम होत न धावत।
अहुठ पैर वसुधा सब कीन्ही धाम अवधि बिर भावत॥
मन ही मन बलवीर कहत हैं ऐसे रङ्ग बनावत।
सूरदास प्रभु अगणित महिमा भक्तन के मन भावत॥[1]

बालक का देहरी तक जाकर पार करने की शक्ति न होने पर बार बार लौटना कितना सूक्ष्म निरीक्षण है, जिसे कवि ने एक बार ही कह दिया है।

गोपियों का दही बालक कृष्ण चुरा कर घर में छिप गया है। वे यशोदा से शिकायत करने के लिये आई हैं। यह शिकायत कितनी स्वाभाविक है!

जसोदा कहाँ लौं कीजे कानि।
दिन प्रति कैसे सही परति है दूध दही की हानि॥
अपने या बालक की करनी जो तुम देखो आनि।
गोरस खाइ ढूँढ़ि सब बासन भली करी यह बानि॥
मैं अपने मन्दिर के कोने माखन राख्यो जानि।
सोई जाइ तुम्हारे लरिका लीनो है पहिचानि॥
बूझी ग्वालिनि घर में आयो नेकु न सङ्का मानी।
सूरस्याम तब उतर बनायो चींटी काढ़तु पानी॥[2]

ये तो संयोग श्रृङ्गार के चित्र हुए, अब वियोग श्रृङ्गार के चित्र देखिये। सूरदास ने मानव हृदय के भीतर जाकर वियोग और करुणा के जितने भाव हो सकते हैं उन्हे अपनी कुशल लेखनी से ऐसे अङ्कित कर दिए है कि वे अमर हो गए हैं। प्रत्येक भाव में ऐसी स्पष्टता है, मानो हम उन्हे स्वयं अनुभव कर रहे हैं। किसी भाव मे आह की ज्वाला है, किसी मे वेदना के आँसू और

१. सूरसागर, पृष्ठ ११६, पद १४
२ भ्रमरगीत सार पद

किसी में विदग्धता का कम्पन। हृदय की भावना अनेक रूप से व्यक्त होती है। एक ही भावना का अनेकों बार चित्रण होता है—नये नये रंगों से—और उनमें हृदय को व्यथित करने की शक्ति बराबर बढ़ती जाती है। ऐसा ज्ञात होता है मानो प्रत्येक पद एक गापी है, जिसमें वियोग की भीषण अग्नि धधक रही है।

गोपियाँ अपनी वेदना में श्रीकृष्ण से लौटने की प्रार्थना करती है :—

> फिर ब्रज बसहु गोकुलनाथ।
> बहुरि न तुमहिं जगाय पठवौं गोधनन के साथ॥
> बरजौं न माखन खात कबहूँ देहौं देन लुटाय।
> कबहूँ न देहौं उराहनों जसुमति के आगे जाय॥
> दौरि दाम न देउँगी, लकुटी न जसुमति पानि।
> चोरी न देहुँ उघारि, किए औगुन न कहिहौं मानि॥ [१]

कृष्ण और राधा का सहारा लेकर सूर ने शृङ्गार रस पर अपनी शक्तिशालिनी लेखनी उठाई है। इस शृङ्गार में रस का पूर्ण परिपाक होते हुए भी अश्लीलता का अंश नहीं आने पाया। राधा और कृष्ण का शृङ्गार-वर्णन पढ़ते हुए भी हमें यह ध्यान रहता है कि कृष्ण और राधा हमारे आराध्य हैं। आलम्बन विभाव के नायक नायिका राधा कृष्ण ईश्वरीय शक्तियों से विभूषित है। वे सामान्य स्त्री-पुरुष के विचारों को प्रकट करते हुए भी दिव्य विभूतियों से युक्त हैं। सूर ने पवित्र शृङ्गार की झाँकी दिखलाई है। यद्यपि कृष्ण, राधा और गोपिकाओं के साथ विहार करते हैं, पर उनका व्यक्तित्व सदैव उच्चतर और पवित्र चित्रित किया गया है।

सूरदास के शृङ्गार में यही सौन्दर्य है। वासना की सामग्री नेत्र के सामने वे रखते अवश्य हैं: पर इतनी सुन्दरता के साथ कि हृदय उसके

---

१. भ्रमरगीत सार, पद १८२

रूप पर ही मुग्ध होकर वासना का तिरस्कार कर देता है। उस रूप में हृदय इतना लीन हो जाता है कि उसे वासना की ओर जाने का अवकाश ही नहीं मिलता। यह बात सूरदास के परवर्ती कवियों में नहीं रह ने पाई। उन्होंने तो राधाकृष्ण को साधारण नायक नायिका बना डाला है राधा से अभिसार कराया है, उसे विरहिणी बना कर वासना की अग्नि में जलाया है। उसे पलँग पर लिटाया है और स्वप्न में कृष्ण से मिलाया है। जागने पर 'एरी गयो गिर हाथ को हीरो' कहला कर शोक भी दिखलाया है। वासना का इतना नग्न चित्र खींचा गया है कि उसके सामने राधाकृष्ण का अलौकिक सौन्दर्य सम्पूर्ण नष्ट हो गया है, उसमें आध्यात्मिक तत्व का पता ही नहीं चलता। वे काम से पीड़ित नायक नायिका बनकर आँसू बहाते हैं, विरह में दो हाथ ऊँची आग की लपट अपने शरीर से निकालते हैं और अपनी सखी से कहलाते हैं :—

> वाके तन ताप की कहौं मैं कहा बात,
>
> मेरे गात ही छुये ते तुम्हें ताप चढ़ि आवैगो। (पद्माकर)

सूर ने जो श्रृंगार लिखा है, उसकी एक बूँद भी ये बेचारे कवि नहीं पा सके हैं। जिस प्रकार दीपक की उज्ज्वल शिखा से काजल निकलता है, उसी प्रकार सूर के उज्ज्वल और तेजोमय पवित्र श्रृङ्गार से अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी का कलुषित श्रृंगार प्रादुर्भूत हुआ।

सूरदास की कविता का प्रथम गुण है माधुर्य। उन्होंने अपने पद व्रजभाषा में लिखे हैं। एक तो व्रजभाषा स्वभावतः ही मधुर है, फिर उसमें सूर की पदयोजना ने तो माधुर्य की मूर्ति ही लाकर खड़ी कर दी है। संगीत की धारा इतनी सुकुमार चाल से चलती है कि हमें यह ज्ञात होने लगता है कि हम स्वर्ग के किसी पवित्र भाग में मंदाकिनी की हिलती हुई लहरों का स्पर्शानुभव कर रहे हैं। सूरदास तो स्वभावतः ही उत्कृष्ट गायनाचार्य थे। इस कारण उन्होंने जितने पद लिखे हैं,

उनमे संगीत की ध्वनि इतनी सुमधुर रीति से समाई है कि वे पद संगीत के जीते-जागते अवतार से हो गये हैं। कोमलता ने प्रत्येक शब्द मे वास कर लिया है।

सूरदास की कविता मे महत्व की एक बात और है। उसमे हम विश्वव्यापी राग सुनते हैं। वह राग मनुष्य-हृदय का सूक्ष्म उद्गार है। उसी राग मे मानव जाति की सभी वृत्तियाँ अन्तर्हित हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि उनकी कविता मे मनुष्य के सुख दुख का तार सदैव हिला करता है। उनकी कविता मनुष्य जाति के स्वरो में हँसती है और उसी के स्वरो मे रोती है। बाल कृष्ण के शैशव मे, श्रीकृष्ण के मचलने मे, माँ यशोदा के दुलार मे हम विश्व व्यापी माता-पुत्र-प्रेम देखते हैं :—

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीनों, तू यशुमति कब जायो॥
कहा कहौं एहि रिस के मारे, खेलन हौं नहिं जातु।
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तुमरो तातु॥
गोरे नन्द, यशोदा गोरी, तुम कत श्याम शरीर।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलबीर॥
तू मोही को मारन सीखो, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि यशुमति सुनि सुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत।
सूरश्याम मो गोधन की सौं, हौं माता तू पूत॥[1]

इन्हीं विश्वव्यापी वृत्तियों के कारण सूर का काव्य विश्वकाव्य की श्रेणी मे आ सकता है।

सूरदास के कहने का ढङ्ग भी बहुत सुन्दर है। जो बात वे कहते हैं, वह इतनी सुन्दरता के साथ कि उसके आगे कहने को कुछ भी

१. सूरसागर, पद ८८, पृष्ठ १२६

नहीं मिल सकता। जो कहते रहते हैं, सभी कहने की हानि है। वियोग शृङ्गार में गोपियों ने कृष्ण से जो कुछ कहा है, वह वाक्चातुर्य का उत्कृष्ट नमूना है।

सूरदास का अलंकार ज्ञान भी बहुत ऊँचा है। इतने सुन्दर अलङ्कारों का प्रयोग साहित्य में बहुत कम है। अलङ्कारों का कार्य तो यह है कि वे भावों का रूप स्पष्ट कर दें और उनमें शक्ति भर दें। ये दोनों कार्य सूरदास के अलङ्कारों में भली भाँति हो जाते हैं। उनके अलंकारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी अन्तर्दृष्टि बहुत तीक्ष्ण थी। उनका अन्तिम पद ही लीजिये :—

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिसै चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।
चलि चलि जात निकट श्रवननि के उलटि पलटि ताटंक फँदाते॥
सूरदास अंजन गुन अटके नातरु अब उड़ि जाते॥[1]

इसमें नेत्र रूपी खंजन का अञ्जन रूपी गुन (रस्सी) से अटकने का रूपक कितना सौन्दर्य-पूर्ण है!

सूरदास की विशेषता यह है कि उन्होंने मनोवैज्ञानिकता के साथ रस का पूर्ण सामञ्जस्य स्थापित कर दिया है। यही विशेषता तुलसीदास की भी है पर दोनों में अन्तर केवल यही है कि तुलसीदास के मनोविज्ञान का क्षेत्र मनुष्य जीवन में बहुत व्यापक है और सूरदास का क्षेत्र केवल शृङ्गारिक जीवन तक ही सीमित है। इतनी बात अवश्य है कि सूरदास के शृङ्गारमय जीवन का मनोवैज्ञानिक चित्रण जितना विश्लेषणात्मक है उतना तुलसीदास के किसी भी क्षेत्र का नहीं। सूरदास अपने काव्य-विषय के विशेषज्ञ हैं, यही उन्हें महाकवि के आसन पर अधिष्ठित करने में समर्थ है। इन शृङ्गार-चित्रों के साथ रस का जितना सुन्दर निरूपण किया गया है उतना हिन्दी साहित्य में बहुत कठिनता

१. चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ २८६-२६०

से मिलता है। शृङ्गार चित्र दो भागों में विभाजित है, बालजीवन के चित्र और विरह जीवन के चित्र। इन दोनों प्रकार के चित्रों में विरह जीवन के चित्र भावनाओं की गहरी अनुभूति लिए हुए है। भ्रमरगीत में तो जैसे वियोग-शृङ्गार की प्रत्येक भावना गोपिकाओं के आँसुओं में साकार हो गई है। विरह की एकादश अवस्थाओं का चित्रण सूरदास की कुशल लेखनी से बड़ी स्वाभाविकता के साथ हुआ है। विषय की स्पष्टता के लिए उदाहरण देना अयुक्तिसंगत न होगा।

अभिलाषा

निरखत अंक श्याम सुन्दर के बार बार लावति छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलि के ह्वै गई श्याम श्याम की पाती ॥[1]

चिन्ता

मधुकर ये नैना पै हारे।
निरखि निरखि मग कमल नयन को प्रेम मगन भये भारे ॥[2]

स्मरण

मेरे मन इतनी सूल रही।
वे बतियाँ छतियाँ लिखि राखी जे नँदलाल कही।[3]

गुण कथन

सँदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की, कृपा करत ही रहियो।
उबटन तेल और तातो जल, देखे ही भजि जाते।
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती धर्म कर्म के नाते ॥

१ भ्रमरगीत सार प० रामचन्द्र शुक्ल।
साहित्य सेवासदन, काशी सं० १९८३ पृ० २४
२ , पृ० ५०

तुम तो टेव जानती है हौ तऊ मोंहि कहि आवै ।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहि माखन रोटी भावै ॥
अब यह सूर मोंहि निसि वासर बड़ों रहत जिय सोच ।
अब मेरे अलक लड़ैते लालन, है हैं करत सँकोच ॥[1]

उद्वेग

तिहारी प्रीति किधों तरवारि ।
दृष्टिधार करि मारि साँवरे, घायल सब ब्रजनारि ॥[2]

प्रलाप

कैसे के पनघट जाऊँ सखीरी डोलौं सरिता तीर ।
भरि भरि जमुना उमड़ चली है, इन नैनन के नीर ॥
इन नैनन के नीर सखीरी, भेज भई घर नाउँ ।
चाहति हौं याही पै चढ़ि कै श्याम मिलन को जाउँ ॥[3]

उन्माद

माधव यह ब्रज को व्योहार ।
मेरो कह्यो पवन को भुस भयो गावत नन्दकुमार ॥
एक ग्वालि गोधन लै रेंगति, एक लकुट कर लेति ।
एक मंडली करि बैठारति, छाक बाँटि कै देति ॥[4]

व्याधि

ऊधोजू मैं तिहारे चरनन लागौं बारक या ब्रज करवि भाँवरी ।
निशि न नींद आवै, दिन न भोजन भावै, मग जोवत भई दृष्टि झाँवरी ॥[5]

---

१ भ्रमरगीत सार पृष्ठ ६३
२. ,, पृष्ठ ५८
३ ,, पृष्ठ ६२
४ ,, पृष्ठ ६६
५. ,, पृष्ठ ६२

ऊपर मृदु भीतर तें कुलिस सम, देखत के अति भोरे।
जोइ जोइ आवत वा मथुरातें एक डार के से तोरे ॥[1]

(२)

अति मलीन वृषभानु कुमारी।
हरिश्रम जल अन्तर तनु भीजे ता लालच न धुवावति सारी ॥
अधो मुख रहति उरध नहिं चितवति, ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।
छूटे चिहुर वदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी ॥
हरि संदेस सुनि सहज मृतक भई इक विरहिन दूजे अलि जारी।
सूरस्याम बिनु यों जीवति हैं ब्रज बनिता सब स्याम दुलारी ॥[2]

हास्य रस

(१)

निर्गुन कौन देस को वासी।
मधुकर हँसि समुझाय सौंह दै बूझति साच न हाँसी ॥
कोहै जनक जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।
कैसो बरन भेस है कैसो वहि रस में अभिलासी ॥[3]

(२)

हमते हरि कबहूँ न उदास।
तुमसों प्रेम कथा को कहिबो मनहुँ काटिबो घास ॥[4]

इन रसों के अतिरिक्त सूरदास ने अन्य रसों का वर्णन भी किया है। पर वे सब गौण रूप से है। इन रसों में कोमल रस ही प्रधान है, जिनमें अद्भुत और शान्त की अधिकता है।

---

१. भ्रमर गीत सार पृष्ठ ३४
२. ” पृष्ठ ३७
३. ” पृष्ठ २७
४. ” पृष्ठ १५

सूरदास ने रस-निरूपण मे मनोवैज्ञानिक भावनाओं को सरस राग-रागिनियो मे वर्णित किया है। इन राग-रागिनियो के कारण सूरदास का गीतिकाव्य बहुत ही मधुर और आकर्षक हो गया है। रस-निरूपण मे प्रधानतः सूर ने जिन राग-रागिनियो का वर्णन किया है उनका संक्षेप मे परिचय इस प्रकार है :—

शृङ्गार रस—ललित, गौरी, बलावल, सूहो और वसन्त।

करुण—जैतश्री, केदारा, घनाश्री, आसावरी।

हास्य—टोड़ी, सोरठ, सारंग।

शान्त—रामकली।

वर्णन—विभास, नट, सारंग, कल्याण, मलार।

विशेष

सूरदास की रचना पर यद्यपि पुष्टिमार्ग का प्रभाव अवश्य है, पर उन्होने अधिकतर कृष्ण और गोपियो के प्रेम-वर्णन पर ही अधिक रचना की है। सूरदास की रचनाओ मे विशेष दार्शनिक तत्व नही है।

> रूप रेख गुण जाति जुगति बिनु निरालम्ब मन चकित धावै।
> सब विधि अगम विचारिहि ताते, सूर सगुन लीला पद गावै॥[1]

इन सिद्धान्तो पर ही सूरदास ने अपने दार्शनिक विश्वासो की सूचना-मात्र दी है। इसीलिये सूरदास किसी विशेष पन्थ के प्रवर्त्तक नही हो सके। सूरदास ने तो अपने गुरु वल्लभाचार्य पर भी विशेष रचना नहीं की। यहाँ तक कि सूरदास के अन्तिम समय मे 'चत्रभुजदास' को कहना पड़ा—

"सूरदास जी ने भगवद जस वर्णन कीयो परि श्री आचार्य जी महाप्रभून को जस वर्णन ना कीयौ"।[2]

---

१. श्री सूरसागर पृष्ठ १, पद २

२. अष्टछाप ,, १६

फलस्वरूप सूरदास को अपने गुरु पर अन्तिम समय में एक पद लिखना पड़ा :—

> भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
>
> श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग माँझ अँधेरो॥
>
> साधन और नहीं या कलि में, जासों होत निवेरो।
>
> सूर कहा कहि द्विविध आँधरो, बिना मोल को चेरो॥[1]

इस प्रकार सूरदास अपनी भक्ति-भावना मे दार्शनिक तत्व से दूर ही रहे। उनकी भक्ति-भावना में विकास निरन्तर ही होता गया। उनके प्रारंभिक पद दास्य भाव के हैं जो तुलसीदास के दृष्टिकोण से मेल खाते हैं, परिवर्ती पद सख्य भाव के हैं जिनमे कृष्ण की लीला बड़े मनोरञ्जक ढङ्ग से वर्णित की गई है। तुलसी की भाति सूर ने धर्म का विशेष उपदेश नहीं दिया और न मूर्तिपूजा, तीर्थ-व्रत, वेद महिमा, वर्णाश्रम धर्म पर ही जोर दिया। वे तो अपने आराध्य श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व में लीन थे। न उन्हे लोकादर्श की चिन्ता थी और न धर्म के प्रचार ही की। वे तुलसी की भॉति धार्मिक सहिष्णु अवश्य थे, क्योंकि उन्होंने सूरसागर मे कृष्ण के अतिरिक्त अन्य अवतारो मे राम का वर्णन भी किया।

सूरदास की रचना गीति काव्य मे हुई, पर उनका गीति काव्य केवल व्रजभाषा तक ही सीमित रहा। तुलसी की भॉति उन्होंने अनेक भाषाओ मे कविता नहीं लिखी। वे व्रज के निवासी थे, अतः व्रजभाषा ही उन्हे काव्य के उपयुक्त जान पड़ी। गायन के स्वरो मे व्रजभाषा और भी माधुर्य-पूर्ण हो गई है, अत. कवि की वाणी व्रजभाषा के स्वरों का ही उच्चारण कर सकी। सूरदास की परम्परागत गीति-शैली ने उनके काव्य को बहुत प्रभावित किया।

सूरदास का काव्य कही-कही शास्त्रीय ढंग का भी हो गया है। उसमे गोपियो की विपुलता मे नायिका-भेद का विस्तार आप से

१ चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ १७

नन्ददास के ये रसिक मित्र कौन थे, इनका नाम भी अज्ञात है। वियोगी हरि के अनुसार "मित्र से यहाँ गङ्गाबाई जी से आशय है। गङ्गाबाई श्री गोसाईं विट्ठलनाथ जी की शिष्या थीं। यह कविता में अपना नाम "श्री विट्ठल गिरिधरन" लिखा करती थीं।"[1]

रास पञ्चाध्यायी के अन्त में नन्ददास ने अपनी कविता के विषय में भी निर्देश किया है :—

यह उज्ज्वल रसमाल, कोटि जतनन करि पोई।
सावधान ह्वै पहिरौ, यह तोरौ मति कोई ॥[2]

इससे यह ज्ञात होता है कि वे अपनी कविता 'बहु जतनन करि' लिखा करते थे। रचना करने में इस परिश्रम के कारण ही सम्भवतः यह जनश्रुति चल पड़ी हो, "और सब गढ़िया, नन्ददास जड़िया"। खोज रिपोर्ट (सन १९०१) में 'दसमस्कध भागवत' नामक नन्ददास रचित ग्रन्थ का निर्देश है। उसमें भी नन्ददास ने अपने एक मित्र का निर्देश किया है :—

परम विचित्र मित्र इक रहै। कृष्ण चरित्र सुन्यो सो चहै ॥
तिन कही दसम स्कंध जु आहि। भाषा करि कछु बरनौं ताहि ॥
सबद सहंसकृति के हैं जैसे। मो पहि समुझि परैं नहिं तैसे ॥
ताते सरल सुभाषा कीजै। परम अमृत पीजै सुख भीजै ॥ आदि

इस सम्बन्ध में खोज-रिपोर्ट के संपादक लिखते हैं :—

"इस ग्रन्थ के कर्ता नन्ददास जी हैं जो एक मित्र के कहने पर इस दसम स्कन्ध को भाषा में करने में प्रवृत्त हुए। कहीं-कहीं तो कथा को ऐसे वर्णन किया है मानो दोनो मित्र परस्पर सम्वाद करते हों। ग्रन्थ के बनने अथवा समाप्त होने का ठीक समय विदित नहीं होता। अन्त

---

१ ब्रजमाधुरी सार (श्री वियोगी हरि) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग सं० १९९०

२. रास पञ्चाध्यायी, पञ्चमोऽध्याय. पद्य-सख्या ८०

के लेख से यह निकलता है कि ग्रन्थ फाल्गुण सुदी ७ मंगलवार को समाप्त हुआ, पर सम्वत कौन यह नहीं लिखा।"[1]

अतः अन्तर्साक्ष्य से हमें केवल यही ज्ञात होता है कि नन्ददास अपने ग्रन्थों की रचना अधिकतर अपने मित्रों के अनुरोध से ही किया करते थे।

बहिर्साक्ष्य के अन्तर्गत नाभादास का यह छप्पय प्रसिद्ध है :—

श्री नन्ददास आनन्द निधि, रसिक सुप्रभु हित रँगमँगे।
लीला पद रस रीति ग्रंथ रचना में नागर।
सरस युक्ति युत युक्ति, भक्ति रस गान उजागर॥
प्रचुरय पय लौं सुजसु ।रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकल संवलित, भक्त पद रेनु उपासी॥
चंद्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम पथ में पगे।
श्री नन्ददास आनन्द निधि रसिक सुप्रभु हित रँगमँगे॥[2]

इस छप्पय से यह ज्ञात होता है कि नन्ददास 'चन्द्रहास अग्रज सुहृद' थे। 'चन्द्रहास अग्रज सुहृद' के दो अर्थ हो सकते हैं :—

(१) चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र
(२) चन्द्रहास के सुहृद बड़े भाई

इन दोनों अर्थों में कौन सा अर्थ नन्ददास के पक्ष में प्रयुक्त होता है, यह अनिश्चित है, क्योंकि चन्द्रहास का निर्देश अन्य किसी बहिर्साक्ष्य में नहीं है।

अतः नन्ददास चन्द्रहास के बड़े भाई या चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र थे और रामपुर के निवासी थे।[3]

गोकुलनाथ की दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में नन्ददास का परि-

---

१. खोज रिपोर्ट सन् १६०१, पृष्ठ १८
२. भक्तमाल सटीक (नाभादास)
३. रामपुर ग्राम एटा में है।

नन्ददास के ये रसिक मित्र कौन थे, उनका नाम भी अज्ञात है। वियोगी हरि के अनुसार "मित्र से यहाँ गङ्गाबाई जी से आशय है। गङ्गाबाई श्री गोसांई विट्ठलनाथ जी की शिष्या थीं। यह कविता में अपना नाम "श्री विट्ठल गिरिधरन" लिखा करती थीं।"[1]

रास पञ्चाध्यायी के अन्त में नन्ददास ने अपनी कविता के विषय में भी निर्देश किया है :—

> उदित उज्ज्वल रसमाल, कोटि जतनन करि पोई।
>
> सावधान ह्वै पहिरी, यह तोरी मति कोई ॥[2]

इससे यह ज्ञात होता है कि ये अपनी कविता 'बहु जतनन करि' लिखा करते थे। रचना करने में इस परिश्रम के कारण ही सम्भवतः यह जनश्रुति चल पड़ी हो, "और सब गढ़िया, नन्ददास जड़िया"। खोज रिपोर्ट (सन् १९०१) में 'दसमस्कध भागवत' नामक नन्ददास रचित ग्रन्थ का निर्देश है। उसमें भी नन्ददास ने अपने एक मित्र का निर्देश किया है :—

> परम विचित्र मित्र इक रहै। कृष्ण चरित्र सुन्यो सो चहै ॥
>
> तिन कही दसम स्कंध जु आहि। भाषा करि कछु बरनौं ताहि ॥
>
> सबद सहंसकृति के हैं जैसे। मो पहि समुझि परैं नहिं तैसे ॥
>
> ताते सरल सुभाषा कीजै। परम अमृत पीजै सुख भीजै ॥ आदि

इस सम्बन्ध में खोज-रिपोर्ट के संपादक लिखते हैं :—

"इस ग्रन्थ के कर्ता नन्ददास जी है जो एक मित्र के कहने पर इस दसम स्कन्ध को भाषा में करने में प्रवृत्त हुए। कहीं-कहीं तो कथा को ऐसे वर्णन किया है मानो दोनों मित्र परस्पर सम्वाद करते हों। ग्रन्थ के बनने अथवा समाप्त होने का ठीक समय विदित नहीं होता। अन्त

---

१ व्रजमाधुरी सार (श्री वियोगी हरि) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग सं० १९९०

२ रास पञ्चाध्यायी, पञ्चमोऽध्याय पद्य-संख्या ८०

के लेख से यह निकलता है कि ग्रन्थ फाल्गुण सुदी ७ मंगलवार को समाप्त हुआ, पर सम्वत कौन यह नहीं लिखा ।"[1]

अतः अन्तर्साक्ष्य से हमें केवल यही ज्ञात होता है कि नन्ददास अपने ग्रन्थों की रचना अधिकतर अपने मित्रों के अनुरोध से ही किया करते थे।

वहिर्साक्ष्य के अन्तर्गत नाभादास का यह छप्पय प्रसिद्ध है :—

श्री नन्ददास आनन्द निधि, रसिक सुप्रभु हित रँगमँगे ।
लीला पद रस रीति ग्रंथ रचना में नागर ।
सरस युक्ति युत युक्ति, भक्ति रस गान उजागर ॥
प्रचुरय पय लौं सुजसु ।रामपुर ग्राम निवासी ।
सकल सुकुल संवलित, भक्त पद रेनु उपासी ॥
चंद्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम पथ में पगे ।
श्री नन्ददास आनन्द निधि रसिक सुप्रभु हित रँगमँगे ॥[2]

इन छप्पय से यह ज्ञात होता है कि नन्ददास 'चन्द्रहास अग्रज सुहृद' थे। 'चन्द्रहास अग्रज सुहृद' के दो अर्थ हो सकते हैं :—

(१) चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र

(२) चन्द्रहास के सुहृद बड़े भाई

इन दोनों अर्थों में कौन सा अर्थ नन्ददास के पक्ष में प्रयुक्त होता है, यह अनिश्चित है, क्योंकि चन्द्रहास का निर्देश अन्य किसी वर्हिसाक्ष्य में नहीं है।

अतः नन्ददास चन्द्रहास के बड़े भाई या चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र थे और रामपुर के निवासी थे।[3]

गोकुलनाथ की दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में नन्ददास का परि-

१. खोज रिपोर्ट सन् १९०१, पृष्ठ १८
२. भक्तमाल सटीक (नाभादास)
३. रामपुर ग्राम एटा में है।

[illegible] नन्ददास जी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।"[1]

रास पञ्चाध्यायी के अन्त में नन्ददास ने अपनी कविता के विषय में भी निर्देश किया है

नहिं [illegible], कोटि जतन करि कोई।
[illegible] जब तोरी आवे कोई ॥[2]

इससे यह ज्ञात होता है कि वे अपनी कविता [illegible] जतनन करि किया करते थे। [illegible] इस परिश्रम के कारण ही सम्भवतः यह कहावत चल पड़ी थी, "और सब गढ़िया, नन्ददास जड़िया"। खोज रिपोर्ट (सन् १९०९) में 'दशमस्कंध भागवत' नामक नन्ददास रचित ग्रन्थ का निर्देश है। इसमें श्री नन्ददास ने अपने एक मित्र का निर्देश किया है :—

परम विचित्र मित्र इक रहै। कृष्ण चरित्र सुन्यो सो चहै॥
तिन कह्यो दसम स्कंध जु आहि। भाषा करि कछु बरनौं ताहि॥
सबद संस्कृत के हैं जैसे। मो पहि समुझि परैं नहिं तैसे॥
ताते सरल सुभाषा कीजै। परम अमृत पीजै सुख जीजै॥ आदि

इस सम्बन्ध में खोज-रिपोर्ट के संपादक लिखते हैं :—

"इस ग्रन्थ के कर्ता नन्ददास जी हैं जो एक मित्र के कहने पर इस दसम स्कन्ध को भाषा में करने में प्रवृत्त हुए। कहीं-कहीं तो कथा को ऐसे वर्णन किया है मानो दोनों मित्र परस्पर सम्वाद करते हों। ग्रन्थ के बनने अथवा समाप्त होने का ठीक समय विदित नहीं होता। अन्त

---

१ ब्रजमाधुरी सार (श्री वियोगी हरि) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग सं० १९९०

२ रास पञ्चाध्यायी, पञ्चमोऽध्याय, पद्य-संख्या ८०

गोसांई विट्ठलनाथ जी द्वारा पुष्टि मार्ग मे दीक्षित हुए थे। उनका विचार श्रीमद्भागवत का अनुवाद भाषा मे करने का था पर बाद मे विट्ठलनाथ जी की आज्ञा से उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे पुष्टि मार्ग मे प्रभावशाली और लोक-प्रिय भक्त थे। वार्ता से यह भी ज्ञात होता है कि ये सिन्धु नद ग्राम की एक खत्रानी के रूप पर आसक्त हो गए थे और रात दिन उसके घर का चक्कर लगाया करते थे। बाद मे गोसांई विट्ठलनाथ के उपदेश से इन्हे ज्ञान हुआ। २५२ वैष्णवन की वार्ता डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार प्रामाणिक नहीं कही जाती।[1] इसके अनेक कारण हैं।

ग्रन्थ मे लेखक का नाम आदर सूचक शब्द के रूप मे आया है। कोई भी लेखक अपना नाम इस प्रकार अपने ग्रन्थ मे नहीं लिख सकता—"तब श्री बालकृष्ण जी तथा श्री गोकुलनाथ जी तथा श्री रघुनाथ जी तीनों भाई वैष्णवन के मंडल मे विराजत हते।" दूसरी बात यह है कि इसमे श्री गोसाई जी के सेवक लाड़बाई और धारबाई शीर्षक १९९ वी वार्ता मे औरङ्गजेब की मन्दिर तोड़ने की नीति का वर्णन किया गया है।[2] गोकुलनाथ का समय संवत् १६०८ से संवत् १७०४ माना गया है। अतएव औरङ्गजेब की इस नीति का वर्णन जो सन् १६६९ की घटना है, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता मे गोकुलनाथ के द्वारा वर्णित नहीं की जा सकती। तीसरी बात यह है कि ८४ और २५२ वैष्णवन की वार्ताओं के व्याकरण के अनेक

१. हिन्दुस्तानी, अप्रेल सन् १९३२ पृष्ठ १८३-१८६

२ फेर साठ वर्ष पाछे औरङ्गजेब बादशाह की जुलमी के समय में मलेच्छ लूटबे कु आये तब आगाकुल में तुं सब लोग भाग गये॥ और मन्दिर सब खाली है दे गये हैं मनुष्य गाम में रह्यो नहि॥ तब तिन म्लेच्छन ने वे हाथ ... में तब नगर हूँ पान के ... निकस्यो॥ तब गाम में जितने मंदिर हते सब मंदिरन को हाथ तुड़ाय डारा॥

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृष्ठ ३३३

गोसाईं विट्ठलनाथ जी द्वारा पुष्टि मार्ग में दीक्षित हुए थे। इनका विचार श्रीमद्भागवत का अनुवाद भाषा में करने का था पर बाद में विट्ठलनाथ जी की आज्ञा से इन्होंने ऐसा नहीं किया। ये पुष्टि मार्ग के प्रभावशाली और लोकप्रिय भक्त थे। वार्ता से यह भी ज्ञात होता है कि ये किसी नर्तक पात्र की एक स्त्री के रूप पर आसक्त हो गए थे और रात दिन उनके घर का चक्कर लगाया करते थे। बाद में गोसाईं विट्ठलनाथ के उपदेश से इन्हें ज्ञान हुआ। २५२ वैष्णवन की वार्ता डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार प्रामाणिक नहीं कही जाती।[1] इसके अनेक कारण हैं।

ग्रन्थ में लेखक का नाम आदर सूचक शब्द के रूप में आया है। कोई भी लेखक अपना नाम इस प्रकार अपने ग्रन्थ में नहीं लिख सकता—"तब श्री बालकृष्ण जी तथा श्री गोकुलनाथ जी तथा श्री रघुनाथ जी तीनों भाई वैष्णवन के मंडल में विराजत हते।" दूसरी बात यह है कि इसमें श्री गोसाईं जी के सेवक लाड़बाई और धारबाई शीर्षक ११९ वीं वार्ता में औरङ्गजेब की मन्दिर तोड़ने की नीति का वर्णन किया गया है।[2] गोकुलनाथ का समय संवत् १६०८ से संवत् १७०४ माना गया है। अतएव औरङ्गजेब की इस नीति का वर्णन जो सन् १६६९ की घटना है, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में गोकुलनाथ के द्वारा वर्णित नहीं की जा सकती। तीसरी बात यह है कि ८४ और २५२ वैष्णवन की वार्ताओं के व्याकरण के अनेक

[1] हिन्दुस्तानी, अप्रैल सन् १९३२ पृष्ठ १८३-१८६

[2] पर साठ वर्ष पाछे औरंगजेब बादशाह की जुलमी के समय में मलेच्छ लूटवे कू आये तब धारागढ़न में सु सब लोग भाग गये॥ और मन्दिर सब सूने ह्वै गये, कोई मनुष्य गाम में रह्यो नाहीं॥ तब तिन म्लेच्छन ने वे छात खोदी। सो तामें लाख रुपया को द्रव्य निकस्यो॥ तब गाम में जितने मंदिर हते सब मंदिरन को छात खुदाय डारी॥

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृष्ठ ३३३

रूपों मे अन्तर है। एक ही लेखक अपनी दो रचनाओं मे व्याकरण के इन छोटे-छोटे रूपों मे इस तरह के भेद नहीं कर सकता। इन कारणों से यह कहा जा सकता है कि चौरासी वार्ता को देखकर किसी पुष्टिमार्गी ने १६ वीं शताब्दी के बाद इसकी रचना की होगी।

ऐसी स्थिति मे २५२ वैष्णवन की वार्ता मे जो 'भागवत भाषा न करने का' उल्लेख है वह प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज मे जो दशमस्कंध भागवत ग्रन्थ मिला है उसके विषय मे कुछ भी विश्वस्त रीति से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अभी उसका ठीक परीक्षण नहीं हुआ। अतः नन्ददास ने भागवत का अनुवाद भाषा मे किया था अथवा नहीं, यह अभी सन्दिग्ध है।

नन्ददास का निर्देश वेणीमाधवदास के गोसांई चरित मे भी मिलता है :—

> नन्ददास कनौजिया प्रेम मढे। जिन सेस सनातन तीर पढे॥
>
> सिच्छा गुरु बन्धु भये तेहि ते। अति प्रेम सों आय मिले यहि ते॥[1]

तुलसीदास की व्रज-यात्रा मे नन्ददास उनसे मिले थे। इस निर्देश के अनुसार नन्ददास कनौजिया थे और तुलसीदास के साथ शेष सनातन से उन्होंने विद्योपार्जन किया था। इस प्रकार वे तुलसीदास के गुरु-भाई थे।

इस उद्धरण से २५२ वैष्णवन के इस कथन की पुष्टि किसी प्रकार हो जाती है कि 'नन्ददास जी तुलसीदास के छोटे भाई हते।' पर गोसाईं चरित की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है। अतः इस कथन का निर्देश मात्र यहाँ पर्याप्त है।

नन्ददास के जीवन-विवरण की प्रामाणिक सामग्री बहुत कम है। नागरी प्रचारिणी सभा की सन १९२०-२१-२२ की खोज रिपोर्ट में नन्ददास के 'नाममाला' ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति में ग्रन्थ का रचना

[1] गोसाईं चरित के १८ वें दोहे की चौपाई।

संवत् दिया गया है। वह संवत् १६२४ है। अतः इसके अनुसार यह निश्चित है कि नन्ददास तुलसीदास और सूरदास के समकालीन थे। इस प्रकार नन्ददास विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुए। चन्द्रहास उनके भाई थे या चन्द्रहास के बड़े भाई उनके मित्र थे। सन्दर्भ को देखते हुए नन्ददास को चन्द्रहास का बड़ा भाई मानना ही युक्तिसंगत है। तुलसीदास नन्ददास के भाई थे अथवा नहीं, यह किसी अन्य प्राचीन प्रमाण से सिद्ध होना चाहिए। नन्ददास की जाति भी निश्चित नहीं है। वेणीमाधवदास ने उन्हें 'कनौजिया' लिखा है। शिवसिंह सेंगर ने अपने सरोज में उन्हें केवल ब्राह्मण लिखा है :—

"४९ नन्ददास ब्राह्मण रामपुर निवासी, विट्ठलनाथ जी के शिष्य, सं० १५८५ में हुए।"[1]

मिश्रबन्धु ने नन्ददास को 'शुक्ल' ब्राह्मण माना है[2]। 'शुक्ल' से तात्पर्य कान्यकुब्ज का निकलता है। सुकवि सरोज में नन्ददास को शुक्ल कहा गया है :—

"सोरों जिला एटा के समीप रामपुर एक नगर था। [illegible] में वर्तमान सोरों निवासी समस्त ब्राह्मणों के पूर्वज [illegible] ही पास में नन्ददास जी का जन्म हुआ था। [illegible] नन्ददास जी ने जिस सोरों के [illegible] [illegible] [illegible] दिया था। [illegible] [illegible] [illegible]"[3]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

४. दसम स्कंध भागवत

पद्य-संख्या १७००

विषय — श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का पद्यमय अनुवाद[1]।

[विशेष — इसकी एक प्रति खोज रिपोर्ट सन् १९०३-१९०७-१९०८ में भी प्राप्त हुई है। "इस ग्रन्थ के कर्ता नन्ददास जी हैं जो एक मित्र के कहने पर इस दशम स्कंध को भाषा में करने में प्रवृत्त हुए। कहीं-कहीं तो कथा को ऐसे वर्णन किया है मानों दोनों मित्र परस्पर सम्वाद करते हों। ग्रन्थ के बनने अथवा समाप्त होने का ठीक समय विदित नहीं होता। अन्त के लेख से यह निकलता है कि ग्रन्थ फाल्गुण सुदी ७ मंगलवार को समाप्त हुआ, पर सम्वत कौन था यह नहीं लिखा। प्रस्तुत प्रति तो सम्वत् १८३२ मार्गशीर्ष वदी १३ को समाप्त हुई थी। इस प्रति के लेखक रामकृष्ण के पुत्र राधोदास महाजन हैं।"]

५. नाम चिन्तामणि माला

पद्य-संख्या ४१

विषय — कृष्ण की नामावली।[2]

६. नाम माला

पद्य संख्या [illegible]

विषय — नामों का कोष। भिन्न भिन्न विषयों के विविध नाम।[3]

[illegible]

"समुझि सकत नहिं संस्कृत, जान्यो चाहत नाम।
तिन लगि नन्द सुमति जथा, रचत नाम की दाम॥"

[विशेष—इस ग्रन्थ का रचना-काल भी सम्वत् १६२४ दिया गया है। इसकी एक प्रति खोज रिपोर्ट सन् १९०९-१९१०-१९११ में भी प्राप्त हुई है।]

७. नाम मञ्जरी

पद्य-संख्या ३२०

विषय—पर्यायवाची शब्दों का कोष।[1]

उच्चरि सकत न संस्कृत जान्यो चाहत नाम।
तिन लगि नन्द सुमति यथा, रचत नाम की दाम॥

८. नासिकेत पुराण भाषा

विषय—नासिकेत की कथा

[विशेष—यह ग्रन्थ गद्य में है][2]

९. पञ्चाध्यायी

पद्य-संख्या ३०८

विषय—रास वर्णन।[3] इसके अतिरिक्त—

श्रवन कीरतन सार सार सुमिरन को है फुनि।
ज्ञान सार हरि ध्यान सार रति सार ग्रन्थ गुनि॥
अघहरनी मन हरनी सुन्दर प्रेम वितरनी।
नन्ददास के कण्ठ बसी नित मङ्गल करनी॥

[विशेष—इसकी एक प्रति खोज रिपोर्ट सन् १९०१ में और दो प्रतियाँ (सन् १८९५ और १८३६ की) खोज

---

१ खोज रिपोर्ट सन् १९२०-१९२१-१९२२

२ ,, ,, १९०९-१९१०-१९११

३ ,, ,, १९१७-१९१८-१९१९

रिपोर्ट १९०६-१९०७-१९०८ मे प्राप्त हुई हैं। कवि ने इस ग्रन्थ को अपने एक मित्र के कहने से लिखा था।]

१०. विरह मंजरी

पद्य-संख्या १४९

विषय—नायिकाओं का विरह वर्णन।[1]

११. भँवरगीत

पद्य संख्या २१६

विषय—सगुण और निर्गुण पर गोपी और उद्धव का संवाद।[2]

[विशेष—इसमे नन्ददास का उपनाम 'जनमुकुन्द' दिया गया है।]

१२. रसमञ्जरी

पद्य-संख्या २५०

विषय—नायिका भेद।[3]

१३. राजनीति हितोपदेश

पद्य-संख्या ३६५०

विषय—राजनीति।[4]

१४ रुक्मिणी मंगल

पद्य-संख्या ९०

---

१ [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

४ [illegible]

विषय- रुक्मिणी हरण की कथा।[1]

१५. श्याम सगाई

पद-संख्या ६३

विषय—श्यामा श्याम की सगाई। इसमें सभी घटनाएं विस्तारपूर्वक वर्णित हैं।[2] संक्षेप रूप यही विषय है :—

जसुमति रानी गृह गाजै, नन्दन लीक पुराय।
बहुत बधाई नन्द के नर नारि सनि आय॥ सगाई श्याम की

[विशेष इसकी एक प्रति खोज- रिपोर्ट सन् १९०६-१९०७-१९०८ में भी मिली है।]

१६. मान (नाम ?) मञ्जरी नाम माला

(विशेष विवरण ज्ञात नहीं)।[3] इसकी एक प्रति खोज-रिपोर्ट १९०९-१९१०-१९११ में भी प्राप्त हुई है। यह कोष ही ज्ञात होता है।

शिवसिंह सेंगर ने इनके ग्रन्थों में नाममाला, अनेकार्थ, पंचाध्यायी, रुक्मिणी मंगल, और दशम स्कन्ध के साथ-साथ दानलीला और मानलीला का भी निर्देश किया है।[4] "इन ग्रन्थों के सिवा इनके हजारों पद भी हैं।" नन्ददास ने पद भी लिखे हैं पर वे "हजारों" नहीं हैं।

नन्ददास ने १६ ग्रन्थों की रचना की। उनमें रासपञ्चाध्यायी और भंवर गीत मुख्य हैं। पहले रास पञ्चाध्यायी पर विचार करना चाहिए। शिवसिंह-सरोज के अनुसार नन्ददास का जन्म-काल

---

१ खोज रिपोर्ट सन् १९१२-१९१३-१९१४

२ ” सन् १९१७ १९१८-१९१९

३. राजपूताना में हिन्दी की खोज (मुंशी देवीप्रसाद) सं० १९६८

४. शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ४४३

संवत् १५८५ है। अतः रास पञ्चाध्यायी का रचना-काल कम से कम बीस वर्ष बाद तो होना ही चाहिए। अतः संवत् १६१० के बाद पञ्चाध्यायी की रचना हुई होगी।

इसकी रचना का कारण नन्ददास ने स्वयं अपनी पुस्तक के प्रारंभ में दे दिया है :—

> परम रसिक इक मित्र, मोहिं तिन आज्ञा दीनी।
> ताही ते यह कथा यथा मति भाषा कीनी ॥[1]

कथानक

रासपञ्चाध्यायी में श्रीकृष्ण की रास-लीला रोला छंद में वर्णित है। इसमें कुल पाँच अध्याय हैं। प्रथम अध्याय के प्रारम्भ में शुकदेवजी का शिख-नख वर्णन बड़ी ही सुन्दर रीति से किया गया है। तत्पश्चात् श्रीवृन्दावन की छवि के वर्णन के साथ शरद्-रजनी की शोभा अङ्कित की गई है। इसी समय हम श्रीकृष्ण को मुरली में स्वर भरते हुए पाते हैं। फलतः सभी व्रज-गोपिकाएं उस मुरली-स्वर से आकृष्ट हो उसी वन में आ जाती हैं। पर जब श्रीकृष्ण उन्हें स्त्री-धर्म की शिक्षा देकर घर लौट जाने के लिए कहते हैं तो वे सभी "बालमृगन की माल" के समान स्तब्ध रह जाती हैं। इस अवसर पर गोपियों की दशा का बड़ा ही भाव-पूर्ण चित्र खींचा गया है। कभी उलहना दिया गया है, कभी प्रेम-प्रदर्शित किया गया है, और कभी मरने का भय दिखलाया गया है। अन्त में मनमोहन गोपियों की बात मानकर कुञ्ज में विहार करते हैं। इस पर गोपियों का हृदय कुछ गर्वित हो उठता है। यह देखकर श्रीकृष्ण कुछ देर के लिए अन्तर्धान हो जाते हैं। यहीं रासपञ्चाध्यायी का पहला अध्याय समाप्त होता है।

द्वितीय अध्याय में गोपिकाएँ श्रीकृष्ण को प्रत्येक कुञ्ज में खोजती हुई लता-वृक्षों से कृष्ण का पता पूछती हैं। यह वर्णन बहुत ही सरस और करुणा से ओतप्रोत है।

तृतीय अध्याय में गोपिकाओं का प्रलाप है। कहीं-कहीं उनका उपालम्भ बहुत ही मनोहर है। ये सभी कृष्ण से पुनः दर्शन देने की याचना करती हैं। व्याकुलता का बड़ा ही विदग्ध वर्णन है।

चतुर्थ अध्याय में श्रीकृष्ण पुनः प्रकट होते हैं और गोपिकाएँ विरह के पश्चात् बड़ी उत्सुकता और उमङ्ग के साथ मिलती हैं। यह मिलना बड़ा ही स्वाभाविक है। अन्त में श्रीकृष्ण गोपियों से अपने अपराध की क्षमा माँगते हैं।

पाँचवें अध्याय में श्रीकृष्ण की रास-लीला का सुन्दर वर्णन है। पद-योजना इस प्रकार की गई है कि रास का दृश्य आँखों के सामने खिँच जाता है। फिर जल क्रीड़ा होती है और प्रातःकाल होने के पूर्व गोपियाँ अपने-अपने स्थान को चली जाती हैं। अध्याय के अन्त में नन्ददास ने कथा का माहात्म्य कहकर इस "उज्ज्वल रस-माल" को अपने कण्ठ मे बसने की प्रार्थना की है।

आधार

नन्ददास ने अपनी रासपञ्चाध्यायी का कथानक मुख्यतः भागवत ही से लिया है। उसमे अनेक स्थलो पर भागवत की कथा का ही रूपान्तर है; और उन्होंने जो बातें भागवत से ली हैं वे इस प्रकार व्यक्त की गई हैं कि उन पर मौलिकता का रङ्ग नजर आता है। उनकी वर्णन-शैली और शब्द-माधुर्य्य मे भागवत का अंश भी नन्ददास कृत मालूम पड़ता है। यही नन्ददास की काव्य-शक्ति का उत्कृष्ट प्रमाण है। कथानक चाहे एक ही हो, किन्तु दोनो की वर्णन-शैली मे भिन्नता है। नन्ददास रास के पाँच अध्यायो के लिए भागवत दशम स्कन्ध के २९ से लेकर ३३ अध्याय तक के ऋणी अवश्य है।

रासपञ्चाध्यायी का दूसरा आधार हरिवंशपुराण कहा जा सकता है; क्योंकि उस पुराण के विष्णु-पर्व मे उसी रास का वर्णन है, जिसका वर्णन नन्ददास ने अपनी पञ्चाध्यायी मे किया है। पुराण मे उसका नाम 'हल्लीस-क्रीडन' दिया गया है। इसी रास के आधार पर रासपञ्चाध्यायी ग्रन्थ हरिवंश पुराण का ऋणी है।

पञ्चाध्यायी का तीसरा आधार जयदेव का 'गीतगोविन्द' है। यद्यपि गीतगोविन्द और रासपञ्चाध्यायी के कथानक में आकाश-पाताल का अन्तर है, तथापि दोनों की प्रवाह-गति मधुरता और शैली एक ही साँचे मे ढली हुई है। नन्ददास ने कदाचित गीत-गोविन्द के माधुर्य्य के वशीभूत होकर ही अपने काव्य की रचना की है। दोनों की मधुरता का ढंग है, एक ही। वियोगी हरि तो इसे "हिन्दी का गीत गोविन्द" मानते हैं।[1]

रस — नन्ददास ने अपने काव्य में रस और गुण की सृष्टि बड़ी सुन्दरता के साथ की है। रसो मे उन्होने शृङ्गार, करुण और शान्त का बड़ी विशद रीति से वर्णन किया है। उनका शृङ्गार रस इस प्रकार है :—

> इहि बिधि बिबिध बिलास हास सुख कुञ्ज सदन के।
>
> चले जमुन जल क्रीडन, ब्रीडन कोटि मदन के ॥[2]

कितना सरस शृङ्गार-वर्णन है!

नन्ददास ने करुण रस के वर्णन करने मे भी कुशलता दिखलाई है। आँसुओं की स्वच्छ मालाओं मे उन्होने जो हृदय-वेधी भाव गूँथे हैं, उन्हे हम केवल अनुभव कर सकते हैं, कह नहीं सकते। इस प्रकार का करुण रस हिन्दी साहित्य मे बहुत कम है :—

प्रनत मनोरथ करत चरण सरसीरुह पिय के।
कह घटि जैहे नाथ, हरत दुख हमरे हिय के॥
कहँ यह हमरी प्रीति, कहाँ तुमरी निठुराई।
मनि पखान ते खचै दई तें कछु न बसाई॥
जब तुम कानन जात सहस जुग सम बीतत छिन।
दिन बीतत जिहि भाँति हमहिं जाने पिय तुम बिन॥[1]

अन्त में शान्त रस का कितना उज्ज्वल स्वरूप है!

श्रवन कीरतन ध्यान सार सुमिरन को है पुनि।
ज्ञान-सार हरि-ध्यान-सार, श्रुतिसार गुथी गुनि॥
अघहरनी, मनहरनी सुन्दर प्रेम वितरनी।
नन्ददास के कण्ठ बसौ नित मङ्गल करनी॥[2]

गुण

रासपञ्चाध्यायी में दो गुणों की प्रधानता है। वे दोनों गुण हैं माधुर्य्य और प्रसाद। माधुर्य्य तो उच्च श्रेणी का है। प्रत्येक पद मानो अङ्गूर का एक गुच्छा है, जिसमें मीठा रस भरा हुआ है। शब्दों में कोमलता भी बहुत है। पंक्तियों में न तो संयुक्ताक्षर हैं और न लम्बे-चौड़े समास ही। शब्दों की ध्वनि ही अर्थ का निर्देश करती है। जो कुछ कहा गया है वह भी बहुत थोड़े शब्दों में और सुन्दरता के साथ। "अर्थ अमित अति आखर थोरे"। रास-वर्णन मधुर और सरस है!

नूपुर कङ्कन किङ्किनि करतल मञ्जुल मुरली।
ताल मृदङ्ग उपङ्ग चङ्ग एकै सुर जुरली॥
मृदुल मधुर टङ्कार ताल झङ्कार मिली धुनि।
मधुर जन्त्र की तार भँवर गुञ्जार रली पुनि॥

१ रास पञ्चाध्यायी और भँवर गीत पृष्ठ १५-१६
२ ,, ,, २५

> तैसिय मृदुपद पटकनि चटकनि कटतारन की।
> लटकनि मटकनि झलकनि कल कुण्डल हारन की।
> साँवरे पिय के सङ्ग नृतत या ब्रज की बाला॥
> जनु घनमण्डल मन्जुल खेलति दामिनिमाला॥[1]

पदों में प्रसाद गुण का भी अच्छा स्थान है।

> नव मरकत मनि स्याम कनक मणिगण ब्रजबाला।
> वृन्दावन को रीझि मनो पहिराई माला॥[2]

काव्य का बाह्य रूप सजाने में भी नन्ददास का कौशल दर्शनीय है। पद-योजना का सुन्दर आयोजन है। मुख्य-मुख्य अलङ्कारों का विस्तार और छन्द का स्वच्छन्द प्रवाह है। नीचे के उद्धरणों में यह कथन और भी अधिक स्पष्ट हो जायगा।

पद-योजना, अलंकार, छन्द

१. पद-योजना

> या बन की बर बानक या बन ही बन आवै।
> सेस महेस सुरेस गनेसहु पार न पावै॥[3]

* *

> ठे पुनि तिहिं पुलिनहिं परमानन्द भयौ है।
> छबिलिन सपनो छादनि-छवि कुबिजान ज्यौ है॥[4]

२. अनुप्रास

> हे चन्दन, दुख दन्दन सब की जरन जुरावहु।
> नँदनन्दन, जगबन्दन चन्दन हमहिं बतावहु॥[5]

---

१. रासपञ्चाध्यायी और भँवरगीत पृ० २०-२१
२. " " " २०
३. " " " २
४ " " " १८
५. " " " १९

प्रकृति-वर्णन

प्रकृति वर्णन कवि के नैसर्गिक सिद्धान्तों के अनुसार बदला करता है। अंग्रेजी में वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) का प्रकृति-वर्णन टेनीसन (Tennyson) के प्रकृति-वर्णन से सर्वथा भिन्न है। इसका कारण यह है कि वर्ड्सवर्थ ने प्रकृति को सजीव मान कर अपनी सहचरी समझा है; किन्तु टेनीसन ने प्रकृति को मानवीय विचारों के चित्र के लिए केवल चित्रपट समझा है। उसने प्रकृति का अस्तित्व हृदय के विविध विचारों के अनुकूल प्रदर्शन के लिए ही माना है। हिन्दी के प्राचीन कवियों का भी प्रकृति के लिए अन्ततः यही विचार था। वियोग में उनकी प्रकृति वियोगिनी बनकर रोती थी और संयोग में उनकी प्रकृति में हर्ष के चिन्ह नजर आते थे। यद्यपि यहाँ-वहाँ इस सिद्धान्त के कुछ प्रतिवाद अवश्य देखने में आते हैं, पर मुख्यतः यह स्पष्ट है कि हमारे प्राचीन कवि टेनीसन की भाँति प्रकृति को अपने भावों ही के रङ्ग में रँगते थे।

नन्ददास ने प्रकृति-वर्णन तीन प्रकार से किया है :—

(१) प्रकृति का सुखमय शृङ्गारयुक्त चित्रण।

(२) आगामी कार्यों के क्रीड़ास्थल के उपयुक्त प्रकृति का रूप-प्रदर्शन।

(३) केवल अलङ्कार के रूप मे लाने के लिए ही प्रकृति के भिन्न भिन्न रूपो का प्रयोग।

प्रथम प्रकार के प्रकृति-वर्णन मे प्रकृति एक नवयौवना स्त्री के समान दृष्टिगोचर होती है, जिसका स्वाभाविक शृङ्गार नेत्र और हृदय को आनन्द देने वाला है। प्रकृति के प्रत्येक अङ्ग मे स्त्री के बाह्य सौन्दर्य की झलक है। कवि वर्णन करता है केवल सजीव सौन्दर्य का और वह भी सीधे शब्दों मे। नन्ददास का इस प्रकार का वर्णन यह है :—

> कुसुम धूरि धूसरा कुंज मधुकरनि पुञ्ज जहँ।
>
> ऐसेहु रस आवेस लटा के कानों प्रवेस तहँ॥

नव पल्लव को सैनी अति सुखदेगी सरसे।
सुंदर सुमन सुबि निरखत अनि आनँद हिय दरसे॥[1]

दूसरे प्रकार के वर्णन में नन्ददास प्रकृति का रूप इस भाँति वर्णन करते हैं कि आगे होने वाले कार्यों की तीव्रता बढ़ती है अथवा उनमें उद्दीपन होता है। जिस प्रकार नाटक में शृङ्गार कथानक की सरसता रङ्गमञ्च के दृश्य में उपवन, राज-प्रासाद या चन्द्र-दर्शन से और भी बढ़ जाती है, उसी प्रकार कथानक का वेग और भी तीव्र करने के लिए नन्ददास ने प्रकृति का सहारा लेकर कथानक के अनुकूल ही वायुमण्डल की सृष्टि कर दी है। प्रथम अध्याय में कृष्ण की मुरली की ध्वनि को अधिक प्रभावशालिनी बनाने के लिए कवि ने शरद् की निस्तब्ध रात्रि का सहारा लिया है। प्रकृति यहाँ उद्दीपन विभाव का काम करती है :--

कोमल किरन अरुन मानो बन व्याप रही यों।
मनसिज खेल्यो फागि घुमड़ घुरि रह्यो गुलाल ज्यों॥
फटिक छटा सी किरन कुंज रंध्रन जब आई।
मानहु बितत बितान सुदेस तनाव तनाई॥
मन्द-मन्द चल चारु चन्द्रमा अति छवि पाई।
झलकत है जनों रमारमन पिय कौतुक आई।
तब लीनी करकमल जोगमाया सी मुरली। [illegible] इत्यादि।

यहाँ कविता के चित्र के लिए प्रकृति ने सचमुच ही चित्रपट का रूप ले लिया है।

[illegible]

[illegible]

प्रकृति वर्णन कवि के वैयक्तिक सिद्धान्तों के अनुसार बदला करता है। अंग्रेजी मे वर्ड्स्वर्थ (Wordsworth) का प्रकृति-वर्णन टेनीसन (Tennyson) के प्रकृति-वर्णन से सर्वथा भिन्न है। उसका कारण यह है कि वर्ड्स्वर्थ ने प्रकृति को सजीव मान कर अपनी सहचरी समझा है; किन्तु टैनीसन ने प्रकृति को मानवीय विचारो के चित्र के लिए केवल चित्रपट समझा है। उसने प्रकृति का अस्तित्व हृदय के विविध विचारों के अनुकूल प्रदर्शन के लिए ही माना है। हिन्दी के प्राचीन कवियों का भी प्रकृति के लिए अन्ततः यही विचार था। वियोग में उनकी प्रकृति वियोगिनी बनकर रोती थी और संयोग मे उनकी प्रकृति में हर्ष के चिन्ह नजर आते थे। यद्यपि यहाँ-वहाँ इस सिद्धान्त के कुछ प्रतिवाद अवश्य देखने मे आते हैं, पर मुख्यतः यह स्पष्ट है कि हमारे प्राचीन कवि टैनीसन की भाँति प्रकृति को अपने भावो ही के रङ्ग मे रँगते थे।

प्रकृति-वर्णन

नन्ददास ने प्रकृति-वर्णन तीन प्रकार से किया है :—

(१) प्रकृति का सुखमय शृङ्गारयुक्त चित्रण।

(२) आगामी कार्यों के क्रीड़ास्थल के उपयुक्त प्रकृति का रूप-प्रदर्शन।

(३) केवल अलङ्कार के रूप मे लाने के लिए ही प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपो का प्रयोग।

प्रथम प्रकार के प्रकृति-वर्णन मे प्रकृति एक नवयौवना स्त्री के समान दृष्टिगोचर होती है, जिसका स्वाभाविक शृङ्गार नेत्र और हृदय को आनन्द देने वाला है। प्रकृति के प्रत्येक अङ्ग मे स्त्री के वाह्य सौन्दर्य की झलक है। कवि वर्णन करता है केवल सजीव सौन्दर्य का और वह भी सीधे शब्दों मे। नन्ददास का इस प्रकार का वर्णन यह है :—

कुसुम धूरि धूसरी कुंज मधुकरनि पुंज जहँ।
ऐसेहु रस आवेस लटकि कानों प्रवेस तहँ॥

नव पल्लव को सैनी अति सुखदैनी सरसै ।

सुंदर सुमन सखि निरखत अति आनँद हिय वरसे ॥[1]

दूसरे प्रकार के वर्णन मे नन्ददास प्रकृति का रूप इस भाँति वर्णन करते हैं कि आगे होने वाले कार्यों की तीव्रता बढ़ती है अथवा उनमे उद्दीपन होता है। जिस प्रकार नाटक मे शृङ्गार कथानक की सरसता रङ्गमञ्च के दृश्य मे उपवन, राज-प्रासाद या चन्द्र-दर्शन से और भी बढ़ जाती है, उसी प्रकार कथानक का वेग और भी तीव्र करने के लिए नन्ददास ने प्रकृति का सहारा लेकर कथानक के अनुकूल ही वायुमण्डल की सृष्टि कर दी है। प्रथम अध्याय मे कृष्ण की मुरली की ध्वनि को अधिक प्रभावशालिनी बनाने के लिए कवि ने शरद् की निस्तब्ध रात्रि का सहारा लिया है। प्रकृति यहाँ उद्दीपन विभाव का काम करती है :--

कोमल किरन अरुन मानो बन व्याप रही यों ।

मनसिज खेल्यो फागि घुमड़ घुरि रह्यो गुलाल ज्यों ॥

फटिक छटा सी किरन कुञ्ज रन्ध्रन जब आई ।

मानहु बितन बितान सुदेस तनाव तनाई ॥

मन्द-मन्द चल चारु चन्द्रमा अति छबि पाई ।

झलकत है जनो रमारमण पिय कौतुक आई ।

तब लीनी करकमल जोगमाया सी मुरली ।[2] इत्यादि ।

यहाँ कविता के चित्र के लिए प्रकृति ने सचमुच ही चित्रपट का रूप ले लिया है।

नन्ददास के तीसरे प्रकार के प्रकृति-वर्णन मे कोई विशेषता नहीं है। प्रकृति के भिन्न भिन्न रूपों के प्रयोग केवल अलङ्कार लाने के हेतु [illegible] [illegible] पर बहुत कम [illegible] [illegible] [illegible]

[1] [illegible] नन्ददास [illegible] पृष्ठ [illegible]

[2] [illegible]

हे अवनी नवनीत चोर चितचोर हमारे।
राखे कितहुँ दुराय बता देउ प्रान पियारे ॥[1]

तीसरा गुण है इनके अनुप्रास की विशेषता। नन्ददास की रचना में अनुप्रास इस तरह स्वाभाविक रीति से चला आता है मानो इनके शब्द-भाण्डार में अनुप्रासयुक्त शब्दों के अतिरिक्त और कोई शब्द ही नहीं था। अनुप्रास भी इस तरह आता है कि उससे भावों को लेश-मात्र भी क्षति नहीं होती। इसी में कवि की प्रतिभा का परिचय है :—

जो रज अज शिव खोजत जोजत जोगी जन जिय।
सो रज बन्दन करन लगीं सिर धरन लगीं तिय ॥[2]

इनकी रचना का चौथा गुण है चित्र-शक्ति। नन्ददास जिस वस्तु का वर्णन करते हैं, वह वर्णन इतना यथार्थ और स्वाभाविक होता है कि उसका चित्र आँखों के सामने आ जाता है।

सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजत भारी,
हियो सरोवर रसभरि चलि माना उमँगि पनारी ॥[3]

इन शब्दों के प्रवाह में 'पनारी' के तीव्र गमन का चित्र है।

रचना का पाँचवाँ गुण है ईश्वरोन्मुख प्रेम। प्रत्येक शृङ्गार-स्थल पर ईश्वर के प्रति भक्तिभाव की भी अभिव्यक्ति होती है। गोपिकाओं के विहार [illegible] गये का मतलब नन्ददास ने अन्तिम दो पंक्तियों में बड़ी सुन्दरता के साथ व्यक्त किया है।

निज निज घर में जु अन्तरगता माही।
[illegible] नाहि [illegible] ॥[4]

हुआ कृष्ण-सन्देश कृष्ण-काव्य के कवियों को बड़ा रुचिकर था। इसी का वर्णन भ्रमरगीत या भँवरगीत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सूरदास ने भी भ्रमरगीत लिखा है। उसमें अनेक मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित कर गोपियों के प्रेम-मार्ग का निरूपण किया गया है। नन्ददास के भ्रमरगीत में कथा की उतनी प्रधानता नहीं है जितनी दार्शनिकता की। प्रारंभ में भ्रमरगीत की प्रस्तावना भी नहीं है। सूरदास ने तो भ्रमरगीत के प्रारंभ में कृष्ण की गोकुल विषयक चिन्ता, उद्धव का अहङ्कार, कृष्ण का उद्धव के अहङ्कार हटाने की बात सोचना, उन्हीं को अपने सन्देश के साथ गोकुल भेजने का विचार, नन्द, यशोदा, गोपियों को पत्र, कुब्जा द्वारा भी पत्र, उद्धव की व्रज-यात्रा, उद्धव का व्रज-प्रवेश व्रज-युवतियों का उन्हें दूर से देखकर कृष्ण मानना, युवतियों का भ्रम-निवारण, इस घटना-शृंखला के बाद उद्धव का उपदेश लिखा है। इस प्रकार भ्रमरगीत की अनुक्रमणिका बहुत बड़ी है। नन्ददास ने अपने भँवरगीत में यह प्रस्तावना नहीं दी। उनका भँवरगीत उद्धव के उपदेश से ही प्रारंभ हो जाता है :—

> ऊधव को उपदेश सुनो ब्रजनागरी।
> रूप सील लावन्य सबै गुन आगरी॥
> प्रेम धुजा रस रूपिनी उपजावनि सुख पुंज।
> सुन्दर स्याम विलासिनी नव वृन्दावन कुंज॥
> सुनो ब्रजनागरी।

इसके बाद ही —

> कहन स्याम सन्देस एक मैं तुम पै आयो हैं।

इसका कारण यह है कि इसमे दार्शनिकता का अधिक अंग है। गोपियो और उद्धव मे प्रश्नोत्तर के रूप मे सगुण और निर्गुण के सापेक्ष्य महत्व की घोषणा की गई है। अन्त मे गोपियों ही की विजय होती है और उद्धव परिताप-पूर्ण शब्दो मे कहते हैं :—

अब रहिहौं व्रजभूमि की ह्वै पग मारग धूरि।
विचरत पद मोपै परैं सब सुख जीवन मूरि।
मुनिन हूँ दुर्लभै ॥[1]

सूरदास के भ्रमरगीत मे जितने मनोवैज्ञानिक चित्र हैं, उतने तो नन्ददास के भँवरगीत मे नहीं किन्तु उनकी कमी भी नहीं है। अलङ्कार के साथ एक मनोवैज्ञानिक चित्र इस प्रकार है :—

कोउ कहै री मधुप भेस उनहीं को धार्यो,
स्याम पीत गुञ्जार बैन किंकिन झनकार्यो।
वापुर गोरस चोरि कै फिरि आयो यहि देस,
इनको जनि मानहु कोउ कपटी इनको भेस।
चोरि जनि जाय कछु ॥[2]

भँवरगीत का छन्द रोला और दोहा के मिश्रण से बनाया हुआ एक नवीन छन्द है। इस छन्द के अन्त मे १० मात्रा को एक छोटी सी पंक्ति है जिससे भाव पूर्ति के साथ छन्द की सङ्गीत-पूर्ति भी होती है। यह छन्द संभवतः सूरदास से ही लिया गया ज्ञात होता है, क्योंकि सूरदास ने पदो के अतिरिक्त इस छन्द मे भी भ्रमरगीत लिखा है।

कोउ आयो उत तांय जिते नँद सुवन सिधारे।
वहै वेनु धुनि होय मनो आए नँदप्यारे।

---

१ भँवरगीत, पृष्ठ ३०

२ ,, पृष्ठ २१

परसी रस सिंगार के लीन्हों चतुरि सुजान,
नन्ददास पावन भयो जो यह लीला गाय।
प्रेम रस पुजनी ॥[1]

(शान्त)

वियोग शृङ्गार के लिए तो संपूर्ण रचना ही उदाहरण-स्वरूप दी जा सकती है। गोपियों के विरह का एक चित्र यह है :—

कोउ कहै अहो दरस देहु पुनि बेनु बजावौ,
दुरि दुरि बन की ओट कहा हिय लोन लगावौ।
हमको तुम पिय एक हौ तुमकों हमसी कोरि,
बहुत भाँति के रावरे प्रीति न डारौ तोरि।
एक ही बार यों ॥[2]

भँवर गीत की भाषा बड़ी सरस और प्रवाहयुक्त है। नन्ददास की भाषा उन्हें 'और सब गढ़िया, नन्ददास जड़िया' के पद के योग्य अवश्य बना देती है। वे किसी शब्द को उपयुक्त स्थल पर बड़ी मनोहरता से जड़ देते हैं। उदाहरण के लिए 'गुन' शब्द लिया जा सकता है। भँवर गीत के १९, २० और २१ छंदों मे गुन शब्द का सौन्दर्य सन्दभ के अनुसार कितने अर्थ और कितने रूप मे है :—

१—जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ ते।[3]
२—वा गुन की परछाह री माया दर्पन बीच,
गुन ते गुन न्यारे भये अमल वारि मिलि कीच।[4]
३—माया के गुन और और गुन हरि के जानो।[5]

---

१. भँवर गीत, पृष्ठ ३३
२ ,, पृष्ठ १४
३ ,, पृष्ठ १०
४. ,, ,,
५. ,, ,,

४—जाके गुन अरु रूप को जान न पायो वेद,
तातें निर्गुन ब्रह्म को बदत उपनिषद वेद ।[1]

शब्दों को 'जड़ने' के अतिरिक्त उन्होंने भाषा को अभिव्यञ्जन शक्ति अनेक मुहावरों का प्रयोग कर बढ़ा दी है :—

'घर आयो नाग न पूजहीं, बाँबी पूजन जाहि ।
'कहा हिय लोन लगावौ'
'छुधित आम मुख काढ़ि'
'जे तुमको अवलंबहीं तिनको मेलो कूप'
'जबहीं लौ नहि लखौ तबहि लौं बाचो मूठी'

आदि मुहावरों से उन्होंने भाषा को बड़ा सरल और व्यावहारिक रूप दिया है। इसी भाषा ने उनकी रचना में माधुर्य और प्रसाद गुण की सृष्टि की है। साधारण शब्दों में ही नन्ददास कितनी कुशलता से माधुर्य गुण रख देते थे :—

स्याम पीत गुञ्जार बैन किंकि झनकार्‍यो ।[2] अथवा—
ब्रज बनितन के पुंज माहि गुंजन छबि छाया ।[3]

दूसरे उदाहरण में तो शब्द-माधुर्य के साथ शब्द-चित्र भी है। शब्दों की ध्वनि में भ्रमर जैसे गूंज रहा है।

नन्ददास ने अपने भँवर गीत में गोपिकाओं की विरह दशा का करुणापूर्ण चित्र खींचते हुए ब्रह्म, माया और जीव की जो विवेचना की है वह उनके पाण्डित्य की परिचायिका है। हिन्दी के समस्त भ्रमर गीतों में नन्ददास का भवरगीत दार्शनिक दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हैं।

ब्रजरत्नदास द्वारा सम्पादित भ्रमरगीत की प्रति पाठ की दृष्टि से प्रामाणिक है। पं० विश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा की प्रति भी विश्वस्त है।

नन्ददास के ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि वे भक्ति के साथ कवित्व में भी पारङ्गत थे। काव्य शास्त्र में उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उन्होंने काव्य की अनेक शैलियों में रचना कर अपनी बहुज्ञता और काव्य-ज्ञान का प्रमाण दिया है। राम पञ्चाध्यायी में उन्होंने भक्तिमय रहस्यवाद का परिचय देते हुए रीति-शास्त्र का पाण्डित्य भी प्रदर्शित किया। कृष्ण गोपी चित्रण में आध्यात्मिक सङ्केत के साथ शृङ्गार रस के लिए नायक-नायिका का आलम्बन अनेक गुणों के साथ प्रस्तुत किया गया है। उद्दीपन में ऋतु-वर्णन है। शैली की दृष्टि से पञ्चाध्यायी खण्ड काव्य की कथावस्तु लिए हुए हैं। अलङ्कार और छन्द का उपयुक्त प्रयोग, भावों की अनुगामिनी भाषा का महत्त्व नन्ददास के कवित्व का गौरव है। अतः ज्ञात होता है कि वे श्रेष्ठ भक्त के साथ ही साथ रीति-शास्त्र के भी आचार्य थे। रस मञ्जरी में तो उन्होंने नायिका-भेद ही लिखा है। उन्होंने केशव की भाँति अपनी प्रतिभा को पाण्डित्य के कठिन पाश में नहीं जकड़ दिया। नन्ददास पर रीति-शास्त्र का उतना ही प्रभाव है जहाँ तक कि उनकी भक्ति-भावना को अनियंत्रित रूप में प्रकट करने की आवश्यकता है। इसके लिए उनका शब्द-चयन और अलङ्कार प्रयोग भी सुरुचिपूर्ण है। नन्ददास यमक और अनुप्रास के पण्डित हैं, पर उनका अनुप्रास पद्माकर के 'मल्लिकान मंजुल मलिन्द मतवारे मिले मंद-मंद मारुत मुहीम मनसा की है' के समान नहीं है। अनुप्रास प्रवाह का सहायक है बाधक नहीं। कहीं-कहीं शब्दों का स्वरूप अवश्य विकृत हो गया है। दुराय (तिनके भूत भविष्य कों जानत कौन दुराय [1]) 'दूसरे' के अर्थ में, बेकारी (लिए फिरत मुख जोग गाठ काटत बेकारी [2]) 'व्यर्थ' के अर्थ में तथा हमरो के लिए 'हमार' 'हम्हारो' आदि अप्रयुक्त शब्द देखे जाते हैं।

---

१ भँवर गीत पृष्ठ १६
२ " पृष्ठ २३

नन्ददास ने जिस प्रकार काव्य-रचना की है, उससे ज्ञात होता है कि वे गीत गोविन्द के रचयिता जयदेव और पदावली के रचयिता विद्यापति से अधिक प्रभावित थे।

सूरदास और नन्ददास गोसाईं विट्ठलनाथ द्वारा स्थापित अष्टछाप के प्रधान कवि थे। इनके अतिरिक्त अष्टछाप के शेष छः कवि निम्नलिखित थे :—

कृष्णदास—

इनका समय संवत् १६०० माना जाता है। चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे इनका चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णित है। ये वल्लभाचार्य के शिष्य थे। शूद्र होते हुए भी ये कृष्ण-भक्ति के कारण वल्लभाचार्य जी द्वारा बहुत सम्मानित हुए। ये भक्त प्रथम थे और कवि बाद मे। इनकी कविता सूरदास अथवा नन्ददास की कविता से हीन है। इन्होने अधिकतर पद ही लिखे हैं। जिनमे अधिकतर संयोग शृङ्गार वर्णित है। इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं :—

भ्रमरगीत और प्रेमतत्त्व निरूपण

इनकी 'जुगल मान चरित्र' रचना भक्तो मे अधिक मान्य है।

परमानन्ददास—

इनका समय संवत् १६०७ के आस-पास है। ये श्रीवल्लभाचार्य के प्रिय शिष्यो मे से थे। इनकी रचना बड़ी मधुर और सरस हुआ करती थी। इनकी कविता का विशेष गुण तन्मयता है। इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध है —

ध्रुव चरित्र और दान लीला।

इनके अतिरिक्त इनके पदो का भी एक संग्रह पाया जाता है।

कुंभनदास—

इनका कविता-काल भी सम्वत् १६०७ के लगभग माना जाता है। ससार के गौरव और सम्मान से ये बहुत दूर थे। दो सौ बावन वैष्णवन

की वार्ता के अनुसार एक बार उन्हें अकबर ने फतहपुर सीकरी बुलाया। लाचार होकर इन्हें जाना पड़ा। किन्तु उन्हें अपनी इस यात्रा का बड़ा खेद रहा। उन्होंने एक पद में लिखा है :—

> जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम।
>
> कुंभनदास लाल गिरधर बिनु और सबै बेकाम॥

इनका कोई विशेष ग्रन्थ नहीं मिलता। फुटकर पद अवश्य काव्य संग्रहों में पाए जाते हैं।

चतुर्भुजदास—

ये कुंभनदास के पुत्र और विट्ठलनाथ के शिष्य थे। कृष्ण-लीला का वर्णन ये सूरदास के समान ही करते थे। इनके पद अधिकतर कृष्ण के क्रिया-कलापों से ही संबन्ध रखते हैं। इनकी भाषा बहुत स्वाभाविक और सरस है। इनके तीन ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं :—

१. द्वादश यश, २. भक्ति प्रताप और ३ हितजू को मङ्गल।

इनके पदों के अनेक संग्रह है, जिनमें भक्ति और प्रेम के सुथरे चित्र मिलते हैं।

छीत स्वामी—

इनका कविता काल संवत् १६१२ माना गया है। पहले ये राजा बीरबल के पण्डा थे, बाद में पुष्टि मार्ग में दीक्षित हो गए। ये ब्रज भूमि के बडे प्रेमी थे और जन्मजन्मान्तर उसी में बसना चाहते थे। इनकी कविता बहुत सरस होती थी। इनके स्फुट पद ही प्राप्त होते हैं, कोई संपूर्ण रचना नहीं। अष्टछाप के कवियों में इनका आदरणीय स्थान है।

गोविन्द स्वामी—

इनका कविताकाल भी संवत् १६१२ माना जाता है। ये

विट्ठलनाथ के शिष्यों में थे और गोवर्द्धन पर्वत पर निवास करते थे। इनके भी कुछ पद प्राप्त होते हैं।

मीरांबाई

मीरांबाई राजस्थान की कवियित्री थीं। कृष्ण-काव्य में उनकी रचनाओं का विशेष स्थान है। उन्होंने क्रमानुसार कृष्ण की लीलाओं का वर्णन नहीं किया, वरन् दीनता से अपनी हृदय की समस्त भावनाओं को भक्ति के सूत्र में बांध कर कृष्ण की आराधना की। बीच-बीच में कभी उद्धव और राधा आदि का प्रसङ्ग कह दिया है। उन्होंने माधुर्य भाव से अपनी भक्ति भावना का स्वरूप निर्धारित किया और स्वयं विरहिणी बन कर अपने आराध्य श्रीकृष्ण से प्रणय-भिक्षा माँगी। यही कारण है कि मीरां की कविता में गीतिकाव्य की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है।

मीरां का जीवन वृत्त संपूर्ण रूप से विश्वस्त नहीं है। स्त्री होने के कारण और उत्तर की राजनीति की रङ्गभूमि से दूर रहने के कारण आईन अकबरी जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थों में वे स्थान नहीं पा सकीं। मीरां स्वयं राजस्थान की राजनीति से संबन्ध रखती हैं, अतः राजस्थान के इतिहास में उनका किसी प्रकार उल्लेख है। किन्तु राजस्थान के इन ऐतिहासिक उल्लेखों में भी कहीं-कहीं भूल है। अतः मीरां की रचनाओं में जो व्यक्तिगत निर्देश है, उन्हें ही प्रामाणिक मानना ठीक है। इस [illegible] कठिनाई है। मीरा की रचनाओं की प्रामाणिकता [illegible] रचना मीरा के नाम से मिलती है, उनमें बहुत से [illegible] तक मीरा की रचनाओं का कोई प्रामाणिक [illegible] जब तक मीरा की रचनाओं का [illegible] प्रकाशित [illegible] की शब्दावली

मत से अधिक मान्य है। अतः इन्हीं के आधार पर मीरां के जीवन संबंधी अन्तर्साक्ष्य पर विचार होगा :—

जन्म-तिथि ×

कुल

(अ) राठौड़ों की धीयड़ी जी सीसोद्यों के साथ।
ले जाती बैकुंठ को म्हारी नेक न मानी बात ॥[1]

(आ) मैं बेटी राठौड़ की थाँने राज दियो भगवान ॥[2]

(इ) राणा मीरा का मारू कहावे नाचे दे दे तारी ॥[3]

नाम (अ) मेड़तिया घर जनम लियो है मीरां नाम कहायो ॥[4]

(आ) सब ही लागे मेड़तिया जी थाँसू सुगन कहे संसार ॥[5]

जन्मस्थान

(अ) मेड़तिया घर जन्म लियो है मीरा नाम कहायो।[6]

(आ) पीहर मेड़ता छोड़ा अपना, सुरत निरत दोउ चटकी।[7]

(इ) पीहर लागे जो थांरो मेड़तो।[8]

(ई) मारू घर मेवाड़ मेरतो त्याग दियो थारो सहर।[9]

---

१. मीराबाई की शब्दावली (बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद)
तीसरा एडिशन सन् १६२० पृष्ठ ६५

२	,,	,,	३७
३.	,,	,,	४०
४.	,,	,,	६७
५.	,	,,	३७
६.	,,	,,	६७
७.	,,	,,	२६
८.	,,	,,	३८
६.	,,	,,	५५

माता-पिता

(अ) मात पिता तुमको दियो तुमही भल जानो हो ।[1]

पति-गृह

(अ) बर पायो हिंदुवाणी सूरज, अब दिल में कहाधारी ।[2]

(आ) सीसोद्यो रुठ्यो तो म्हारो कांई कर लेसी ।[3]

गुरु

(अ) गुरु मिलिया रैदास जी दीन्ही ज्ञान की गुटकी ।[4]

(आ) सतगुरु मिलिया सुंज पिछाणी ऐसा ब्रह्म मैं पाती ॥[5]

(इ) रैदास संत मिले मोहि सतगुरु दीन्हा सुरत सहदानी ।[6]

(ई) गुरु रैदास मिले मोहिं पूरे, धुर से कलम भिड़ी ।
सतगुरु सैन दई जब आके जोत में जोत रली ॥[7]

(इ) मीरा ने गोविंद मिल्या जी गुरु मिलिया रैदास ॥[8]

(ई) मीरा ने सतगुरुजी मिलिया चरण कमल बलिहारी ॥[9]

भक्ति में कठिनाइयाँ

(अ) सांप टिपारो राणा जी भेज्यो दयो मेड़तणी गलडार ।
हँस हँस मीरा कंठ लगायो यो तो म्हारे नौसर हार ॥
विष को प्यालो राणाजी भेज्यो द्यो मेड़तणी ने प्याय ।

---

1. मीराबाई की शब्दावली पृष्ठ ८
2. " पृष्ठ ४०
3. " पृष्ठ २६
4. " पृष्ठ २५
5. " पृष्ठ १
6. " पृष्ठ २०
7. " पृष्ठ ३६
8. " पृष्ठ ३७
9. " पृष्ठ ४०

कर चरणामृत पी गई रे गुण गोविंदरा गाय ॥[1]

(आ) राणाजी भेजा विष का प्याला सो अमृत कर दीज्यो जी ॥[2]

(इ) (ऊदा) भाभी मीरा राणा जी कियो छे थाँ पर कोप,
रतन कचोले विष घोलियो ।
(मीरा) बाई ऊदा घोल्यो तो घोलण दो,
कर चरणामृत वाही मैं पीवस्यों ॥
(ऊदा) भाभी मीराँ देखतड़ा ही मर जाय,
यो विष कहिये वासक नाग को,
बाई ऊदा नहीं म्हाँरे माय बाप,
अमर डाली धरती फेलिया[3]

(ई) राजा बरजै राणी बरजै, बरजै सब परिवारी ।
कुँवर पाटवी सो भी बरजै, और सेहल्या सारी ॥[4]

(उ) जहर का प्याला भेजिया रे दीजो मीरां हाथ ।
अमृत करके पी गई रे भली करे दीनानाथ ॥
मीरां प्याला पी लिया रे बोली दोउ कर जोर ।
तैं तो मारण की करी रे, मेरा राखण हारा और॥[5]

(ऊ) बरबस रचल घमारी
हम घर मातु पिता पारें गारी ॥[6]

(ऋ) जब मैं चली साध के दरसण तब राणो मारण कूं दौर्‌यो ॥[7]

---

1 मीराबाई की शब्दावली पृष्ठ १६
२. ,, पृष्ठ ३४
३. ,, पृष्ठ ३८
४ ,, ,,
५. ,, पृष्ठ ४१
६ ,, पृष्ठ ४६
७ ,, पृष्ठ ५३

(अं) राणा जी तें जहर दियो मैं जाणी ।
जैसे कञ्चन दहत अगिन में निकसत बाराबाणी ॥[१]
(अः) सीसोद्यो राणो प्यालो म्हाने क्यूं रे पठायो ।
भलो बुरी तो मैं नहीं कीन्हीं राणा क्यूं है रिसायो ॥
थांने म्हाने देह दिवी है ज्यां रो हरि गुण गायो ।
कनक कटोरे ले विष घोल्यो दयाराम पंडो लायो ॥[२]

पूर्व भक्तों का निर्देश

(अ) धना भगत पीपा पुनि सेवरी मीरां की हू करो गनना ।[३]
(आ) पीपा कूं प्रभु परच्यो दीन्हो दिया रे खजीना पूर ।[४]
(इ) दास कबीर घर बालद जो लाया नामदेव की छान छबन्द ।
दास धना को खेत निपजायो, गज की टेर सुनन्द ॥[५]
(ई) धना भक्त का खेत जमाया कबिरा बैल चराया ।[६]
(उ) सदना और सेना नाई को, तुम लीन्हा अपनाई ॥[७]

वैराग्य

(अ) मात पिता परिवार सूं रे रही तिनका तोड़ ।[८]
(आ) तुम तजि और भतार को मन में नहिं आनौं हो ।[९]

---

१. मीराबाई की शब्दावली पृष्ठ ६७
२ ,, ,,
३ ,, ,, २
४ ,, ,, १५
५. ,, ,, ३६
६. ,, ,, ७०
७. ,, ,, ७०
८. ,, ,, ५
९. ,, ,, ८

(४) आय कै ननँद कहै गई किन चेत भाभी,

साधुन सो हेतु मै कलङ्क लागै भारिये।[1]

(५) सुनि कै, कटोरा भरि गरल पठाय दियो,

लियो करि पान रँग चढ्यो सो निहारिये॥[2]

(६) रूप की निकाई भूप अकबर भाई हिये,

लिये सङ्ग तानसेन देखिबे को आयो है।[3]

(७) वृन्दावन आई जीव गुसाई जू सों मिलो झिली,

तिया मुख देखबे को पन लै छुटायो है।[4]

(८) राना को मलीन मति देखि बसी द्वारावति,

इति गिरधारी लाल नित ही लड़ाइये।[5]

(८) सुनि बिदा होन गई राय रणछोर जू पै,

छाँडों राखो हीन लीन भई नहीं पाइये।[6]

अन्तर्साक्ष्य के अतिरिक्त प्रियादास की टीका मे चार बातें नवीन मिलती हैं :—

(१) अकबर का तानसेन के साथ मीरांबाई से मिलना।

(२) मीरांबाई का श्रीजीव गुसांई से मिलना।

(३) मीरांबाई का द्वारिका मे निवास करना।

(४) मीरांबाई का रणछोड़ जी के मन्दिर मे अदृश्य होना।

भक्तमाल के टीकाकार श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद ने यह भी लिखा है कि गनगौर की पूजा न करने पर मीरां की सास ने जब

---

१. भक्तमाल सटीक पृष्ठ ६६६

२. " " "

३. " " ७०२

४. " " "

५ " " ७०३

६ " " "

अपने पति से मीरां की शिकायत की तब बात यहाँ तक बढ़ी कि "मीरां जी के लौकिक पति, राना के कुमार ने दूसरा विवाह कर लिया और इस संसार से भी चल दिया।"[1] उपर्युक्त चार बातो की पुष्टि तो जनश्रुति से हो जाती है, किन्तु 'राना के कुमार' के दूसरे विवाह की पुष्टि किसी प्रकार भी नहीं होती।

भक्तमाल के टीकाकार के अनुसार प्रभु ने सप्रेम प्रार्थना सुन मीरां जी को सदेह अपनी मूर्ति मे (प्राय. संवत् १६४५) लीन कर लिया, मीरांजी का केवल एक वस्त्र मात्र प्रभु के ऊपर रह गया।[2]

चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे मीरांबाई पर कोई स्वतन्त्र वार्ता नहीं है। पर मीरांबाई के संबन्ध मे निम्नलिखित अवतरण मिलते हैं :—

(१) गोबिंद दुबे साचोरा ब्राह्मण तिनकी वार्ता

और एक समय गोविंद दुवे मीरांबाई के घर हुते तहां मीरांबाई सो भगवद्वार्ता करत अटके तब श्री आचार्यजी ने सुनी जो गोविंद दुवे मीरांबाई के घर उतरे हैं सो अटके हैं तब श्री गुसांई जी ने एक श्लोक लिखि पठायो सो एक ब्रजवासी के हाथ पठायौ तब वह ब्रजवासी चल्यौ सो वहां जाय पहुंचो ता समय गोविंद दुबे संध्यावन्दन करत हुते तब ब्रजवासी ने आय के वह पत्र दीनो सो पत्र बांचि के गोविंद दुबे तत्काल उठे तब मीरांबाई ने बहुत समाधान कीयो, परि गोविंद दुबे ने फिर पाछे न देख्यो ॥ प्रसंग ॥२॥[3]

(२) अथ मीरांबाई के पुरोहित रामदास तिनकी वार्ता

सो एक दिन मीरांबाई के श्री ठाकुर जी के आगे रामदास जी कीर्तन करत हुते सो रामदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून के पद

---

१ भक्तमाल सटीक पृ० ६८६

२. " " पृ० ७०४

३. चौरासी वैष्णवन की वार्ता, (म० ४१) पृ० १६२

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता की प्रामाणिकता सन्दिग्ध है, अ
उपर्युक्त निष्कर्ष भी प्रामाणिक नहीं है। इस प्रमाण से जो बा
भी ज्ञात होती हैं वे विशेष महत्व की नहीं हैं। इन वार्ताओं से य
ज्ञात होता है कि मीरांबाई गोकुलनाथ की समकालीन थीं।

वेणीमाधव दास ने भी अपने गोसांई चरित में मीरां के संबन्ध
दो दोहे लिखे हैं :—

तब आयो मेवाड़ ते विप्र नाम सुखपाल।
मीराबाई पत्रिका लायो प्रेम प्रवाल॥
पढ़ पाती उत्तर लिखे गीत कवित बनाय।
सब तजि हरि भजिबो भलो, कहि दिय विप्र पठाय॥[1]

यह निर्देश संवत् १६१६ और १६२८ के बीच का है।

इस निर्देश से ज्ञात होता है कि मीरांबाई और तुलसीदास में पार
स्परिक पत्र-व्यवहार हुआ था और मीरांबाई सं० १६१६ के बा
भी वर्तमान थीं। उस पत्र-व्यवहार को जनश्रुति ने यह रूप दे
दिया है :—

मीरांबाई का पत्र

श्री तुलसी सब सुख निधान, दुख हरन गुसांई।
बारहिं बार प्रनाम करूँ अब हरो सोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते, सबन उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोंहि देत कलेश महाई॥
बालपने तें मीरा कीन्ही गिरधरलाल मिताई।
सो तौ अब छूटत नहिं क्योंहू लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिता के सम हौ, हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखियो समझाई॥

---

१ गोसाईं चरित दोहा ३१, ३२

तुलसीदास का उत्तर

पद

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ।
तज्यो पिता प्रह्लाद बिभीषन बन्धु भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो कन्त ब्रजबनिता, भये सब मंगलकारी ॥
नातो नेह राम सों मनियत, सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं ।
अञ्जन कहा आँखि जो फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित, पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम पद एतो मतो हमारो ॥

सवैया

सो जननी सो पिता सोइ भ्रात सो भामिनि सो, सुत सो हित मेरो ।
सोई सगो सो सखा सोई सेवक सो गुरु, सो सुर साहिब चेरो ।
सो तुलसी प्रिय प्रान समान कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो ।
जो तजि गेह को देह को नेह सनेह सों राम को होय सबेरो ।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि मीरा की [illegible] घटना का निर्देश नहीं है । मीराबाई के पद की [illegible] मीरा की शब्दावली में प्राप्त नहीं होता ।

संवत् [illegible] में [illegible] 'मीरा [illegible]' [illegible] 'मीरा माहात्म्य' लिखा [illegible] [illegible]

[illegible]

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता की प्रामाणिकता सन्दिग्ध है, अ
उपर्युक्त निष्कर्ष भी प्रामाणिक नहीं है। उस प्रमाण से जो क
भी ज्ञात होती हैं वे विशेष महत्व की नहीं है। इन वार्ताओं से य
ज्ञात होता है कि मीरांबाई गोकुलनाथ की समकालीन थीं।

वेणीमाधव दास ने भी अपने गोसाईं चरित में मीरां के संबन्ध में
दो दोहे लिखे हैं :—

> तब आये मेवाड़ ते विप्र नाम सुखपाल।
> मीराबाई पत्रिका लायो प्रेम प्रवाल॥
> पढ़ि पाती उत्तर लिखे गीत कवित्त बनाय।
> सब तजि हरि भजिबो भलो, कहि दिय विप्र पठाय॥[1]

यह निर्देश संवत् १६१६ और १६२८ के बीच का है।

इस निर्देश से ज्ञात होता है कि मीरांबाई और तुलसीदास में पार-
स्परिक पत्र-व्यवहार हुआ था और मीरांबाई सं० १६१६ के बाद
भी वर्तमान थीं। उस पत्र-व्यवहार को जनश्रुति ने यह रूप दे
दिया है :—

मीरांबाई का पत्र

> श्री तुलसी सब सुख निधान, दुख हरन गुसाईं।
> बारहिं बार प्रनाम करूँ अब हरो सोक समुदाई॥
> घर के स्वजन हमारे जेते, सबन उपाधि बढ़ाई।
> साधु संग अरु भजन करत मोंहि देत कलेश महाई॥
> बालपने तै मीरा कीन्ही गिरधरलाल मिताई।
> सो तौं अब छूटत नहिं क्यौंहू लगी लगन बरियाई॥
> मेरे मात पिता के सम हौ, हरि भक्तन सुखदाई।
> हमको कहा उचित करिबो है सो लिखियो समझाई॥

---

१ गोसाईं चरित दोहा ३१, ३२

तुलसीदास का उत्तर

पद

जाके प्रिय न राम वैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ।
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषन बन्धु भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो कन्त व्रजबनिता, भये सब मङ्गलकारी ॥
नातो नेह राम सों मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ।
अञ्जन कहा आँखि जो फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित, पूज्य प्रान तें प्यारो ।
जासों होय सनेह राम पद एतो मतो हमारो ॥

सवैया

सो जननी सो पिता सोइ भ्रात सो भामिन सो सुत सो हित मेरो ।
सोई सगो सो सखा सोई सेवक सो गुरु सो सुर साहब चेरो ॥
सो तुलसी प्रिय प्रान समान कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो ।
जो तजि नेह को देह को नेह सनेह सों राम को होय सबेरो ॥

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि मीरां की शब्दावली में इस घटना का निर्देश नहीं है। मीरांबाई के पत्र की उपर्युक्त पंक्तियाँ भी मीरा की शब्दावली में प्राप्त नहीं होतीं।

संवत् १८०० के लगभग दयाराम ने 'मीरा चरित्र' और राधाबाई ने 'मीरा माहात्म्य' लिखा किन्तु जनश्रुति के अनुसार मीरा की भक्ति और विष पान प्रसंग को छोड़ कर कोई विशेष महत्त्वपूर्ण बात नहीं लिखी गई। इसी समय दयाराम ने भक्तवेल नाम का ग्रन्थ लिखा, उसमें ५ से २१ छन्दों में केवल मीरा के विष पान का उल्लेख है। दयाबाई ने संवत् १८१० के लगभग 'विनय मालिका की रचना की। उसमें भी मीरा के विष-पान का निर्देश है —

हरविलास सारदा के मतानुसार मीरां राव दूदा (सन् १४६१-६२) के चौथे पुत्र रत्नसिंह की पुत्री थीं। उनका विवाह भोजराज के साथ सन् १५१६ मे हुआ और उनकी मृत्यु सन् १५४६ मे हुई।[1]

टाड ने अपने राजस्थान के तीसरे भाग मे राणा कुम्भ के बनवाये हुए मन्दिर का उल्लेख किया है।[2] उस मन्दिर के समीप एक छोटा मन्दिर और है, जो मीरांबाई के द्वारा बनवाया हुआ कहा जाता है। इस संबन्ध मे रायबहादुर डा॰ गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा ने 'राजपूताने का इतिहास' मे लिखा है :—

'लोगों मे यह प्रसिद्धि हो गई है कि बड़ा मन्दिर महाराणा कुंभा ने और छोटा उसकी राणी मीराबाई ने बनवाया था, इसी जनश्रुति

---

१ Col. Tod has stated that Miran Bai to be the queen of Kumbha This is an error. Kumbha was killed in S 1524 (A D 1467), while Miran's grand father Duda, became Raja of Merata after that year. Miran's father, Ratan Singh, was killed in the battle of Knanua 59 years after Kumbha's death, and her cousin Jaimal at Chitor during Akbar's attack, 99 years after Kumbha's death Miran Bai was married to prince Bhojraj in S. 1573 (A D 1516). Miran Bai was born at 1555 (A. D 1498) and died in S 1603 (A D. 1546) at Dwarka (Kathiawar) at which holy place she had been residing for several years.

Maharana Sanga (Har Bilas Sarda) page 95-96

के आधार पर कर्नल टाड ने मीराबाई को महाराणा कुंभा की राणी लिख दिया है, जो मानने के योग्य नहीं है। मीराबाई महाराणा संग्राम-सिंह (साँगा) के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज की स्त्री थी।"[1]

जो मन्दिर मीरांबाई के द्वारा बनवाया गया कहा जाता है, वह वास्तव में राणा कुंभ के द्वारा ही सम्वत् १५०७ में बनवाया गया था। इस प्रकार कुंभ स्वामी और आदि वराह के दोनों मन्दिर, (पोल) विशिखा सम्वत् १५०७ में राणा कुंभ के द्वारा बनवाये गए थे।[2] उन पर ये प्रशस्तियाँ हैं :—

कुम्भ स्वामी—

कुम्भ स्वामिन आलयं व्यरचयच्छ्री कुम्भकर्णो नृपः ॥

आदि वराह—

अकारयच्चादि वराह गेहमनेकधा श्री रमणस्य मूर्त्तिः ॥

जिस समय इन मन्दिरों का निर्माण हुआ, उस समय तो मीरांबाई का जन्म भी नहीं हुआ था। राणा कुम्भ से विवाह होने की बात तो बहुत दूर है।[3]

शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' में मीरांबाई का जीवन-विवरण कर्नल टाड के राजस्थान के आधार पर ही लिखा है। वे लिखते हैं :—

---

१ राजपूताने का इतिहास (ओझा) दूसरा खंड, पृष्ठ ६७०

२ वर्षे पंचदशे शते व्यपगते सप्ताधिके कार्तिके—

स्याधानगतिथौ नवीन विशिषा (खा) श्री चित्रकूटे व्यधात् ॥१८४॥

—राजपूताने का इतिहास, पृष्ठ ६२०

३. महाराणा कुम्भा वि० सं० १५२५ (सन् १४६८) में मारा गया, जिसके ६ वर्ष बाद मीरा के पिता के बड़े भाई वीरमदेव का जन्म हुआ था। ऐसी दशा में मीराबाई का महाराणा कुम्भ की राणी होना सर्वथा असम्भव है। वही, पृष्ठ ६७१

"मीरांबाई का विवाह संवत् १४७० के करीब राना मोकलदेव के पुत्र राना कुंभकर्ण सी चित्तौर-नरेश के साथ हुआ था। संवत् १४७५ मे ऊदा राना के पुत्र ने राना को मार डाला।"[1]

कर्नल टाड के इतिहास ने ही मीरां के सम्बन्ध मे भ्रान्तियो को जन्म दिया है। मीरां के प्रामाणिक जीवन-विवरण पर हरविलास सारदा और मुंशी देवीप्रसाद ने प्रकाश डाला है। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने तो राजपूताने का इतिहास लिखते हुए मीरां के जीवन की अनेक भ्रान्तियो का निराकरण किया।

मुन्शी देवीप्रसाद ने भी 'मीरांबाई का जीवन-चरित्र' मे यह लिखा है :—

"यह बिलकुल गलत है, क्योंकि राणा कुंभा तो मीरांबाई के पति कुंवर भोजराज के परदादा थे और मीरांबाई के पैदा होने से २९ या ३० बरस पहले मर चुके थे, मालूम नहीं कि यह भूल राजपूताने के ऐसे बड़े तवारीख लिखने वाले से क्योंकर होगई···राणा कुंभा जी का इन्तकाल सं० १५२५ मे हुआ है उस वक्त तक मीरांबाई के दादा दूदा जी को मेड़ता मिला ही नहीं था। इसलिए मीरांबाई राणा कुंभा की राणी नहीं हो सकती।"[2]

अभी तक की खोज के अनुसार मीरां के जीवन-वृत्त का यह रूप है :—

राव जोधा जी जोधपुर के संस्थापक थे। उनके पुत्र राव दूदा जी बड़े पराक्रमी थे। उन्होंने अपने पराक्रम से मेड़ते मे राज्य स्थापित किया था। राव दूदा जी के चतुर्थ पुत्र का नाम था रत्नसिंह। उन्हे मेड़ता राज्य की ओर से १२ गाँव निर्वाह के लिए मिले थे[3]।

१ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ४७५
२ मीरांबाई का जीवन चरित्र (मुंशी देवीप्रसाद)
(लखनऊ, संवत् १९५५) पृष्ठ ३१-३२
३ उदयपुर का इतिहास ओझा पृ० ३२६

उन गाँवों मे एक गाँव का नाम था कुड़की। उसी कुड़की गाँव में सम्वत् १५५५ के लगभग रत्नसिंह के गृह मे एक पुत्री हुई, उसका नाम रखा गया मीराँ।

मीराँ की बाल्यावस्था ही मे उनकी माँ का देहान्त हो गया था[1]। अतएव मीराँ का क्रीड़ा स्थल माँ की गोद से हट कर पितामह दूदा जी की गोद मे आ गया। दूदा जी बड़े भारी वैष्णव थे। उनके निरन्तर साथ रहने के कारण बालिका मीराँ में भी वैष्णव धर्म के तत्वों का विकास स्वाभाविक रूप से हुआ। मीराँ के जीवन मे इसी घटना का प्राधान्य हो गया था, यह बात ध्यान मे रखने योग्य है।

दूदा जी की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र वीरमदेव जी राज्य-सिंहासनासीन हुए। उन्होंने १८ वर्ष की अवस्था मे मीराँ का विवाह चित्तौड़ के महाराजा साँगा जी के ज्येष्ठ कुमार भोजराज के साथ कर दिया[2]। विवाह के कुछ वर्षों बाद सभवतः १५८० संवत् के लगभग भोजराज का देहान्त हो गया। उसी समय से मीराँ के हृदय में अलौकिक भक्ति का उदय हुआ, जिसने उन्हें हिन्दी साहित्य मे अमर कर दिया।

संवत् १५८४ मे बाबर और साँगा के युद्ध मे मीरा के पिता रत्नसिंह मारे गए। उधर ससुर साँगा का भी देहान्त हो गया[3]। साँगा के बाद भोजराज के छोटे भाई रत्नसिंह मेवाड़ के राजा हुए। संवत १५८८ में रत्नसिंह का भी देहान्त हो गया। फलतः रत्नसिंह के सौतेले भाई विक्रमादित्य चित्तौड़ के राजा हुए।

राज्यासन के इस प्रकार शून्य और अलंकृत होने की सन्धि मे—राज्य का उत्थान और पतन होने के परिवर्तन काल मे—मीरां की

---

१ देवीप्रसाद कृत मीराबाई का जीवन-चरित।

२ उदयपुर का इतिहास (ओझा) पृ० ३५८-३६०।

३ तुज़ुक बाबरी, पृ० ५७३।

जिस समय मीराबाई इस दुःख में थीं, उसी समय मीरां के कष्ट सुनकर वीरमदेव ने मीरां को चित्तौड़ में बुला लिया और वे उन्हें बड़े प्रेम से रखने लगे। मीरां के चित्तौड़ में आ जाने पर उस पर बड़ी विपत्तियाँ आईं। गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने चित्तौड़ छीन लिया। अन्त में विक्रमादित्य भी मारे गए।

इधर जोधपुर के राव मालदेव ने वीरमदेव से मेड़ता छीन लिया। इन दोनों स्थानों में विपत्तियों के बादलों ने मीरां का सुख मलीन कर दिया। उनके हृदय में वैराग्य का अङ्कुर फूट निकला और उन्होंने वृन्दावन और द्वारिका तीर्थ करने के लिये अपनी जीवन-नौका अनिश्चित परिस्थिति-प्रवाह में डाल दी।

कुछ वर्षों बाद चित्तौड़ और मेड़ते में पुनः वैभव और श्री का साम्राज्य हुआ। वहाँ से मीरां को बुलाने के लिये अनेक आदमी भेजे गए। कहते हैं, चित्तौड़ से आए हुए कुछ ब्राह्मणों ने मीरांबाई के सम्मुख सत्याग्रह कर दिया। उन्होंने कहा, जब तक आप चित्तौड़ न लौट चलेंगी हम लोग अन्न-जल भी ग्रहण न करेंगे। मीरांबाई ने हार मान कर चलना स्वीकार किया, पर रणछोड़ जी से मिलने के लिये वे मन्दिर में चली गईं। वहाँ विरह के आवेश में इतनी मग्न हुईं कि कहते हैं मूर्ति ने उन्हें अपने में अन्तर्हित कर लिया। इस प्रकार मीराँ ने अपनी जीवन-लीला संवत् १६०३ में समाप्त की।

मुन्शी देवी प्रसाद मुन्सिफ ने भी उनका देहान्त संवत् १६०३ माना है। वेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित सन्तवानी सीरीज़ की 'मीराँबाई की शब्दावली और जीवन-चरित्र' में इस पर आपत्ति की गई है। उसमें लिखा है :—

"मुंशी देवीप्रसाद जी मुन्सिफ राज जोधपुर ने इनके जीवन-चरित्र में एक भाट के जबानी लिखा है[1] कि इनका देहान्त संवत् १६०३ विक्रमी

१. राठोड़ों का एक भाट जिसका नाम भूरिदान है गाँव लूणवे परगने भारोठ

अर्थात् सन् १५४६ ई० में हुआ ; परन्तु भक्तमाल से इन दो बातों का प्रमाण पाया जाता है :—

(१) अकबर बादशाह तानसेन के साथ इनके दर्शन को आया।

(२) गुसाँई तुलसीदास जी से इनका परमार्थी पत्र-व्यवहार था।

समझने की बात है कि अकबर सन् १५४२ ई० में पैदा हुआ और सन् १५५६ ई० में तख्त पर बैठा और गुसाँई तुलसीदास सन् १५२३ ई० (सम्वत् १५८९ विक्रमी) में पैदा हुए तो यदि मीरांबाई के देहान्त का समय सन् १५४६ ई० में मान लिया जाय तो अकबर की उम्र उस समय चार बरस की होती है और गुसांई जी की १४ बरस की, जो कि न तो अकबर को साधु-दर्शन की उमङ्ग उठने की अवस्था मानी जा सकती है और न गुसाँई जी की भक्ति और कीर्ति की प्रसिद्धि का समय कहा जा सकता है। इसलिये हमको भारतेन्दु श्रीहरिश्चन्द्र जी स्वर्गवासी का अनुमान कि मीरांबाई ने संवत् १६२० और १६३० विक्रमी दर्मियान शरीर त्याग किया, ठीक जान पड़ता है जैसा कि उन्होंने उदयपुर दर्बार की सम्मति से निर्णय किया था और कवि-वचन-सुधा की एक प्रति में छापा था।"[1]

वेणीमाधवदास के गुसांईचरित में तुलसीदास जी की जन्म-तिथि इस प्रकार दी गई है :—

पन्द्रह सै चउवन विषै, कालिंदी के तीर।
सावन शुक्ला सत्तमी, तुलसी धरेउ शरीर ॥[2]

इसके अनुसार तुलसीदास की जन्म-तिथि संवत् १५५४ है। यदि

इलाके मारवाड़ में रहता है उसको इतना सुना गया कि मीरांबाई का देहान्त सं० १६०३ में हुआ था और कहाँ हुआ यह मालूम नहीं

—मीरांबाई का जीवन चरित्र, पृ० ..

१ मीरांबाई का जीवन चरित्र ... पृ० ..

[illegible]

मीराँबाई ने संवत् १६०३ में अनन्त यात्रा की जैसा मुन्शी देवीप्रसाद लिखते है तो उस समय तुलसीदास की आयु ४८ वर्ष की होगी। उस समय तक तुलसीदास काफी ख्याति पा चुके होंगे और वैष्णव धर्म के बड़े भारी साधु गिने जाते होंगे, अतएव मीराँ और तुलसीदास में पत्र-व्यवहार होना संभव है, किन्तु वेणीमाधव दास की इस तिथि पर निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

रही अकबर से मिलने की बात। यह बात अवश्य है कि अकबर सन् १५४२ ई० मे अमरकोट मे पैदा हुआ। इस तिथि के अनुसार वह मीराँ की मृत्यु के समय ४ वर्ष का अवश्य रहा होगा। इतनी छोटी सी आयु मे वह मीराँ से मिलने की इच्छा रखने मे असमर्थ होगा। यदि नाभादास के भक्तमाल की यह बात कि अकबर तानसेन के साथ मीराँ से मिलने आया सत्य है तो मीराँ की मृत्यु संवत् १६०३ के बहुत पीछे होनी चाहिए। उस स्थिति मे भारतेन्दु की तिथि का सहारा लेना पड़ता है।

हरविलास सारदा आदि इतिहासज्ञों ने मीरांबाई मृत्यु तिथि के विषय में कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया। जब प्रियादास आदि भक्तो ने मीरांबाई के अकबर से मिलने का उल्लेख किया है, तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निर्णय की सार्थकता ज्ञात होती है। सर मानियर विलियम्स ने भी मीरां को अकबर का समकालीन माना है।[1] अतः

---

[1] Then Mira Bai, a princess who lived in the times of Akbar, and married the Rana of Udayapur, is worshipped by a sect, who believe that she disappeared one day into her tutelary idol—an image of Krishna—which opened to receive her and protect her from persecution.

Brahmanism and Hinduism, page 268

मीरां की मृत्यु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कथनानुसार संवत् १६२० से संवत् १६३० तक मानना उचित है। वृहत् काव्य दोहन में भी यह बात मानी गई है।[1]

इसके अनुसार मीरांबाई की आयु अधिक से अधिक (संवत् १५५५—१६३०) ७५ वर्ष की होती है जो किसी प्रकार भी अधिक नहीं कही जा सकती।

मीरांबाई के ग्रन्थ

मीराबाई के ग्रन्थों की प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। मीरांबाई के समकालीन और परवर्ती सन्तों ने मीरां के नाम से पद-रचना कर मीरा की कविता दूषित कर दी है। आवश्यकता इस बात की है कि मीरां के समय में प्रचलित भाषा के व्याकरण के आधार पर मीरां के उन पदों का संग्रह किया जावे जिनमें मीरा का दृष्टिकोण है। अभी तक की खोज से मीरांबाई के निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाश में आए हैं :—

१. गीत गोविन्द की टीका

विषय—गीत गोविन्द की भाषा टीका[2]।

२. नरसी जी का माहरा

विषय—नरसी जी की भक्ति का वर्णन।[3]

३. फुटकर पद

विषय—मीराबाई आदि दस भक्तों के पदों का संग्रह[4]।

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तो मीरांना ... तथा ... ने एक ... मीरानो ... संवत् १६२० थी ... १६३० ... अनुमाने छे ... प्रमाणित माने छे।

वृहत् काव्य दोहन (...) भाग ७, पृष्ठ ...

२ राजपूताना में हिन्दी पुस्तकों की खोज (...)

संवत् ..., पृष्ठ ...

३ " " " "

४ " " " "

४. राग सोरठ पद संग्रह

विषय—मीरा कबीर नामदेव के पद।[1]

[विशेष—इसकी दो प्रतियाँ नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९०२ की खोज रिपोर्ट में भी प्राप्त हुई है।[2] खोज रिपोर्ट के अनुसार इस ग्रन्थ का नाम राग सोरठ का पद है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'राग गोविंद' नामक एक ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है।[3]

गीति-काव्य के अनुसार मीरां की कविता आदर्श है। मीरां ने न तो रीति-शास्त्र की गवेषणा की और न अलंकार शास्त्र की। उनके हृदय में निर्झर की भाँति भाव आए और अनुकूल स्थल पाकर प्रकट हो गए। भाव, अनुभाव, सञ्चारी भावों के बादलों में उनकी कविता-चन्द्रिका नहीं छिपी, वरन् निरभ्र हृदयाकाश से बरस पड़ी। हृदय की भावना मन्दाकिनी की भाँति कलकल करती हुई आई और मीरां के कण्ठस्थ सरस्वती की सङ्गीतधारा मे मिल गई। वही भावना सङ्गीत का सार बनी और उसी मे मीरां के हृदय की अनुभूति मिली।

मीरां ने 'गिरधर गोपाल' को रिझाया है, उन्हे अपना लिया है। वे 'गिरधर गोपाल' को अपने पति के रूप मे देखती हैं :—

जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।

माधुर्य भाव की उपासना के कारण उन्हे महाप्रभु चैतन्य से प्रभावित कहा जाता है, यद्यपि मीरा की व्यक्तिगत भावना अत्यन्त स्वतन्त्र है।

---

१ राजपूताना में हिन्दी पुस्तकों की खोज, पृष्ठ १७

२ खोज रिपोर्ट सन् १९०२ " ८१

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास " १८४

मीरां ने शृङ्गार-रस के प्याले में अपनी लेखनी डुबा कर अपने भावों का प्रकाशन किया है, पर इस शृङ्गार में वासना की बू भी नहीं आने पाई। कविता में आत्म-निवेदन है, विरह है, पर वह है आध्यात्मिक, सांसारिक नहीं।

> रैन अँधेरी बिरह घेरी तारा गिनत निस जात।
>
> ले कटारी कंठ चीरूँ करूँगी अपघात॥
>
> पाट न खोल्या, मुखाँ न बोल्या, साँझ लग परभात।
>
> अबोलना में अवध बीती, काहे की कुसलात॥

यह विरह की सच्ची कहानी है। अन्धकारमय रजनी है। प्रियतम मौन है, हृदय में विरह-ज्वाला है। बेचारी विरहिणी आकाश के तारों पर दृष्टि डाल कर उन्हें गिन रही है। संध्या से प्रभात तक न तो प्रियतम ने द्वार ही खोला है और न मुख से एक शब्द ही कहा। सारा समय मौन ही में व्यतीत हो गया।

यह एक विरहिणी की स्वाभाविक उक्ति है, पर इसमें आध्यात्मिक तत्व की व्यथा भी सन्निहित है! पाट का अर्थ यदि माया के पर्दे से ले लिया जावे तो सारे पद पर आध्यात्मिक सत्य का प्रकाश पड़ जाता है और भौतिकता में अलौकिकता आ जाती है। यही मीरां की करुणा है, यही उसकी वेदना है और इसी वेदना के हटाने का उपाय मीरां स्वयं करती हैं :—

> 'मीरां के प्रभु पीर मिटेगी जब बैद सँवलिया होय'

बात यह है कि मीरां तन्मयता से गाती है, उसे बाह्य शृङ्गार की परवाह नहीं है वह प्रेम की योगिनी है। उसकी कविता प्रकृति के [illegible] के समान उमड़ पड़ती है

[illegible]

[illegible]

गाती है। वह पृथ्वी पर नहीं है, वृक्ष की सबसे ऊँची डाल पर स्वर्ग के कुछ पास है।

मीरांबाई की रचनाओं में दो प्रकार के दृष्टिकोण पाये जाते हैं। पहला दृष्टिकोण तो वह है जिसमें मीरांबाई कृष्ण की भक्ति माधुर्य रूप में करती है। वे श्रीकृष्ण को पति मान कर उनसे प्रणय-भिक्षा माँगती है। 'जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई" की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने 'कुल की कान' छोड़ दी है। यह भावना सभव है चैतन्य महाप्रभु के माधुर्य-भाव से ली गई हो। किन्तु मीरां का व्यक्तित्व उनकी रचनाओं में इतना स्पष्ट है कि वे अपनी भक्ति-भावना में किसी से प्रभावित हुई नहीं ज्ञात होतीं। श्रीकृष्ण से होली खेलने की आकांक्षा उन्हें व्याकुल कर रही है। ऐसी स्थिति में उनकी भावना रहस्यवाद से बहुत मिलती है जिसमें विरहिणी आत्मा प्रियतम ईश्वर के वियोग में दुःखी है :—

होली पिया बिन लागै खारी।
सुनो री सखी मेरी प्यारी॥
सूनो गाँव देस सब सूनो, सूनी सेज अटारी।
सूनी विरहन पिव बिन डोलै, तज दइ पीव पियारी॥
भई हूँ या दुःख कारी॥
देस विदेस सँदेस न पहुँचै, होय अँदेसा भारी।
गिणताँ गिणताँ घिस गईं रेखा, आँगरियाँ की सारी॥
अजहूँ नहिं आये मुरारी॥
बाजत झाँझ मृदंग मुरलिया, बाज रही इकतारी।
आई बसत कंत घर नाहीं, तन में जर भया भारी॥
स्याम मन कहा विचारी॥
अब ता मेहर करो मुझ ऊपर, चित दे सुणा हमारी।
मीरा के प्रभु मिलज्यो माधो, जनम जनम की क्वाँरी।
लगी दरसन की तारी॥[1]

1 मीरांबाई की शब्दावली, पृष्ठ ४३

ऐसे पदों में कृष्ण का स्वरूप पौराणिक कथाओं के अनुरूप नहीं है। उनमें न तो कृष्ण के विष्णु रूप की भावना है और न शक्ति रूप ही की। भागवत के समान अलौकिक घटनाओं का भी वातावरण नहीं है। न तो कृष्ण-लीला का ही वर्णन है और न कृष्ण के सख्य एवं वात्सल्य की भावना है। मीरों ने केवल व्यक्तिगत ईश्वर की भावना रक्खी है जिसमें रूप-सौन्दर्य और प्रेमाभिव्यक्ति है। पदों में इष्टदेव का वर्णनात्मक रूप नहीं रक्खा गया उनमें अनुभूति का चित्रण ही प्रधान है। मीरों की इस प्रकार की रचनाओं में हृदय की दयनीय परिस्थितियों का ही विशेष प्रदर्शन हुआ है।

दूसरा दृष्टिकोण वह है जिसमें उन्होंने सन्त मत के अनुसार ईश्वर की भक्ति की है। संभव है सन्तों की भक्ति-भावना का प्रभाव उन पर पड़ा हो। ऐसे पदों में सन्त मत में प्रयुक्त रूपक और शब्दावली का ही प्रयोग अधिक पाया जाता है, पर मीरों की रचना में ऐसे पद कम हैं। उदाहरणार्थ एक पद इस प्रकार है :—

> नैनन बनज बसाऊँ री जो मैं साहिब पाऊँ ॥
> इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरतो पलक न नाऊँ री ॥
> त्रिकुटी महल में बना है झरोखा, तहाँ से झाँकी लगाऊँ री ॥
> सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री ॥
> मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर बार-बार बल जाऊँ री ॥[1]

काव्यत्व

गीति काव्य—मीराबाई की रचनाओं में राग-रागिनियों का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है, क्योंकि मीरा की भक्ति में कीर्तन का प्रधान स्थान है। 'मीरा के प्रभु गिरिधर नागर' की भक्ति मन्दिर के कीर्तन के रूप में विशेष प्रसिद्ध है। साथ ही मीरा की

[1] मीराबाई की शब्दावली, पृ० ३०

इन प्राचीन भक्तों के साथ मीरां ने अपने पूर्ववर्ती भक्तों का भी निर्देश किया है :—

दास कबीर घर बालद जो लाया, नामदेव की छान छवंद।
दास धना को खेत निपजायो, गज की टेर सुनंद ॥[1]
धना भगत पीपा पुनि सेवरी मीरा की हूँ करो गनना ॥[2]

तुलसीदास की भाँति मीरां का भी पौराणिक कथाओं पर पूर्ण विश्वास है।

विशेष

(१) मीरांबाई के अन्तर्साक्ष्य से ज्ञात होता है कि रैदास उनके गुरु थे। रैदास कबीर के समकालीन थे और उनका समय 'पंद्रहवें शतक के पिछले हिस्से से सोलहवें शतक के मध्य तक' माना गया है।[3] इसके अनुसार रैदास अधिक से अधिक संवत् १५५० या १५६० तक जीवित रहे होंगे। मीरांबाई का जन्म सं० १५५५ में हुआ था, अतः इन संवतों को ध्यान में रखते हुए मीरांबाई रैदास से मिल कर उन्हें अपना गुरु नहीं मान सकतीं। भक्तमाल की टीका अथवा मेकालिफ के अनुसार चित्तौड़ की रानी झाली अवश्य रैदास की समकालीन थीं और बाद में उनकी शिष्या भी हो गई थीं।[4] संभव है, यही चित्तौड़ की रानी भ्रम से मीरांबाई मान ली गई हो और सन्तों ने मीरांबाई की रचना में रैदास संबन्धी पद लिख कर मिला दिए हों। ऐसी अवस्था में मीरांबाई के वे समस्त पद जिनमें रैदास का उल्लेख है, प्रक्षिप्त मानने होंगे। जब मीरांबाई का

१ मीरांबाई की शब्दावली पृष्ठ १६
२ " " पृष्ठ ७
३ सन्तबानी संग्रह भाग २ पृष्ठ ६५
४ [illegible]

अपनी रचनाओं में मीराबाई ने यद्यपि अलङ्कारों के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया, तथापि उपमा और दृष्टान्त अनेक स्थानों पर मिलते हैं।

> पाना ज्यूँ पीली पड़ी रे, लोक कहैं खामी।
> हरि बिन जिवड़ा यूँ जलै रे ज्यूँ दीपक सँग बाती (उपमा)[1]
> राणा जी तैं जहर दियो मैं जाणी।
> जैसे कंचन दहत अगिन मैं निकसत बारह बानी ॥[2]

अलङ्कारों से भी अच्छे रूप में उनके मानसिक चित्र हैं, जो सरल होते हुए भी सजीव हैं। मीरों की भाषा भी बड़ी अभिव्यञ्जक शक्ति लिए हुए है, यद्यपि उसमें एकरूपता नहीं है। मीरों का जीवन चार स्थानों में व्यतीत हुआ, मारवाड़ मेवाड़, व्रज और गुजरात। अतः उनकी रचनाओं में चारों भाषाओं के उदाहरण मिल सकते हैं। रचना की प्रामाणिकता का प्रश्न यहाँ भी उपस्थित होता है। उनकी रचनाओं में व्रज भाषा के अधिक पद हैं, यद्यपि उन पर मारवाड़ी प्रभाव है।

मीरों के पदों के संपादन की आवश्यकता है। पदों का वैज्ञानिक वर्गीकरण भी नहीं है। मीरों की शब्दावली में १६७ पद हैं, जिनमें अधिकांश पद विरह और प्रेम के हैं। इनमें राग सावन के १८ पद और राग सोरठ के ११ पद भी हैं।

मीराबाई के पदों में छन्दों का कम ध्यान है। मात्राएँ भी कहीं घटी-बढ़ी हैं पर राग-रागिनियों में रचना का रूप रहने के कारण गान की लय मात्रा को विषमता को ठीक कर लेती है। मीरा के छन्द-शास्त्र [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भावना का ही ध्यान [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सकता है

[illegible]

सम्मिलित होकर इन्होंने कृष्ण-कथा कहनी प्रारम्भ कर दी होगी। ये संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे, अतः इनकी कविता में संस्कृत की छाप स्पष्ट है। इनकी भाषा सुन्दर और सरस है। बहुत से पद तुलसीदास जी की विनय-पत्रिका की कोटि के हैं। इनके स्फुट पद ही उपलब्ध हैं।

कृपाराम—इनका आविर्भाव काल संवत् १५९८ माना जाता है। उसी समय इन्होंने रीति-शास्त्र पर हित तरङ्गिणी नामक ग्रन्थ की रचना की। हिन्दी साहित्य में रीति-शास्त्र पर यह पहला सफल ग्रन्थ उपलब्ध है। इसीलिए हित तरङ्गिणी के साथ कृपाराम का विशेष महत्त्व है। हित तरङ्गिणी की रचना बहुत सरस और मधुर है। भाषा भी बहुत सुथरी और मँजी हुई है। इनके दोहे बिहारी के दोहों से किसी प्रकार भी भाव-व्यञ्जना में कम नहीं हैं। हित तरङ्गिणी हिन्दी साहित्य का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इन्होंने भक्ति-काल में भी रीतिकाल के आदर्शों की सृष्टि की।

सूरदास मदनमोहन—इनका आविर्भाव काल संवत् १६०० के लगभग है। ये अकबर के समकालीन थे। ये बड़े साधु-सेवी और भक्त थे। कहा जाता है कि इन्होंने अकबर के खजाने के तेरह लाख रुपये साधु सन्तों को खिला दिए और रातोंरात भाग गए। अकबर के द्वारा क्षमादान होने पर भी ये वृन्दावन से नहीं हटे और इन्होंने वहीं अपने जीवन के अन्तिम दिन व्यतीत किए।

इस सम्बन्ध में यह पद प्रसिद्ध है

> तेरह लाख सँडीले उपजे सब साधुन मिलि गटके,
> सूरदास मदन मोहन आधी रातहि सटके॥

प्रियादास ने इस घटना का निर्देश करते हुए भक्तमाल की टीका में एक कवित्त लिखा है —

पृथ्वीपति संपति ले साधुन खवाय दई,
भई नहीं शंक यों निशंक रंग पागे हैं।
आये सो खजानो लैन मानो यह बात अहो,
पाथर लै भरे आप आधी निशि भागे हैं॥
रुक्का लिखि डारे, "दाम गटके ये संतनि ने,
याते हम सटके हैं" चले जब जागे हैं।
पहुँचे हजूर, भूप खोल कै सन्दूक देखैं,
पेखैं आक कागद मैं रीझि अनुरागे हैं॥[1]

भक्तमाल में इन पर यह छप्पय है:—

(श्री) मदन मोहन सूरदास की नाम शृङ्खला जुरी अटल॥
गान काव्य गुण राशि सुहृद सहचरि अवतारी।
राधा कृष्ण उपास्य रहसि सुख के अधिकारी॥
नवरस मुख्य सिंगार विविध भाँतिनि करि गायो।
बदन उच्चरित बेर सहस पायनि है धायो॥
अंगीकार की अवधि यह, ज्यों आख्या भ्राता जमल।
(श्री) मदन मोहन सूरदास की, नाम शृङ्खला जुरी अटल॥[2]

इनका नाम सूरध्वज था, पर काव्य में इन्होंने सूरदास मदनमोहन लिखा। "आपके दोनों नेत्र फूले कमल के समान थे, प्रभु का प्रेम रंग पी के सुन्दर अनुराग से झूलते थे।"

इनकी रचना सरस है। इनका कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं है, कुछ स्फुट पदों के संग्रह ही मिलते हैं।

नरोत्तमदास—इनका आविर्भाव काल संवत् १६०२ माना जाता है। ये सीतापुर जिले के बाडी ग्राम के निवासी थे। इनके दो ग्रन्थ कहे जाते हैं—सुदामा चरित्र और ध्रुव चरित्र। सुदामा चरित्र

१. भक्तमाल सटीक, पृष्ठ ७२६
२. भक्तमाल सटीक, पृष्ठ ७२६

तो प्राप्त है, ध्रुव चरित्र अभी तक नहीं मिला। सुदामा चरित्र बहुत छोटी रचना है, पर वह इतनी सरस और श्रेष्ठ है कि इसी ने कवि को बहुत लोकप्रिय बना दिया है। उसमे दीन हृदय के बड़े सच्चे चित्र है। भाषा बहुत स्वाभाविक और चलती हुई है। उसमे प्रवाह है। भावो के साथ भाषा का इतना सुन्दर मिलाप सुदामा चरित्र की श्रेष्ठता का कारण है।

हरिराय—(वल्लभी) इनका आविर्भाव काल संवत् १६०७ है। ये महाप्रभु वल्लभाचार्य के मतानुयायी थे। इनके चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। ये गद्य के प्रमुख लेखक थे। इनके तीन ग्रन्थ तो गद्य मे है। श्री यमुनाजी के नाम, श्री आचार्य महाप्रभु को स्वरूप और श्री आचार्य महाप्रभु की द्वादश निज वार्ता। श्री यमुना जी के नाम मे श्री यमुना जी और उनके घाटों की वन्दना और महिमा का वर्णन है। श्री आचार्य महाप्रभु को स्वरूप मे वल्लभ संप्रदाय के आचार्यों के आत्म-स्वरूप का वर्णन है और श्री आचार्य जी महाप्रभु की द्वादश निज वार्ता मे श्री वल्लभाचार्य जी का जीवन-वृत्त वर्णित है। इनकी चौथी पुस्तक पद्य में है। उसका नाम वर्षोत्सव है जिसमे वर्ष भर के उत्सवो पर गाने योग्य पद लिखे गए हैं। प्रमुखतः ये गद्य-लेखक हैं।

ललीर—ये तिरहुत के क्षत्रिय थे। इनका परिचय अभी ज्ञात हुआ है। इन्होने महाभारत पर एक 'डंगो पर्व' नामक पुस्तक लिखी है। रचना साधारण है। इनका आविर्भाव काल संवत् १६८८ है।

गोविन्ददास—इनका जन्म संवत् १६११ मे हुआ था। इन्होने भक्ति पर अच्छे पद लिखे है। इनके ग्रन्थ का नाम एकान्त पद है जिसमें राधाकृष्ण के सुन्दर भजन लिखे है। भाषा ब्रजभाषा

९०

हैं, उस पर पूर्वी प्रभाव भी है। इनका आविर्भाव-काल सं० १६४० माना गया है।

स्वामी हरिदास— इनके विषय में कुछ विशेष विवरण ज्ञात नहीं। ये निम्बार्क संप्रदाय के अन्तर्गत टट्टी संप्रदाय के प्रवर्तक थे और प्रसिद्ध गायक भक्त थे। कहा जाता है कि ये तानसेन के गुरु थे। इनका आविर्भाव काल संवत् १६१७ के लगभग है क्योंकि ये अकबर के समकालीन थे। इनकी रचना में भावों की सुन्दर छटा है पर शब्दों के चयन में विशेष चातुर्य नहीं है। इनके पद राग-रागिनियों में गाने योग्य हैं। इनके पदों के अनेक संग्रह प्राप्त हुए हैं। उनमें हरिदास जी की बानी और हरिदास जी के पद मुख्य हैं।

नाभादास ने इनके विषय में जो छप्पय लिखा है, वह इस प्रकार है :—

आसधीर उद्योत कर, रसिक छाप हरिदास की॥
जुगल नाम सों नेम जगत नित कुञ्ज बिहारी।
अवलोकत रहैं केलि सखी सुख के अधिकारी॥
गान कला गंधर्व श्याम श्यामा को तोषैं।
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषैं॥
नृपति द्वार ठाढ़े रहे दरशन आशा जास की।
आसधीर उद्योत कर रसिक छाप हरिदास की॥[1]

इनके सबन्ध में भक्तमाल के वार्त्तिककार ने यह भी लिखा है कि "उस समय का बादशाह (अकबर) वेष छुपा के तानसेन के साथ

१ भक्तमाल सटीक, पृष्ठ ५८२

जाकर आपके दर्शनों से कृतार्थ हुआ। संवत् १६११ से १६६२ के मध्य किसी समय की यह बात है।"[1]

हितहरिवंश—

भक्ति-काल में हितहरिवंश का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि जिस प्रकार इनके पदों में सरसता पाई जाती है, उसी प्रकार इनके सिद्धान्तो मे मौलिकता भी। इन्होंने राधावल्लभी नामक एक नए संप्रदाय का सूत्रपात किया। ये पहले मध्वाचार्य के द्वैत संप्रदाय के समर्थक थे। बाद में इन्होंने अपना स्वतन्त्र हित संप्रदाय चलाया। कहते हैं, स्वप्न में इन्हे राधिका जी ने दर्शन देकर मन्त्र दिया था। तभी से इन्होंने राधा की उपासना प्रधान मानी।

इनका जन्म संवत् १५९९ और आविर्भाव काल संवत् १६२२ माना जाता है। उसी समय ओरछा-नरेश के राज गुरु श्री हरिराम व्यास इनसे दीक्षित हुए। इनका ब्रजभाषा पर पूर्ण अधिकार था। ये संस्कृत के पण्डित भी थे। इन्होंने ब्रजभाषा की बड़ी मधुर रचना की, इसीलिए ये श्रीकृष्ण की वंशी के अवतार कहे जाते थे। इनकी रचना तो थोड़ी सी है, पर वह है बड़ी हृदय ग्राहिणी और सरस। इनका हित चौरासी नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है जिसमे इनके ८४ पदों का संग्रह है। इनमे वर्णनात्मकता के साथ भाव-व्यञ्जना उच्चकोटि की है। इन्होंने राधा की शोभा मे सरसता की सीमा उपस्थित की। ये बड़े लोक-प्रिय ब्रजभाषा के कवि थे। इनकी प्रशंसा मे अष्ट छाप के कवि चतुर्भुज दास ने 'हित जू को मंगल' लिखा था। इनकी रचना मे ब्रजभाषा का सुन्दर और व्यवस्थित रूप है। इनके सबन्ध मे नाभादास ने अपने भक्तमाल मे निम्नलिखित छप्पय लिखा था :—

[1] भक्तमाल सटीक, पृष्ठ ५८।

बड़े पंडित थे और ज्ञानार्जन के लिए पर्यटन किया करते थे। वृन्दावन मे हितहरिवंश के महत्व को देखकर ये उनके शिष्य हो गए। इनकी कविता बड़ी लोकप्रिय हुई। इन्होंने ज्ञान और भक्ति की विवेचना बड़े सरल और स्पष्ट ढङ्ग से की। ये कृष्ण-लीला के बड़े प्रेमी थे और उन्हीं लीलाओ के पद बनाकर सुनाया करते थे। बुन्देलखंड के ये बड़े लोक-प्रिय कवि थे। इनकी रचना अधिकतर स्फुट पदो मे मिलती है।

इनका प्रथम नाम हरीराम था। ४५ वर्ष की अवस्था (सं १६१२) मे ये ओरछा छोड़कर वृन्दावन गए। वहाँ ये श्री राधावल्लभी संप्रदाय मे दीक्षित हुए।

नाभादास ने इनकी प्रशंसा मे यह छप्पय लिखा है :—

> उतकर्ष तिलक अरु दामको, भक्त इष्ट अति व्यास कें ॥
> काहू के आराध्य मच्छ कच्छ नरहरि सूकर।
> वामन फरसाधरन सेत बंधन जु सैलकर ॥
> एकन तें यह रीति नेम नवधा सों लायें।
> सुकुल सुमोखन सुवन, अच्युत गोत्री जु लड़ायें ॥
> नौगुण तोरि नूपुर गुह्यो, महत सभा मधि रास कें।
> उतकर्ष तिलक अरु दामको भक्त इष्ट अति व्यास कें ॥[1]

इनके सबन्ध मे भक्ति और अनुभूति की अनेक कथाएँ कही जाती हैं, जिन्हें प्रियादास ने अपनी टीका मे वर्णन किया है। इनके परिचय मे प्रियादास ने लिखा है —

> आये गृह त्यागि वृन्दावन अनुराग करि
> गद हिय पागि होय न्यारो ताही छन्दे

---

1. भक्तमाल पृष्ठ ५८४

इन्होंने विशेष सफलता के साथ कवि
भाषा मँजी हुई है और उस पर कवि को
अभी तक इनके चार ग्रन्थों का पता ल
व्याकरण, हनुमन्नाटक, गोवर्द्धन सतसई टीक
विचार। ऐसा ज्ञात होता है जैसे बलभद्र मिश्र क. . म
रीति-काल की कविता अपना रूप बना रही है। अङ्गों का
सजीव और कल्पना पूर्ण वर्णन बलभद्र की रचना की
विशेषता है।

गणेश मिश्र—इनका आविर्भाव काल सं० १६४० है। ये माथुर वंश
के थे। इन्होंने विक्रम विलास नामक ग्रन्थ की रचना की,
जिसमें इन्होंने अनेक कथाएँ लिखीं। इनकी रचना साधा-
रणतः अच्छी है।

सेनापति—सेनापति का वास्तविक नाम ज्ञात नहीं। ये इतने कोमल
और सरस कवि हैं कि इनसे किसी भी साहित्य का गौरव बढ़
सकता है। इन्हें भाषा पर उतना ही अधिकार था जितना
एक सेनापति को अपनी सेना पर। ये अनूप शहर के निवासी
थे और इनका जन्म संवत् १६४६ में हुआ था। इनके पिता-
मह का नाम परशुराम और पिता का नाम गंगाधर था।
इनके गुरु का नाम हीरामणि था जैसा कि इनके एक कवित्त
से ज्ञात होता है।[1]

इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ कवित्त रत्नाकर है जिसकी रचना सं० १७०६
में हुई। इसमें इन्होंने अपना सारा काव्य-कौशल प्रदर्शित कर
दिया है।

[1] [illegible]

कवित्त रत्नाकर मे पाँच तरङ्गें हैं। उन तरङ्गों का वर्णन निम्न लिखित है :—

पहली तरङ्ग	श्लेष वर्णन
दूसरी तरङ्ग	शृङ्गार वर्णन
तीसरी तरङ्ग	ऋतु वर्णन
चौथी तरङ्ग	रामायण वर्णन
पाँचवी तरङ्ग	राम रसायन वर्णन

श्लेष वर्णन मे इनका भाषाधिकार स्पष्ट ज्ञात होता है। शृङ्गार वर्णन में इनकी सौन्दर्योपासक दृष्टि एवं संयोग-वियोग के चित्र बड़ी कुशलता के साथ खींचे गए है। ऋतु-वर्णन तो इनकी अपनी विशेषता है। प्रकृति के सरस वर्णन मे इनकी कविता का चरमोत्कर्ष है। शरद वर्णन का एक चित्र इस प्रकार है :—

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति,
सेनापति को सुहाति सुखी जीवन के गन हैं।
फूले हैं कुमुद फूली मालती सघन बन,
फेलि रहे तारे मानो मोती अनगन हैं।
उदित विमल चंद चाँदिनी छिटकि रही,
राम कैसो जस अध ऊरध गगन है।

गंगाधर पिता गंगाधर के समान जाकों;
गंगातीर बसत अनूप जिन पाई है ॥
महा जान मनि विद्यादान हू की चिन्तामनि,
हीरामनि दीच्छित तें पाई पंडिताई है।
सेनापति सोई सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कवि कान दै सुनत कविताई है।
—कवित्त रत्नाकर, पहली तरंग, छंद ।

तिमिर हरन भयो, सेत है बरन सब,

मानहु जगत छीर सागर मगन है।[१]

चौथी तरङ्ग में राम की कथा का वर्णन इन्होंने भक्ति और पाण्डित्य दोनों को मिला कर किया है। भाषा पाण्डित्य पूर्ण होते हुए भी कृत्रिम नहीं है। उसमें अनुप्रास और यमक का प्रयोग सरसता और प्रौढ़ता के साथ है। इनकी भक्ति भी उत्कृष्ट प्रकार की है जिस प्रकार रचना अत्यन्त सरस है। कवित्तरत्नाकर का एक प्रामाणिक संस्करण प्रयाग-विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् से प्रकाशित हुआ है। इसके संपादक श्री उमाशंकर शुक्ल एम॰ ए॰ हैं। कवित्तरत्नाकर के अतिरिक्त काव्य-कल्पद्रुम नामक एक ग्रन्थ और भी सेनापति का कहा जाता है।

कादिर—इनका आविर्भाव काल संवत् १६६० के लगभग माना जाता है। ये हरदोई जिले के पिहानी नामक स्थान के रहने वाले थे। इनका कोई पूर्ण ग्रंथ प्राप्त नहीं हुआ। स्फुट रचना अवश्य पाई जाती है। इनकी भाषा सरस और स्वाभाविक है।

मोहन—ये मथुरा निवासी थे और इन्होंने केलिकल्लोल नामक ग्रन्थ लिखा जिसमें प्रेमदेव की वंदना और राधा कृष्ण एकत्व निरूपण है। इनका आविर्भाव काल संवत् १६६७ है।

मुबारक—इनका कविता काल संवत् १६७० माना जाता है। ये अनेक भाषाओं के विद्वान थे, संस्कृत और फारसी पर तो पूर्ण अधिकार था। इनका शृङ्गार रस वर्णन बहुत प्रसिद्ध है। नखशिख पर तो इन्होंने सरस लिखा है। एक अंग पर इन्होंने सौ दोहों के हिसाब से रचना की है। ये अपनी वर्णनात्मकता और कल्पना के लिए प्रसिद्ध हैं। इनकी कविता सरस और भावपूर्ण होती है। स्फुट कवित्तों और

१ कवित्त रत्नाकर, चतुर्थ तरंग छंद ४०

के विषय में दो कथाएं प्रसिद्ध हैं। एक तो बनिये के लड़के से प्रेम की कथा और दूसरे एक मानवती स्त्री के प्रेम संबन्ध की कथा। दोनों ही कथाओं में इनके भौतिक प्रेम की प्रतिक्रिया के रूप में श्रीकृष्ण के प्रति आकृष्ट होने की बात है। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के अनुसार तो ये एक बनिये के लड़के पर आसक्त थे।[१] लोगों को इन्होंने कहते हुए सुना कि जैसा रसखान का प्रेम उस बनिये के लड़के पर है वैसा ही प्रेम भगवान से होना चाहिए। रसखान यही बात सुन विरक्त हो विट्ठलनाथ जी के पास आए और उनसे दीक्षित हुए।

इनका कविता-काल संवत् १६७१ माना जाता है, क्योंकि उसी समय इनकी प्रसिद्ध रचना प्रेम वाटिका लिखी गई। रसखान ने प्रेम की अनुभूति जितने रसपूर्ण शब्दों में की वैसी हिन्दी में कम है। इनकी भावना सीधे हृदय को जाकर स्पर्श करती है। ब्रजभाषा का सरस और स्वाभाविक रूप इनकी रचना में बड़े व्यवस्थित रूप में मिलता है। उसमें किसी प्रकार की भी कृत्रिमता नहीं है। तन्मयता इनकी कविता का विशेष गुण है। अनुप्रास और यमक का सरस और उचित प्रयोग इनकी रचना में अनेक स्थानों पर पाया जाता है। सब से विशेष बात तो यह है कि इन्होंने अपने काल में प्रचलित गीत पद्धति को छोड़ कर कवित्त और सवैया में अधिकतर अपनी रचना की। इनकी दो रचनाएं बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रेम वाटिका और सुजान रसखान। प्रेम

१ सो वा दिल्ली में एक साहूकार रहतो हतो। सो वा साहूकार को बेटा बहुत सुन्दर हतो। [illegible]

वाटिका मे दोहे हैं और सुजान रसखान मे कवित्त और सवैये। मुसलमान होते हुए भी रसखान ने श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम की जो भावना प्रदर्शित की है वह हिन्दी साहित्य मे सदैव स्मरणीय रहेगी।

व्रजभार दीक्षित ये वल्लभ अनुयायी थे। इन्होंने वल्लभाख्यान की टीका व्रजभाषा गद्य में लिखी। शैली साधारण है। इनका समय संवत् १६७७ माना गया है।

अहमद—इनका आविर्भाव काल संवत् १६७८ माना गया है। ये जहाँगीर के समकालीन थे। इनका दूसरा नाम ताहिर भी है। इन्होंने हस्तरेखा विज्ञान पर सामुद्रिक नाम की एक पुस्तक लिखी। काव्य मे कोई विशेषता नहीं है। इनकी दूसरी पुस्तक का नाम गुण सागर है जिसमे कोकशास्त्र का निरूपण है। कहीं तो ग्रन्थ बहुत अश्लील हो गया है। ग्रियर्सन का कथन है कि ये सूफी थे पर इनकी रचनाओं में वैष्णव धर्म की ही प्रवृत्ति है।

भीष्म—इस नाम के दो कवि हो गए हैं। एक तो भीष्म अन्तर्वेदी और दूसरे भीष्म बुन्देलखण्डी। ये भीष्म अन्तर्वेदी हैं। इन्होंने श्रीमद्भागवत का अनुवाद दोहा चौपाई में किया। इनका आविर्भाव काल संवत् १६८१ माना जाना चाहिए।

ध्रुवदास—ये हितहरिवंश जी के शिष्य कहे जाते हैं। इनका निवास स्थान वृन्दावन था। इन्होंने अनेक शैलियो मे अपनी रचना की। गीत तथा दोहे चौपाई के अतिरिक्त इन्होंने कवित्त, सवैयो मे भी अपनी रचना की। श्रीकृष्ण लीला के साथ [illegible] और भक्ति पर भी बहुत लिखा। [illegible] । इनके मुख्य ग्रन्थ हैं ध्रुवदास [illegible] भक्त नामावली। ध्रुवदास [illegible] हैं जिन- [illegible] था,

सिद्धान्त विचार, व्रजलीला, भजन-शत, मन-शिक्षा, वृन्दावन-शत, भजन कुण्डली, अनुराग लता, अनेक लताएँ और अनेक मञ्जरियाँ हैं। सिद्धान्त विचार में भक्ति के सिद्धान्त लिखे हैं और भक्ति नामावली में अनेक भक्तों के संक्षेप में चरित्र वर्णन किए हैं। ध्रुवदास प्रकाण्ड लेखक और भक्त थे। धार्मिक काल में इनके ग्रन्थ अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। इनका कविता काल संवत् १६८२ माना गया है।

सुन्दरदास—इनका आविर्भाव काल संवत् १६८८ है। ये ग्वालियर निवासी थे और शाहजहाँ के दरबार में जाया करते थे। ये पहले कविराज और फिर महा कविराज की पदवों से विभूषित किए गए थे। इनके ग्रन्थ का नाम सुन्दर शृङ्गार है जिसमें नायिका भेद वर्णित है।

चतुरदास—ये कोई सन्तदास के शिष्य थे। इनका आविर्भाव काल संवत् १६९२ माना जाता है। इन्होंने भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय का हिन्दी पद्य में अनुवाद किया। इनकी रचना साधारण है। इन्होंने भी दोहा चौपाई में यह अनुवाद किया है।

भुवाल—ये कवि वीर गाथा काल के कवि नहीं थे जैसा कि अन्य इतिहासों में वर्णित है। ये तुलसीदास के बाद हुए। इन्होंने तुलसीदास के अनुकरण पर भगवद्गीता का अनुवाद दोहा चौपाई में किया [illegible] ग्रन्थ सम्वत् १[illegible] में समाप्त हुआ। [illegible] कवि पर [illegible] चुका है

[illegible]दास—इनका आविर्भाव का[illegible] [illegible] महाभारत का पद्यबद्ध हिन्दी अनुवाद [illegible]

वाटिका में दोहे हैं और सुजान रसखान मे कवित्त और सवैये। मुसलमान होते हुए भी रसखान ने श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम की जो भावना प्रदर्शित की है वह हिन्दी साहित्य मे सदैव स्मरणीय रहेगी।

व्रजभार दीक्षित ये वल्लभ अनुयायी थे। इन्होंने वल्लभख्यात की टीका व्रजभाषा गद्य मे लिखी। शैली साधारण है। इनका समय संवत् १६७७ माना गया है।

अहमद—इनका आविर्भाव काल संवत् १६७८ माना गया है। ये जहाँगीर के समकालीन थे। इनका दूसरा नाम ताहिर भी है। इन्होंने हस्तरेखा विज्ञान पर सामुद्रिक नाम की एक पुस्तक लिखी। काव्य मे कोई विशेषता नहीं है। इनकी दूसरी पुस्तक का नाम गुण सागर है जिसमे कोकशास्त्र का निरूपण है। कहीं तो ग्रन्थ बहुत अश्लील हो गया है। ग्रियर्सन का कथन है कि ये सूफी थे पर इनकी रचनाओं में वैष्णव धर्म की ही प्रवृत्ति है।

भीष्म—इस नाम के दो कवि हो गए हैं। एक तो भीष्म अन्तर्वेदी और दूसरे भीष्म बुन्देलखण्डी। ये भीष्म अन्तर्वेदी हैं। इन्होंने श्रीमद्भागवत का अनुवाद दोहा चौपाई मे किया। इनका आविर्भाव काल संवत् १६८१ माना जाना चाहिए।

ध्रुवदास—ये हितहरिवंश जी के शिष्य कहे जाते हैं। इनका निवास स्थान वृन्दावन था। इन्होंने अनेक शैलियों मे अपनी रचना की। गीत तथा दोहे चौपाई के अतिरिक्त इन्होंने कवित्त, सवैयों मे भी अपनी रचना की। श्रीकृष्ण लीला के साथ ही साथ इन्होंने प्रेम और भक्ति पर भी बहुत लिखा। इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे। इनके मुख्य ग्रन्थ हैं ध्रुवदास कृत बानी, सिद्धान्त विचार और भक्त नामावली। ध्रुवदास कृत बानी में अनेक विषय लिखे गए हैं जिनमें जीवदशा,

इससे ज्ञात होता है कि संभवतः पानन्दराम ने हरिवल्लभ की टीका संपूर्ण रूप से अपना ली हो।

जगतानन्द—इनका आविर्भाव काल संवत् १७०० के लगभग है। इन्होंने व्रज परिक्रमा और उपाख्यान सहित दशम स्कन्ध की रचना की। प्रथम में व्रज के वन उपवन कुण्डादि का वर्णन है और द्वितीय में श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध का संक्षिप्त वर्णन है। रचना साधारण है।

अकबर का राज्यकाल और हिन्दी कविता

अकबर का शासन-काल हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिए एक स्मरणीय घटना है। अभी तक पठानों या मुगलों का शासन हिन्दू संस्कृति के लिए विरोधी सिद्ध हुआ था। पठानों के अत्याचार से हिन्दू न केवल अपनी संस्कृति की रक्षा कर सकते थे, वरन् अपने धार्मिक विचारों को भी प्रकट करने में असमर्थ थे। इसी प्रतिक्रिया के रूप में कबीर, नानक, तुलसी और सूर का आविर्भाव हुआ था और उन्होंने अपने धर्म की मर्यादा का निर्भीकतापूर्वक प्रचार किया था। यह धार्मिक क्रान्ति राजनीति से संबन्ध रखती थी और शासकों के समक्ष जनता के हृदय का क्रान्तिकारी चित्र रखने की चेष्टा कर रही थी। शासक की सहानुभूति अभी तक जनता के साथ नहीं थी, किन्तु अकबर के राज्यारोहण ने अभी तक की शासन-नीति में परिवर्तन ला दिया। अकबर बड़ा उदार शासक सिद्ध हुआ। उसने अपने राज्य के प्रारम्भ से ही धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया। फलस्वरूप हिन्दू धर्म भी स्वच्छन्दता से विकसित हुआ। पर अब उसमें प्रतिक्रिया के अभाव में वह क्रान्ति की भावना नहीं रह गई थी। तुलसी का 'बाम बहु खल चोर जुआरा जे लम्पट पर धन पर दारा' की शक्ति अब नष्ट हो गई थी। अब तो धार्मिक स्वतन्त्रता के साथ धार्मिक विलास और उच्छृङ्खलता की भावना भी अपने विकास का मार्ग खोजने लगी थी। नीति और उपदेश

आज्ञानुसार किया। इन्होंने महाभारत की वर्णनात्मकता हिन्दी पद्य में सफलता के साथ निबाही। सभापर्व में सभा का, कर्ण पर्व में कर्ण का और गदापर्व में भीम की गदा का वर्णन बड़ी मनोहरता के साथ किया है। ये शाहजहाँ के समकालीन थे। ये सन्त काव्य के धर्मदास से भिन्न हैं।

सुखदेव मिश्र—ये दौलतपुर (रायबरेली) के निवासी थे। ये असोथर के भगवन्त राय खीचो के सम्मुख उपस्थित हुए थे। इनका आविर्भावकाल संवत् १७०० है। इनके निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैः—

१ अध्यात्म प्रकाश—ब्रह्म निरूपण और वैराग्यविवेक लक्षण आदि
२. वृत्त विचार—छन्द वर्णन आदि
३. फजल अली प्रकाश—नायक नायिका भेद और रस, वर्णन
४. पिंगलछन्द विचार—पिंगल शास्त्र।

रसिकदास—ये नरहरिदास के शिष्य थे। इनका आविर्भाव काल संवत् १७०० माना जाता है। ये राधा वल्लभी वैष्णव थे और वृन्दावन में निवास करते थे। इनका ग्रन्थ पूजा विलास प्रसिद्ध है जिसमें पूजा आदि के नियम, गुरु-लक्षण, भक्ति के अङ्ग, नवधा भक्ति और अन्य दैनिक क्रियाओं की बातें लिखी गई हैं।

हरिवल्लभ—इनका आविर्भावकाल संवत् १७०० है। इन्होंने भगवद्गीता की पद्यबद्ध टीका की। इसमें गीता मूल लिख कर टीका हिन्दी पद्यों में दी है। यह एक दूसरी टीका से जो श्री आनन्दराम द्वारा लिखी गई है, अक्षरशः मिलती है, पर हरिवल्लभ ने अपनी टीका के अन्त में लिखा है:—

हरिवल्लभ भाषा रच्यो, गीता रुचिर बनाय।
सदाचार वर्णन कियो, अष्टादश अध्याय॥

व काल संवत् १६३० है । ये अकबर के
थे। इन्होंने भगवद्गीता की पद्यबद्ध टीका
रकृत टीका का भाषानुवाद है।

सूक्तिकार और जीवन की परिस्थिति के
। ये अकबर के अभिभावक बैरमखां के पुत्र
ा संबन्ध अधिकतर राज्यकुल से ही था।
त् १६१० में हुआ था। ये बड़े दानी थे और
अपरिमित धन दान करते थे। एक बार इन्होंने
ा पर छत्तीस लाख रुपये दान कर दिये थे।
ीर ने इन्हें राजद्रोह के अपराध में कैद
इनकी सारी जागीर जब्त कर ली।
ी दशा एक भिक्षुक सी हो गई थी। इस प्रकार
दो सीमान्त परिस्थितियों का अनुभव हो
सी अनुभव से इन्होंने जीवन के ऐसे मार्मिक
ख किया जो सदैव के लिए सत्य हैं और
करने वाले हैं।

ईश्वरी प्रसाद ने भी इसका निर्देश अपने

---

1 Hindi poet among Akbar's
Khan-Khanan whose
the essence of human wisdom

की साधु प्रवृत्तियाँ अवकाश के साथ कवियों के द्वारा प्रतिपादित होने लगी थीं। धर्म की ज्वलन्त एवं निर्भीक भाव-धारा अब समतल बाधा-रहित मार्ग पाकर शान्त सी हो गई थी। अब तो राजाओं के आश्रित होकर ही नहीं स्वयं अकबर के दरबार का सहारा पाकर कविगण अपने काव्य का चमत्कार स्वयंवर में आए हुए राजकुमार के कौशल की भाँति प्रदर्शित करने लगे। धर्म की पवित्र भावना अब कला का रूप लेने लगी। अतः साहित्य अब अपने चमत्कारपूर्ण प्रकाशन का मार्ग खोजने लगा। उसका उद्देश्य अब निश्चित न होकर विशृंखल हो गया। धर्म की भावना तो केवल नाममात्र को रह गई। तुलसी और सूर की प्रतिभा का प्रकाश अभी तक कवियों का पथ-प्रदर्शन कर रहा था, अतएव कविगण राम और कृष्ण का नाम तो नहीं छोड़ सके, हाँ राम और कृष्ण के भीतर छिपे हुए धार्मिक उन्मेष को अवश्य भूलने लगे। अब राम और कृष्ण की कविता पर अत्याचार के बदले पुरस्कार मिलने लगा। अकबर और रहीम भी कविता करने लगे। भक्ति में शृङ्गार की भावना का सूत्रपात यहीं से आरंभ हुआ। कवि निर्भीक होकर भक्ति में शृङ्गार और शृङ्गार में नीति की रचनाएँ करने के लिए उत्सुक हो उठे और एक बार फिर हिन्दी साहित्य में विविध विषयों पर रचना करने के लिए कई लेखनियाँ एक साथ स्वच्छन्दता के साथ चल पड़ीं। इस समय के प्रधान कवि निम्नलिखित हैं :—

मनोहर कवि—इनका कविता-काल संवत् १६२० के लगभग माना जाता है। ये अकबर के समकालीन थे और उन्हीं के दरबारी कहे जाते हैं। फारसी और संस्कृत पर इनका पूर्ण अधिकार था। इनकी कविता में कहीं-कहीं फारसी के शब्द भी आ जाते थे। इनकी एक रचना प्राप्त है - वह है शत प्रश्नोत्तरी। ये अधिकतर दोहों में ही रचना किया करते थे, जिनमें नीति और शृङ्गार की सूक्तियाँ रहा करती थीं।

जयतराम—इनका आविर्भाव काल संवत् १६३० है । ये अकबर के दरबार के कवि थे। इन्होंने भगवद्गीता की पद्यबद्ध टीका की थी । यह श्रीधरकृत टीका का भाषानुवाद है ।

रहीम—ये हिन्दी के प्रसिद्ध सूक्तिकार और जीवन की परिस्थिति के कुशल चित्रकार है। ये अकबर के अभिभावक बैरमखां के पुत्र थे। अतः इनका संबन्ध अधिकतर राज्यकुल से ही था। इनका जन्म संवत् १६१० में हुआ था। ये बड़े दानी थे और एक-एक बार मे अपरिमित धन दान करते थे। एक बार इन्होंने गङ्ग की एक रचना पर छत्तीस लाख रुपये दान कर दिये थे। अन्त मे जहाँगीर ने इन्हे राजद्रोह के अपराध मे कैद कर लिया और इनकी सारी जागीर जब्त कर ली। उस समय इनकी दशा एक भिक्षुक सी हो गई थी। इस प्रकार इन्हें जीवन की दो सीमान्त परिस्थितियों का अनुभव हो गया था और उसी अनुभव से इन्होंने जीवन के ऐसे मार्मिक तथ्यों का उल्लेख किया जो सदैव के लिए सत्य हैं और हृदय को स्पर्श करने वाले हैं।

ये बड़े विद्वान थे। डा० ईश्वरी प्रसाद ने भी इसका निर्देश अपने इतिहास मे किया है।[1]

[1] The most distinguished Hindi poet among Akbar's was Abd Rahim Khan Khanan whose ...

ये तुर्की, फारसी, अरबी और संस्कृत के ज्ञाता थे। ब्रजभाषा और अवधी पर तो इनका पूर्ण अधिकार था। इन्होंने फारसी का एक दीवान लिखा और वाक़यात बाबरी का अनुवाद तुर्की से फारसी में किया। इनके बनाये हुए कुछ संस्कृत के श्लोक भी हैं। ब्रजभाषा में इनके दोहे पद-लालित्य और उक्ति के लिए प्रसिद्ध ही हैं और अवधी में इन्होंने जिस सुन्दरता से नायिका भेद की रचना की है, वह हिन्दी की एक अमूल्य रचना है।

इनकी कविता बड़ी ही सरस है। शब्दों का प्रयोग ये बड़ी उपयुक्त रीति से करते हैं। भाषा के पीछे जो भाव हैं, वे एकान्त सत्य होकर सजीव हैं जिनसे मानव-जीवन का अटूट संबन्ध है। मर्म की बात कहने में रहीम बड़े पटु हैं। उनकी रचना के पीछे एक ऐसा हृदय है जिसमें अनुभव, अन्तर्दृष्टि और सरसता है। इसी कारण उनकी कविता लोकप्रिय और अमर है। कहा जाता है रहीम और तुलसी में बड़ा स्नेह था। किंवदन्ती का यह दोहा प्रसिद्ध ही है :—

सुरतिय नरतिय नागतिय, यह चाहत सब कोय।
गोद लिये हुलसी फिरे, तुलसी सो सुत होय॥

वेणीमाधवदास ने भी अपने गोसांई चरित में तुलसीदास की बरवै रामायण की रचना का कारण रहीम को माना है :—

कवि रहीम बरवा रचैं, पठए मुनिवर पास।
लखि तेहि सुन्दर छन्द में, रचना कियौ प्रकास॥[1]

इनकी कविता इतनी श्रेष्ठ है कि इसमें कल्पना के चित्र रहते हुए भी सत्यता है और वह हमारे जीवन के अत्यन्त निकट है। इनके ग्रन्थों में रहीम दोहावली, बरवै नायिका भेद, मदनाष्टक, रासपञ्चाध्यायी और शृङ्गार सोरठ प्रसिद्ध हैं। काव्य के दृष्टिकोण से इनकी बरवै नायिका-भेद सब से सफल रचना है। इसमें अवधी के भाषा-सौन्दर्य

---

१ गोसाईं चरित दोहा ६३

के साथ ही साथ नायिकाओं के जो चित्र हैं वे सरस और भावपूर्ण हैं। रहीम की मृत्यु संवत् १६८२ में हुई। मुसलमान होते हुए भी उनमें हिन्दू धर्म की ऐसी छाप थी कि उससे किसी प्रकार की भी अकृत्रिमता नहीं प्रकट होती। यह रहीम की सहृदयता, भावुकता और प्रतिभा ही थी। इनका रचनाकाल संवत् १६४० माना गया है।

बीरबल—इनका आविर्भावकाल सम्वत् १६४० है। ये अकबर के प्रसिद्ध मन्त्रियों में थे। इनका विनोद तो प्रसिद्ध ही है। महाकवि भूषण के अनुसार इनका जन्मस्थान तिकवांपुर है। कवि होने के साथ ही ये बड़े उदार भी थे। इन्होंने एक बार केशवदास को उनकी कविता पर छः लाख रुपये दिए थे। इनकी कविता अधिकतर नीतियुक्त ही रहती है, पर इनका ऋतु-वर्णन भी प्रसिद्ध है। इनकी भाषा मँजी हुई और सरस है। उसमें अलङ्कार की छटा भी यत्र-तत्र पाई जाती है। कविता में ये अपना उपनाम 'ब्रह्म' रखते थे। इनकी मृत्यु के संबन्ध में अकबर का यह सोरठा प्रसिद्ध है :—

दीन देखि सब दीन, एक न दीन्हो दुसह दुख।
सो अब हम कँह दीन्ह, कछु नहिं राख्यो बीरबल॥

अकबर ने बीरबल को कविराय की उपाधि से विभूषित किया था। डा० रामप्रसाद त्रिपाठी इस विषय में लिखते हैं :—

"यह तो स्पष्ट है कि कोई बात उनमें ऐसी विशेष होगी कि गङ्ग और नरहरि आदि के रहते भी 'कविराय' की महत्त्वपूर्ण पदवी अकबर ने उन्हीं को दी। अकबर स्वयं साधारण कवि और कविता का [illegible] था। यद्यपि उसके दरबार में फ़ारसी और हिन्दी आदि के [illegible] जाते रहते थे किन्तु वह उन्हीं कवियों का सम्मान करता था [illegible] उसे [illegible] दिखाई पड़ता था। अतएव [illegible] विभूषित [illegible] पहले [illegible] उनके विचार [illegible]

आने के पहले ही से बीरबल की कविता की प्रशंसा होती थी। उनकी मृत्यु के उपरान्त शायद वह पद अकबर ने किसी दूसरे को नहीं दिया।"[1]

होलराय—ये अकबर के समकालीन थे और प्रायः अकबर के दर्शन करने के लिए दरबार में भी जाया करते थे। इनका कविता-काल सं० १६४२ है। ये अधिकतर चारण रचनाएँ किया करते थे और अपने आश्रयदाता श्री हरिवंस राय की विरुदावली गाया करते थे। इनकी कविता अधिकतर वर्णनात्मक है। उसमें काव्य के किसी अङ्ग का निरूपण नहीं है वरन् वे तत्कालीन घटनाओं और परिस्थितियों से संबन्ध रखती हैं। कहते हैं तुलसीदास के लोटे पर ये रीझ गये थे। इन्होंने कहा था—

लोटा तुलसीदास को लाख टका को मोल।

तुलसीदास ने निम्नलिखित चरण कह कर इन्हें अपना लोटा दे दिया था—

मोल तोल कछु है नहीं लेहु रायकवि होल॥

इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता, स्फुट रचना देखने में आती है, वह भी साधारण है।

टोडरमल—इनका जन्म संवत् १५८० और मृत्यु संवत् १६४६ में हुई। ये अकबर के मन्त्रियों में से थे। इन्होंने हिन्दी की स्फुट रचनाएँ की थीं, कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं लिखा। इनकी रचनाएँ अधिकतर नीति से संबन्ध रखने वाली हैं। इनका कविताकाल सवत् १६२० माना जाता है।

---

1 हिन्दुस्तानी, जनवरी १९३१, पृष्ठ ६

छन्द—कृष्ण-काव्य ने अधिकतर गीति-काव्य का स्वरूप धारण किया। कृष्ण-चरित्र मुक्तक रूप में वर्णित होने के कारण अधिकतर गेय रहा। अतः कृष्ण-काव्य में उन पदों का अधिक प्रयोग हुआ जो राग-रागिनियों के आधार पर लिखे गए। पुष्टिमार्ग के सांप्रदायिक आचार ने भी कृष्ण-मूर्ति के आगे कीर्तन का विधान रक्खा। इस प्रकार कृष्ण-काव्य आपसे आप संगीतात्मक हो गया। सूरदास, मीरां, विद्यापति आदि प्रधान कवियों ने पदों ही में कृष्ण-काव्य की रचना की। नन्ददास आदि कुछ कवियों ने रोला, दोहा आदि का प्रयोग किया। सूरदास ने भी सूरसागर के कुछ स्थलों में रोला और चौपाई का प्रयोग किया, पर प्रधानतः उन्होंने पद ही लिखे। अष्ट-छाप के कवियों के पद तो प्रसिद्ध ही हैं। राग-रागिनियों के अतिरिक्त जिन छन्दों का प्रयोग कृष्ण-काव्य में हुआ उनमें चौपाई, रोला और दोहा ही प्रधान हैं।

भाषा—कृष्ण-काव्य की भाषा एकमात्र व्रजभाषा है। श्रीकृष्ण का बाल और किशोर जीवन कोमल भावनाओं से पूर्ण रहने के कारण व्रजभाषा जैसी मधुर भाषा में और भी सरस और मधुर हो गया। व्रजभाषा श्रीकृष्ण के जीवन वर्णन के लिए सब से अधिक उपयुक्त भाषा सिद्ध हुई। राम-काव्य में तो व्रजभाषा के अतिरिक्त अवधी का भी प्रयोग हुआ है, किन्तु कृष्ण काव्य में केवल व्रजभाषा प्रयुक्त हुई है। यह बात दूसरी है कि सूर-दास द्वारा व्रजभाषा संस्कृतमय हो गई और मीरां के द्वारा मारवाड़ीमय। नन्ददास ने अपने 'जड़ने' की प्रवृत्ति में व्रजभाषा को कोमल रूप देते हुए उसे तद्भव शब्दों से अलङ्कृत किया। किन्तु भाषा का रूप व्रजभाषा ही रहा। कृष्ण काव्य की भाषा एक ही रहने के कारण साहित्य के विकास की धारा ही बदल गई। एक ही भाषा में अनेक प्रकार की

रचनाएँ हुईं। इसलिए उसे परिमार्जन और परिष्करण का यथेष्ट अवसर मिला। फलतः भाव-सौन्दर्य की अपेक्षा भाषा-सौन्दर्य ही प्रधान हो गया और कृष्णकाव्य के बाद साहित्य में रीति काल आ गया, जिसमें श्रीकृष्ण आराध्य होते हुए भी नायक के सभी गुणों और कार्यों से विभूषित हुए। यह व्रजभाषा के परिमार्जन का ही परिणाम है कि कृष्ण-भक्ति को आघात लगा और वह अनुभूति की वस्तु न रह कर केवल शब्द-चातुर्य और रसिकता की वस्तु बन गई।

रस—कृष्णकाव्य में तीन रस प्रधान हैं। शृङ्गार, अद्भुत और शान्त। शृङ्गार अपने दोनों विभागों के साथ वर्णन किया गया है। संयोग और वियोग के इतने अधिक रूप साहित्य में कभी इससे पूर्व प्रस्तुत नहीं किए गए थे। सञ्चारी भावों की व्यापकता रस की पूर्णता में बहुत सहायक हुई है। श्रीकृष्ण में रति भाव का प्राधान्य होने के कारण शृङ्गार की प्रधानता कृष्ण-काव्य की विशेषता हुई। गोपिकाओं का आलंबन, श्रीकृष्ण की शोभा का उद्दीपन, श्रीकृष्ण-गोपिका मिलन में स्वेद कम्प और रोमाञ्च का अनुभाव एवं मोह और चपलता के सञ्चारीभाव शृङ्गार के संयोग और वियोग पक्ष को विस्तृत बना देते हैं। साहित्य के किसी भाग में रस की इतनी व्यापकता नहीं पाई जाती। अतः श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व ही शृङ्गार रस का सहायक है।

पुष्टिमार्ग ने अद्भुत और शान्त का प्रश्रय दिया। श्रीकृष्ण का दैवत्व और अलौकिक कार्य व्यापार अद्भुत रस की सृष्टि में सहायक हुआ और 'अनन्य' याचना से शान्त की सृष्टि हुई। इन रसों के साथ हास्य और वीर रस गौण रूप में हैं। व्रजवनिताओं में गोपियों का व्यङ्ग्य और श्रीकृष्ण की लीलाओं में असुरों का वध तथा दावानल पान आदि कार्य क्रमशः हास्य और वीर रस के उद्रेक में सहायक हैं। श्रीकृष्ण का

व्यक्तित्व शील और सौन्दर्यमय होने के कारण कोमल रसों के प्रयोग के लिए ही अधिक सहायक हुआ। प्रधानता केवल शृङ्गार रस ही की है।

विशेष—मध्यदेश और राजस्थान में तो कृष्ण-काव्य की रचनाएँ भक्ति के उच्चतम आदर्शों के साथ हो ही रही थीं, साथ ही साथ जूनागढ़ (काठियावाड़) का एक कवि भी कृष्ण-भावना का विकास पश्चिम में कर रहा था। यह कवि नरसिंह मेहता था। नरसिंह मेहता ने भी राधाकृष्ण के गीत अनेक भाँति से गाए, जिनमें शृङ्गार रस का प्राधान्य है। नरसिंह मेहता की भाषा गुजराती है, पर उन्होंने हिन्दी में भी कुछ रचनाएँ कीं। नरसिंह मेहता का आविर्भाव काल संवत् १५०७ से १५३७ माना गया है। वृहत् काव्य दोहन के सातवें भाग में उनकी गुजराती रचनाओं का संग्रह है। उन्होंने अधिकतर राग-रागिनियों में पद ही लिखे हैं जिनमें कृष्ण जन्मनी वधाई नां पद, श्री कृष्ण विहार, श्री कृष्ण जन्म समानां पद, ज्ञान वैराग्य नां पदो हैं। नरसिंह मेहता ने पदों के साथ-साथ साखियाँ भी लिखी हैं, पर उनकी साखियाँ कबीर की साखियों से भिन्न हैं। एक साखी का उदाहरण यह है :—

दे दर्शन दयाल जी, हरिजन नी पूरो आ रे।
कहे नरसैंया आशा घणी, मुने चरणे राखो पास रे॥[1]

श्रीकृष्ण विहार के अन्तर्गत नरसिंह मेहता का एक पद इस प्रकार है :—

जशोदाना आगणीए सुंदर शोभा दीसे रे॥
मुक्ताफल ना तोरण बाध्या, जोई जोई मनडुँ हीसे रे॥ जशोदा ने

१. वृहत् काव्य दोहन, भाग ७ पृष्ठ ३१

महाला महाल करे मानुनों आनन्द उर न माँय रे;
केसर कुंकुम चर्चे सहुने, घरे घरे उच्छव थाय रे ॥ जशोदा ने
धन धन लीला नन्द भुवन को प्रकट्या ते पूरण ब्रह्म रे;
रंग रेल नरसैंयो गायो मन वाढ्यो आनन्द रे; जशोदा ने

नरसिंह के पदों में भक्ति और शृङ्गार समानान्तर धारा में प्रवाहित होते हैं। भाषा में सरलता और सरसता दोनों है। नरसिंह मेहता के अतिरिक्त रसिक गीता के कवि भीम और रासपञ्चाध्यायी के कवि रणछोड़ भक्त भी हुए। कहानदास ने भी कृष्ण-जन्म पर विशेष सरस पद लिखे हैं।

मध्यदेश और दक्षिण में कृष्ण-भक्ति ने अनेक संप्रदायों का स्वरूप धारण किया।

१. दत्तात्रेय संप्रदाय—इस मत के अनुयायी दत्तात्रेय को अपने पन्थ का प्रवर्त्तक मानते हैं। संभव है, दत्तात्रेय कोई मुनि हों पर दत्तात्रेय का रूप तीन सिरों से युक्त है। उनके साथ एक गाय, चार कुत्ते हैं। तीन सिरों का सङ्केत त्रिमूर्ति से, गाय का पृथ्वी से और चार कुत्तों का चार वेदों से ज्ञात होता है। इस प्रकार दत्तात्रेय में दैवी भावना है और वे कृष्ण के अवतार माने जाते हैं। इस संप्रदाय में कृष्ण ही आराध्य हैं और भगवद्गीता ही धर्म पुस्तक है। इस संप्रदाय की उन्नति विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में खूब हुई और इसका मुख्य केन्द्र महाराष्ट्र ही रहा।

२. माधव संप्रदाय—इस मत के अनुयायी मध्वाचार्य से प्रभावित हुए। इनकी प्रधान पुस्तक 'भक्ति रत्नावली' है जिसमें भक्ति के आदर्श निरूपित हैं। ईश्वरपुरी इस संप्रदाय का एक नेता था जिसने संप्रदाय के प्रचार में विशेष योग दिया। सङ्कीर्तन और नगरकीर्तन इस संप्रदाय में भक्ति के साधन

प्रसिद्ध हुए। इसका स्वर्णयुग विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में मानना चाहिए।

३. **विष्णु स्वामी संप्रदाय**—विष्णु स्वामी ने अपने शुद्धाद्वैत से इसकी स्थापना की थी। बाद में विल्वमङ्गल सन्यासी ने 'कृष्ण-कर्णामृत' नामक कविता मे राधा कृष्ण का यश गाकर इस मत का विशेष प्रचार किया। विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के अन्त मे यह संप्रदाय वल्लभ संप्रदाय मे मिल गया क्योंकि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने विष्णु स्वामी के सिद्धान्तों को लेकर पुष्टिमार्ग की स्थापना की।

४. **निम्बार्क संप्रदाय**—इस संप्रदाय का विकास यद्यपि विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ पर इसका इतिहास साधारणतः अज्ञात ही है। इस संप्रदाय मे केशव काश्मीरी, हरिव्यास मुनि, और श्रीभट्ट प्रसिद्ध हुए जिनकी रचनाओं ने इसे विशेष बल प्रदान किया। इन्होंने भी श्रीकृष्ण के सङ्कीर्तन को प्रधान स्थान दिया। हरिव्यास मुनि चैतन्य और वल्लभाचार्य के समकालीन थे अतः ज्ञात होता है कि सङ्कीर्तन का भाव हरिव्यास मुनि ने चैतन्य से ही ग्रहण किया था।

५. **चैतन्य संप्रदाय**—सोलहवीं शताब्दी मे चैतन्य सम्प्रदाय की स्थापना हुई। विश्वम्भर मिश्र (श्रीकृष्ण चैतन्य) ने ईश्वरपुरी के सिद्धान्तों के अनुसार भागवत पुराण की भक्ति का आदर्श स्वीकार किया। जयदेव, चण्डीदास और विद्यापति के कृष्ण विषयक पदों को गाकर उन्होंने कृष्ण-भक्ति का विशेष प्रचार किया। कृष्ण भक्ति मे चैतन्य ने राधा को विशेष स्थान दिया। सङ्कीर्तन और नगरकीर्तन के द्वारा चैतन्य ने श्रीकृष्ण भक्ति से समस्त उत्तर भारत को प्लावित

कर दिया। चैतन्य के अनुयायियों में सार्वभौम, ओड़ीसाधिपति, प्रताप रुद्र और रामानन्द राय थे। चैतन्य की भक्ति का प्रचार करने तथा राधा कृष्ण संबन्धी पद-रचना करने वालों में नरहरि, वासुदेव और वंशीवादन प्रसिद्ध हुए। नित्यानन्द ने चैतन्य मत का सङ्गठन किया और रूप और सनातन ने वृन्दावन के आसपास धर्म तत्व का स्पष्टीकरण किया। चैतन्य मत में निंबार्क का द्वैताद्वैत मत ही ग्राह्य है मध्व का द्वैत मत नहीं। चैतन्य संप्रदाय में जाति-बन्धन विशेष नहीं है।

६. वल्लभ संप्रदाय—यह संप्रदाय वल्लभाचार्य द्वारा विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में स्थापित हुआ था। इस संप्रदाय की भक्ति का नाम पुष्टि है जो केवल कृष्ण के अनुग्रह-स्वरूप है। इस मत का दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैत है। वल्लभाचार्य के चार शिष्य और विट्ठलनाथ के चार शिष्य (जिनसे अष्टछाप की स्थापना हुई) इस संप्रदाय के प्रचार में विशेष सहायक हुए। गोकुलनाथ की चौरासी वैष्णवन की वार्ता ने भी इस संप्रदाय को जनता में खूब फैलाया। इस संप्रदाय के सर्वश्रेष्ठ कवि सूरदास थे। अठ्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में व्रजवासीदास ने व्रजविलास लिख कर इस संप्रदाय के अन्तर्गत राधा का स्थान विशेष निर्दिष्ट किया। इस संप्रदाय में कृष्ण की भक्ति सख्य भाव से की गई। गुरु का महत्व कृष्ण के महत्व के समान ही निर्धारित किया गया, स्त्रियों ने गोपी रूप से उनकी पूजा की जिससे आगे चल कर अनाचार की वृद्धि हुई। इस संप्रदाय की प्रधान पुस्तकें वल्लभाचार्यकृत वेदान्त सूत्र अनुभाष्य, सुबोधिनी और तत्व दीप निबन्ध हैं।

कृष्ण-काव्य में पद्य के साथ ही साथ गद्य रचना भी हुई। यह गद्य-रचना साहित्यिक आदर्शों से युक्त नहीं थी, केवल धर्म-प्रचार और भाव-प्रकाशन की सरलता की दृष्टि से ही लिखी गई थी। साहित्य की प्रधान धारा तो पद्य ही में प्रवाहित हो रही थी, पर जहाँ धार्मिक भावना की विवेचना करना था अथवा धर्म की मर्यादा समझा कर जनता में उसे लोकप्रिय बनाना था वहाँ गद्य का आश्रय लिया गया था। गद्य का यह प्रयोग गोरखनाथ के 'नाथ-पथ' के प्रचार में भी हो चुका था। अतः पुष्टि मार्ग ने उसी परम्परा को हृदयङ्गम कर गद्य का प्रयोग किया। उसे साहित्यिक प्रगति न मान कर धार्मिक प्रगति मानना ही समीचीन है। किन्तु गद्य के इतिहास में इस प्रकार की रचनाओं का भी ऐतिहासिक महत्त्व है। ऐसी रचनाओं में १ श्रीविट्ठलनाथ कृत—शृङ्गार रस मण्डन—(राधा कृष्ण विहार) और २ श्री गोकुलनाथ कृत—चौरासी वैष्णवन की वार्ता प्रधान हैं।

विट्ठलनाथ—ये महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र और शिष्य थे। इनका जन्म संवत् १५१५ में हुआ था। ये पुष्टिमार्ग के संत और अष्टछाप के स्थापक थे। इन्होंने व्रजभाषा के प्रचार के लिए जो कार्य किया वह हिन्दी साहित्य में सदैव स्मरणीय रहेगा। ये लेखक भी थे। इनका अभी तक एक ही ग्रन्थ ज्ञात था—शृङ्गार रस मण्डन। अब इनके निम्नलिखित ग्रन्थ भी पाए गए हैं जिनसे ये व्रजभाषा गद्य के महत्वपूर्ण लेखक माने जा सकते हैं। वे ग्रन्थ निम्नलिखित हैं —

१. **यमुनाष्टक**—यह पुस्तक पद्य में श्री वल्लभाचार्य द्वारा लिखी गई है। इसी का अनुवाद विट्ठलनाथ ने व्रजभाषा गद्य में किया—'इति श्रीवल्लभाचार्य कृत श्रीयमुनाष्टक तदुपरि श्रीगुसाईं जी [illegible] टीका [illegible] यमुना जी [illegible] २८ श्लोक [illegible] है। [illegible] ग्रन्थ काफी बड़ा है

है। उसमे पञ्जाबी, राजस्थानी और कनौजी के शब्द मिलते हैं। सर्वनाम के स्थान पर संज्ञा का प्रयोग ही अधिक है, इसलिए भाषा मे अनेक बार नामों में भी पुनरुक्ति मिलती है। ब्रजभाषा का माधुर्य उसमे अवश्य है।

इस प्रकार सत्रहवीं शताब्दी मे गद्य व्यावहारिक रूप से साहित्य मे प्रयुक्त होने लगा था और उसमे धर्म जैसी पवित्र भावनाओं का भी प्रकाशन होने लगा था। ब्रजभाषा काव्य की प्रधानता होते हुए भी धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न गद्य मे होने लगा था। इसका उत्कृष्ट प्रमाण नन्ददास लिखित नासिकेत पुराण (भाषा) है जो ब्रजभाषा गद्य मे लिखा गया था।

इसी समय खड़ी बोली गद्य का रूप आता है। यह गद्य दक्षिण में मुसलमानो के द्वारा साहित्य मे प्रयुक्त हुआ। इसकी आधार-भूत भाषा खड़ी बोली थी, जो दिल्ली और मेरठ मे बोली जाती थी। आश्चर्य तो इस बात का है कि खड़ी बोली का गद्य अपने स्थान मे पल्लवित होने के बदले दक्षिण मे हुआ जहाँ उसके लिए कोई उपयुक्त वातावरण नहीं था। जो मुसलमान दक्षिण मे फैलते गए उन्हीं के प्रयास द्वारा खड़ी बोली का गद्य अपने पैरों पर खड़ा हुआ। साहित्य मे असद्भवि का सबसे स्पष्ट उदाहरण खड़ी बोली गद्य के विकास मे स्पष्ट रूप से दीख पड़ रहा है। वह उत्पन्न तो हुआ दिल्ली मे और उसका विकास हुआ दक्षिण मे। अमीर ख़ुसरो ने खड़ी बोली का प्रयोग पद्य मे तो अवश्य किया था पर गद्य मे नहीं। दक्षिण मे ही इसका विकास हुआ जो एक साहित्यिक कौतूहल है।

खड़ीबोली गद्य का सबसे प्रथम लेखक था गेसू दराज बन्दा नवाज [illegible] बाज बुलन्द। इनका जन्म संवत् [illegible] मे हुआ और इनकी मृत्यु [illegible] मे। लगभग पन्द्रह वर्ष की उम्र मे [illegible] दिल्ली मे आया और वृद्धावस्था से पहले [illegible] नहीं [illegible]। अतएव इसके गद्य को तत्कालीन दिल्ली [illegible] भाषा का सच्चा रूप समझना चाहिए।

उसने दो छोटी-छोटी पुस्तकों की रचना की। मिराज-उल आशकीन और हिदायतनामा। इसमें प्रथम पुस्तक प्राप्त हुई है और वह प्रकाशित भी हो गई है। उसमे केवल १९ पृष्ठ हैं, जिनमे सूफी सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। भाषा का रूप खड़ी बोली है। उसमे फारसी शब्द भी हैं और ब्रजभाषा के रूप और कारक चिह्न भी। इस भाषा को 'दकनी उरदू' कहा गया है जिसे मिराज-उल-आशकीन के सम्पादक मौलाना अब्दुल हक साहब बी० ए० ने हिन्दी भी कहा है।

बन्दानवाज की शैली इसी प्रकार की थी। यद्यपि वे फारसी के विद्वान थे और उन्होंने फारसी में ग्रन्थ-रचना भी की थी, पर इस प्रकार की रचना भी वे प्रायः किया करते थे। इसके संबन्ध मे मौलाना अब्दुल हक मिराज-उल-आशकीन के 'दीबाचे' में लिखते हैं :—

"हजरत उन बुजर्गाने दकन में से हैं, जिनकी तसनीफातो तालीफात कसरत से है और तकरीबन सब की सब फारसी मे हैं। लेकिन तहकीक से यह भी मालूम हुआ है कि आपने बाज रिसाले हिन्दी याने दकनी उरदू मे भी तसनीफ फरमाये हैं।"

मिराज-उल-आशक़ीन मे आये हुए हिन्दी रूप नमूने के तौर पर नीचे दिए जाते हैं :—

१ इसमें आपकूँ देखिया सो खालिक में ते खालिक की इजहार किया।[1]

२ मुहम्मद हमें ज्यों दिखलाये त्यों तुम्हें देखो।[2]

३ ऐ भाई सुनो जे कोई दूध पीवेगा सो तुम्हारी पैरवी करेगा शरियत पर क़ायम अछेगा। पानी पीवेगा सो विश्वास के कतरया में डूबेगा।[3]

४ जबराईल हजरत कूँ बोले ऐ महम्मद दुरस्त[4]

१. मिराज-उल-आशकीन पृष्ठ १४, १५
२. ,, ,, १५
३. ,, ,, १६
४. ,, ,, २२

५ यो तीनों ज्ञाड हरएक मोमिन के तन में हैं।[५]

६ हदीस व नवी फ़रमाय है[६]

७ इसका माना न देख सकेंगे अपने अँखियाँ सूं मगर देखेंगे मेरे अँखियाँ सू ओ सूरत साहब की[७]

इस प्रकार और भी उदाहरण दिए जा सकते हैं।

इसी समय की भुवन दीपक नाम की एक पुस्तक मिलती है। जो संस्कृत में ज्योतिष पर लिखी गई है और जिसकी व्याख्या व्रजभाषा गद्य में की गई है। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति की तिथि सन् १६१४ (संवत् १६७१) दी गई है। इससे ज्ञात होता है कि अनुवाद इस तिथि से भी पहले का होगा। पुस्तक में १५० श्लोक हैं और उनकी विस्तृत व्याख्या की गई है। उदाहरण के लिए उसका गद्य इस प्रकार है :—

जउ अष्टी पुत्र तणी प्रश्न करइ। आ ८ ठ मह नवमई स्थानि एक वो शुक्र होई तउ स्वभाव रमतो कहिवउ॥ जउ विजह शुक्र ग्रह होई तउ संभोग सुवइ कहिवउ॥ चन्द्र सरिसउ होय। शुक्र होई तउ अधिक द्राव कहिवउ। शुक्र सरिसउ क्रूर ग्रह होइ तउ संभोग पीड़ा कहवी॥

इस गद्य में केवल सिद्धान्त निरूपण है। साहित्यिक गद्य के सौन्दर्य का इसमें एकदम अभाव है। गद्य के नमूने के लिए ही इस ग्रन्थ का नाम स्मरणीय है।

इसके बाद गङ्ग कवि की चन्द छन्द बरनन की महिमा नामक एक छोटा सा गद्य-ग्रन्थ अकबर के समय में लिखा गया मिलता है। इसकी भाषा खड़ी बोली है, क्योंकि यह ग्रन्थ दिल्ली की भाषा के प्रभाव में ही

---

५. मिराज-उल-आशक़ीन पृष्ठ २५

६. " " "

७. " " २७

लिखा गया था। इस ग्रन्थ में भी ब्रजभाषा के 'जुहार', 'विराजमान' आदि शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग है। इसमें साहित्यिक गद्य तो नहीं है, पर व्यावहारिक गद्य का रूप अवश्य है। पुस्तक कुछ विशेष महत्व की नहीं है, पर हिन्दी गद्य के विकास में अपना स्थान रखती है।

संवत् १६८० में जटमल के द्वारा लिखी हुई एक गोरा-बादल की कथा-पुस्तक का निर्देश मिलता है। इस पुस्तक के संबन्ध में हिन्दी-साहित्य में बड़ी भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। इसके विषय में यही निश्चय नहीं किया जा सकता कि यह कथा गद्य में है या पद्य में, अथवा दोनों में!

बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० द्वारा संपादित हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज संबन्धी वार्षिक रिपोर्ट १९०१ के ४५ वें पृष्ठ में, संख्या ४८ पर 'गोरा-बादल की कथा' की हस्तलिखित प्रति का विवरण दिया गया है जिसके अनुसार कथा गद्य और पद्य में है। ४३ पृष्ठ हैं। पद्य-संख्या १००० है। आकार ९½×७½ है। प्रत्येक पृष्ठ पर २० पंक्तियाँ हैं और वह बङ्गाल की एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता में सुरक्षित है। उसकी भाषा का उदाहरण इस प्रकार दिया गया है :—

प्रारम्भ—श्री राम जी प्रसन्न होये। श्री गनेस साये नमः। लक्ष्मी कांत। हेवात की सा चित्तौड़ गड़ के गोरा बादल हुआ है, जिनकी बारता की कीताब हींदवी में बनाकर तयार करी है॥

सुक सपत दा येक सकल सीदं बुद सहेव गनेस
वीगण वीजर ला वोन सो वे लो नुज परण मेस ॥१॥
दूहा॥ जग मल वाणी सर सरस कहता सरस वर वन्द
चहवाण कुल उवधारो हुवा जुवा चावन्द ॥२॥

अन्त—गोरे की आवरत आर्ने ना वचन सुन कर आपने घावन्द की पाग हाथ में लेकर वाहा सती हुई सो सीवपुर में जाके दोनों मेले हुवे ॥१४४॥ गोरा बादल की कथा गुरु के बस सरस्वती के महरबानगी से पुरन भई तीस वास्ते गुरु व सरस्वती कु नमस्कार करता हु ॥१४५॥ ये कथा सोल से आसी के साल में फागुन सुदी पुनम के रोज । ये कथा में दोय रस है वीरा रस व सीनगार रस है [दो रस है वीर रस व सीनगार रस है ?] सो कथा ॥१४६॥ मोरछड़ो नाव गाव का रहने वाला कवेसर जगहा उस गाव के लोग भोहोत सुखी हे घर घर में आनन्द होता है कोई घर में फकीर दीखता नहीं ॥१४७॥

उस जगे अली खान बाबा राज करता हे नसीह खान का लड़का हे सो सब पठानों में सरदार हे जयेसे तारो में चन्द्रमा हे ओयेसा वो हे ॥१४८॥ धरम सी नाव का बेद सीन का बेटा जटमल नाम कवेसर ने ये कथा सबल गाँव में पुरन करी ॥१४९॥

इसमें मेवाड़ की महारानी पद्मावती की रक्षा में गोरा-बादल की कीर्ति-कथा है, जिसको मोरछड़ो गाँव के निवासी जटमल ने संवत् १६८० में लिखा। किन्तु इस रिपोर्ट में यह नहीं लिखा कि यह प्रति स्वयं जटमल की लिखी हुई है, अथवा किसी और की। यदि जटमल ने लिखी है तो सम्वत् १६८० माना जा सकता है। यदि किसी और ने लिखी है तो किस सम्वत् में लिखी है ?

मिश्रबन्धुओं ने यह कथा गद्य में मानी है और उदाहरण वही दिया है जो खोज-रिपोर्ट में है। वे लिखते हैं —

"इस कवि ने सम्वत् १६८० में गोरा-बादल की कथा गद्य में कही और इस भाषा में खड़ी बोली का प्राधान्य है, अतः खड़ी-बोली प्रधान

गद्य का गङ्ग भाट के पीछे सबसे प्रथम रचयिता यही जटमल कवि है।"[1]

एक बार मिश्रबन्धुओं द्वारा यह घोषित होने पर कि यह ग्रन्थ गद्य में है, सभी परवर्ती इतिहासकारों ने उसे गद्य-ग्रन्थ मान लिया :—

"इसी प्रकार १६८० में जटमल ने गोरा-बादल की कथा भी इसी भाषा के तत्कालीन गद्य में लिखी है"—बा० श्यामसुन्दरदास, "हिन्दी भाषा और साहित्य"—पृष्ठ ४९०।

"संवत् १६८० में मेवाड़ के रहनेवाले जटमल ने गोरा-बादल की जो कथा लिखी थी वह कुछ राजस्थानीपन लिए खड़ी बोली में थी"—पं० रामचन्द्र शुक्ल, "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृष्ठ ४७३।

इधर राजस्थान में हस्तलिखित पुस्तकों की जो खोज की गई है उसमें जटमल-कृत "गोरा-बादल की कथा" की जितनी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं वे सब पद्य में हैं। राजपूताने के चारणों और ऐतिहासिक ग्रन्थों का जो विवरण, बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी की ओर से, डा० एल० पी० टेसीटरी ने सन् १९१८ में प्रकाशित कराया है उसके प्रथम भाग के द्वितीय खण्ड में ५२ वें पृष्ठ पर "गोरा-बादल की कथा" के संबन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातें मालूम होती हैं। डा० टेसीटरी को एक गद्य का हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त हुआ है जिसका नाम है—"फुटकर बाता रो संग्रह"। इसे उन्होंने हस्तलिखित ग्रन्थ नं० १५ माना है। इस ग्रन्थ में ४२५ पन्ने हैं, जिनका आकार १२×८ है। यह ग्रन्थ बड़ी बुरी दशा में है। इसके कई पन्ने फट गए हैं। अन्त के कुछ पन्ने गायब भी हो गये है। प्रत्येक पृष्ठ में २६ या २७ पंक्तियाँ है, और प्रत्येक पंक्ति में २० से २४ अक्षर हैं।

---

1. मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग, पृष्ठ ४१६ [संवत् १६७०]

इसका कुछ भाग तो सम्वत् १८४५ मे देसणोक मे और कुछ भाग सम्वत् १८९२ मे दासोड़ी मे रतनू मन रूप के द्वारा लिखा गया था। इस बृहत् ग्रन्थ मे भिन्न भिन्न ३९ फुटकर वार्ताओ का संग्रह है। इन्हीं वार्ताओ मे तीसरी वार्ता गोरा बादल के संबन्ध मे है। इस ग्रन्थ मे टेसीटरी उसका वर्णन इस प्रकार करते है :—

गोरा-बादल री कथा—(पृष्ठ २८८ अ० से २९५ अ० तक) जटमल द्वारा लिखित चित्तौड़ की सुन्दरी पद्मिनी और उसके संबन्धी गोरा और बादल की पद्यबद्ध प्रसिद्ध कहानी। उसका प्रारम्भ इस प्रकार है :—

चरण कमल चीत लायक। स्मरु श्री सारदा। मुझ अष्यर दे माय। कहो सकथा चीत, लायक ॥१॥ जम्बू दीप मंझार। भरतषंड पंडा सिरै। नगर भलो इ ससार। गढ़ चितौड़ है विपम अत ॥२॥ आदि

इसी खण्ड के ७३ वें पृष्ठ पर गोरा-बादल की कथा के संबन्ध मे एक दूसरी प्रति मिलती है। यह प्रति हस्तलिखित ग्रन्थ नम्बर २२ 'फुटकर वार्ता रो संग्रह" मे है। इस संग्रह मे ४३६ पन्ने है। जिनका आकार ११½×९—७¾ है। प्रत्येक पृष्ठ मे ३० पंक्तियाँ हैं; और प्रत्येक पंक्ति मे २४ से ३० अक्षर हैं। इस संग्रह में कई पन्ने कोरे हैं। इससे ज्ञात होता है कि यह किसी दूसरे ग्रन्थ की प्रतिलिपि है, जिसके कुछ पृष्ठ या तो खो गए हैं या पढ़े नहीं जा सके। ड और ड़ मे कोई अन्तर नहीं रखा गया। यह संग्रह महाराजा गजसिंह बीकानेर वालो ने सवत् १८-- मे लिखाया था। इसी से १- (१८-- सवत -८ --, २-, नम्बर के संग्रहों की बहुत सी वार्ताएं नकल की गई है। इसमें -वीं वार्ता मे गोरा-बादल की कथा का विवरण इस प्रकार है :—

को पद्यात्मक ही वतलाया है। (पृष्ठ २८७) आपको यह प्रति वीकानेर में पुरानी राजस्थानी एवं हिन्दी भाषा के परम प्रेमी ठाकुर रामसिंह जी एम्० ए० और डूंगर-कालेज के प्रोफेसर स्वामी नरोत्तमदास जी एम्० ए० की कृपा से प्राप्त हुई। ओझा जी ने अन्त में यह स्पष्ट रूप से लिखा है :—

"नागरी-प्रचारिणी सभा की हिन्दी-पुस्तकों की खोज-संबन्धी सन् १९०१ ईसवी की रिपोर्ट के पृ० ४५ में संख्या ४८ पर वङ्गाल-एशियाटिक सोसाइटी में जो जटमल-रचित गोरा-बादल की कथा है, उसके विषय में लिखा है कि वह गद्य और पद्य में है; किन्तु स्वामी नरोत्तमदास जी द्वारा जो प्रति अवलोकन में आई वह पद्यमय है। इन दोनों प्रतियों का आशय एक होने पर भी रचना भिन्न भिन्न प्रकार से हुई है। रचना-काल भी दोनों पुस्तकों का एक है और कर्ता भी दोनों पुस्तकों का एक है।"

इससे ज्ञात होता है कि स्वामी नरोत्तमदास जी ने उपर्युक्त टेसीटरी द्वारा प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थ नं० ३२ के अन्तर्गत "गोरै-बादल री कथा" की प्रति ही ओझा जी को वतलाई है; क्योंकि इसी प्रति में कथा का संवत् हमें मिलता है। संवत् १८४५ वाले ग्रन्थ नं० १५ में नहीं, फिर भी यह सन्देह रह जाता है कि श्रीनरोत्तमदास जी द्वारा दी हुई प्रति का नाम ओझा जी "गोरा-बादल की बात" देते हैं: पर हस्त लिखित ग्रन्थ नं० ३२ के अनुसार उस प्रति का नाम है "गोरै-बादल री कथा"।

इस पुस्तक के संपादक प० अयोध्याप्रसाद शर्मा ने अपनी प्रस्तावना में तीन हस्तलिखित प्रतियों का आधार लिया है। प्रथम प्रति, जिसको उन्होंने अधिक प्रामाणिक माना है सवत् ७३३ की है, जो वडा उपासरा बीकानेर के पूज्य श्रीचारित्र्यसूरि जी महाराज के पास है। इसके अनुसार मूल ग्रन्थ सवत् १६८० में लिखा गया—

> संवत् सोल पचासिये, पूनम फागुण मास ।
>
> गोरा-बादल वरणीं, कवि जटमल सुपसाय ॥

शेष दो प्रतियाँ बीकानेर-पुस्तकालय में हैं, जिनमें एक का संवत् १८२० दिया गया है। यह प्रति शायद टेसीटरी द्वारा प्राप्त उपर्युक्त हस्त लिखित ग्रन्थ नं० २२ हो, जिसका रचना-काल भी १८२० ही दिया गया है। इसके अन्त में वही दोहा है, जिसे इस पुस्तक के सम्पादक ने अपनी प्रस्तावना में दिया है।

इस प्रकार जटमल-रचित गोरा-बादल की कथा के संबन्ध में हमारे सामने पांच प्रतियां आती हैं :—

१. संवत् १७६३ वाली प्रति श्रीचारित्र्यसूरि जी महाराज के पास सुरचित है। इसके अनुसार ग्रन्थ-रचना सं० १६८५ में हुई। ग्रन्थ का नाम "गोरा-बादल की कथा" है।

२. संवत् १८२० वाली प्रति—डा० एल्० पी० टेसीटरी द्वारा संपादित बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी की ओर से प्रकाशित चारणी और ऐतिहासिक ग्रन्थों के विवरण में संगृहीत। इसके अनुसार ग्रन्थ-रचना १६८० में हुई। ग्रन्थ का नाम "गोरे-बादल री कथा" है।

३. संवत् १८४१ वाली प्रति—डा० एल्० पी० टेसीटरी द्वारा खोजी हुई। ग्रन्थ-रचना की तिथि नहीं दी गई। इसके अनुसार ग्रन्थ का नाम "गोरा बादल री कथा" है।

४ स्वामी नरोत्तमदास जी द्वारा प्राप्त प्रति—इसके अनुसार ग्रन्थ-रचना संवत् १६८०। ग्रन्थ का नाम "गोरा बादल की बात" है।

५ बीकानेर-राज्य-पुस्तकालय वाली प्रति—ग्रन्थ-रचना की तिथि नहीं दी गई। इसके अनुसार ग्रन्थ का नाम "गोरा-बादल की कथा" है।

ये पाँचों प्रतियाँ पद्य में हैं। अब रह जाती है बात नागरी प्रचारिणी सभा की १९०१ की वार्षिक रिपोर्ट में बतलाई हुई गोरा-बादल की कथा के संबन्ध में, जो गद्य और पद्य दोनों में है, और जिसका रचना-काल भी

१६८० संवत् दिया हुआ है, और जिसे मिश्रबन्धुओं ने अपने 'विनोद' में केवल गद्य में ही माना है। संभव है, जटमल ने गद्य में भी यह कथा लिखी हो, पर इसके प्रमाण में हमारे सामने बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी में सुरक्षित प्रति के अतिरिक्त कोई भी दूसरी प्रति नहीं है। यह असंभव तो नहीं है कि एक ही वर्ष में (सं० १६८० में) एक ही लेखक (जटमल) एक कथा को दो तरह से (गद्य और पद्य में) अलग अलग कहे ; पर यह कुछ स्वाभाविक—और उस समय के अनुकूल—नहीं जान पड़ता कि उसी वर्ष पद्य में कथा लिखने के बाद कोई लेखक उसी बात को गद्य में दुहरावे। सम्भव है, किसी दूसरे व्यक्ति ने जटमल की पद्यबद्ध पुस्तक को गद्य का रूप दे दिया हो; और रचना-कालसूचक दोहे का भी गद्य में अनुवाद कर दिया हो। अनुवाद भी अक्षरशः हुआ है। इससे हमारे अनुमान की और भी पुष्टि होती है।[1]

सच तो यह है कि हमारे सामने गोरा-बादल की कथा के गद्य रूप की खोज-सामग्री बहुत ही कम है। अतएव जब तक इस संबन्ध में अधिक खोज नहीं हो जाती तब तक यह कहना बहुत ही कठिन है कि जटमल ने ही यह कथा गद्य में कही है।

इस प्रकार गद्य की रचना ब्रजभाषा और खड़ी बोली में समान रूप से चली।

---

१. पद्यरूप—सोलै से असी पै समै फागुण पूनिम मास।
वीरा रस सिणगार रस कहि जटमल सुपरकास॥
गद्यरूप—ये कथा सोल से असी के साल में फागुन सुदी पूनम के रोज बनाई। ये कथा में दो रस है वीररस है सिणगार रस है सो कथा।

में जब कवियों को राज्य-संरक्षण के साथ सब प्रकार का सुख और वैभव प्राप्त होने लगा तब उन्हें भक्ति की करुणापूर्ण अभिव्यक्ति की आवश्यकता नहीं जान पड़ी। विलास प्रियता में भक्ति नहीं होती। जब अत्याचार के बदले उन्हें पुरस्कार प्राप्त होने लगा तब भगवान् को पुकारने की आवश्यकता नहीं रह गई और कवियों की लेखनी या तो राजाओं के गुण-गान की ओर अथवा विलासिता की सामग्रियों और शृङ्गारपूर्ण परिस्थितियों के चित्रण की ओर चल पड़ी। राजाओं ने भी युद्ध के शस्त्रों को विश्राम देकर अपनी दृष्टि रङ्गमहल की ओर की। वे लोग दिन में ही वियोग और संयोग के स्वप्न देखने लगे। अपने भावों के उद्दीपन के लिए उन्होंने कवियों को नियुक्त किया। कवियों ने भी धन के लिए अपनी काव्य-कला को 'वासक सज्जा' की भाँति सँवारा और उसे अलङ्कारों से अलङ्कृत किया।

३. **कला का विकास**—राजनीतिक संतोष के साथ राज्य वैभवशाली हुआ और राज्य के वैभव ने कला को जन्म दिया। शाहजहाँ के गौरवपूर्ण शासन के स्वर्णकाल में कला बहुमुखी होकर विकसित हुई। यह कला केवल साहित्य ही में सीमित होकर नहीं रही वरन् चित्रकला और वास्तुकला में भी प्रकट हुई। जहाँगीर ने अकबर की ललित कला देखी थी और जहाँगीर के आदर्शों ने शाहजहाँ को प्रभावित किया था। जहाँगीर ने चित्रकारों को पुरस्कृत ही नहीं किया, वरन् चित्र-कला के अङ्गों का अध्ययन भी किया।[1] शाहजहाँ ने तो

---

1. He loved architecture and painting and discussed the good and bad points of a work of art with the confidence of a professional connoisseur. Painters were generously

ताजमहल मे कला की चरम सीमा उपस्थित की। समय के कपोल पर रक्खा हुआ वह उज्ज्वल अश्रु-विन्दु शाहजहाँ के कला-पूर्ण हृदय की चित्रशाला है। सम्राट ने अपनी शृङ्गार-प्रियता और प्रणय-चिन्ह के रूप मे ताजमहल की साकार विभूति वाइस वर्षों मे निर्मित की, जिसकी नींव विरह के आँसुओं से भरी गई थी। जब राजनीति मे कला इतनी व्यापक हो रही थी तो साहित्य में उसका प्रादुर्भाव अनिवार्य था और इसी कला की व्यापकता ने हिन्दी कविता का भक्तिमय दृष्टिकोण भी वदल दिया।

४. **कृष्णभक्ति का स्वरूप**—महाप्रभु वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण-पूजा का जो रूप निर्धारित किया था, वह अत्यन्त आकर्षक था। वात्सल्य और माधुर्य भाव की उपासना मे श्रीकृष्ण के शृङ्गारिक पक्ष ही की प्रधानता थी। कृष्ण का सौन्दर्य, गोपियों का प्रेम, कृष्ण और गोपियों का विहार, ये विषय वड़ी कुशलता के साथ प्रतिपादित हुए। किन्तु इन सभी वर्णनों के प्रारंभ मे अलौकिक और आध्यात्मिक तत्त्व सन्निहित थे। शारीरिक आकर्षण के साथ आध्यात्मिक आकर्षण भी इंगित था, किन्तु यह रूप आगे चल कर स्थिर न रह सका। चैतन्य महाप्रभु ने माधुर्य भाव से श्रीकृष्ण की उपासना कर कृष्ण के दाम्पत्य प्रेम के चित्रण की सामग्री प्रस्तुत की। इस प्रेम के अलौकिक रहस्य की धारा अपने वास्तविक रूप मे अधिक दूर तक प्रवाहित न हो सकी। उसके आध्यात्मिक स्वरूप का ग्रहण सभी भक्तों और कवियों

सूचना

(अ) पृष्ठ १३७-१३८ पर कवियों का क्रम श्री क्षितिमोहन सेन द्वारा न होकर श्री क्षितिमोहन सेन द्वारा निर्देशित श्री चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी के यहाँ इन्साइक्लोपीडिया जातीय ग्रन्थ' के अनुसार है।

(आ) पृष्ठ ३८१ पर तुलसीदास के ग्रन्थों का क्रम इस प्रकार पढ़िए :—

(१)	रामगीतावली	संवत् १६२८
(२)	कृष्णगीतावली	,,
(३)	रामचरित मानस	१६३१
(४)	रामविनयावली (विनयपत्रिका)	१६३९ (लगभग)
(५)	रामलला नहछू	,,
(६)	पार्वती मङ्गल	,,
(७)	जानकी मङ्गल	,,
(८)	दोहावली	१६४०
(९)	सतसई	१६४२
(१०)	बाहुक	१६६९
(११)	वैराग्य सन्दीपिनी	,,
(१२)	रामाज्ञा	,,
(१३)	बरवै	,,

———

बड़े आकर्षक ढङ्ग से वर्णित है। कृष्ण-काव्य की यह धारा वास्तव में रीतिशास्त्र से पूर्ण है। पर भक्तिकाल में भावना की अनुभूति इतनी तीव्र थी कि सूर और मीरा ने राधाकृष्ण के शृङ्गारमय गीत गाकर भी उन्हें मर्यादा-विहीन नहीं किया। भक्तिकाल की यही मर्यादा है कि विद्यापति की मधुर पदावली सामने रहते हुए भी किसी कवि ने उसका अनुकरण नहीं किया और विद्यापति की रीतिकालीन शृङ्गार-भावना लगभग तीन सौ वर्षों तक निश्चेष्ट पड़ी रही। भक्तिकाल की भाव-तीव्रता में कमी आते ही रीतिशास्त्र अपने लौकिक शृङ्गार से सज्जित हो हिन्दी के काव्य-क्षेत्र में स्वाभाविक रूप से आ गया।

इन सभी कारणों से भक्तिकाल की कविता का उच्च आदर्श सुरक्षित नहीं रह सका। मुग़लकालीन वैभव और राजाओं की सुख-साधना ने उसे काव्य के ऊँचे गौरव से गिरा दिया।

॥ समाप्त ॥

२१ चौरासी वैष्णवन की वार्ता (श्री लक्ष्मी वेङ्कटेश्वर छापाखाना, मुंबई)
२२ जायसी ग्रन्थावली (पं० रामचन्द्र शुक्ल)
२३ तुलसी ग्रन्थावली (खंड, १, २, ३ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)
२४ तुलसीदास और उनकी कविता (पं० रामनरेश त्रिपाठी)
२५ दादूदयाल की बानी (बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद)
२६ दरिया साहब की बानी („)
२७ दरिया सागर („)
२८ दरिया साहब के चुने हुए पद („)
२९ दूलनदास जी की बानी („)
३० दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (श्री गोकुलदास जी, डाकौर)
३१ धनी धरमदास जी की शब्दावली (बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद)
३२ नया गुटका (शिवप्रसाद सितार-ए-हिन्द)
३३ बिहारी रत्नाकर (बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर)
३४ बुल्ला साहब का शब्द सागर [बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद]
३५ वेलि क्रिसन रुक्मिनी री (डा० एल० पी० टेसीटरी)
३६ ब्रजमाधुरी सार (श्री वियोगी हरि)
३७ भँवर गीत (श्री विश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा)
३८ भक्तमाल नाभादास (श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद)
३९ भक्तमाल हरि भक्ति प्रकाशिका (पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र)
४० भक्तमाला राम रसिकावली (महाराज रघुराजसिंह)
४१ भीखा साहब की बानी (बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद)
४२ भारतेन्दु नाटकावली (बाबू श्यामसुन्दरदास)
४३ मलूकदास की बानी (बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद)
४४ मिश्रबन्धु विनोद (मिश्रबन्धु)
४५ मीरांबाई का जीवन चरित्र (मुंशी देवीप्रसाद)
४६ मीराबाई की शब्दावली (बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद)

सहायक ग्रन्थों की सूची

हिन्दी

१ अनुराग सागर (स्वामी श्री युगलानन्द)

२ अमरसिंह बोध (स्वामी श्री युगलानन्द)

३ अरब और भारत के संबन्ध (सैयद सुलेमान नदवी)

४ अष्टछाप (डा० धीरेन्द्र वर्मा)

५ आदि श्री गुरु ग्रन्थ साहब (भाई मोहनसिंह वैद्य)

६ उदयपुर राज्य का इतिहास (महामहोपाध्याय डा० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा)

७ कबीर का रहस्यवाद (श्री रामकुमार वर्मा)

८ कबीर ग्रन्थावली (रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास)

९ कबीर चरित्र बोध (स्वामी श्री युगलानन्द)

१० कबीर वचनावली (पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय)

११ कवि प्रिया (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ)

१२ कवित्त रत्नाकर (श्री उमाशङ्कर शुक्ल)

१३ काव्य निर्णय (श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई)

१४ कोशोत्सव स्मारक संग्रह (नागरी प्रचारिणी सभा काशी)

१५ खोज रिपोर्ट (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)

१६ गरीबदास जी की बानी (बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद)

१७ गुलाल साहब की बानी (,,)

१८ गोस्वामी तुलसीदास (बाबू श्यामसुन्दरदास और डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल)

१९ चरितावली (खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर)

२० चित्रावली (श्री जगन्मोहन वर्मा)

७२ सतसई सप्तक (बाबू श्यामसुन्दरदास)
७३ सुकवि सरोज (श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर')
७४ सूर सुषमा (श्री नन्ददुलारे वाजपेयी)
७५ हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास (श्री नाथूराम प्रेमी)
७६ हिन्दी नवरत्न (मिश्रबन्धु)
७७ हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्र)
७८ हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता (डॉ० बेनीप्रसाद)
७९ हिन्दुस्तान के निवासियों का संक्षिप्त इतिहास (डा० ताराचन्द)

हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ

१. कल्याण (श्री रामायणाङ्क, श्री कृष्णाङ्क) —गोरखपुर
२. गङ्गा [पुरातत्वाङ्क] —सुलतान गंज (भागलपुर)
३. चाँद (मारवाड़ी अङ्क) —इलाहाबाद
४. जैन हितैषी —बम्बई
५. नागरी प्रचारिणी पत्रिका —काशी
६. मनोरमा —इलाहाबाद
७. माधुरी —लखनऊ
८. हिन्दुस्तानी —इलाहाबाद

अंग्रेज़ी

१ आईन-ए-अकबरी (एच० ब्लाकमैन)
२ आक्सफोर्ड हिस्ट्री अव् इण्डिया (व्ही० ए० स्मिथ)
३ इण्डियन एन्टिकिटी (लैसन)
४ इण्डियन क्रानोलाजी (पिले)
५ इन्फ्लूएन्स अव् इस्लाम आन् इण्डियन कल्चर (डा० तारावन्द)
६ इम्पीरियल गजेटीयर (आक्सफोर्ड)
७ ऋग्वेद संहिता (कमेन्ट्री बाई सायनाचार्य) [डा० मैक्समूलर]

४७ मूल गोसांई चरित (गीता प्रेस गोरखपुर)
४८ यारी साहब की रत्नावली (वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद)
४९ राजपूताना में हिन्दी पुस्तकों की खोज (मुंशी देवीप्रसाद)
५० राजपूताने का इतिहास (म० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा)
५१ रामचन्द्रिका (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ)
५२ रामचरित मानस (खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर)
५३ रामचरित मानस की भूमिका (श्री रामदास गौड़)
५४ रास पञ्चाध्यायी और भंवरगीत (श्री बालमुकुन्द गुप्त)
५५ रैदास जी की बानी (वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद)
५६ विद्यापति (श्री जनार्दन मिश्र)
५७ विद्यापति ठाकुर (डा० उमेश मिश्र)
५८ शिवसिंह सरोज (नवल किशोर प्रेस, लखनऊ)
५९ श्री कबीर साहब का जीवन चरित्र (सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर)
६० श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता (श्री गोवर्द्धनलाल जी महाराज, श्रीनाथद्वारा)
६१ श्री सद्गुरु गरीबदास जी की बानी (श्री अजरानन्द रमता राम)
६२ श्री सूरदास जी का जीवन चरित्र (मुंशी देवीप्रसाद)
६३ श्रीसूरदास जी का दृष्टिकूट सटीक (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ)
६४ श्री सूरसागर (श्री राधाकृष्ण दास—वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई)
६५ श्री हरिश्चन्द्र कला (खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर)
६६ श्री ज्ञानेश्वर चरित्र (गीता प्रेस. गोरखपुर)
६७ षोडष रामायण (श्री नुटविहारीराय, कलकत्ता)
६८ संक्षिप्त सूरसागर (डा० बेनीप्रसाद)
६९ सन्त तुकाराम (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद)
७० सन्तबानी संग्रह (वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद)
७१ सुन्दर ग्रन्थावली (पुरोहित श्री हरिनारायण शर्मा

३१ महाराना सांगा (हरिविलास सारदा)
३२ माडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर अव् हिन्दोस्तान (सर जार्ज ए० ग्रियर्सन)
३३ मिडीवल इंडिया (डा० ईश्वरी प्रसाद)
३४ मुन्तखबुत तवारीख (जार्ज एम० ए० रेंकिंग और डब्लू० एन० लो)
३५ रिलीजन एन्ड फोकलोर इन नार्दर्न इंडिया (डब्लू० क्रुक)
३६ रीसेन्ट थीस्टिक डिसकशन्स (डा० एल० डेविडसन)
३७ लव इन हिन्दू लिटरेचर (डा० विनय कुमार सरकार)
३८ लिंग्विस्टिक सर्वे अव इंडिया [९ (१)]-(सर जार्ज ए० ग्रियर्सन)
३९ ले अव आल्हा (वि० वाटरफील्ड)
४० वैष्णविज्म शैविज्म एन्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स (डा० आर० जी० भण्डारकर)
४१ सलेक्शन्स फ्राम हिन्दी लिटरेचर (रायबहादुर लाला सीताराम)
४२ हिस्ट्री अव् दि राइज़ अव् दि मोहमडन पावर (जान ब्रिग)

अङ्गरेजी पत्र-पत्रिकाएँ

१. इण्डियन एन्टिकरी—(बम्बई)
२ इण्डियन लिंग्विसटिक्स (लाहोर)
३. जर्नल अव् दि बांबे ब्रांच अव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी (बम्बई)
४. जर्नल अव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी (लंडन)
५. जर्नल अव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी अव् बेंगाल (कलकत्ता)
६. जर्नल अव् दि बिहार एन्ड ओरीसा रिसर्च सोसाइटी (पटना)

अन्य

१ अध्यात्म रामायण, ऐतरेय ब्राह्मण, छांदोग्य उपनिषद, नारद भक्ति सूत्र, महाभारत, वाल्मीक रामायण, शतपथ ब्राह्मण, शिवसंहिता, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, षोडष ग्रन्थ (वल्लभ) [संस्कृत]

८ ए डिस्क्रिप्टिव कैटलाग अव् बारडिक एन्ड हिस्टारिकल मैनुस्क्रिप्ट—(डा० एल० पी० टैसीटरी)
९ ए शार्ट हिस्ट्री अव् मुस्लिम रूल इन इण्डिया (डा० ईश्वरीप्रसाद)
१० एन आउट लाइन अव दि रिलीजस लिटरेचर अव् इण्डिया (डा० जे० एन० फर्कुहार)
११ एन ओरिएन्टल बायोग्रेफिकल डिक्शनरी (टी० डब्ल्यू० बील)
१२ एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज् अव राजस्थान (विलियम कुक)
१३ एन्साइक्लोपीडिया अव् रिलीजन एण्ड एथिक्स (जेम्स हेस्टिंग्स)
१४ एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (जे० एल० गार्विन)
१५ ओरिएन्टल संस्कृत टैक्स्ट (जे० म्योर)
१६ कन्वेन्शन अव् रिलीजन इन इण्डिया (१९०९)
१७ कबीर एन्ड दि कबीर पन्थ (जी० एच० वेसकट)
१८ कबीर-हिज बायोग्रेफी (श्री मोहन सिंह)
१९ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर (ए० बी० कीथ)
२० तबक़ात-इ-नासिरी (एच० जी० रेवर्टी)
२१ दि आइडिया अव् पर्सोनालिटी इन सूफ़ीज्म (रेनाल्ड ए० निकल्सन)
२२ दि टेन गुरु एन्ड देयर टीचिंग्स (बाबा छज्जू सिंह)
२३ दि निर्गुन स्कूल अव् हिन्दी पोयेट्री (डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल)
२४ दि रामायन अव् तुलसीदास (एफ़० एम्० ग्राउज)
२५ दि रामायन अव् तुलसीदास (जे० एम्० मेक्फी)
२६ दि लिस्ट अव मान्यूमेन्टल एन्टिक्विटीज एन्ड इन्सक्रिपशन्स इन नार्थवेस्ट प्राविन्सेस एण्ड अवध
२७ दि सिख रिलीजन (एम्. ए मेकालिफ)
२८ दि हिस्ट्री अव इंडिया एज टाल्ड बाइ इटस ओन हिस्टोरियन्स (दि मोहमडन पीरियड) (इलियट
२९ बारडिक एन्ड लिटरेरी सर्वे अव राजपूताना (डा० एल पी टैसीटरी)
३० ब्रहमनिज्म एन्ड हिन्दूइज्म (सर मोनियर विलियम्स)

२ श्री ज्ञानेश्वरी (मराठी)
३. दादू (श्री क्षितिमोहन सेन) [बङ्गाली]
४ बृहत् काव्य दोहन (इच्छाराम सूर्यराम देसाई) (गुजराती)
५. सूरदास जी नूं जीवन चरित्र (गुजराती)
६. आबे हयात (आज़ाद) (उर्दू)
७. उर्दू शायपारे (डा० महीउद्दीन कादरी) (उर्दू)
८ इस्तवार द ला लितरात्यूर ऐंदुई ए ऐंदुस्तानी (गार्सां द तासी)
(फ्रेंच)

नामानुक्रमणिका

छ

झ

ट

ठ

ड

ब

य

र

ल

१२२५ के शिलालेखों से मिलता है। पृथ्वीराज का वंश-वर्णन उसी प्रकार है जैसा हम इन शिलालेखों मे पाते है। अन्य बहुत से विवरण जो 'विजय' से मिलते है अन्य साक्ष्यों से भी मिलते है, (जैसे मालवा और गुजरात के शिलालेख।)

पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर अर्णोराज के पुत्र थे और उनकी चालुक्य स्त्री कांचनदेवी गुजरात के महाराज जयसिंह सिंहराज की लड़की थी। अर्णोराज की प्रथम स्त्री मारवाड़ की राजकन्या सधवा थी जिनके दो पुत्र हुए। एक का नाम न तो विजय मे दिया हुआ है और न शिलालेखो में। दूसरा था विग्रहराज वीसलदेव।

अविदित नाम वाले ज्येष्ठ लड़के ने अपने पिता की हत्या कर दी, जैसा कवि कहता है :—"उसने वैसा ही व्यवहार किया जैसा भृगु के पुत्र (परशुराम) ने अपनी माता के साथ किया। और एक दुर्गन्धि छोड़ कर वत्ती के समान बुझ गया। विग्रहराज पिता के बाद सिंहासनासीन हुआ। उसके बाद उसका पुत्र राजा हुआ और तब पितृघाती का पुत्र पृथ्वीभट्ट या पृथ्वीराज सिंहासन पर बैठा।

उसके बाद मंत्रियो द्वारा सोमेश्वर गद्दी पर बिठाया गया। इस लम्बे समय तक वह विदेशो मे था। उसके नाना जयसिंह ने उसे शिक्षा दी थी। इसके बाद वह चेदि की राजधानी त्रिपुर गया और उसने चेदि राजा की कन्या कर्पूर देवी से विवाह किया। उससे पृथ्वीराज (कथा का नायक) और हरिराज उत्पन्न हुए। अजयमेरु की गद्दी पर बैठने के उपरान्त ही सोमेश्वर मर गया। कर्पूर देवी ने अपने पुत्र की छोटी अवस्था मे राज्य का शासन कादम्बवास मंत्री की सहायता से किया।

इस कथन का पता भी नहीं है कि पृथ्वीराज दिल्ली के राजा अनंगपाल की लड़की के पुत्र थे या वे उसके दत्तक पुत्र थे। और विशेष बात यह है कि प्राचीन मुसलमान इतिहासकार पृथ्वीराज का दिल्ली पर शासन करना लिखते भी नहीं है। उनके अनुसार व केवल अजमेर के राजा

सुरक्षित है। यह प्रति डा० बुलर द्वारा कश्मीर मे प्राप्त की गई थी, जब वे सन १८७५ मे संस्कृत ग्रन्थो की खोज मे वहाँ पर्यटन कर रहे थे।

हस्त-लिखित प्रति बहुत ही खराब दशा मे है। प्राचीन होने के कारण प्रति के नीचे का हिस्सा टूट गया है जिससे पाठ का क्रम भङ्ग हो जाता है। इस पुस्तक मे जो बारह सर्ग प्राप्त हुए है उनमे से एक भी सम्पूर्ण नहीं है। प्रारम्भिक भाग भी नहीं हैं। बाएँ हाथ की ओर का स्थान जहाँ पृष्ठ-संख्या दी हुई है, भङ्ग हो गया है, जिससे पृष्ठों का तारतम्य भी नहीं मिलाया जा सकता है। केवल सन्दर्भ के द्वारा पृष्ठ क्रम से लगाये जा सकते है। हस्तलिखित प्रति मे लेखक का नाम भी नहीं मिलता। ऐसा ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ का लेखक पृथ्वीराज का दरबारी कवि रहा होगा, क्योंकि प्रथम सर्ग मे पृथ्वीराज के उस ग्रन्थ के सुनने की इच्छा का निर्देश है। लेखक कश्मीरी पण्डित ही होगा क्योंकि :—

१—मङ्गलाचरण और प्रारम्भ मे कवियों की आलोचना विल्हण की रीति के अनुसार ही है।

२—काश्मीर की अत्यधिक प्रशंसा है।

३—राजस्थान के लिए महान उपयोगी ऊँट की निन्दा की गई है। यदि लेखक राजस्थानी होता तो संभवतः वह ऐसा कभी न करता।

४—दूसरी राज-तरङ्गणी के लेखक कश्मीरी कवि जोनराज ने इसकी व्याख्या की है।

५—जहाँ तक ज्ञात है इस ग्रन्थ का निर्देश और उद्धरण केवल कश्मीरी कवि जयरथ ने ही किया है।

यह सम्भव है कि बारहवे सर्ग मे, प्रति के अन्त मे पृथ्वीराज के दरबार मे जो जयानिक नामी कश्मीरी कवि आता है, वही पृथ्वीराज

थे और उनका वध भी विजेताओं द्वारा जिन्हें उन्होंने अपने देश में शक्ति दे रक्खी थी, राजद्रोह के कारण अजमेर में ही हुआ।

मैं समझता हूँ, इस काल के इतिहास पर पुनर्विचार की आवश्यकता है और चन्द का रासो अप्रकाशित ही रहने दिया जाय। वह जाली है, जैसा जोधपुर के मुरारिदान और उदयपुर के श्यामलदान ने बहुत पहले कहा है। विजय के अनुसार पृथ्वीराज के बन्दिराज या प्रधान कवि का नाम पृथ्वीभट्ट था न कि चन्दबरदाई।"

अपने इस पत्र में डा० बुलर ने जिस पृथ्वीराज-विजय का उल्लेख किया है वह उन्हें कश्मीर में संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज में मिला था। उसकी रिपोर्ट उन्होंने सन १८७७ में प्रकाशित की थी।[1] वे 'विजय' को पूर्ण प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं, क्योंकि उसमें वर्णित घटनाओं का विवरण तत्कालीन लिखे हुए शिलालेखों तथा अन्य ऐतिहासिक विवरणों से पुष्ट हो जाता है। हरविलास शारदा भी इसे प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं।

पृथ्वीराज-विजय

(जयानक)

ऐतिहासिकता की दृष्टि से पृथ्वीराज-विजय का बहुत महत्त्व है, क्योंकि इसमें अन्तिम हिन्दू-सम्राट पृथ्वीराज चौहान (अजमेर) का [illegible] है। इस ग्रन्थ की केवल एक ही प्रति प्राप्त है जो [illegible] पर लिखी है और पूना के दक्षिण कालेज लायब्रेरी में

निर्देशित की हैं।[1] वे इसे पृथ्वीराज के समय से अनेकों शताब्दियों बाद राजपूताने के किसी चारण अथवा भट्ट द्वारा अपनी जाति के महत्व और चौहान वंश के गौरव के प्रदर्शित करने के लिए लिखा गया मानते हैं। यह ग्रन्थ-रचना राजस्थान में ही हुई है, क्योंकि रासो में प्रयुक्त बहुत से प्रयोग ऐसे है जो केवल राजस्थान में ही बोले और समझे जाते हैं। जैसे :—

यह घात सद्ध गोरी सुवर
करू चूक कै सज्ज रन

(आखेट चूक, पाँचवी चौपाई)

चूक करने का अर्थ हैं छल से वध करना। इस अर्थ में यह राजस्थान के अतिरिक्त अन्य स्थानों में नहीं बोला जाता। इसी प्रकार अनेक प्रयोग दिये जा सकते है।

बाबू श्यामसुन्दर दास ने रासो की प्रामाणिकता के विषय में बहुत कुछ लिखा है।[2] उनका कथन है कि पृथ्वीराज, जयचन्द, कालिंजर के राजा परमार दिदेवा के विषय में प्राप्त दान-पत्र और शिलालेख एक दूसरे की पुष्टि करते है। गोरी के सम्बन्ध में रेवर्ट की तबकात-ए-नासिरी भी उक्त सम्वतों से साम्य रखती है। चन्द ने पृथ्वीराज का जन्म काल संवत् ११११, पृथ्वीराज का गोद जाना संवत् ११२२, कन्नौज-गमन संवत् ११५१ और शहाबुद्दीन गोरी के साथ अन्तिम युद्ध संवत् ११५८ लिखा है। तबक़ात-ए-नासिरी में अन्तिम युद्ध का समय हिजरी ५८८

1 The Antiquity Authenticity and Genuineness of the epic called the Prithiraj Rasso and commonly ascribed to Chand [illegible] Journal of the [illegible] Asiatic Society [illegible]

2 श्यामसुन्दर दास—हिन्दी का आदि कवि
नागरी प्रचारिणी पत्रिका १९०१, भाग ५, पृ० १३८

वैमनस्य होने के कारण कवि ने उसके राजत्व-काल को न गिना हो। इसीलिए ९०-९१ वर्ष का अन्तर पड़ गया हो।

बाबू श्यामसुन्दरदास ने पृथ्वीराज रासो को प्रामाणिक सिद्ध करने की चेष्टा की है। इधर के विद्वानों ने उसे एकमात्र अप्रामाणिक माना है। यहाँ तक कि सर जार्ज ग्रियर्सन भी उसके सम्बन्ध में निश्चित मत नहीं रखते। उसके विषय में वे कहते हैं :—

यदि यह ग्रंथ प्रामाणिक है तो यह भारत के इस भाग विशेष का तत्कालीन इतिहास है।[1] यद्यपि यह ग्रंथ संदिग्ध माना गया है तथापि सच बात तो यह है कि संस्कृत महाभारत की भाँति इसमें इतने अंश प्रक्षिप्त हैं कि वास्तविक ग्रंथ में से क्षेपकों को अलग करना असम्भव है।

अतः पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता के विषय में दो मत हो गए हैं।

श्री मुरारीदान और श्यामलदान ने रायल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में रासो की प्रामाणिकता के विषय में सन्देह प्रकट किया था। उनके मत से सहमत होकर और पृथ्वीराज विजय की सामग्री से विश्वस्त होकर ही डॉ॰ बुलर ने रायल एशियाटिक सोसाइटी से रासो का प्रकाशन स्थगित करा दिया था। मुंशी देवीप्रसाद ने भी पृथ्वीराज रासो

---

1 His huge poem, said to contain 100,000 stanzas, is, if it be genuine, a bardic chronicle of his master's deeds and a contemporary history of this part of India. The authenticity of the work, as we have it now, has of late years been seriously doubted; and the truth probably is that, like the Sanskrit Mahabharat, the text is so encumbered by spurious additions that it is impossible to separate the original from its accretions.

Imperial Gazetteer of India Vol. II Page 427.

दिया गया है, जो सं० १०५८ होता है। वास्तविक तिथि से चन्द का संवत् ९० वर्ष पीछे है। अन्य घटनाओं का भी यही संवत् इतिहास सिद्ध है। अतएव इस भूल में अवश्य कोई कारण है।

हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों के अनुसंधान में पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या से ९ प्राचीन परवानों और पत्रों की प्राप्ति हुई है। उनसे यह ज्ञात होता है कि ऋषीकेश जिसका वर्णन उक्त परवानों में है, कोई बड़ा वैद्य था, जो पृथा के विवाह में समरसी को दहेज में दिया गया था। पृथाबाई ने जो अन्तिम पत्र अपने पुत्र को लिखा था उसमें उन चार घर के लोगों का उल्लेख है जो उनके साथ चित्तौड़ से आए थे। उनका वर्णन रासो में इस प्रकार है :—

श्रीपत साह सुजान देश थम्भह संग दिन्नो।
अरु प्रोहित गुरुराम ताहि अग्या नृप किन्नो॥
रिषीकेस दिय ब्रह्म ताहि धनन्तर पद सोहै।
चन्द सुतन कवि जल्ह असुर सुर नर मन मोहै॥

इस तरह श्रीपत शाह, गुरुराम प्रोहित, ऋषीकेश और चन्द-पुत्र जल्हन का वर्णन है।

पृथ्वीराज के परवानों पर जो मोहर है, उससे उनके सिंहासन पर बैठने का समय संवत् ११२२ विदित होता है।

चन्द ने अपने रासो के दिल्ली दान समौ में लिखा है :—

एकादस संवत अट्ठ अग्ग हत तीस भने। = (संवत् ११२२)

संवतों में नियमित रूप से ९० या ९१ वर्षों की भूल होती है। संभवतः पृथ्वीराज का 'साक' चलाने के लिए ही एक नवीन संवत् की कल्पना कर ली गई हो। आदिपर्व में चन्द ने लिखा ही है :—

एकादस सै पंचदह विक्रम जिमि ध्रुम सुत।
त्रतिय साक प्रथिराज कौ लिख्यो विप्रगुन गुप्त॥

अथवा एक कारण यह भी हो सकता है कि जयचन्द के पूर्व राजाओं से लेकर स्वयं जयचन्द ने केवल ९०-९१ वर्ष राज्य किया। जयचन्द से

जिसके आधार पर उक्त प्रति की प्रतिलिपि की गई होगी। किन्तु नेनूराम जी की प्रति अभी तक आलोचकों के सम्मुख नहीं आई और उसकी प्रामाणिकता के विषय मे कुछ विचार भी नहीं हुआ। अतः इस प्रति के सम्बन्ध मे विश्वस्त रूप से अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

प्रक्षिप्त अंशो के विषय मे विचार करते हुए पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा ने भी चंद के वंशधर जदुनाथ के संवत् १८०० के स्वरचित ग्रन्थ वृत्त विलास का निर्देश किया था और लिखा था कि उस ग्रन्थ मे जदुनाथ ने चंद के रासो का वही आकार बतलाया है, जो उसका वर्तमान आकार है। ओझा जी लिखते हैं कि "जदुनाथ के यहाँ अपने पूर्वज का बनाया हुआ मूल ग्रन्थ अवश्य होगा: जिसके आधार पर उसने उक्त ग्रंथ का परिमाण लिखा होगा।"[1] इसका उत्तर श्री मिश्रबन्धु ने बड़ी झुँझलाहट से दिया है। वे लिखते हैं :—

"आपकी समझ मे सं० १२८८ से सं० १८०० तक रासो में कोई क्षेपक का बढ़ना असंभव था, और यदुनाथ पूरे ६०० वर्षों के रासो सम्बन्धी आकार के खजाञ्ची बने-बनाए हैं। आपको तो रासो मिट्टी मे मिलाना है, सो कोई भी प्रमाण इसके लिए अकाट्य क्षमता रखता है।[2]

एक बात अवश्य है कि प्रक्षिप्त अंशो के विषय मे ओझा जी ने जो धारणा बनाई है, वह जदुनाथ के सम्वत् १८०० के वृत्त विलास के आधार पर है। श्री नेनूराम की प्रति सम्वत् १४५५ की है, जिसमे भी प्रक्षिप्त अंश हैं और जिन्हें नेनूराम जी सोलहवीं शताब्दी के लगभग डाले गये बतलाते हैं। कहा नहीं जा सकता कि श्री ओझा जी ने नेनूराम की रासो की सम्वत् १४५५ वाली प्रति देखी है या नहीं।

यदि नेनूराम जी की १४५५ वाली प्रति ठीक है, तब एक विचारणीय विषय और उपस्थित होता है। वह यह कि श्री गौरीशङ्कर हीराचन्द

---

१ पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल (ना० प्र० पत्रिका, भाग, १०, पृष्ठ ६४

२, हिन्दी नवरत्न (गङ्गा ग्रन्थागार लखनऊ सं० १९९१, पृष्ठ ६०९-१०

रासो को जाली ठहराने के लिए जो प्रमाण दिये गये हैं, वे इस प्रकार हैं :—

१ उसमे इतिहास सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियों है, जो शिलालेखो और पृथ्वीराज विजय से सिद्ध हो जाती हैं ।

२. उसमे तिथियो बिलकुल अशुद्ध दी गई है ।

३ उसमे अरबी-फारसी के शब्द बहुत से है, जो चन्द के समय किसी प्रकार भी व्यवहार मे नही लाये जा सकते थे। ऐसे शब्द प्रायः दस प्रतिशत है ।

४ भाषा अनुस्वारांत शब्दो से भरी हुई है और उसमे कोई स्थिरता नहीं है। प्राकृत और अपभ्रंश की शब्द रूपावली का कोई विचार ही नहीं है और शब्दो की रूपावली और नये और पुराने ढंग की विभक्तियों बुरी तरह से मिली हुई है ।

इन प्रमाणो के विरोध मे मिश्रबन्धुओ ने बाबू श्यामसुन्दर दास से अनेक बातो मे सहमत होकर अनेक दलीलें पेश की है ।

( ) इतिहास सम्बन्धी भ्रान्तियो के वे तीन कारण समझते हैं :—

(अ) चंद ने अपने स्वामी का अतिशयोक्तिपूर्ण प्रताप कथन किया हो। कवि के लिए यह स्वाभाविक ही है ।

(आ) जो भ्रान्तियो मालूम पड़ती है, वे वास्तव मे भ्रान्तियाँ नहीं है, क्योकि नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से प्रकाशित कुछ तत्कालीन पट्टे परवानो से उनकी पुष्टि होती है। यदि ओझा जी इन्हे जाली मानते है तो यह उनका "साहस मात्र" है ।

(इ) यदि ये वास्तव मे भ्रान्तिया है, तो क्षेपको के कारण हो सकती है ।

( ) तिथियो के बारे मे [illegible] मिश्रबन्धु [illegible] [illegible] देते है —

ओझा पृथ्वीराज रासो की रचना संवत् १४६० से पहले मानते ही नहीं हैं। उनका कथन है :—

"वि० सं० १४६० में हम्मीर काव्य वना...। उसमें चौहानों का विस्तृत इतिहास है, परन्तु उसमें पृथ्वीराज रासो के अनुसार चौहानों को अग्निवंशी नहीं लिखा और न उसकी वंशावली को आधार माना गया है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय तक पृथ्वीराज रासो प्रसिद्धि मे नहीं आया। यदि रासो की प्रसिद्धि हो गई होती, तो हम्मीर महाकाव्य का लेखक उसी के आधार पर चलता।"[1]

पृथ्वीराज रासो का समय निर्णय करते हुए ओझा जी लिखते हैं :—

"महाराणा कुम्भकर्ण ने वि० सं० १५१७ में कुम्भलगढ़ के किले की प्रतिष्ठा की और वहाँ के मामादेव (कुम्भ स्वामी) के मन्दिर में वड़ी-वड़ी पाँच शिलाओं पर कई श्लोकों का एक विस्तृत लेख खुदवाया, जिसमे मेवाड़ के उस समय तक के राजाओं का वहुत कुछ वृत्तान्त दिया है। उसमें समरसिंह के पृथ्वीराज की वहिन पृथा से विवाह करने या उसके साथ शहावुद्दीन की लड़ाई मे मारे जाने का कोई वर्णन नहीं है, परन्तु विक्रम संवत् १७.२ मे महाराणा राजसिंह ने अपने वनवाए हुए राजसमुद्र तालाव के नौ चौकी नामक वाँध पर २५ वड़ी वड़ी शिलाओं पर एक महाकाव्य खुदवाया, जो अव तक विद्यमान है। उसके तीसरे सर्ग में लिखा है कि 'समरसिंह ने पृथ्वीराज की वहिन पृथा से विवाह किया और शहावुद्दीन के साथ की लड़ाई मे वह मारा गया, जिसका वृत्तान्त भाषा के रासो नामक पुस्तक मे विस्तार से लिखा हुआ है।' (राज प्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३).. निश्चित है कि रासो वि० सं० १५१७ और १७३२ के वीच किसी समय मे वना होगा[2]।"

---

1. पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, ना० प्र० पत्रिका भाग १०, पृष्ठ ६०.
2. वही, पृष्ठ ६२.

हैं। प्रक्षिप्त अंशो के कारण ही भाषा की शब्द-रूपावली अर्वाचीन हो गई है। नहीं तो रासो का वास्तविक रूप प्राचीनता ही लिए हुए है।

दोनो मतो के प्रमाणो को ध्यान मे रखकर रासो की प्रामाणिकता पर कुछ निश्चित रूप से कहना बहुत ही कठिन है। रासो हमारे साहित्य का आदि ग्रन्थ है। वह प्राचीन काल से श्रद्धा की दृष्टि से देखा गया है। उसमे हमारे साहित्य का श्रीगणेश हुआ है। अतः उसके विरुद्ध कुछ कहना अपने साहित्य की प्राचीन सम्पत्ति को खो देना है। दोनो मतों मे कौन मान्य है, यह तो भविष्य ही बतलावेगा, पर अभी तक जितनी खोज हुई है उसको दृष्टि मे रख कर मै रासो को अप्रामाणिक मानने के लिए ही बाध्य हूँ। संक्षेप मे कारण निम्न-लिखित हैं :—

१—इतिहास मे अतिशयोक्ति के लिए कोई स्थान नहीं हैं। कवि अपने संरक्षक का प्रताप वर्णन करने मे पूर्ववर्ती और परिवर्ती व्यक्तियो का अपने संरक्षक से सादृश्य नहीं करा सकता। कवि घटनाओ का विस्तार चाहे जितना कर दे, पर ऐतिहासिक व्यक्तियों के समय मे व्यतिक्रम नहीं कर सकता। इसी आधार पर हम "गोरख की गोष्ठी", "बलख की पैज", "मुहम्मद बोध" आदि कबीर के ग्रन्थों को प्रामाणिक नहीं मानते। वे कबीर के लिखे हुए नहीं है। कबीर के शिष्यो ने अपने गुरु का महत्व बतलाने के लिए गोरख, मुहम्मद और शाह बलख से उनका वार्तालाप करा कर अपने पंथ के ज्ञान की प्रशंसा की है। कबीर इन तीनो के समकालीन नहीं थे, और इस प्रकार वे इन व्यक्तियो के सम्पर्क मे किसी प्रकार भी नहीं आ सकते थे। इसी प्रकार समरसी जो सम्वत् १३४२ मे वर्तमान थे, किसी प्रकार भी पृथ्वीराज चौहान के समकालीन नहीं हो सकते। वे पृथ्वीराज चौहान के लगभग १०० वर्ष बाद हुए। उनका विवाह किसी प्रकार भी पृथ्वीराज की बहिन पृथा के साथ नहीं हो सकता। ये घटनाएँ किसी भाँति भी प्रक्षिप्त नहीं हो सकतीं क्योंकि ये रासो की कथावस्तु के साथ सम्पूर्ण रूप से सम्बद्ध हैं। रासो का 'बान बेध समयो' तो कवि की मिथ्या कल्पना है।

रासो के संवत् विक्रम संवत् से ९० वर्ष कम हैं। यह अंतर सभी तिथियों में दीख पड़ता है। इसका कारण यह है कि "रासो में साधारण विक्रमीय संवत् का प्रयोग नहीं हुआ। उसमें किसी ऐसे सम्वत् का प्रयोग हुआ है, जो वर्तमान काल के प्रचलित विक्रमीय संवत् से ९० वर्ष पीछे था।" यह आनन्द संवत् कहा गया है। मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या जी ने भी लिखा है कि समरसी के पट्टे परवानों में भी इस संवत् का प्रयोग किया गया है। बाप्पा रावल आदि के समय भी इसी संवत् से मिलाए जा सकते हैं। अत: जान पड़ता है कि उस समय राजों के यहाँ यही आनन्द संवत् प्रचलित था।

(३) अरबी फारसी शब्दों के विषय में श्री मिश्रबन्धु बाबू श्याम-सुन्दर दास के मत का निर्देश करते हुए दो कारण लिखते हैं :—

(अ) शहाबुद्दीन गोरी से लगभग पौने दो सौ वर्ष पहले महमूद गजनवी भारत में लूट-मार करने आ चुका था। गजनवी से तीन सौ वर्ष पहले भी सिंध और मुल्तान पर मुसलमानों का अधिकार हो चुका था और वे भारत में अपना व्यापार करने लगे थे। पंजाब भी मुसलमानी संस्कृति से प्रभावित हो चुका था। चन्द लाहौर का निवासी था, अतः उसकी बाल्यावस्था से ही ये अरबी-फ़ारसी शब्द उसके मस्तिष्क में प्रवेश करने लगे थे। इस कारण चन्द की भाषा में मुसलमानी शब्दों का होना स्वाभाविक है।

(आ) रासो का बहुत सा भाग प्रक्षिप्त है, अतः परिवर्ती काल में मुसलमानी आतंक के साथ-साथ भाषा पर अरबी, फारसी का आतंक होना भी स्वाभाविक था! इसीलिए प्रक्षिप्त अंशों में और भी मुसलमानी शब्दों के आ जाने से रासो में दस प्रतिशत शब्द अरबी-फारसी के आ गए हैं।

(४) भाषा की शब्द-रूपावली के सम्बन्ध में श्री मिश्रबन्धु का कथन है कि भाषा के नवीन रूप जहाँ रासो की अर्वाचीनता को सिद्ध करते हैं वहाँ प्राचीन रूप रासो की प्राचीनता को भी प्रमाणित करते

विभक्तियों की भिन्न रूपावली छन्दों में गुथी पड़ी है। यह किस प्रकार अलग की जा सकती है? २७ वें 'समयो' में हम कागज चोबने के मुहावरे पर विचार कर चुके हैं उसी समयो में "कागज" को 'कग्गज' के रूप में लिखा गया है[1] जिसका कोई विशेष कारण नहीं है। 'कग्गज' के स्थान में कागज सरलतापूर्वक लिखा जा सकता था, क्योंकि 'दूहा' मात्रिक छन्द में दोनों की मात्रायें बराबर हैं। एक ही 'समयो' में—केवल २० छन्दों के अन्तर पर—शब्द की भिन्न रूपावली का क्या कारण हो सकता है?

इसी प्रकार निम्न-लिखित कुछ शब्दों के कितने बहुत से रूप मिलते हैं :—

१ बात—वात, वत्त, वत, वत

२ शैल—सैल, सयल, सइल, सेलह

३ मनुष्य—मनुष, मानुष्य, मानष, मनष

४ एक—एक, इक, इकह, इकि, इक्क

व्यञ्जन भी कहीं संयुक्त रूप से सरल और सरल से संयुक्त हो गए हैं :—

१ पहुकर, पोक्खर

२ कर्म्म, कम्म, क्रम्म काम

३ कारज, काज, कज्ज

४ अस्नान, सनान, न्हान।

कहा जा सकता है कि छन्द के अन्तर्गत मात्रा की पूर्ति के लिए कवि को शब्दों का रूप विकृत करना पड़ा। अथवा लेखक या लिपिकार से लिखने में भूल हो गई किन्तु ये दोष इतने बड़े हैं कि इतने बड़े काव्यकार से नहीं हो सकते। फिर जहाँ वर्णवृत्त छन्द है, वहाँ भी शब्द रूपों में भिन्नता है। अतएव इस ग्रन्थ की भाषा बहुत [illegible]

१. वही, छन्द ११.

२—तिथियों की अशुद्धता इतिहास के द्वारा प्रमाणित हो चुकी है। अनन्द सम्वत् केवल क्लिष्ट कल्पना है। 'अनन्द' का अर्थ (अ = ०, नन्द = ९) इस प्रकार काव्य परिपाटी से ९० मानना और संवतों में ९० कम होने का प्रमाण सिद्ध करना उपहासास्पद है। जगनन्द के पूर्व से लेकर स्वयं जगनन्द का ९०-९१ वर्ष राज्य करना और उसमें वैमनस्य होने के कारण कवि का उसका राज्य काल न गिनना एक विचित्र बात है।

३—अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग रासो के सभी 'समयों' में समान रूप से है। किसी 'समयों' के कितने अंश को प्राचीन और प्रामाणिक माना जाये और कितने को प्रक्षिप्त, यह निर्धारण करना बहुत कठिन है। यदि फारसी और अरबी शब्दों को निकाल कर रासो का संस्करण किया जाय तो कथा का रूप ही विकृत हो जायगा। किस शब्द को निकाला जाय और किसे न निकाला जाय, यह भी निश्चित करना बहुत कठिन है। फिर हमें रासो में कुछ ऐसे फारसी शब्द मिलते हैं जो बिल्कुल अर्वाचीन अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। जैसे :—

बॅचि कागज चहुँ आन ने फिर न चंद सर थान।[1]

यहाँ 'कागज बाँचना' पत्र पढ़ने के अर्थ में है, जिसका प्रयोग अर्वाचीन है। इसी प्रकार "कुमादे कुसादे चवे मुप्प स्वानं"[2] में कुसादे का प्रयोग है

४—भाषा की भिन्नकालीन विषमता तो 'रासो' की प्रामाणिकता को सबसे अधिक नष्ट करती है। एक ही छंद में शब्दों की विविध रूपावली के दर्शन होते हैं। क्या एक ही छन्द में समय का इतना अधिक अन्तर हो जाता है जिससे शब्द का रूप ही बदल जावे? शब्दों और

१. पृथ्वीराज रासो—रेवातट समयो, छन्द ३१.

२. वही, छन्द ११०

है सत्रहवीं शताब्दी में जब तुलसीदास की ये स्तुतियाँ बहुत लोक-प्रिय थीं, किसी कवि ने उसी प्रकार की स्तुतियाँ लिख कर रासो में सन्निविष्ट कर दी हों।

इस समय तक रासो को पामाणिक ग्रन्थ सिद्ध करने की सामग्री बहुत ही कम है। आज तक की सामग्री के सहारे रासो को प्रामाणिक ग्रन्थ कहना इतिहास और साहित्य के आदर्शों की उपेक्षा करना है।

पृथ्वीराज रासो के बाद दो ग्रंथों का उल्लेख मिलता है, जिनके सम्बंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। पहला ग्रंथ है 'जयचंद प्रकाश' जिसका कर्ता भट्ट केदार कहा जाता है। इसने कन्नौज के अधिपति जयचंद की वीर-गाथा का गान किया है। इस ग्रंथ का परिमाण भी अज्ञात है क्योंकि वह अभी तक अप्राप्य है, उसका केवल निर्देश मात्र "राठौड़ां री ख्यात" नामक संग्रह-ग्रंथ में मिलता है, जिसका लेखक सिंघायच दयालदास नामक कोई चारण था। अतः भट्ट केदार कृत 'जयचंद प्रकाश' हिन्दी-साहित्य के इतिहास में केवल स्मरण कर लेने की वस्तु है। भट्ट केदार का समय सम्वत् १२२५ माना गया है।

भट्ट केदार

दूसरा ग्रन्थ 'जय मयंक जस चंद्रिका' है, जिसमें जयचंद की कीर्ति सुरक्षित की गई है। इसका लेखक मधुकर नामक कवि है जिसका आविर्भाव काल सं० १२४० माना जाता है। यह ग्रंथ भी अप्राप्य है और इसका उल्लेख भी उपर्युक्त 'ख्यात' में पाया जाता है। यह निस्संदेह खेद का विषय है कि हिन्दी-साहित्य के इस समुन्नत काल में भी राजस्थान में ग्रन्थों के लिए पर्याप्त खोज नहीं हुई। इतिहास की सामग्री से पूर्ण ऐसे बहुत से ग्रन्थ होंगे, जो अंधकार में पड़े हुए हैं और हम उनके वास्तविक रूप को नहीं जान सके हैं। डॉ० एल० पी० टेसीटरी द्वारा राजस्थान में चारण-काल के ग्रंथों की जो खोज हुई है, उससे ही हिन्दी साहित्य के वीर-गाथा काल के ग्रंथों की खोज समाप्त नहीं हो जाती।

मधुकर

है।[1] भाषा की प्रथम परिस्थिति में यह असंस्कृति हो सकती है, पर शब्दों के एक साथ इतने विकृत रूप नहीं हो सकते। रासो की सभी प्राप्त प्रतियों में ये दोष हैं। अतएव लिपिकार का दोष भी नहीं माना जा सकता।

५—रासो के प्रारम्भ में ईश्वर की वन्दना करने के बाद चन्द पहले तो ईश्वर को निराकार और निर्गुण कहते हैं जिसका रूप नहीं, रेखा नहीं, आकार नहीं—

"जिहित सबद नहीं रूप रेख आकार ब्रन्न नहीं"

बाद में वे उसी ब्रह्म को ब्रह्मा के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। आगे चल कर दशावतार की कथा कही गई है। चन्द जैसा महाकवि क्या इतनी छोटी सी भूल कर सकता है?

६—रासो में अनेक वंदनाएँ हैं। शिवस्तुति, ईश्वर-स्तुति, देवी-स्तुति, सूर्य स्तुति आदि। यदि ये स्तुतियाँ चन्द ने लिखी होतीं तो इनका प्रभाव चारण-काल के अन्य कवियों पर अवश्य पड़ता और वे भी अपने ग्रन्थ में स्तुतियाँ अवश्य लिखते, पर चारण-काल के अन्य कवियों ने प्रारम्भिक मङ्गलाचरण के अतिरिक्त इस प्रकार की स्तुतियाँ लिखीं ही नहीं। चन्द जैसे महाकवि की शैली अवश्य ही परिवर्तित कवियों द्वारा मान्य होती। ये स्तुतियाँ तुलसीदास की विनय-पत्रिका की शिव, सूर्य, देवी आदि स्तुतियों की शैली से बहुत मिलती हैं। सम्भव

---

[1]. It will strike the reader, however, that Cnand uses the same word in different stages of development according as it suits his purpose. In the case for instancce of मध्य, we have every stage from the pure Sanskrit down to the modern Vernacular.

John Beames, Grammar of the Chand Bardāi—Journal of Asiatic Society of Bengal Vol XLII Part I 1873.

नहीं रहीं वरन् धार्मिक काल में भी अबाध रूप से होती रहीं, जब समस्त उत्तरी भारत इस्लाम की प्रतिद्वन्द्विता में वैष्णव-धर्म का प्रचार कर रहा था। रीति-काल में भी ये रचनाएँ होती रहीं और सम्भवतः चारणों की रचनाएँ अपनी परम्परा की रक्षा करती रहीं। हाँ, एक बात अवश्य है। जहाँ चारणों की रचनाएँ वीर रसात्मक होती रहीं वहाँ भाटों की रचनाएं शृङ्गार रसात्मक। किन्तु राजस्थान के इस साहित्यिक प्रवाह ने किसी काल में अपने को सीमित नहीं किया और अपनी परम्परा अक्षुण्ण रक्खी। यही कारण है कि सं० १३७५ के बाद जिस समय चारण-काल का महत्व भक्ति-काल के प्रभाव से क्षीण होने लगा, उस समय भी चारण-काल की डिंगल रचनाएँ अबाध रूप से होती रहीं यद्यपि वे अप्रसिद्ध रहीं। इन परिवर्ती अज्ञात रचनाओं पर भी कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। आगे के पृष्ठों में चारण-काल की इन परिवर्ती रचनाओं पर विवेचन होगा, पर पृथ्वीराज रासो के कुछ समय बाद ही कुछ ऐसे प्रसिद्ध ग्रन्थ मिलते हैं जिनमें चारण-काल के आदर्शों की रक्षा की गई है। पहिले इन पर विचार हो जाना चाहिये। इस प्रकार का पहला ग्रन्थ भाटों का एक गीतिकाव्य है, जिसका नाम है आल्हखण्ड।

आल्हखण्ड

जगनिक (सं० १२३०) का यह वीर रस प्रधान [illegible] माना जाता है। उसकी कोई हस्तलिखित प्रति प्राप्त नहीं है। [illegible] की मृत्यु के ग्यारह वर्ष बाद महोबा का पतन हो गया [illegible] परमाल का यश [illegible] [illegible] जगनिक का नाम भी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

मुंशी देवीप्रसाद का तो कथन है कि डाढ़ियों के पास भी ऐसे बहुत से ग्रन्थ हैं, जो ऐतिहासिक और साहित्यिक होने पर भी सर्व प्रकार से सुरक्षित नहीं रखे जा सके। "यदि वे संग्रह किये जाते तो हिन्दुस्तान के इतिहास की अंधेरी कोठरी में कुछ उजाला हो जाता।" इन महत्वपूर्ण ग्रन्थों के सुरक्षित न रखे जाने का कारण यह था कि अधिकांश डाढ़ी जाति के द्वारा लिखे गए थे। "डाढ़ियों का दर्जा नीचा होने से उनको चारण भाटों के समान राजाओं के दरबारों में आदर नहीं मिलती, इससे उनकी हिन्दी कविता उतनी मशहूर नहीं हुई है"।[1]

डाढ़ियों की कविता चारणों की कविता से भी पुरानी मानी जाती है। डाढ़ियों की फुटकर कविता तो अवश्य मिलती है, पर उनका कोई पूर्ण ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। एक पन्द्रहवीं शताब्दी का ग्रन्थ अवश्य प्राप्त हुआ है जिसका नाम है 'वीरमायण'। इसमें राव वीरमजी राठौड़ का शौर्य वर्णन है। जिनका शासन-काल सम्वत् १४३५ माना गया है। वीरमायण के रचयिता डाढ़ी का नाम अज्ञात है। वह राव वीरम जी राठौर के आश्रय में अवश्य था। कहा जाता है कि ऊदावत राठौड़ ही डाढ़ियों को आश्रय देते थे। चाँपावत राठौड़ डाढ़ियों को नीची जाति का मान कर उनकी अवहेलना करते थे। राजस्थान में एक कहावत भी है :—

चाँपा पालन चारणाँ ऊदा पालण डोम।

(अर्थात् चाँपावत राठौड़ तो चारणों को पालते हैं और ऊदावत डोमों को) चाहे डाढ़ी अपनी उत्पत्ति देवताओं के गायकों—गन्धर्वों से भले ही मानते हों, पर चाँपावत राठौड़ों में तो वे सदैव हेय थे।

राजस्थान के भाट और चारणों ने अनेक ग्रंथ लिखे, जो डिंगल साहित्य के महत्व को बहुत बढ़ा देते हैं। ये रचनायें चारण-काल तक ही सीमित

---

१ भाट और चारणों का हिन्दी भाषा सम्बन्धी काम — मुंशी देवीप्रसाद। 'चाँद' (मारवाड़ी अङ्क) नवम्बर १९२९, पृष्ठ २०६।

के विकास से परिवर्तन हो गया हो और नये शब्द और नये वर्णन समय समय पर इसमे मिला दिये गए हो, पर कथा का रूप तो चन्द से ही लिया गया जान पड़ता है। सर जार्ज ग्रियर्सन के मतानुसार यह रचना रासो से बिल्कुल भिन्न है। यद्यपि आल्हखण्ड रासो के महोवा-खण्ड की कथा से साम्य रखता है पर उसकी रचना बिलकुल स्वतंत्र है। चन्द की रचना दिल्ली के ऐश्वर्य और पृथ्वीराज के गौरव के वर्णन का आदर्श रखती है, आल्हखण्ड की रचना कन्नौज और महोवा के गौरव से सम्बद्ध है। दोनो रचनाओ मे सिरसा युद्ध और मलखान की मृत्यु का अवश्य निर्देश है, पर दोनो की वर्णन-शैली सर्वथा भिन्न है। रासो मे महत्त्व केवल दिल्ली के चौहान वंश को है, किन्तु प्रस्तुत रचना मे दिल्ली के चौहान, कन्नौज के राठौर और महोवा के चन्देल अपनी शक्ति का परिचय देते है। इसमे बनाफर वंश के आल्हा और ऊदल नामी दो वीरो का वीरत्व बड़ी ओजस्वी भाषा मे वर्णित है। भाषा मे तो महान् अन्तर है। इस प्रकार आल्ह खण्ड को एक स्वतंत्र रचना ही माननी चाहिए।

आल्हखण्ड मे अनेक दोष भी हैं। उसमे पुनरुक्ति की भरमार है। युद्ध मे एक ही प्रकार के वर्णन, एक ही प्रकार की शस्त्र-सूची और एक ही प्रकार के दृश्य अनेक बार आये है, जिन्हें पढ़ कर मन ऊब उठता है। कथा मे सम्बद्धता भी नहीं है। अनेक स्थानो पर शैथिल्य है। उसका कारण यही है कि यह रचना मौखिक रहने के कारण अनेक प्रकार से कही गई है। कुछ अंश नये जोड़े गए होगे और कुछ तो विस्मृत भी हो गए होगे। कवि को भौगोलिक ज्ञान भी पूर्ण नहीं था, क्योंकि स्थानो की दूरी के सम्बन्ध मे उनके बहुत से वर्णन अशुद्ध हैं। अत्युक्ति तो इस रचना मे हास्यास्पद हो गई है। छोटी छोटी लड़ाइयो मे लाखो वीरो के मरने और खेत रहने का वर्णन है। पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस रचना मे वीरत्व की मनोरम गाथा है, जिसमे उत्साह और गौरव की मर्यादा सुन्दर रूप से निभाई गई है। रचना

प्रचलित है। मौखिक होने के कारण उसका पाठ अत्यन्त विकृत हो गया है। भावों के विकास के साथ उसकी भाषा में भी अन्तर हो गया है और बारहवीं शताब्दी में रचित होने पर भी उसमें 'बन्दूक' और 'पिस्तौल' शब्द आ गए हैं।

इसे लेखबद्ध करने का सबसे प्रथम श्रेय श्री (अब सर) चार्ल्स इलियट को है जिन्होंने सन् १८६५ में इसे अनेक भाटों की सहायता से फर्रुखाबाद में लिखवाया। कन्नौज के निकट होने के कारण फर्रुखाबाद की भाषा इस रचना का वास्तविक स्वरूप प्रदर्शित करने में बहुत कुछ सफल हुई है। इसके अतिरिक्त सर जार्ज ग्रियर्सन ने बिहार[1] में और विंसेण्टस्मिथ ने बुन्देलखण्ड[2] में भी आल्हखण्ड के कुछ भागों का संग्रह किया है। मि० इलियट के अनुरोध से मि० डब्ल्यू वाटरफील्ड ने उनके द्वारा संग्रहीत आल्हखण्ड का अङ्गरेजी अनुवाद किया जिसका सम्पादन सर जार्ज ग्रियर्सन ने सन् १९२३ में किया।[3] उसमें बुन्देली शब्दों का प्राचीन रूप अनेक स्थलों पर पाया जाता है। मिस्टर वाटर-फील्ड का अनुवाद कलकत्ता रिव्यू में सन् १८७५—६ में दि नाइन लाख चेन या दि मेरो फ्यूड के नाम से प्रकाशित हुआ था।

मि० वाटरफील्ड ने आल्हखण्ड को पृथ्वीराज रासो का एक भाग मात्र माना है। उनका कथन है कि वास्तविक रूप में यह रासो का एक सम्पूर्ण खण्ड ही है।[4] यह सम्भव है कि कथा के विस्तार में समय

---

१. इण्डियन एन्टीकरी भाग १४, पृष्ठ २०६, २५५

२. लिंग्विस्टिक सर्वे आव् इण्डिया भाग ६, (१) पृष्ठ १०२

३ दि ले आव् आल्हा (विलियम वाटरफील्ड)

४. The original Alha-khand was, no doubt, as appears from its name a single book of Chand's great Hindi epic of the twelfth century upon the exploits of his master, king Prithi of Delhi.

Lay of Alha Introduction Page 11.
1923

संवत् १३५१ माना गया है और उसके कथाप्रसंग का समय संवत् ११२० ।

(६) डिंगल साहित्य के प्रधान रूप से दो ही ग्रन्थ माने गए है, वीसलदेव रासो और पृथ्वीराज रासो । इनमे पृथ्वीराज रासो संदिग्ध है। इनके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ अभी तक प्रकाश मे नही आए । यह समझना तो अयुक्ति-संगत होगा कि डिंगल की रचना रासो ग्रन्थों के साथ ही समाप्त हो गई। चारणो के द्वारा डिंगल रचनाएँ अवश्य होती रही होगी, पर या तो वे रचनाएँ साधारण रही अथवा प्रसिद्धि नही पा सकी। एक बात और है । चारणकाल की रचनाएँ केवल पद्य मे ही नहीं, गद्य मे भी होती रही जिनका प्रमाण राजस्थान की अनेक ख्याती से मिलता है । चारणो के द्वारा लिखी गई अधिकांश रचनाएँ राजाओ की वंशावलियो से सम्बन्ध रखती हैं। ये चारण राज-दरबार मे रहा करते थे और अवसर विशेष पर अपने संरक्षक राणाओ की विरुदावली गाया अथवा लिखा करते थे। यही उनके इतिहास लेखन का रूप था। चारणो के द्वारा विरुदावली का वर्णन चार प्रकार से किया जाता था। इतिहास, वात, प्रसङ्ग और दासतान। डा० एल० पी० टेसीटरी के द्वारा संग्रहीत चारणकाल के हस्तलिखित ग्रन्थो के संग्रह मे "फुटकर ख्यात वात तथा गीत" नामक हस्तलिपि मे इन शब्दो की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :—

[1] जिण खिसा मै दराजी रहै सो खिसौ इतिहास कहावै १
जिण खिसा मै कम दराजी सो खिसौ वात कहावै २
इतिहास रो अवयव प्रसङ्ग कहावै ३.
जिण वात मे एक प्रसङ्ग टीज चमत्कारीक होय तिका

[1] A Descriptive Catalogue of Bardic and Historical Manuscripts Section I, Prose Chronicles Part I by Dr. L. P. Tessitori, Page 6

के समय से लेकर अभी तक न जाने कितने शूर वीरों में इसने साहस और जीवन का मंत्र फूंका है। इस रचना ने भले ही साहित्य में कोई प्रमुख स्थान नहीं बनाया, तथापि इसने जनता की मूक भावनाओं को सदैव गौरव के गर्व से सजीव रक्खा। यह जनसमूह की निधि है और उसी दृष्टि से इसके महत्व का मूल्य आंकना चाहिए।

हम्मीर रासो—इसके रचयिता शारङ्गधर कहे जाते हैं, जिनका आविर्भाव चौदहवीं शताब्दी में हुआ। इसमें रणथम्भोर के राजा हमीर का गौरव-गान है। मुसलमान शासक अलाउद्दीन की सेना से हमीर का जो युद्ध हुआ था, उसका ओजस्वी वर्णन इस ग्रंथ की कथावस्तु माना गया है। किन्तु इस ग्रंथ की एक भी वास्तविक प्रति प्राप्त नहीं है। इतिहासकारों ने इसका निर्देश-मात्र कर दिया है। जिस प्रति के आधार पर इस ग्रंथ का प्रकाशन हुआ है वह असली नहीं है। भाषा से यह ज्ञात होता है कि किसी परिवर्ती कवि ने इसकी रचना की है। शारङ्गधर का समय (संवत् १३५७) माना जाता है।

इस ग्रन्थ के अतिरिक्त हमीर की यशोगाथा के सम्बन्ध में एक ग्रन्थ और मिलता है। उसका नाम है हम्मीर महाकाव्य। इसका लेखक ग्वालियर के तोमरवंशी राजा वीरमदेव के आश्रित जैन कवि नयचन्द्र सूरि था जिसका आविर्भाव विक्रम संवत् १४६० के आसपास माना गया है।[1] इस ग्रन्थ में चौहानों को सूर्यवंशी लिखा गया है, अग्निवंशी नहीं। श्री गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा इस ग्रन्थ के आधार पर भी 'रासो' को जाली समझते हैं।

विजय पाल रासो—नल्लसिंह भट्ट द्वारा रचित इस ग्रंथ में करौली नरेश विजयपाल के युद्धों का ओजपूर्ण वर्णन है। यद्यपि इसकी भाषा अपभ्रंश-युक्त है, तथापि इस भाषा में भी परिवर्तन के चिह्न हैं। काव्य की दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत साधारण है। नल्लसिंह का समय

---

1. कोषोत्सव स्मारक संग्रह, पृष्ठ ३८

अतः कहीं-कहीं यह भी कठिनाई है कि जो तिथि संग्रह ग्रंथ की हो वही तिथि संभवतः ग्रंथ विशेष की न हो। इस विषय में खोज की बहुत आवश्यकता है। यहाँ पर खोज में प्राप्त हुए कुछ डिङ्गल ग्रंथों पर विचार किया जायगा यद्यपि वे चारणकाल (सं० १०००-१३७५) से बहुत बाद के हैं। इसलिए कि वे चारण काल की परम्परा में हैं, अतः उनका वर्णन करना यहाँ आवश्यक है।

जैतसी रानै पाबू जी रा छन्द

यह ग्रंथ बीकानेर के राव जैतसी की प्रशंसा में लिखा गया है। बाबर के पुत्र कामरान ने जब भटनेरा को जीत कर बीकानेर पर चढ़ाई की, तब राव जैतसी ने उसे वीरता के साथ मार भगाया और अभूतपूर्व विजय प्राप्त की। उसी विजय का स्तवन इसमें किया गया है। प्रारम्भ में जैतसी की वंशावली का वर्णन है। यह वंशावली बड़े विस्तार के साथ वर्णित है। जैतसी के पूर्वज राव बीका और राव लूणकरण की प्रशंसा बहुत की गई है। साथ ही साथ उनकी जीवन की घटनाएँ भी बहुत वर्णित हैं। अतः इतिहास के दृष्टिकोण से इस ग्रन्थ का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। राव जैतसी का वर्णन भी बहुत विस्तार से है। कामरान से युद्ध में तो कवि ने प्रत्येक राजपूत वीर और उनके घोड़ों का भी वर्णन किया है। राव जैतसी की मृत्यु सम्वत् १५९८ में हुई। यह ग्रन्थ राव जैतसी के जीवन में ही कामरान पर विजय प्राप्त करने के बाद सम्वत् १५९१ में लिखा गया ज्ञात होता है। अतः इसका रचना-काल सम्वत् १५९१ और [illegible]५९८ के बीच में मानना चाहिए।

इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति [illegible] [illegible] में सुरक्षित है। [illegible] [illegible] [illegible] में लिखी गई है। कवि का नाम [illegible] है।

वात दासतान कहावै ४.........

ये इतिहास, वात, प्रसङ्ग और दासतान गद्य और पद्य दोनों ही मे लिखे जा सकते थे। इतिहास और दासतान तो अधिकतर गद्य में लिखे गए और वात और प्रसङ्ग पद्य मे।

मुंशी देवीप्रसाद इस विषय को निम्नलिखित अवतरण में और भी स्पष्ट करते हैं:—

"ये लोग पद्य को कविता और गद्य को वारता कहते हैं। वारता ग्रन्थ वचनका, वात और ख्यात कहलाते हैं। 'वचनका' और 'ख्यात' इतिहास के और 'वात' किस्से-कहानी के ग्रन्थ हैं। इनमें गद्य-पद्य दोनों प्रकार की कविताएँ हैं। वचनका और ख्यात मे बनावट का भेद होता है। वचनका मे तुकबन्दी होती है, ख्यात मे नहीं होती पर उसकी इबारत सीधी-सादी होती है।"[1]

विषय के विचार से वात के ग्रन्थों मे राजाओं और वीर पुरुषों के जीवन-चरित्र, वचनका ग्रन्थ मे एक-एक चरित्र-नायक का विवरण और यश वर्णन, ख्यात मे राजाओं की वंशावलियाँ होती हैं।

अस्तु डिंगल साहित्य मे काव्य ग्रन्थ तो लिखे गए पर वे अधिकतर अज्ञात ही हैं। चारणों के वंशजो ने उन्हें अपने वंश की निधि मानकर सुरक्षित तो अवश्य रक्खा, पर उन्हें प्रकाशित करने की चेष्टा कभी नहीं की। हमारे इतिहास-लेखकों ने भी उनकी खोज नहीं की और परम्परागत प्राप्त पुस्तकों पर आलोचना लिख कर ही संतोष की साँस ली। इस डिङ्गल साहित्य मे बहुत सी रचनाओं की तिथि अज्ञात है। कुछ ग्रन्थों की तिथि तो ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर ही निर्धारित की गई है। ऐसे ग्रन्थ अधिकतर बीकानेर राज्य मे प्राप्त हुए हैं। एक ग्रन्थ स्वतंत्र रूप से न होकर अन्य ग्रंथो के साथ संग्रह रूप मे है।

---

[1] भाट और चारणों का हिन्दी भाषा सम्बन्धी काम—मुन्शी देवीप्रसाद। 'चाँद' (मारवाड़ी अङ्क) नवम्बर १९२९, पृष्ठ २०५.

मे कटिबद्ध था। राजस्थान तो राजपूतो की जन्मभूमि रही है और उसने अनेको बार रक्त मे स्नान कर अपनी मर्यादा की रक्षा करने मे ही अपने व्यक्तित्व की सार्थकता समझी है। किन्तु शृङ्गार मे भी वह अद्वितीय है। इसी के प्रमाण-स्वरूप हमारे सामने बीकानेर के राठौर पृथ्वीराज की वेलि क्रिसन रुक्मणी री रचना है। जिसे राजस्थान मे पंचम वेद के रूप मे मान दिया गया है।[1] यह रचना डिङ्गल काव्य मे अपना एक विशेष स्थान रखती है।

पृथ्वीराज बीकानेर के राजा रायसिंह के भाई थे। वे अकबर के समकालीन थे। उनका जन्म संवत् १६०६ मे हुआ था। उन्होंने बड़े होने पर युद्ध मे भी भाग लिया था। अबुलफजल के कथनानुसार वे काबुल के मिरजा हकीम से लड़ने के लिए अकबर की ओर से भेजे गए थे। रणकौशल मे तो वे श्रेष्ठ थे ही, काव्य-कौशल मे भी वे पीछे नहीं रहे। उन्होंने वैष्णव धर्म से प्रभावित होकर कृष्ण और रुक्मिणी की प्रेम-कथा शृङ्गार रस मे डूबी हुई लेखनी से अद्वितीय रूप मे लिखी। इसी समय तुलसीदास लोक-शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाला राम का आदर्श रूप जनता के सामने रख रहे थे। पृथ्वीराज प्रेम की मादकता का रसास्वादन कराने मे तत्पर थे। यही कारण है कि प्रेम के सामने भक्ति के निर्वेद पूर्ण आदर्श रखने मे वे असमर्थ रहे। उनकी वीरता और रसिकता उन्हें माला लेने के लिए बाध्य नहीं कर सकी। वे राजपूत थे और साहस और उत्साह का मूल्य पहचानते थे। यह

अचलदास खीची री वचनिका सिवदास री कही

शिवदास चारण ने गागुरण के खीची शासक अचलदास की उस वीरता का वर्णन किया है, जो उन्होंने माड्व के पातिशाह के साथ युद्ध में दिखलाई थी। उस युद्ध मे अचलदास वीर गति को प्राप्त हुए। माड्व के पातिशाह ने जब गागुरण पर चढ़ाई की तो अचलदास ने रानियों तथा अन्य स्त्रियों से जौहर करा कर स्वयं तलवार हाथ में लेकर शत्रु का सामना किया। शिवदास चारण ने यह सब आँखों देखा वर्णन किया है और उन्होंने इस युद्ध से बच कर अचलदास की कीर्ति-गाथा कहने के लिए ही अपनी रक्षा की। इसमे वीरता का वर्णन अतिशयोक्ति-पूर्ण है। माड्व के पातिशाह के सहायक रूप मे उन्होंने दिल्ली के आलम गोरी को युद्ध में ला खड़ा किया है।

शैली पुरानी और सीधी-सादी है, पर डिंगल साहित्य की अच्छी रचना मानी जाती है। इसका रचना-काल संवत् १६१५ माना गया है।

माधवानल प्रबन्ध दोग्धबन्ध कवि गणपति कृत

माधवानल कामकन्दला की प्रेम-कहानी राजस्थान मे बहुत प्रचलित है। इस ग्रन्थ की पाँच हस्तलिखित प्रतियाँ बीकानेर राज्य में ही प्राप्त हो चुकी हैं। यह प्रति मारवाड़ी दूहा में लिखी गई है। इसके लेखक नरसा के पुत्र गणपति हैं। इन्होंने इसकी रचना नर्मदा तट पर आम्रपद्र नामक स्थान पर की। रचना-काल संवत् १५८४ है। इसके साथ माधवानल कामकन्दला चरित्र भी मिलता है, जो वाचक कुशललाभ द्वारा जैसलमेर मे संवत् १६१६ मे लिखा गया। यह रावल माल दे के राज्य में कुमार हरिराज के मनोरञ्जनार्थ लिखा गया था।

क्रिसन रुकमणी री वेल राज प्रिथीराज री कही

तुलसीदास जिस समय मानस के द्वारा भक्ति का प्रचार करने में संलग्न थे, उस समय राजस्थान मे एक कवि शृङ्गार काव्य की सृष्टि

किन्तु यह आधार केवल कथानक ही का है। काव्य-सौन्दर्य और घटनाओं के प्रवाह मे लेखक की मौलिकता है।

छन्द—डिंगल के अनुसार जिस छन्द मे 'वेलि' की रचना हुई है वह वेलियो गीत के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे चार चरण होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरण की रचना एक समान होती है। उनमे तुकान्त भी होता है। प्रथम और तृतीय पंक्तियो की रचना भिन्न प्रकार से होती है। प्रथम पंक्ति मे १८ और तृतीय पंक्ति मे १६ मात्राएं होती हैं। द्वितीय और चतुर्थ पंक्तियो मे १३, १४ या १५ मात्राएँ होती हैं। यदि द्वितीय और चतुर्थ पंक्ति मे ॥ है तो १३ मात्रा, यदि ।ऽ है तो १४ मात्रा और यदि ऽ। है तो १५ मात्रा।

विस्तार—वेलि मे ३०५ पद्य हैं। विषय है रुक्मिणी का शैशव, सुकुमार शरीर मे यौवन का मादक उभार और सौन्दर्य के वसन्त मे अङ्गो की आकर्षक शोभा। शिशुपाल की ओर उसके विवाह का विचार। रुक्मिणी का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम और पत्र-लेखन। कृष्ण का आगमन और अम्बिका के मन्दिर मे रुक्मिणी से मिलाप, रुक्मिणी-हरण, शिशुपाल और रुक्मि से युद्ध और उनकी पराजय, श्रीकृष्ण का रुक्मिणी सहित द्वारिका गमन और दोनो का यथाविधि विवाह, रात्रि का आगमन और कृष्ण की रुक्मिणी से मिलने की उत्कट इच्छा। रुक्मिणी की लज्जा और श्रीकृष्ण का अनुराग, दोनो का मिलन। षट्ऋतु वर्णन ग्रीष्म वर्षा, शरद, हेमन्त शिशिर, वसन्त। प्रद्युम्न-जन्म तत्पश्चात् प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का विवाह। 'वेलि' की प्रशंसा कामधेनु के रूप मे [illegible]

कवित्त [illegible]

कारण है कि इन्होंने सन् १५८८ में अकबर से [illegible] महा-
राणा प्रताप की प्रशंसा में एक गीत लिख कर भेजा था।[2] पृथ्वीराज के
साहस का इससे अधिक प्रमाण क्या हो सकता है कि इन्होंने अकबर
के राज्य में कर्मचारी होते हुए भी अकबर की निन्दा करते हुए उसके
शत्रु राणा प्रताप की प्रशंसा की। पृथ्वीराज का यह ग्रंथ हिन्दी साहित्य
में एक विशेष स्थान रखता है, इसलिए इस पर विस्तारपूर्वक विचार
होना चाहिये।

कथावस्तु और रचनाकाल—वेलि की रचना संवत् १६३७ में
हुई थी।[3] इसका कथानक रुक्मिणी-हरण, कृष्ण रुक्मिणी विवाह,
विलास और प्रद्युम्न जन्म में सम्पूर्ण हुआ है।

आधार—वेलि का आधार भागवत पुराण ही है। स्वयं लेखक ने
इसका उल्लेख किया है।

वल्ली तसु बीज भागवत वायौ
महि थाणौ पिथुदास मुख।
मूल ताल जड़ अरथ मण्डहे,
सुथिर करणि चढ़ि छाँह सुख ॥२९१॥

---

१. अकबरनामा, अनु० बेवरिज भाग ३, पृष्ठ ५१८

२. नर जेथि निमाणा नीलज नारी।
अकबर गाहक वट अवट।
आवै तिणि हाटे ऊदावत,
वेचै किमि रजपूत वट ॥१॥ आदि

३. वरसि अचल गुण अङ्ग ससी संवति
तवियौ जस हरि रो भरतार।
करि श्रवणे दिन रात कण्ठ करि
पामै श्री फल भगति अपार ॥३०५॥
(वेलि का अन्तिम पद)

पृथ्वीराज की काव्यकला ने हमें डिंगल साहित्य का सुन्दर नमूना दिया है।

'वेलि' के अतिरिक्त पृथ्वीराज ने हमें छोटे-छोटे पद्य भी दिये हैं, जो साख रा गीत के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये समसामयिक घटनाओं और व्यक्तियों के जीवन का विवरण देते हैं।

विशेषता—'वेलि' की विशेषता यही है कि उसमें भक्ति की भावना के साथ शृङ्गार की रसीली साधना भी है। भक्ति और रीति-काल की प्रवृत्तियों का एक स्थान पर सम्मिलन इसी पुस्तक में है। षट् ऋतु वर्णन[1] और मुग्धा[2] मानिनी नायिका का निरूपण हमारे सामने रीति-काल की आत्मा का प्रदर्शन करता है। भक्ति के युग में रीति का यह मनोरञ्जक और सरस वर्णन हमारे साहित्य की अनोखी वस्तु है। इसका सारा श्रेय राठौड़ पृथ्वीराज को है।

सुन्दर शिङ्गार—

शाहजहाँ के राज्य-काल में कविराय (बाद में महा कविराय) ग्वालियर निवासी सुन्दर ने काव्य-शास्त्र पर यह ग्रन्थ लिखा। ग्रन्थ के प्रारम्भ में शाहजहाँ और उनके पूर्वजों की प्रशंसा की गई है। बाद में कवि ने अपना परिचय देकर ग्रन्थ का रचना-काल दिया है। इसमें दोहा, सवैया, छंद आदि पाये जाते हैं। ग्रन्थ की रचना सम्वत् १६८८ में हुई।

वचनिका राठौड़ रतनसिंह जी री महेस दासौत री खिड़िये जगा री कही

१ खिड़िया जगा द्वारा लिखी हुई यह प्रसिद्ध काव्य रचना है। इसमें [illegible] के महाराज रतनसिंह और शाहजहाँ के बागी पुत्र औरंग[illegible]

[illegible]

[illegible]

काल संवत् १७५२ है। अतः यह ग्रन्थ संवत् १७१२ के पूर्व ही लिखा गया होगा। कवि का नाम अज्ञात है।

वरसलपुर गढ़ विजय

इस रचना का दूसरा नाम "महाराजा श्री सुजानसिंह जी रो रासो" भी है। यह एक छोटा सा ग्रन्थ है, जिसमे केवल ६८ पद्य है जो दूहा, कवित्त और छन्द में लिखे गए है। इसकी कथावस्तु बहुत छोटी और साधारण है। सुल्तान की ओर से एक काफिला आ रहा था, वह वरसलपुर में पहुँचते-पहुँचते वहाँ के भाटियों द्वारा लूट लिया गया। बीकानेर के महाराजा सुजानसिंह ने शीघ्र ही अपनी सेना वहाँ भेजी और स्वयं उस ओर प्रयाण किया। इस छोटी सी लड़ाई में सुजानसिंह की ओर से कुछ सिह काम आए। पर कुछ ही दिनों में भाटीराव लखधीर को सुलह करनी पड़ी और वह क्षमा भी कर दिया गया।

रचना साधारण है। इसकी हस्तलिखित प्रति संवत् १७८९ की है, जो बीकानेर के राज्यपुस्तकालय में सुरक्षित है।

महाराजा गजसिंह जी रो रूपक

इसमे बीकानेर के महाराजा गजसिंह की प्रशस्ति है। इसके रचयिता सिणढायच फतेराम है। इसमे बीकानेर के राव बीका से लेकर महाराजा गजसिंह तक की वंशावली वर्णित है। महाराजा गजसिंह की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा है। अन्त मे जोधपुर और बीकानेर के [illegible] भी वर्णन है। यह रचना संवत् १८०४ की कही जाती है। इसमे [illegible] कवित्त और छन्द प्रयुक्त हुए है, प्रारम्भ मे [illegible] साहित्यिकता की अपेक्षा ऐतिहासिकता [illegible]

ग्रन्थराज बारहठ गोपीनाथ रो [illegible]

[illegible]

गोपीनाथ [illegible]

[illegible]

सेर के यादवराज के मनोरञ्जनार्थ यह ग्रंथ लिखा था। इसकी कथा प्रेम-गाथात्मक है और इसका सम्बन्ध इतिहास से न होकर कल्पना से है। मारवाड़ के अधिपति पिङ्गलराय शिकार खेलते हुए जालौर की सीमा पर पहुँचे। वहाँ एक भाट से जालौर के सामन्तसिंह की लड़की उमादे के सौंदर्य की प्रशंसा सुन उन्होंने उससे विवाह किया। उमादे से पिङ्गलराय के एक लड़की हुई, उसका नाम रखा गया मारव। मारव का विवाह नलवर-गढ़ के राजा नल के पुत्र सालह से हुआ। सालह के लाड़-प्यार का नाम ढोला था। यह विवाह पुष्कर (अजमेर) में सम्पन्न हुआ। नलवरगढ़ लौट आने पर सालह का दूसरा विवाह मालवा नरेश की कन्या से हो गया। १५ वर्ष तक दोनों सुख से रहे। एक दिन मारव ने अपने पति का समाचार पाकर उससे आने की प्रार्थना की। सालह ने शीघ्र ही आकर मारव को दर्शन दिए और उसे लेकर वह नलवरगढ़ लौट गये। सालह दोनों रानियों के साथ सुख से रहने लगा। कथा का यही सारांश है। यह ऐतिहासिक सत्य से परे ज्ञात होती है। इतिहास पिङ्गलराय के विषय में मौन है। कन्नौज के राजा जयचन्द (संवत् १२५०) मारवाड़ [illegible] के [illegible] के वंशज होने के कारण कुछ पिङ्गल अवश्य कहे जाते थे। किन्तु [illegible] पिङ्गलराय नहीं हो सकते। अतः यह कथा [illegible] ही लिखित है, जिसमें प्रेम की विस्तृत व्याख्या है। यह ग्रन्थ [illegible] विस्तार में अधिकतर नरपति नाल्ह के बीसलदेव रासो से [illegible] हुआ है। इसका विस्तार लगभग एक हजार पद्यों में है। इस-[illegible] और स्थान की विभिन्नताएँ [illegible] रासो में सम्मिलित हैं। बीकानेर [illegible] 'ढोला मारू रा दूहा' नामक ग्रन्थ की चार [illegible]। इस [illegible] का समय अज्ञात है। बीकानेर राज्य में [illegible] 'ढोला मारवा दूहा' सम्मिलित है, उसका

[कवित ॥] अठार सं निधे
ग्रन्थ पूरव आरम्भे ।
चिरत गजण चित्रीया,
सुणे जंण तेण अचम्भे ।
वरधे दाहो तरै,
रित वरषा घण वद्दल ।
तेरसि पुप्पा अरक
मास भाद्रपद कृष्ण दल ।
मभ नयर रिणी सिध जोग मभि
वदै कृत चहुंवै वले ।
सिरताज राज ग्रन्थां सिरे
द्वौ कलस महि मण्डले ॥ ५ ॥

डिंगल काव्य के अवनति काल में इस ग्रन्थ का लिखा जाना महत्व-पूर्ण है । इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्व समान रूप से है । अनेक शैलियो और अनेक छन्दो मे सफलतापूर्वक लिखे जाने के कारण इस ग्रन्थ ने डिंगल साहित्य मे गाडण गोपीनाथ को बहुत ऊंचा स्थान दे दिया है ।

महाराजा रतनसिंह जी री कविता बीठू भोमों री कही

यह रचना बीकानेर के महाराज रतनसिंह और उनके पुत्र कंवर सिरदारसिंह के विषय मे की गई है । प्रधानतया देवलियो प्रतापगढ़ कंवर सिरदारसिह का विवाह होना विस्तारपूर्वक वर्णित है । इसमे अधिकतर वंशावलियों ही हैं, जिनके साथ प्रशंसा के पद्य हैं । ग्रन्थ बहुत साधारण श्रेणी का है । दूहा, कवित्त और छन्द का प्रयोग इस रचना मे किया गया है । देसणोक (बीकानेर के बीठू भोमो इसके रचयिता हैं और रचना-काल सम्वत् १८९५ है ।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त बहुत से छोटे छोटे ग्रन्थ हैं जिनका समय अज्ञात है वे चारणों के [illegible] पद्य हुए हैं जो [illegible]

यह ग्रन्थ लिखा। बीकानेर के [illegible] में बात लिखी है कि स्वयं गोपीनाथ ने अपना ग्रन्थ महाराज गजसिंह को सम्वत् १८१० में समर्पित किया और महाराज ने प्रसन्न होकर लाख पसाव से कवि का सम्मान किया।

यह ग्रन्थ बहुत विस्तारपूर्वक लिखा गया है। मङ्गलाचरण के बाद महाराज गजसिंह की प्रशंसा में कवित्त-समूह हैं। इसके बाद महाराज गजसिंह की वंशावली का वर्णन है। राव बीको, नारो, लूणकरण, जैतसी, कल्याणमल, रायसिंह, दलपतसिंह, सूरसिंह, करणसिंह। वंशावली पहले तो संक्षेप में लिखी जाती है। कवि जैसे-जैसे वर्णन कर चलता है, वंशावली वैसे ही वैसे विस्तारपूर्ण होती जाती है। अन्त में रायसिंह और जगसिंह का विस्तृत वर्णन है। सुजानसिंह के बाद महाराज गजसिंह का वर्णन कवि अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा से करता है। जन्म, बाल्यकाल, शिक्षा आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। तत्कालीन बीकानेर की परिस्थिति का भी चित्र है। जोधपुर के विरुद्ध जो युद्ध लड़े गए थे उनका भी विशद वर्णन है। युद्ध-वर्णन तो डिंगल साहित्य की अपनी विशेषता है। उसका सम्पूर्ण सौन्दर्य यहाँ इकट्ठा कर दिया गया है।

ग्रन्थ में मुख्यतः गाहा, पाधड़ी, कवित्त और दूहो प्रयुक्त हैं और उनकी रचना एक सफल कवि द्वारा हुई है। वर्णनात्मकता का सच्चा सौन्दर्य इस ग्रन्थ में पाया जा सकता है। गाडण गोपीनाथ डिंगल काव्य के उत्कृष्ट कवि कहे जा सकते हैं। यह ग्रन्थ सम्वत् १८०३ में प्रारम्भ होकर १८१० (?) में समाप्त हुआ, जैसा कि ग्रन्थ के अन्तिम कवित्त से ज्ञात होता है :—

---

१. पीछे रिणी विराजता गाडण गोपीनाथ ग्रन्थ १ श्री जी री वणायो नाम ग्रन्थराज। पीछे मालम कीयो। तिण पर इतरी निवाजस हुई॥ रुपीया २०००) रोक। हाथी १। हथणी १। घोड़ा २। सिरपाव। मोतीयाँ री कण्ठी इणरीत लाख पसाव दीयाँ। — ख्यात दयालदास।

१२. [illegible] री वार्ता
१३. [illegible] दूहा संग्रह
१४. राणै हमीर सिंह रणथम्भोर रै रा कवित्त
१५. उमादे भटियाणी रा कवित्त बारठ आसै रा कहिया
१६. जलाल गहाणी री बात (जलाल और गहाणी की प्रेम-कथा)
१७. गोरै बादल री बात
१८. राव छत्रसाल रा दूहा

१—डिंगल साहित्य का सिंहावलोकन

संक्षेप मे चारण-काल की प्रवृत्तियो का निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है :—

१ वर्ण्य विषय — वीर गाथाओं का विषय प्रधान रूप से राजाओं का यशोगान था। उनका युद्ध-कौशल, उनकी धर्मवीरता और उनके ऐश्वर्य का वर्णन ओजस्वी और शक्तिशालिनी भाषा मे किया जाता था। अपने नायक की श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिये कवि विपक्षी (हिन्दू अथवा मुसलमान) की

Rajputana, and it is not rare to find, even to this day, Caranas, who know dozens and dozens of such songs by heart In the collections, of course, they are numbered by hundreds and hundreds. Apart from their literary value, which is often considerable, these commemorative songs have a great importance for the light they throw on the Rajput life in the Middle ages and as — they [illegible] contemporary with the [illegible] the [illegible] they give to the History.

[illegible] H[illegible] Survey of Rajputana [illegible] D L P [illegible], Calcutta 1915.

का पोषण करती है। फुटकर कविताओं के संग्रह तो इतने अधिक हैं कि ग्रन्थों में न समा सकने के कारण चारणों के कण्ठों में बसे हुए हैं। इस प्रकार की कविता का वर्णन करते हुए डा० एल० पी० टैसीटरी महोदय लिखते हैं :—

संस्मरण[1] के गीत अथवा चारणों के अनुसार साखरा गीत राजपूताने में बहुत सुलभ हैं और आज भी ऐसे चारण कम नहीं हैं जिन्हें दर्जनों ऐसे गीत कंठ नहीं हैं। संग्रह में तो वे सैकड़ों और हजारों हैं। उत्कृष्ट साहित्यिक महत्व के अतिरिक्त इन संस्करण के गीतों का महत्व इसलिए भी है कि वे मध्यकालीन राजपूत जीवन पर प्रकाश डालते हैं। समकालीन होने पर तो ये रचनाएँ इतिहासकारों के बड़े लाभ की हैं।

फुटकर कविता में निम्नलिखित कविताएँ विशेष प्रसिद्ध हैं। इनका समय निश्चित रूप से नहीं दिया जा सकता :—

१. गुण जोधायण राउण पसाइत री कही
२. राव गांगे रा छंद किनियें रेमै रा कहिया
३. [illegible] रा छंद
४. [illegible] रा गीत
५. [illegible] (बीकानेर के राजा रतनसिंह की विरुदावली)
६. [illegible] रा दूहा
७. [illegible] चउपई
८. [illegible]
९. [illegible] री कथा
१०. [illegible] (... और ... की प्रेम कथा)
११. [illegible]

[1] [illegible] the bard [illegible]

हो गया कि वीर-रस के लिए डिंगल भाषा ही उपयुक्त थी और इसीलिये चारण-काल मे उसी का प्रयोग भी हुआ। डिंगल का माध्यमिक काल विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी से माना जाता है। इस काल मे भी डिंगल की रचना होती रही, पर धार्मिक-काल के उन्मेष के कारण वीर-रस की तेजस्वी धारा मन्द पड़ गई। अतः डिंगल की रचना अब साहित्य की प्रधान धारा न रही। यह भाषा जन-समुदाय को अवश्य स्पर्श करती थी, क्योंकि इसका शब्द-भाण्डार प्रचलित शब्दों से भी भरा जाता था। कहीं-कहीं जन-समुदाय के सम्पर्क मे आने से भाषा मे बहुत परिवर्तन भी हो गया है। कई ग्रन्थ मौखिक होने के कारण भाषा के वास्तविक स्वरूप से रहित हो गए हैं और समय के परिवर्तन के साथ उनके रूपो मे भाषा सम्बन्धी परिवर्तन हो गए हैं। इसीलिए भाषा कहीं-कहीं मिश्रित है। शब्द-भाण्डार बहुत विस्तृत है। यदि एक ओर संस्कृत के तत्सम शब्द हैं तो दूसरी ओर मुसलमानो के प्रभाव से अरबी-फारसी शब्द भी आ गये हैं।

३. रस - इस काल के साहित्य मे वीर-रस का प्राधान्य है। अपने चरित-नायको के शौर्य और महत्त्व के वर्णन मे वीर रस की अधिक आवश्यकता पड़ी है। इस वीर रस के क्रोड़ मे शृङ्गार रस भी कभी-कभी दीख पड़ता है, क्योंकि युद्ध के बाद ये वीर आमोद-प्रमोद अथवा स्वयंवर-विवाह मे भी अपना समय बिताते थे। विशेष बात तो यह है कि वीर रस की उमङ्ग के साथ साथ हमे इस काल की कविता मे विरह-वर्णन भी मिलता है। इस प्रकार शृङ्गार रस अपने सयोग और विप्रलम्भ रूप मे इन काव्यो की सीमा के भीतर है। अद्भुत रस भी अनेक स्थानो पर प्रयुक्त है. जहाँ सेना की अद्भुत

हीनता का वर्णन ही अधिक रहता था। कथा का स्वरूप अधिकतर कल्पना से ही निर्मित हुआ करता था। यद्यपि ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण भी उसमें पाया जाता है, पर उसका विस्तार और वर्णन कल्पना के सहारे ही किया जाता था। तिथि पर भी कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। कथा में वर्णनात्मकता ही अधिक होती थी। वस्तुओं की सूची तथा सेना आदि का वर्णन आवश्यकता से अधिक हुआ करता था; यद्यपि इसका उद्देश्य एकमात्र नायक की शक्ति और उसकी वीरता की सूचना देना था। कहीं-कहीं तो ये वर्णन नीरस भी हो गये हैं। अतएव कवि का आदर्श अधिकतर अपने चरित-नायक के गुण वर्णन तक ही सीमित रहता था।

२. भाषा—इस समय की भाषा डिंगल कही गई है। यह राजस्थान की साहित्यिक भाषा थी। इसका छन्द-शास्त्र भी अलग था। इसमें अपभ्रंश से निकलती हुई राजस्थानी भाषा के स्वरूप मिलते हैं। यह वीर-रस के लिये बहुत उपयुक्त थी, इसी-लिये इसका प्रयोग इस काल में बड़ी सफलता के साथ हुआ। डिंगल भाषा के सम्बन्ध में मुन्शी देवीप्रसाद जी का कथन है कि "मारवाड़ी भाषा में 'गल्ल' का अर्थ बात या बोली है। डीगा लम्बे और ऊँचे को और पाँगला पङ्गे या लूले को कहते है। चारण अपनी मारवाड़ी कविता को बहुत ऊँचे स्वरों में पढ़ते हैं और व्रजभाषा की कविता धीरे-धीरे मन्द स्वरों में पढ़ी जाती है। इसीलिए डिंगल और पिंगल संज्ञा हो गई—जिसको दूसरे शब्दों में ऊँची बोली और नीची बोली की कविता कह सकते हैं।"[1] इससे स्पष्ट

[1] भाट और चारणों का हिन्दी भाषा सम्बन्धी काम। 'चाँद' नवम्बर १६२६, पृष्ठ २०४।

२—डिंगल साहित्य का ह्रास

चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते ही वीर गाथा-काल की रचना क्षीण होने लगी। इसका प्रधान कारण राजनीति की परिस्थितियों के परिवर्तन में ही पाया जा सकता है। मुसलमानों के प्रभुत्व ने हिन्दू राजाओं को जर्जरित कर दिया था, अथवा हिन्दू राजा स्वयं ही लड़ते-लड़ते क्षीण हो गये थे। इसलिए न तो उनके गौरव की गाथा गाने के लिए ही सामग्री थी और न कवियों के हृदय में उत्साह ही रह गया था। राज्य क्षीण होने के कारण कवियों का महत्व भी क्षीण होगया था और वे अब किसी राजदरबार में सम्मानित होने का अवसर नहीं पा सकते थे। अतएव चारणों के अभाव में वीर-गाथा का महत्व दिनोदिन कम होता जा रहा था।

इस समय मुसलमानी राज्य का प्रभुत्व हिन्दुओं के हृदयों में जान पड़ने लगा था। मुसलमानों की प्रवृत्ति केवल लूटमार कर धन संचय की न होकर भारत में राज्य करने की हो चली थी। पंजाब से लेकर बङ्गाल तक मुसलमानों का आधिपत्य हो गया था। बिहार, बङ्गाल, रण-थंभोर, अन्हलवाड़ा, अजमेर, कन्नौज, कालिञ्जर आदि प्रधान स्थानों में मुसलमानी शासन स्थापित हो चुका था। राठौर और चौहान वंश के पराक्रम का सूर्य ढल चुका था। इतना अवश्य था कि राजस्थान के राजपूत अभी तक अपने गौरव की गाथा नहीं भूले थे। मुसलमानों की असावधानी देखते ही वे फिर प्रचण्ड हो उठते थे। पर ये दिन उनकी अवनति के थे। मुसलमानों का आधिपत्य दिनोदिन बढ़ता रहा था। वे राज्य के साथ-साथ अपने धर्म का विस्तार भी करते जाते थे जिससे हिन्दुओं के प्राचीन आदर्शों पर आघात होता था। मुसलमानी धर्म की कट्टरता हिन्दुत्व के विपक्ष में होकर जनता के हृदय में असन्तोष और विद्रोह का बीज वपन कर रही थी. हिन्दुओं के पास शक्ति नहीं थी, अतएव वे मुसलमानों से युद्ध नहीं कर सकते थे। उन्हें अपमान का

वीरता और नायक की शक्ति का वर्णन है। रौद्र और वीभत्स भी युद्ध वर्णन में पाये जा सकते हैं। शत्रुओं की मृत्यु पर शत्रु नारियों के हृदय में करुणा की धारा भी प्रवाहित हुई है। अतएव हास्य और शान्त रस को छोड़कर प्रायः सभी रसों का समावेश इस काल के काव्यों में हो गया है, पर प्राधान्य वीर रस को ही है।

४. छन्द—इस काव्य में डिंगल भाषा के छन्द ही प्रयुक्त हुआ करते थे। दूहा, पाधड़ी, कवित्त आदि इसमें प्रधान थे। इन छन्दों में साहित्यिक सौन्दर्य न रहते हुए भी प्रवाह रहा करता था। छन्द भी ऐसे चुने जाते थे जिनसे वीर-रस की भावना को प्रश्रय मिलता था।

५. विशेष—इस काल के ग्रन्थों की प्रतियाँ दुष्प्राप्य हैं। अतएव उनके विषय में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। या तो इस काल के ग्रन्थ अधिकतर मौखिक रूप में हैं या उनके निर्देश मात्र ही मिलते हैं। राजस्थान की ख्यातों में उनके विवरण से ही हम परिचित हो सकते हैं। जो ग्रन्थ अब मिलते हैं, वे भी हमें अपने वास्तविक रूप में नहीं मिलते। भाषा के विकास के अनुसार या तो उनका रूप ही बदल गया है अथवा उनमें बहुत से प्रक्षिप्त अंश मिला दिए गए हैं। अतएव उनकी सच्ची समालोचना एक प्रकार से असम्भव है, जब तक हम भाषा-विज्ञान के अनुसार उस काल की भाषा के अनुसार किसी ग्रन्थ की भाषा से सन्तुष्ट न हो जावें। इन ग्रन्थों का महत्व इतना ही है कि उन्होंने हमारे साहित्य के आदि भाग का निर्माण किया, और भविष्य की रचनाओं के लिये मार्ग-निर्देशन किया। यदि वे साहित्यिक सौन्दर्य से नहीं तो भाषा-विकास की दृष्टि से तो अवश्य ही महत्वपूर्ण हैं।

प्रतिनिधित्व करते हुए उनके जीवन में उत्साह और साहस उत्पन्न किया। फलतः उन केन्द्रों की भाषा ही साहित्यिक भाषा हुई। धार्मिक-काल में दो भाषाओं को प्राधान्य मिला। वे भाषाएँ ब्रजभाषा और अवधी थीं। ब्रजभाषा कृष्ण की जन्मभूमि ब्रज प्रांत की भाषा थी और अवधी राम की जन्मभूमि अयोध्या की। राम और कृष्ण ही जनता के आराध्य थे किन्तु राम की अपेक्षा कृष्ण अधिक लोकरञ्जक हुए। इसीलिए ब्रजभाषा को अवधी से अधिक काव्य पर अधिकार करने का अवसर प्राप्त हुआ। दूसरी बात यह भी थी कि धर्म के कोमल और पवित्र भावों को प्रकाशित करने में डिंगल भाषा असमर्थ थी। उसमें वह कोमलता और श्रुति माधुर्य का गुण नहीं था जो ब्रजभाषा में था। डिंगल युद्ध के लिए शस्त्र की सहायिका थी, उसमें नाद था, उसमें शक्ति थी और वह परुष भावों के प्रकाशन करने की उपयुक्त शैली लिए हुए थी। ऐसी स्थिति में राजस्थान की साहित्यिक भाषा धार्मिक जनता के हृदय में नहीं पैठ सकती थी। वह चारणों तक अथवा चारणों के आश्रय-दाता राजाओं तक ही सीमित रह सकती थी। वह रण की भाषा थी, धर्म के स्फुरण की नहीं। फलतः ब्रजभाषा जिसमें फूलों की कोमलता है, अंगूर की मिठास है, साहित्य की भाषा स्वयमेव हो गई; क्योंकि धर्म की भावना प्रदर्शित करने के लिए इससे सरस और मधुर भाषा किसी प्रकार भी नहीं मिल सकती थी।

साहित्य के नवीन विकास के अवसर पर इस परिवर्तन काल में कुछ प्रवृत्तियाँ और प्रकट हुई थीं। दिल्ली जो राजनीति की रंगशाला थी, मुसलमानी प्रभुत्व में भी साहित्य की रंगशाला बनी रही। अन्तर केवल यही रहा कि वीर गीत गाने वाले कवियों के स्थान पर मनोरंजन और चमत्कार की रचना करने वाले प्रमोद स्वभाव का स्थान मिला। मुसलमानों के आगमन से जैसे वीरगाथा का अवसान और भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ वैसे ही मुसलमानों के आमोद प्रमोद के साथ

(आ) विविध साहित्य

१. हठयोग

गोरखनाथ—राजनीति की रङ्गभूमि से दूर पूर्व में धर्म सम्बन्धी साहित्य की एक विशेष धारा दृष्टिगोचर होती है। वह धारा हठयोग की है। इसके प्रवर्त्तक गोरखनाथ कहे जाते हैं। इनके आविर्भाव के सम्बन्ध में अभी तक बहुत सी भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं।

भारतीय दन्त-कथाओं में गोरखनाथ सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान माने गए हैं। वे मत्स्येन्द्रनाथ के प्रतिद्वन्द्वी थे और गोरखा (सं:—गोरक्ष) राज्य के संरक्षक सन्त थे। मत्स्येन्द्रनाथ से रक्षित समीपवर्ती नेपाल राज्य को ये अनेक वर्षों के अथक परिश्रम के बाद अपने संरक्षण में ला सके। इसके बाद इन्होंने मत्स्येन्द्रनाथ का शिष्यत्व ग्रहण किया। तिब्बती जनश्रुति के अनुसार गोरखनाथ एक बौद्ध बाजीगर थे और इनके सारे कनफटे शिष्य भी आदि में बौद्ध थे। किन्तु बारहवीं शताब्दी के अन्त में सेन वंश के नाश होने पर ये शैवमत में हो गए।[1]

नेपाल की एक दूसरी जनश्रुति के अनुसार गोरखनाथ ने बारह वर्षों तक वर्षा नहीं होने दी : वह भी एक साधारण कौशल के द्वारा। इन्होंने पानी के सभी उद्गमों की खोज की और उन्हें मन्त्र द्वारा एक ही सूत्र में बाँध लिया। इसके बाद वे उन सभी उद्गम सूत्रों पर बैठ गए। बारह वर्षों तक पानी किसी प्रकार भी नहीं बरस सका। चारों ओर हाहाकार मच गया। पानी किस प्रकार बन्धन से मुक्त किया गया, इसपर बौद्ध और ब्राह्मण [illegible] किन्तु यह घटना प्राचीन [illegible] है।

राजस्थान की जनश्रुतियाँ गोरखनाथ [illegible]

ही समय मुसलमानों [illegible]
[illegible]
जायगा।

डिंगल साहित्य में [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ([illegible])
दिया जाता है, किन्तु [illegible]
ठहरता है।

धार्मिक विचार-धाराओं [illegible] के लिए छोड़ कर चारण काल के अन्त के समय की जो धारा कवियों को लेकर बही, उसका निरूपण करना आवश्यक है। उस समय के हिन्दी साहित्य में कोई विशेष कवि या चारण नहीं हुआ जिसने अपना काव्य-कौशल प्रदर्शित कर हिन्दी-साहित्य में स्थायी प्रभाव प्राप्त करने का प्रयत्न किया हो। शासकों की विलासमयी प्रवृत्ति और हिन्दुओं में परिचय प्राप्त करने की इच्छा को लेकर जो भावना साहित्य में आई, वह सीमित होकर भी महत्वपूर्ण है। उस धारा का एक ही कवि हमारे सामने है। उसका नाम है अमीर ख़ुसरो। साथ ही साथ पूर्व में धर्म की भावना अंकुरित हो रही थी जिसमें गोरखनाथ ने। पतञ्जलि के योगसूत्र के आधार पर हठयोग का प्रचार किया। गोरखनाथ का समय ख़ुसरो के पूर्व है, अतः उन पर पहले विचार होना आवश्यक है। चारण काल के ह्रास में इसी विविध साहित्य का विस्तार हुआ।

— —— —

नीतिक परिस्थितियो मे भले ही लागू हो, पर इससे गोरखनाथ की भारत-प्रसिद्धि पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

गोरखनाथ का अभी तक कोई सम्बद्ध विवरण नहीं मिलता। यह सन्ताप की बात अवश्य है कि जिस गोरखनाथ का भारत के धार्मिक इतिहास मे इतना बड़ा महत्व है, उसके विषय मे प्रामाणिक अन्वेषण अभी तक नहीं हुआ।

मराठी साहित्य मे ज्ञानेश्वरी का बड़ा मान है। उसके लेखक है ज्ञानेश्वर महाराज। प० लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर बी० ए० ने मराठी मे 'श्री ज्ञानेश्वर चरित्र' नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसका अनुवाद हिन्दी मे श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे ने किया है।[1] उसके अनुसार श्री ज्ञानेश्वर महाराज के प्रपितामह श्री त्र्यम्बक पंत थे जो गोरखनाथ के समकालीन थे। त्र्यम्बक पंत के सम्बन्ध मे श्री पांगारकर लिखते है :—

"त्र्यम्बक पंत ने यज्ञोपवीत होने के पश्चात् देवगढ़ जाकर वेदशास्त्र का अध्ययन किया। इनकी पूर्व वयस देवगढ़ के यादव राजाओं की सेवा मे व्यतीत हुई और उत्तर वयस मे इन्होंने श्री गोरखनाथ की कृपा से भगवच्चिन्तन का आनन्द लिया। इन्होंने पॉच वर्ष तक बीड के देशाधिकारी का काम किया। शाके ११२९ (संवत् १२६४) प्रभव-नाम संवत्सर चैत्र शुक्ल ५ इन्दुवासर प्रातःकाल घटि ११ का एक राजाज्ञापत्र भिडारकर महोदय ने प्रकाशित किया है। उससे यह मालूम होता है कि जैत्रपाल महाराज ने दस सहस्र यादव मुद्रिका पर इन्हें बीड देश का अधिकारी नियुक्त किया।"[2]

"इस बात का उन्हे बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि राजसेवा और कुटुम्ब भरण मे ही सारी आयु खो दी। अब उन्होंने शेष जीवन भगवच्चिन्तन मे लगा कर सार्थक करने का निश्चय किया। ... ...

[1] प्रकाशक—गीता प्रेस गोरखपुर प्रथम संस्करण १९८८

[2] श्री ज्ञानेश्वर चरित्र पृष्ठ ८

जिनमे मुख्य गुग्ग या गूग है। ये जाहरपीर भी कहे जाते हैं, क्योंकि इन्हों-ने अपने शिशुपन मे ही एक सर्प खा लिया था। ये बागर या उत्तरी राजस्थान के शासक भी कहे गये हैं, इसीलिये इनका नाम बागर वीर भी कहा जाता है। इन्होंने बागर के शासक की हैसियत मे अनेक युद्ध भी किये। एक जनश्रुति के अनुसार ये अजमेर के पृथ्वीराज चौहान के समकालीन थे। दूसरी जनश्रुति के अनुसार ये अपने ४५ पुत्र और ६० भतीजो के साथ मुहम्मद गोरी के साथ युद्ध करते हुये मारे गये।[1]

गोरखनाथ मे देवत्व की स्थापना बहुत प्राचीन काल से है। जन-श्रुति के अनुसार वे सर्व-शक्तिशाली हैं। कभी-कभी तो वे शिव से भी बड़े बतलाए गये हैं। उनका मुख्य स्थान गोरखनाथ (गोरखपुर) मे है। वे नेपाल मे भी कुछ दिनों रहे और शैव मत का प्रचार करते रहे।

अनेक रङ्ग-रूप की इन दन्त-कथाओ के आधार पर वास्तविक तथ्य की खोज बहुत कठिन है। इतना तो निश्चित है कि इन्होंने नेपाल को महायान बौद्धमत से शैवमत मे रूपान्तरित किया। सम्भवतः वे स्वयं हिमालय वासी रहे हो, जहाँ बौद्धमत के साथ-साथ शिव-पूजा भी प्रचलित रही हो, क्योंकि पञ्जाब के उत्तर मे हिमालय के प्रदेश मे अभी भी कनफटे योगी हैं, जो शिव का पूजन करते हैं। यदि केवल गोरख राज्य से गोरखनाथ का सम्बन्ध है तो वे शिव के रूप भी माने जा सकते हैं, क्योंकि गोरख के संरक्षक देवता शिव हैं। ऐसी स्थिति मे गोरख के नाथ शिव रूप ही हो सकते हैं। गोरखनाथ के संरक्षण मे गोरखो ने नेपाल पर विजय प्राप्त की थी, जो उस समय बौद्ध आर्य अव-लोकितेश्वर (मत्स्येन्द्रनाथ) के संरक्षण मे था। इस प्रकार नेपाल भी गोरखो के प्रभाव मे आया। यह प्रमाण नेपाल की धार्मिक और राज-

---

१ Religion and Folklore of Northern India
By W Crooke (1926)

नागपंथ के अनुयायी कनफटे कहलाते है क्योकि ये अपने कानो के निम्न भाग को फाड़ कर उसमे बड़ा छेद कर लेते है। कभी कभी वे इस छेद मे स्फटिक का कुण्डल भी धारण करते है। ये अनुयायी दो भागो मे विभक्त है। एक तो वे जो भारत के उत्तर-पूर्वीय भाग के निवासी हैं और गोरखनाथ को अपना गुरु मानते हैं। दूसरे वे जो पश्चिमी भारत के निवासी है और धर्मनाथ से अपनी वंश-परम्परा मानते है।

गोरखनाथ धर्म-साहित्य के एक बड़े लेखक माने जाते है किन्तु उनकी ग्रन्थ-रचना संस्कृत में ही कही जाती है। उनकी बहुत सी संस्कृत पुस्तके आज भी उपलब्ध है, पर उनकी प्रामाणिकता के विषय मे सन्देह है। उनकी लिखी पुस्तको मे प्रधान निम्नलिखित है :—

गोरक्ष शतक, चतुर्शीत्यासन, ज्ञानामृत, योगचिन्तामणि, योग सिद्धान्त पद्धति, विवेक मार्तण्ड, सिद्धसिद्धान्त पद्धति आदि।

यहाँ पर उनकी हिन्दी रचनाओ से ही विशेष सम्बन्ध है। गोरखनाथ जी की रचना अधिक नहीं कही जाती। श्री क्षितिमोहन सेन कविता के विस्तार से कवियों का निम्नलिखित क्रम रखते हैं :—

१—दादू और उनके भक्त
२—कबीर
३—नामदेव
४—रविदास
५—हरिदास
६—रामानन्द
७—पीपा
८—नरसी मेहता
९—सूरदास
१०—मत्स्येन्द्रनाथ

ऐश्वर्य भरिया उठिते लागिल। क्रमे माध्यमिक मतवादे बुद्ध धर्म, ईश्वर सबाइ शून्य हइया उठिलेन। वज्रयान योगाचार प्रभृति मतवादेर कृपाय शून्यइ क्रमे हइया दाँड़ाइल विश्वेर मूलतत्त्व। शून्य छाड़ा विश्वजगत देवदेवी प्रभृति किछुइ नय, सबइ माया।

एइ शून्यइ क्रमे अलक्ष्य निरञ्जन हइया नाथ पन्थ निरञ्जन पन्थ प्रभृतिदेर मध्ये स्थान पाइल। गोरखनाथ प्रभृति योगीदेर मतवादेओ इहा बेश स्थान जमाइया बसिल। औघड़ प्रभृति बामपन्थी देर मतेओ शून्यवादेर गौरवमय स्थान। चौरासी सिद्धादेर उपदेशे शून्य एकटि खुब बड़ कथा।"[1]

अर्थात् महायान की साधना में शून्य का महत्त्व ही अनेक काल से सुख और ऐश्वर्य पूर्ण हो क्रमानुसार परिवर्द्धित हुआ। इसके बाद बौद्धधर्म के मध्यकाल में बौद्धधर्म और भी शून्य में सम्बद्ध हो गया। वज्रयान के योग और आचार मतावलम्बियों की कृपा से तो शून्यवाद ही आगे चल कर विश्व का मूल तत्त्व हो गया। शून्य को छोड़ कर संसार में देवी देवताओं का अस्तित्व ही कुछ न रह गया। शून्य के अतिरिक्त सभी माया है।

यही शून्य क्रमानुसार अलक्ष्यनिरञ्जन होकर नाथ पन्थ, निरञ्जन पन्थ, आदि मतों में स्थान पा गया। गोरखनाथ आदि योगियों के मत में तो इसने विशेष स्थान प्राप्त कर लिया। औघड़ पन्थ आदि वामपन्थियों में तो शून्यवाद का स्थान गौरवपूर्ण है। चौरासी सिद्धों के उपदेशों में एक मात्र शून्य की ही गुणगाथा का विस्तार है।

गोरखनाथ ने इसी शून्यवाद का प्रचार किया है। इसी कारण उन्हें योग की साधना को महत्त्व देना पड़ा। यह योग नाथ पन्थ का आवश्यक अङ्ग है जिसका प्रचार चौदहवीं शताब्दी में समस्त उत्तर भारत में हुआ।

1 दादू—श्री क्षितिमोहन सेन, (विश्वभारती ग्रन्थालय, कलकत्ता) पृष्ठ १७६

गोष्ठी और महादेव गोरख संवाद ग्रन्थ भी गोरखनाथ के लिखे न होंगे। क्योंकि गणेश और महादेव की भावना को विवाद के लिए गोरखनाथ अपने मन में ला ही नहीं सकते थे। यह तो शिष्यों ने गोरखनाथ की श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिए इस प्रकार की पुस्तकों की रचना की होगी।

इन्हीं नामों के अनुरूप हमें कुछ ग्रंथ कबीर के भी मिलते हैं, जैसे कबीर गोरख की गोष्ठी, कबीर जी की साखी, मुहम्मद बोध आदि। इन तीनों ग्रन्थों को कबीर जी के द्वारा न लिखा हुआ मान कर उनके शिष्यों द्वारा लिखा हुआ मानते हैं। कबीर गोरख के समकालीन भी नहीं थे, अतः उनकी गोष्ठी तो किसी प्रकार हो ही नहीं सकती। इसी प्रकार मुहम्मद भी कबीर से ज्ञान-लाभ नहीं कर सकते और कबीर अपने को 'कबीर जी' नहीं लिख सकते। कबीर जी के शिष्यों ने ही उनके नाम से इन ग्रंथों की रचना की होगी। यही सिद्धान्त गोरखनाथ के ग्रन्थों पर भी घटित होता है।

इतना अवश्य है कि गोरखनाथ जी ने अपने नाथ-पन्थ के प्रचार के लिये जन-समुदाय की भाषा का आश्रय अवश्य ग्रहण किया होगा। गौतम बुद्ध ने भी अपने मत का प्रचार संस्कृत को छोड़ कर जन समुदाय की भाषा पाली में किया था। सर्व-साधारण को अपने सिद्धान्त समझाने के लिए वे हिन्दी में कुछ लिखने के लिये अवश्य बाध्य हुए होंगे। पर उनके ग्रन्थ निश्चित नहीं हैं। मिश्रबन्धुओं का कथन है कि "इस महात्मा ने प्रायः ४० छोटे-बड़े ग्रंथ रचे और व्रजभाषा गद्य में भी एक अच्छा ग्रन्थ बनाया। सो ये महात्मा गद्य के प्रथम कवि हैं।"[1]

हिन्दी के सभी इतिहासकारों ने गोरखनाथ के निम्नलिखित अवतरण को ही सभी स्थानों में उद्धृत किया है :—

"श्री गुरु परमानन्द तिनको दण्डवत है। हैं कैसे परमानन्द आनन्द

1. मिश्रबन्धु विनोद, प्रथम भाग, पृष्ठ ११२

११—गोरखनाथ[1]

आश्चर्य की बात है कि श्री सेन ने भक्तों की इस नामावली में तुलसी, मीरा और विद्यापति का नाम क्यों छोड़ दिया। जो हो, सेन महाशय के कथनानुसार भक्त कवियों में रचना के विस्तार की दृष्टि से गोरखनाथ का नम्बर ग्यारहवाँ आता है। यों तो गोरखनाथ के द्वारा अनेक पुस्तकें लिखी कही जाती हैं, पर उनका विशेष विवरण अभी तक ज्ञात नहीं हुआ। उनकी हिन्दी रचनाओं में निम्नलिखित पुस्तकें प्रधान मानी गई हैं:—

गोरख गणेश गोष्ठी, महादेव गोरख संवाद, गोरखनाथ जी की सत्रह कला, ज्ञान सिद्धान्त जोग, गोरखनाथ के पद, गोरखनाथ की बानी।[2]

मिश्रबन्धुओं ने उनके दस ग्रंथ महत्त्वपूर्ण समझे हैं:—गोरखबोध, दत्त गोरख संवाद, गोरखनाथ जी के पद, गोरखनाथ जी के स्फुट ग्रन्थ, ज्ञान सिद्धान्त योग, ज्ञान तिलक, योगेश्वरी साखी, नरवै बोध, विराट पुराण और गोरखसार।[3]

इनमें से कौन पुस्तकें स्वयं गोरखनाथ जी की लिखी हुई हैं और कौन उनके शिष्यों की, यह कहना कठिन है। पर गोरखनाथ जी की सत्रह कला स्वयं गोरखनाथ जी की लिखी हुई न होगी, क्योंकि पुस्तक का शीर्षक ही लेखक के लिए आदर-सूचक है। कोई भी भक्त अपने नाम को 'जी' प्रत्यय के साथ न लिखेगा। अतः यह पुस्तक तो गोरखनाथ जी के शिष्यों द्वारा ही लिखी गई होगी, जिन्होंने अपने गुरु को आदर-सूचक प्रत्यय के साथ स्मरण किया है। इसी प्रकार गोरख गणेश

---

१ दादू, श्री क्षितिमोहन सेन, पृष्ठ १२१

२ खोज रिपोर्ट सन १९००, पृष्ठ ६६

३ मिश्रबन्धु विनोद, प्रथम भाग, पृष्ठ २६१

का धार्मिक अत्याचार बढ़ रहा था, गोरखनाथ के शि[illegible]
विरोध अपनी रचनाओं द्वारा किया, था। उन्होंने इस बा[illegible]
की थी कि हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रभु के सेवक है और
दोनों मे कोई अन्तर नहीं देखते।[1]

अतः जहाँ गोरखनाथ के शिष्य एक ओर योग के द्वारा धर्म का प्रतिपादन कर रहे थे, वहाँ दूसरी ओर वे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर कुछ छन्द भी लिख दिया करते थे। उन्होंने ऐसी रचना कितनी की है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। गोरखनाथ और उनके शिष्यों के ग्रन्थों की खोज होने पर ही उनकी शैली पर विश्वस्त रूप से प्रकाश डाला जा सकेगा।

गोरखनाथ और उनके शिष्यों के बाद साहित्य में अमीर ख़ुसरो का नाम आता है। ख़ुसरो की रचनाओं से प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषी परिचित हैं। उनकी विशेषताओं के विषय में कुछ विस्तार से वर्णन होगा।

२. मनोरंजक साहित्य

अमीर ख़ुसरो—चारण काल की संध्या में अमीर ख़ुसरो ने साहित्य को विविध रंगों से रंजित किया। जब कि साहित्य के [illegible] निश्चित नहीं थे और रचनाएँ राजनीति के संकेत पर [illegible] समय विनोद और मनोरंजन की प्रवृत्तियों को जन्म देना [illegible] नहीं था। यही अमीर ख़ुसरो की विशेषता थी। साहित्य [illegible] परिस्थिति डिंगल काव्य की रचनाओं तक ही सीमित [illegible]

[1] हिन्दुस्तानी [illegible]

स्वरूप है शरीर जिनि को ॥ जिन्हों के नित्य गायें ते शरीर चेतन्नि अरु आनंदमय होतु है। मैं जु हौं गोरिष सो मछन्दर नाथ को दंडवत करत हौं। है कैसे वे मछन्दर नाथ ॥ आत्मा ज्योति निश्चल है अंतहकरन जिनि को अरु मूलद्वार तैं छह चक्र जिनि नीकी तरह जानैं अरु जुग काल कल्प इनिकी रचना तत्व जिनि गायो। सुगंध को समुद्र तिनि को मेरी दण्डवत ॥ स्वामी तुमें तो सतगुरु अम्हे तो सिष सबद एक पूछिबा दया करि कहिबा मनि न करिबा रोस।"

यह अवतरण सम्भवतः इसलिए उद्धृत किया जाता है कि इसमें गोरख का नाम प्रथम पुरुष में है। गोरखनाथ जी अधिकतर पूरब और उत्तर के निवासी थे, अतः उन्हें साधारणतः पूरबी भाषा का प्रयोग करना चाहिये था। इसके विपरीत उनके द्वारा लिखा हुआ यह अवतरण व्रजभाषा में है। फिर इसमें पूछिबा कहिबा आदि शब्द विशेष हैं, जिन्हें पण्डित रामचन्द्र शुक्ल राजस्थान के शब्द मानते हैं।[1] जिस समय व्रजभाषा में कविता की शैली का जन्म ही नहीं हुआ था और वह साहित्य में मान्य भी नहीं थी, उस समय एक पूरब का निवासी अपने प्रान्त की भाषा में न लिख कर सुदूर व्रजभाषा के अप्रचलित गद्य में अपना ग्रन्थ लिखे, यह बात विश्वसनीय नहीं जान पड़ती। यह माना जा सकता है कि गद्य का यह अवतरण परिवर्ती काल में गोरखनाथ के किसी शिष्य ने (जो राजपूताने का निवासी होगा ?) अपने पन्थ-प्रवर्त्तक गोरखनाथ के नाम से लिख दिया हो।

गोरखनाथ के शिष्यों ने तो बहुत सी रचनाएँ की हैं, पर वे किसी शिष्य विशेष के नाम से सम्बद्ध नहीं है, जिस प्रकार कबीर के शिष्य धर्मदास की रचनाएँ हैं। कहा जाता है कि गोरखनाथ के किसी शिष्य ने काफिर बोध और अवलि सलूक नाम की रचनाएँ मुहम्मद-बिन-तुगलक का ध्यान आकृष्ट करने के लिए की थी। उस समय जब मुसलमानों

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल) पृष्ठ ६८०

गया। अमीर ख़ुसरो नाम ही सब जगह प्रसिद्ध हो गया। उनका जन्म एटा जिला के पटियाली ग्राम में संवत् १३१० में हुआ था। बालकपन ही में ये शेख निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य हो गए थे। ये बलबन के दरबार में उसके पुत्र मुहम्मद के काव्य-विनोद के लिए नौकर रख लिए गए। धीरे-धीरे बढ़कर वे दरबार के राजकवि हो गए।[1] इन्होंने अपने जीवन-काल में राजनीतिक हलचलों का जितना अधिक अनुभव किया था, उतना हिन्दी के किसी भी कवि ने नहीं किया। ग़ुलाम वंश के पतन से लेकर इन्होंने तुगलक वंश का आरम्भ तक देखा था। खिल्जी वंश का शासन-काल तो इनके जीवन-काल का मध्य युग था। इस प्रकार इन्होंने दिल्ली के सिंहासन पर ११ बादशाहों का आरोहण देखा था। दरबारी होने के कारण इनकी कविता मुसलमानी आदर्शों के आश्रय में पोषित हुई। यही कारण है कि वह बड़ी रसीली और मनोरंजक है। फारसी के अप्रतिम विद्वान होते हुए भी इन्होंने हिन्दी की उपेक्षा नहीं की—उस हिन्दी की, जो दिल्ली के आसपास बोली जाती थी। अनायास ही इन्होंने खड़ी बोली हिन्दी को प्रथम बार कविता में स्थान दिया। यही कारण है कि ये खड़ी बोली के आदि कवि कहे जाते हैं। इस प्रकार ये युग-परिवर्तनकारी हुए। जब निज़ामुद्दीन औलिया की मृत्यु हुई तो ये बड़े दुःखित हुए। उसी शोक में संवत् १३८२ में इनकी मृत्यु हो गई।

ख़ुसरो ने हिन्दी साहित्य के साथ बड़ा उपकार किया। जहाँ इन्होंने फारसी में अनेकों मसनवियाँ लिखीं,[2] वहाँ हिन्दी को भी नहीं भुलाया। इन्होंने खड़ी बोली हिन्दी में कविता कर मुसलमानी शान को

---

१ Medieval History page 20[illegible]
Dr Ishwari Prasad

२ मसनवी किरानुस्सादैन, मसनवी मतलउल अनवार मसनवी [illegible]

भी गंभीर धर्म की भावना गोरखनाथ के शिष्यों द्वारा प्रचारित हो रही थी, उस समय अमीर ख़ुसरो ने साहित्य के लिए एक नवीन मार्ग का अन्वेषण किया और वह था जीवन को संग्राम और आत्म शासन की दुरूह और कठोर शृंखला से मुक्त कर आनन्द और विनोद के स्वच्छन्द वायुमंडल में विहार करने की स्वतंत्रता। यही अमीर ख़ुसरो की मौलिकता थी।

चारण साहित्य जिस पथ पर चल रहा था, उस पथ का अनुसरण ख़ुसरो ने नहीं किया, यद्यपि उन्होंने अपने समय के इतिहास की रचना अपनी रचनाओं में अवश्य की। अपनी किरानुस्सादैन नामक मसनवी में उन्होंने चंगेज़ ख़ाँ के नेतृत्व में मंगोलों के आक्रमण का वर्णन किया है। यह वर्णन अतिरंजित अवश्य है, क्योंकि ख़ुसरो मंगोलों के द्वारा कैद कर लिये गए थे और बहुत सताए गए थे।[1]

काव्य की दो भाषाएँ अभी तक मान्य थीं। एक तो राजस्थानी जिसमें डिंगल काव्य की रचना हो रही थी और दूसरी अपभ्रंश से निकली हुई हिन्दी, जिसमें हम्मीर रासो आदि की रचनाएँ थीं। ये दोनों साहित्यिक भाषाएँ थीं। जन-समाज की भाषा का सहारा लेकर अभी तक [illegible] ने लेखनी नहीं उठाई थी। गोरखनाथ ने अवश्य अपने [illegible] का प्रचार जन-समाज की भाषा को लेकर किया था, पर उस [illegible] के प्रामाणिक ग्रन्थ हमारे सामने नहीं हैं। अमीर ख़ुसरो जन-[illegible] की खड़ी बोली भाषा को साहित्यिक रूप देने में सबसे पहले [illegible] हुए। इस सम्बन्ध में इतिहास के सामने उनके ग्रन्थ यथेष्ट [illegible] हैं।

[illegible] ख़ुसरो का वास्तविक नाम अबुलहसन था। उनकी काव्य-[illegible] का [illegible] अबुलहसन बिलकुल ही विस्मृत होकर रह

[illegible]

काव्य-शास्त्र है तो हिन्दी किसी प्रकार भी इस क्षेत्र मे हीन नहीं है। जो व्यक्ति इन तीनो भाषाओ का ज्ञाता है, वह समझ लेगा कि मै न तो भूल कर रहा हूँ और न अतिशयोक्ति ही।"[१]

ख़ुसरो की भाषा के सम्बन्ध मे डॉक्टर सैयद महीउद्दीन कादरी का कथन इस प्रकार है :—

"यह वह ज़माना था कि हिन्दोस्तान के हर हिस्से मे अज़ीमुश्शान सानी इन्क़लाबात हो रहे थे और नई ज़बानें आलमोजूद मे आ रही थीं। चुनांचे ख़ुसरो ने भी इन तब्दीलियो की तरफ इशारा किया है और पंजाब मे और देहली के इतराफ व इकनाफ जो बोलियाँ इस वक़्त मरूज थीं उनके मुख़्तलिफ नाम गिनाए है।...इनकी ज़बान ब्रजभाषा से मिलती-जुलती है। यह यक़ीन के साथ नहीं कहा जा सकता कि जिस ज़बान मे वह शेरगोई करता था वह वही थी जो आम तौर पर हिन्दू मुसलमान बोलते है।"[२]

डॉक्टर साहब अपने वक्तव्य मे भूल कर गए है। ख़ुसरो की ज़बान ब्रजभाषा नहीं थी। ब्रजभाषा के शब्दो का आ जाना ही ब्रजभाषा नहीं है। जब तक किसी भाषा के क्रियापद और कारक चिह्नादि व्याकरण की दृष्टि से प्रयुक्त न हो तब तक उस भाषा का प्रयोग पूर्ण रूप से नहीं माना जा सकेगा। यही बात ख़ुसरो की कविता मे है। शब्द चाहे ब्रज-भाषा के भले ही हो, पर क्रिया और कारक चिह्न आदि खड़ी बोली के है। ऐसी स्थिति मे ख़ुसरो की भाषा को ब्रजभाषा न मान कर खड़ी बोली मानना ही अधिक समीचीन होगा।

---

१ The History of India as told by its own Historians. The Mohammedan P[eriod] Vol III Appendix ... Henry Elliot

२ उर्दू शहपारे (१९२९ संस्करण) पृष्ठ १०

का ध्यान हिन्दी की ओर आकर्षित किया : खालिकबारी की रचना कर हिन्दी, फारसी और अरबी को परस्पर समझने का मौका दिया। उसमें हिन्दी, अरबी और फारसी के समानार्थवाची शब्दों का समूह है, जिससे इन तीनों भाषाओं का ज्ञान सरल और मनोरंजक हो गया है।

अभी तक साहित्य किसी नरेश के यशोगान में अथवा जीवन के महत्वपूर्ण गम्भीर स्वरूप के वर्णन ही में अपनी सार्थकता समझता था, पर ख़ुसरो ने साहित्य में ऐसे भावों की सृष्टि की जिनसे साहित्य का दृष्टिकोण ही बदल गया। साहित्य जीवन की मनोरंजक वस्तु हो गया। ऐसा हिन्दी साहित्य में पहली बार हुआ।

ख़ुसरो ने हिन्दी को किसी प्रकार भी अरबी या फारसी से हीन और तुच्छ नहीं माना। वे अपनी 'आशिका' नामक रचना में हिन्दी की प्रशंसा जी खोल कर करते हैं :—

"किन्तु मेरी यह भूल थी, क्योंकि यदि आप इस विषय पर अच्छी तरह से विचार करें तो आप हिन्दी भाषा को फारसी से किसी प्रकार भी हीन न पावेंगे। वह भाषाओं की स्वामिनी अरबी से कुछ हीन अवश्य है, पर राय और रूम (परशिया के शहर) में जो भाषा प्रचलित है, वह हिन्दी से हीन है। यह मैंने बहुत विचारपूर्वक निर्धारित किया है।

"हिन्दी अरबी के समान है, क्योंकि इन दोनों में से कोई भी मिश्रित नहीं है। यदि अरबी में व्याकरण और शब्द-विन्यास है तो हिन्दी में भी वह एक अक्षर कम नहीं है। यदि आप पूछें कि उसमें

ख़ुसरो, मसनवी लैली व मजनूँ, मसनवी आईने इस्कन्दरी, मसनवी हफ्त विहिश्त, मसनवी खिजनामह, मसनवी नूह सिपहर, मसनवी तुगलक नामा आदि.

The History of India by Henry Elliot, Vol III Appendix Page 556.

सङ्गीत-शास्त्र का ज्ञाता था, जैसा कि १४वीं शताब्दी के गायक गोपाल-नायक के साथ उसके वादविवाद से ज्ञात होता है।"[1]

डा० ईश्वरीप्रसाद आदि विद्वानो ने ख़ुसरो की प्रशंसा अतिशयोक्ति-पूर्ण की है। उन्होने उसे संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियो की पंक्ति मे बिठला दिया है। उसने जीवन का जो चित्रण किया है, उसके लिए उसे महाकवि या कवियो मे राजकुमार (The Prince Among Poets) कहा है। ख़ुसरो की जो कविता हमे प्राप्त है, उसमे तो जीवन की विवेचना नही के बराबर है। सम्भव है, उसने फारसी मे जो रचनाएँ की है, उनमे जीवन की महान् समस्याओ पर प्रकाश डाला हो, अथवा हिन्दी मे ही कुछ रचनाएँ इस प्रकार की हों, जो अब अप्राप्त हो। पर जितनी कविता ख़ुसरो की आज तक प्राप्त हो सकी है, उसमे तो जीवन के किसी गम्भीर तत्त्व का निरूपण नहीं है, उसमे जीवन की विवेचना भी नहीं है। उसमे न तो हृदय की परिस्थितियो का चित्रण है और न कोई सन्देश ही। वह केवल मनोरंजन की सामग्री है। जीवन की गम्भीरता से ऊब कर कोई भी व्यक्ति उसमे विनोद पा सकता है। पहेली, मुकरियो और दोसखुनों के द्वारा उन्होंने

---

1. Khusro was not merely a poet; he was also a fighter and a man of action and took part in several campaigns of which he has given account in his works. It is impossible here to attempt a detailed criticism of his works, which will require a volume by itself. Suffice it to say that he was a gifted bard and singer whose flights of fancy, command over the instrument of language [illegible] jects and the marvellous ease [illegible] describes human passions and em[illegible] love and [illegible] him [illegible]

२. इतिहास—.खुसरो ने इतिहास भी लिखा है, पर वह सब फारसी भाषा में है। उन्होंने मसनवियों में वर्णनात्मक ढंग से तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं पर प्रकाश डाला है। हिन्दी में इस प्रकार की कोई भी रचना प्राप्त नहीं है।

३ कोष—.खुसरो ने फारसी अरबी और हिन्दी का एक कोष लिखा है जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। उस विशाल कोष का केवल संक्षिप्त रूप ही मिलता है, जो खालिकबारी नाम से प्रसिद्ध है। डॉक्टर कादिरी इसे .खुसरो का लिखा हुआ नहीं मानते। उनके अनुसार खालिक़बारी खुसरो के बहुत बाद की रचना है।

४ सङ्गीत—खुसरो सङ्गीतज्ञ थे, अतः उन्होंने सङ्गीत पर भी कुछ लिखा है। कहा जाता है कि बरवा राग में लय रखने की रीति इन्होंने ही प्रारम्भ की। कव्वाली में उन्होंने अनेक नये राग निकाले जिनका प्रचार अभी तक है। इनके बसन्त के पद तो प्रसिद्ध ही है।

५. पहेलियाँ—पहेलियों के लिए तो खुसरो प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार की पहेली और मुकरी कहने वाला हिन्दी साहित्य में एक भी नहीं है, इस क्षेत्र में ये अद्वितीय है। इन पहेलियों में जहाँ कौतूहल है, वहाँ रसिकता और विनोद की मात्रा भी पूरी है। ये पहेलियाँ छः प्रकार की है :—

(अ) अन्तर्लापिका—(जिनका उत्तर पहेली में ही छिपा हुआ है) उदाहरणार्थ :—

श्याम बरन और दाँत अनेक। लचकत जैसी नारी।
दोनों हाथ से खुसरो खींचे और कहे न आरी॥

(आरी)

(आ) बहिर्लापिका (जिनका उत्तर पहेली में न [illegible] सोचकर बतलाया जाय) जैसे —

सजीव और सरस रक्खा, वहाँ उसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में भी सन्देह को स्थान मिला।

ख़ुसरो की कविता निम्नलिखित धाराओं में प्रवाहित हुई है :—

१. ग़ज़ल—ऊपर कहा ही जा चुका है कि ख़ुसरो की कविता में गम्भीरता के लिए कोई स्थान नहीं। उन्होंने उसे विनोद और हास्य की प्रवृत्तियों से भर रक्खा है। यदि गम्भीर रचनाएँ उन्होंने की भी हों, जो जीवन की परिस्थितियों का उद्घाटन करती हैं, तो वे हमें अप्राप्य हैं। विरह वर्णन की एक गज़ल अवश्य प्राप्त है, जिसमें स्त्री के व्याकुल हृदय का चित्र है। पर उस गज़ल की एक पंक्ति में फ़ारसी और दूसरी पंक्ति में ब्रजभाषा मिश्रित खड़ी बोली रक्खी गई है, जिससे उस ग़ज़ल में विनोद की मात्रा आ ही जाती है। वह गज़ल इस प्रकार है :—

ज़े हाल मिस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल दुराय नैना बनाए बतियाँ।
कि ताबे हिज्राँ न दारम ए जाँ न लेहु काहे लगाय छतियाँ॥
शबाने हिज्राँ दराज़ चूँ ज़ुल्फ़ व रोज़े वसलत चु उम्र कोताह।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ॥
यकायक अज़ दिल दो चश्मे जादू बसद फ़रेबम बेबुर्द तसकीं।
किसे पड़ी है जो जा सुनावे पियारे पी को हमारी बतियाँ॥
चु शमअ सोज़ाँ चु ज़र्रः हैराँ हमेशः गिरियाँ बइश्क आँ मह।
न नींद नैना न अङ्ग चैना न आप आए न भेजी पतियाँ॥
बहक्क़े रोज़े विसाले दिलबर कि दाद मा रा फ़रेब ख़ुसरो।
स पीत मन की दुराए राखूँ जो जान पाऊँ पिया की घतियाँ॥[1]

[1] आबेहयात—(मुहम्मद हुसैन आज़ाद) नवाँ संस्करण १९१७, इस्लामिया स्टीम प्रेस, लाहौर

और मुल्ला दाऊद। तीनों ने भिन्न भिन्न प्रकार की रचनाएँ कीं। गोरखनाथ ने हठयोग साहित्य सम्बन्धी, अमीर ख़ुसरो ने मनोरंजक साहित्य सम्बन्धी और मुल्ला दाऊद ने प्रेम साहित्य सम्बन्धी। इस काल की प्रवृत्तियाँ किसी प्रकार भी साम्य नहीं रखतीं।

चारण काल के विविध साहित्य का सिंहावलोकन

राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण चारणकाल की रचनाओं में भी महान परिवर्तन हुआ। यह तो स्पष्ट किया ही जा चुका है कि डिंगल की रचनाएँ क्यों न्यूनतम होने लगी थीं, साथ ही साथ साहित्य में अन्य रचनाओं का सूत्रपात कैसे होने लगा था। डिंगल रचनाओं के बाद साहित्य के आदर्श बिलकुल ही अनिश्चित थे, इसीलिए एक विशेष धारा को लेकर रचनाएँ न हो सकीं।

१ वर्ण्य विषय

डिंगल की रचनाओं का विषय तो राजाओं का यशोगान था। राजाओं की अवनति होने के बाद वह वर्ण्य विषय रक्षित न रह सका। एक प्रधान प्रवृत्ति के अभाव में अनेक प्रकार की रचनाएँ होने लगीं। गोरखनाथ और उनके शिष्यों ने धर्म पर लिखा, अमीर ख़ुसरो ने मनोरंजन पर और मुल्ला दाऊद ने प्रेम विषय पर। इस प्रकार तीन भिन्न भाँति के विषय एक ही समय में लिखे जाने लगे। इसका कारण यही था कि चारणों की अवनति के बाद साहित्य एक स्थान पर स्थिर न रह सका।

२, भाषा—चारण काल की भाषा डिंगल थी और उस पर राजस्थानी का विशेष प्रभाव था। साथ ही साथ अपभ्रंश भाषा के कुछ चिह्न भी शेष रह गए थे। विविध साहित्य के काल में भाषा को यथेष्ट परिमार्जन मिला। हिन्दी अब स्वतंत्र रूप से उठ खड़ी हुई। हठयोग की भाषा में ब्रजभाषा का [illegible]

जा सकता कि नूरक और चन्दा की प्रेम कथा में भाषा का क्या स्वरूप है। यदि इस प्रेम-कथा की कोई प्रति मिल सकेगी तो वह प्रेम-काव्य की परम्परा पर यथेष्ट प्रकाश डालने में सहायक हो सकेगी।

मुल्ला दाऊद अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन था। अलाउद्दीन खिलजी सन् १२९६ में राजसिंहासन पर बैठा।[1] इसकी मृत्यु २ जनवरी सन् १३१६ में हुई।[2] अतः अलाउद्दीन खिलजी का राजत्वकाल सन् १२९६ से सन १३१६ (सं० १३५३ से सं० १३७३) तक मानना चाहिए। इसके अनुसार मुल्ला दाऊद का कविता-काल संवत् १३७० के आसपास ही मानना चाहिए। श्री मिश्रबन्धु मुल्ला दाऊद का कविता-काल सं० १३८५ मानते हैं और डॉक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल सं० १४९७ (सन् १४४०)। श्री मिश्रबन्धु द्वारा दिया हुआ सम्वत तो किसी प्रकार माना भी जा सकता है पर डॉ० बड़थ्वाल के द्वारा दिया हुआ संवत् तो अलाउद्दीन के बहुत बाद का है। वे मुल्ला दाऊद का आविर्भावकाल सन् १४४० मानते हुए उसे अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन मानते हैं।[3] अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु तो सन् १३१६ में ही हो गई थी। फिर यदि मुल्ला दाऊद सन् १४४० में हुआ तो वह अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन कैसे हो सकता है ? अतः डा० बड़थ्वाल का दिया हुआ मुल्ला दाऊद का समय अशुद्ध है।

अस्तु, चारणकाल के उत्तरकाल में डिंगल साहित्य के अस्पष्ट प्रवाह के साथ तीन महान लेखक हुए। गोरखनाथ, अमीर खुसरो

---

१ Mediaeval India Page 239
Dr Ishwari Prasad

२ Ibid Page 278

३. The Nirgun School of Hindi Poetry, Page 10
Dr Pitambar Dutt Bardthwal

तीसरा प्रकरण

भक्ति-काल की अनुक्रमणिका

सन्त-काव्य, प्रेम-काव्य, राम-काव्य, कृष्ण-काव्य

वीरगाथा काल के समाप्त होने के पहले ही साहित्य के क्षेत्र में क्रान्ति आरम्भ हो गई थी। मुसलमानों के बढ़ते हुए आतंक ने जनता के साथ साहित्य को भी अस्थिर कर दिया था। मुसलमानी शक्ति और धर्म के विस्तार ने साहित्य का दृष्टिकोण ही बदल दिया था और चारणों की रचनाएँ धीरे-धीरे कम होती जा रही थीं। वे अब विशेषतः राजस्थान ही में सीमित थीं। मध्यदेश में जहाँ मुसलमानी तलवार का पानी राज्यों के अनेक सिंहासनों को डुबा रहा था, चारणों का आश्रयदाता कोई न था। न तो हिन्दू राजाओं के पास बल था और न साहस ही। उनकी परिस्थिति अत्यन्त अनिश्चित हो गई थी। खिलजी वंश के अलाउद्दीन ने समस्त उत्तरी भारत को अपने आधिपत्य में ले लिया था। दक्षिण-भारत भी उसके आक्रमणों से नहीं बचा। देवगिरि के यादव राजा रामचन्द्र को पराजित कर उसने एलिचपुर अपने राज्य में मिला लिया। वारंगल और होयसिल के राजा को भी उसका आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। महाराष्ट्र और कर्नाटक के राजाओं ने भी आधीनता स्वीकार कर ली। अलाउद्दीन के सहायक मलिक काफ़ूर ने तो अपनी राज्य-लिप्सा के कारण सन् १३१२ में यादव राजा का अन्त ही कर दिया। मुसलमानों की इस बढ़ती हुई ऐश्वर्याकांक्षा ने हिन्दुओं के अस्तित्व पर भी प्रश्नवाचक चिन्ह लगा दिया। जिन हिन्दू राजाओं ने

आश्रय ग्रहण किया। सम्भव है, इस समय और भी कवि हुए हों, जिन्होंने साहित्य-निर्माण में सहयोग दिया हो, पर उनके नाम अभी तक अज्ञात हैं। यद्यपि इस समय गद्य का प्रयोग केवल धर्म-प्रचार के लिये किया गया था, तथापि साहित्य के निर्माण-काल में इसे भी स्थान दिया गया। यह नहीं कहा जा सकता कि मुल्ला दाऊद की प्रेम-कहानी गद्य में है या पद्य में। अतः गोरखनाथ अथवा उनके शिष्यों की रचनाएँ गद्य-साहित्य में प्रथम स्थान पाने की अधिकारिणी हैं।

राजा और प्रजा दोनों के विचार इसी प्रकार भक्तिमय हो गए और वीरगाथा काल की वीररसमयी प्रवृत्ति धीरे धीरे शान्त और शृंगार रस में परिणत होने लगी।

राजाओं का राजनीतिक दृष्टिकोण अस्पष्ट और धुँधला हो गया, अतएव वे अपनी महत्त्वाकांक्षा और आदर्श के उच्च आसन पर स्थिर न रह सके। उनके आदर्शों में परिवर्तन होने के कारण चारणों के आश्रय का भी कोई स्थान नहीं रह गया। वे अब किसकी वीर-गाथा गाते और किसे रण के लिए उत्साहित करते! अतः वे भी अपने क्षेत्र से हटने लगे। फल यह हुआ कि डिंगल साहित्य की गति-विधि में भी परिवर्तन आने लगा। उसकी नियमित रचना में बाधा पड़ने लगी और वह साहित्यिक गौरव से गिरने लगी। परम्परागत डिंगल भाषा केवल नाम के लिए व्यावहारिक भाषा रह गई, उसका साहित्यिक महत्त्व समकालीन साहित्य के लिये सम्पूर्णतः नष्ट हो गया।

इस प्रकार राजनीतिक वातावरण धीरे धीरे शान्त होता जा रहा था, यद्यपि समय समय पर उसमें युद्ध का झोंका अवश्य आ जाता था। हिन्दुओं को शान्त करने के लिए मुसलमानों ने उन्हें अपनी संस्कृति से दीक्षित करने का भी प्रयत्न किया, क्योंकि अब मुसलमान भी अपने को इसी देश का निवासी मानने लगे थे। शासकों की नीति-रीति शासितों को प्रभावित अवश्य करती है. इसी सिद्धान्त के अनुसार इस्लाम धर्म भी हिन्दुओं के धार्मिक विचारों में अज्ञात रूप से परिवर्तन लाने में व्यस्त था। हिन्दू धर्म पर आघात होते ही यद्यपि जनता विचलित हो उठी तथापि आत्म-रक्षा के विचार से किसी अंश तक हिन्दुओं ने भी इस्लाम धर्म के समझने की चेष्टा की। फलतः धार्मिक विचारों में परिवर्तन होने का सूत्रपात एक ऐसे रूप में प्रारम्भ हुआ जिसने हमारे साहित्य में एक नवीन धारा की ही सृष्टि कर दी। यह नवीन धारा संत काव्य के रूप में प्रवाहित हुई।

आत्म-सम्मान और शक्ति की मात्रा शेष थी, वे उसकी रक्षा का अनवरत परिश्रम कर रहे थे। विजयनगर का हिन्दू शासक स्वतन्त्र हो गया था। दक्षिण मे कृष्णा और तुङ्गभद्रा के बीच के प्रदेश पर अधिकार पाने के लिए विजयनगर और बहमनी राज्य मे बहुधा युद्ध हुआ करते थे। जो प्रदेश हिन्दुओ के अधिकार मे थे वे भी अपनी सत्ता बनाये रखने मे प्रयत्नशील थे। सिन्ध राजपूतो के अधिकार मे था, पर मुसलमानी आतङ्क उस पर छाया हुआ था। इस प्रकार राजनीति की मंत्रणाएँ ही राज्यो के उत्थान और पतन की कुंजियाँ थीं। ऐसे अनिश्चित काल में हिन्दू जनता के हृदय मे जिस भय और आतंक को स्थान मिल रहा था, वह उनके धर्म को जर्जरित कर रहा था। धर्म की रक्षा करने की शक्ति हिन्दुओं के पास रह ही नहीं गई थी।

मुसलमानो के बढ़ते हुए आतंक ने हिन्दुओ के हृदय मे भय की भावना उत्पन्न कर दी थी। यदि मुसलमान केवल लूट-मार कर ही चले जाते तब भी हिन्दुओ की शान्ति मे क्षणिक बाधा ही पड़ती, किन्तु जब मुसलमानो ने भारत को अपनी सम्पत्ति मानकर उस पर शासन करना प्रारम्भ किया तब हिन्दुओं के सामने अपने अस्तित्व का प्रश्न आ गया। मुसलमान जब अपनी सत्ता के साथ अपना धर्म-प्रचार करने लगे तब तो परिस्थिति और भी विषम हो गई। हिन्दुओ मे मुसलमानो से लोहा लेने की शक्ति नहीं थी। वे मुसलमानो को न तो पराजित कर सकते थे और न अपने धर्म की अवहेलना ही सहन कर सकते थे। इस असहायावस्था मे उनके पास ईश्वर से प्रार्थना करने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं था। वे ईश्वरीय शक्ति और अनुकम्पा पर ही विश्वास रखने लगे। कभी-कभी यदि वीरत्व की चिनगारी भी कहीं दीख पड़ती थी तो वह दूसरे क्षण ही बुझ जाती थी या बुझा दी जाती थी। इस प्रकार दुष्टो को दण्ड देने का काय उन्होने ईश्वर पर ही छोड़ दिया और वे सासारिक वस्तु-स्थिति से परे पारलौकिक और आध्यात्मिक वातावरण मे ही विहार करने लगे। इस समय हिन्दू

जौनपुर के सूफी सिद्धों के मलकूत आदि सिद्धान्त भी उन्हे प्रिय थे । इन्हीं प्रभावों ने कबीर के सन्त मत को एक विशिष्ट रूप दिया ।

सन्त मत का काव्य उच्चकोटि का नहीं है । एक तो सन्त मत की भावना शास्त्र-पद्धति के आधार पर नहीं थी जिससे शिक्षित वर्ग उसकी ओर आकृष्ट होता, दूसरे जनता के हृदय तक पहुँचने के लिए भाषा की सरलता भी अपेक्षित थी । इस प्रकार सन्त मत अधिकतर साधु और वैरागियों के द्वारा धर्म-प्रचार का एक सरल मार्ग ही था । सन्त मत में एक ही प्रकार के विचारों की आवृत्ति अनेक बार की गई है—वह भी एक ही प्रकार के शब्दों में—अतएव शिक्षित जन-समुदाय के लिए उसमें कोई विशेष आकर्षण भी नहीं था । सन्त मत सगुणवाद का खण्डन भी करता है, अतएव जनता का अधिकांश समुदाय इसे ग्रहण भी नहीं कर सका । इतना अवश्य है कि जनता के अशिक्षित और साधारण वर्ग को सन्त मत ने यथेष्ट प्रभावित किया और मुसलमानी आतङ्क में भी धर्म की रूपरेखा की रक्षा में बल प्रदान किया । सन्त मत का साहित्यिक क्षेत्र में विशेष महत्त्व न होते हुए भी धार्मिक क्षेत्र में बहुत बड़ा हाथ रहा ।

कबीर के चलाए हुए संतमत में जो प्रधान भावनाएँ हैं, उन पर विचार कर लेना आवश्यक है :—

१. ईश्वर

संतमत का ईश्वर एक है ।[1] उसका रूप और आकार नहीं है ।

---

[1] मेरा साहब एक है दूजा कहा न जाय
साहब दूजा जो कहूँ साहब खरा रिसाय —कबीर वचनावली
—[illegible] नहीं नाहीं रूप बरन
पुहुप बास ते पातरा ऐसा तत्त अनूप ।

वाली है। वह 'खांड' की तरह मीठी है[1] किन्तु उसका प्रभाव विष के समान है। उसने सारे संसार को अपने वश मे कर रक्खा है।[2] उसका सम्बन्ध कनक और कामिनी से है।[3] संसार की जितनी ही आकर्षक और मोह मे आवद्ध करने वाली वस्तुएँ है, वे सब माया की रस्सियाँ हैं। कबीर कहते हैं :—

माया तजूँ तजी नहि जाइ,
फिर फिर माया मोहिं लपटाइ ॥ टेक ॥
माया आदर माया मान, माया नहीं तहाँ ब्रह्म गियान ॥
माया रस माया कर जान, माया कारनि तजै परान ॥
माया जप तप माया जोग, माया बाँधे सब ही लोग ॥
माया जल थलि माया आकासि, माया व्यापि रही चहूँ पासि ॥
माया माता माया पिता, अति माया अस्तरी सुता ॥
माया मारि करै व्यौहार, कहै कबीर मेरे राम अधार[4] ॥

३. हठयोग

अङ्गो तथा श्वास पर अधिकार प्राप्त कर उनका उचित संचालन करते हुए (हठयोग) एवं मन को एकाग्र कर परमात्मा के दिव्य स्वरूप पर मनन करते हुए आत्मा समाधिस्थ हो ईश्वर मे मिल जाती है।

१—कबीर माया मोहिनी जैसे मीठी खांड।
सतगुर की किरपा भई नहीं तौ करती भांड ॥
कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ ३३

२—कबीर माया पापणीं, फंध ले बैठी हाटि।
सब जग तो फंधै पड्या गया कबीरा काटि ॥ कबीर ग्रंथावली पृष्ठ ३२

३—माया की झल जग जल्या, कनक कामिणी लागि।
कहुधौं किहि विधि राखिये, रुई लपेटी आगि ॥ कबीर ग्रंथावली पृष्ठ ३५

४—कबीर ग्रंथावली पृष्ठ ११५

वह निर्गुण और सगुण के परे है।[1] वह संसार के प्रत्येक कण में है। वही प्रत्येक की साँस में है। वह वर्णन नहीं किया जा सकता, वह केवल अनुभव-गम्य ही है।[2] वह ज्योति-स्वरूप है। वह अलख और निरंजन है। वह सुरति-रूप है। उसकी प्राप्ति भक्ति और योग से हो सकती है। उसका नाम अछय पुरुष या सत्पुरुष है। उसी से संसार की उत्पत्ति है।[3] ईश्वर की प्राप्ति में गुरु का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। परमात्मा से मिलाने के कारण गुरु का स्थान स्वयं परमात्मा से ऊँचा है।

२. माया

यह सत्पुरुष से उत्पन्न है। यह सृष्टि की सृजन शक्ति है। इसके दो रूप हैं, सत्य और मिथ्या।[4] सत्य माया तो महात्माओं को ईश्वर की प्राप्ति में सहायक है। मिथ्या माया संसार को ईश्वर से विमुख कराती है।[5] कबीर ने मिथ्या माया का ही अधिकतर वर्णन किया है। वह त्रिगुणात्मक है।[6] वह जन्म, पालन और संहार करने वाली भी है।[7] अधिकतर वह संसार को सत्पथ से हटा कर कुमार्ग पर लाने

१—निर्गुण की सेवा करो सगुण को करो ध्यान।
निर्गुण सगुण से परे तहाँ हमारो ज्ञान॥ कबीर वचनावली

२—पार ब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहिवे कूं सोभा नहीं, देख्या ही परवान॥ ,, ,,

३—अछय पुरुष इक वृच्छ है निरञ्जन वाकी डार।
तिरदेवा शाखा भये पात भया संसार॥ कबीर वचनावली

४—माया के दुइ रूप हैं सत्य मिथ्या संसार॥ कबीर परिचय पृष्ठ ३०५

५—कबीर माया पापिणीं हरि सूं करै हराम—कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ ३२

६—तिरगुण फाँस लिए कर डोलै, बोलै मधुरी बानी
माया महा ठगिनि हम जानी—कबीर के पद पृष्ठ ३२

७—माया के गुण तीन हैं, जनम पालन संहार—
कबीर परिचय पृष्ठ ३०४

प्रेम है। जब उसकी पूर्ति होती है तो कबीर की आत्मा एक विवाहिता पत्नी की भाँति पति से मिलाप करने पर प्रसन्न हो उठती है।[1] इस प्रकार के विरह और मिलन के पदों में ही कबीर ने अपने रहस्यवाद की उत्कृष्ट सृष्टि की है। सन्तमत के अन्य कवियों ने भी इसी रहस्य-वाद पर लिखा है, पर उनमें वह अनुभूति नहीं है जो कबीर में है।

६. रूपक

संतों ने अपनी अनुभूति को अनेक प्रकार से प्रकट किया है। जब उनके विचार साधारण भाषा में प्रकट नहीं किए जा सकते थे, तब वे किसी रूपक का सहारा लिया करते थे। ये रूपक कभी कभी तो बिलकुल ही अस्पष्ट होते थे जिनका अर्थ लगाना केवल उन्हीं से साध्य था जो संतमत थे अथवा संतों के सिद्धान्तों से पूर्ण परिचित थे। भाव-सौन्दर्य और भावोन्माद साधारण शब्दों में उपस्थित नहीं किया जा सकता, इसीलिए संतों ने अनेक चित्रों की सृष्टि की। इसे अंग्रेजी कवियों ने 'रूपक भाषा'[2] नाम दिया है।

कबीर ने इन रूपकों को विशेष कर दो रूपों में बाँधा है। एक तो उलटबाँसी का रूप है, जिसमें स्वाभाविक व्यापारों के विपरीत कार्य की कल्पना की जाती है।[3] और दूसरा रूप है आश्चर्यजनक घटनाओं की

१—दुलहिनीं गावहु मंगलचार।
हम घरि आए हो राजा राम भरतार॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० ८७

२—The Language of Symbols

३—पहले पूत पीछे भई माइ, चेला के गुर लागे पाइ।
जल की मछली तरवर ब्याई पकरि बिलाई मुरगै खाई॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० ९२

करती है। दोनों में कोई भिन्नता नहीं होती। इस रहस्यवाद में प्रेम की प्रधानता है। यह प्रेम पति-पत्नी के सम्बन्ध ही में पूर्णता को पहुँचता है। इसलिए कबीर ने आत्मा को स्त्री-रूप देकर परमात्मा रूपी पति की आराधना की है। जब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती, तब तक आत्मा विरहिणी के समान दुःखी होती है। जब आत्मा परमात्मा से मिल जाती है तब रहस्यवाद के आदर्श की पूर्ति हो जाती है। दोनों में कोई अन्तर नहीं रहता—"जब वह (मेरा जीवन-तत्व) 'दूसरा' नहीं कहलाता तो मेरे गुण उसके गुण हैं। जब हम दोनों एक हैं तो उसका वाह्य रूप मेरा है। यदि वह बुलाई जाय तो मैं उत्तर देता हूँ और यदि मैं बुलाया जाता हूँ तो वह मेरे बुलाने वाले को उत्तर देती है और कह उठती है "लब्बयक" (जो आज्ञा) ; वह बोलती है मानों मैं ही वार्तालाप कर रहा हूँ, इसी प्रकार यदि मैं कोई कथा कहता हूँ तो मानों वह ही उसे कहती है। हम लोगों के बीच में से मध्यम पुरुष सर्वनाम ही उठ गया है और उसके न रहने से मैं विभिन्न करने वाले समाज से बहुत ऊपर उठ गया हूँ।"[1]

कबीर ने ईश्वर की उपासना में अपनी आत्मा को पूर्ण रूप से पतिव्रता स्त्री माना है।[2] वे परमात्मा से मिलने के लिये बहुत व्याकुल हैं। परमात्मा से विरह का जीवन उन्हें असह्य है।[3] कबीर का रहस्यवाद बहुत ही भावमय है। उसमें परमात्मा के लिये अविरल

१—The Idea of Personality in Sufism, Page 20.

२—बहुत दिनन की जोवती बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुम मिलन कूँ मनि नाहीं विश्राम॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ८

३—कै विरहिन कूं मीच दे, कै आपा दिखलाइ।
आठ पहर का दाझणा, मोपै सह्या न जाय॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १०

१. ईश्वर

प्रेम-काव्य सूफीमत पर ही आश्रित है, अतः सूफीमत के समस्त सिद्धान्त प्रेम-काव्य मे प्रस्फुटित हुए हैं। सूफीमत मे ईश्वर एक है, जिसका नाम 'हक़' है। उसमे और आत्मा में कोई अन्तर नहीं है। आत्मा 'बन्दे' के रूप मे अपने को प्रस्तुत करती है और बन्दा इश्क (प्रेम) के सूत्र से हक तक पहुंचने की चेष्टा करता है। जिस प्रकार एक पथिक अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचने के लिए अनेक 'मंजिलों' को पार करता है उसी प्रकार बन्दे को खुदा तक पहुंचने मे चार दशाएँ पार करनी पड़ती हैं। वे दशाएँ हैं शरियत, तरीकत, हकीकत और मारिफत। इन दशाओं का परिचय पीछे संत काव्य की रूपरेखा मे दिया जा चुका है।

मारिफत मे जाकर आत्मा और परमात्मा का सम्मिलन होता है। वहाँ आत्मा स्वयं 'फना' होकर 'बका' के लिये प्रस्तुत होती है। इस प्रकार आत्मा मे परमात्मा का अनुभव होने लगता है और 'अनलहक' सार्थक हो जाता है। प्रेम मे चूर होकर आत्मा यह आध्यात्मिक यात्रा पार कर ईश्वर मे मिलती है और तब दोनो शराब-पानी की तरह मिल जाते है।

२ प्रेम

सूफीमत मे प्रेम का अंश बहुत महत्वपूर्ण है। प्रेम ही कर्म है, और प्रेम ही धर्म है। इसी प्रेम से हिन्दी का प्रेम-काव्य पोषित हुआ है। प्रत्येक कहानी मे प्रेम का ही निरूपण है। उसका बीज और अन्त उसी की विजय है। सूफीमत मानो स्थान-स्थान पर प्रेम के आवरण से ढका हुआ है। उस सूफीमत के बाग को प्रेम के फुहारे सदा सींचते रहते है। निस्वार्थ प्रेम ही सूफीमत का प्राण है। फारसी के जितने सूफी कवि है वे कविता मे प्रेम के अतिरिक्त कुछ जानते ही नहीं है। प्रमाण-स्वरूप जलालउद्दीन रूमी और जामी के बहुत से उदाहरण दिये जा सकते है। जायसी ने भी पद्मावत मे लिखा है —

सृष्टि १। इन दोनों का संबंध रहस्यवाद से है। शरीर के अंदर परमात्मा की अनुभूति वैसी ही है जैसे नाव में नदी का घुस जाना और परमात्मा से मिलन का आनंद वैसा ही है जैसे घिर का पान करना। इन रूपकों से यद्यपि भावना स्पष्ट नहीं हो पाती, पर अनुभूति की अभिव्यक्ति अवश्य हो जाती है। कबीर ने इन रूपकों को अधिकतर दो क्षेत्रों से लिया है। एक तो पशु-संसार से और दूसरा जुलाहे की सामग्री से। कबीर इन्हीं रूपकों के कारण कहीं कहीं अस्पष्ट हो गए हैं, पर हमें इन रूपकों में कबीर की अनुभूति को ही खोजने की चेष्टा करनी चाहिए।

प्रेमकाव्य

मुसलमानी शासन का दूसरा बड़ा प्रभाव साहित्य में प्रेम-काव्य से प्रारम्भ होना है। इसमें सूफी सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण हिन्दू पात्रों के जीवन में किया गया है। इस्लाम के बढ़ते हुए स्वरूप ने जहाँ एक ओर हिन्दूधर्म के विश्वास को उच्छिन्न कर संतों के द्वारा निराकार ईश्वर की उपासना का मार्ग तैयार किया, वहाँ दूसरी ओर अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए सूफी कवियों की लेखनी को भी गतिशील बनाया। संत काव्य और सूफी कवियों के प्रेम-काव्य हमारे साहित्य में स्पष्टतः मुसलमानी राज्य के विकार हैं, जो राम और कृष्ण साहित्य पर लिखे गए सिद्धान्तों से समानान्तर होते हुए भी वस्तुतः उनसे भिन्न हैं। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि धर्म के वातावरण से दूर न रहते हुए भी प्रेम-काव्य ने हमें सम्पूर्ण रूप से लौकिक कहानियाँ दी हैं। संसार के प्रेम का इतना सजीव वर्णन हमें पहली बार प्रेम-काव्य में मिलता है। इस दिशा में फ़ारसी साहित्य की मसनवियों ने हमारे हिन्दी साहित्य के प्रेमकाव्य को बहुत प्रभावित किया है।

प्रेम-काव्य में जो प्रधान भावनाएँ हैं वे इस प्रकार हैं :—

१—पुहुप बिना एक तरवर फलिया, बिन कर तूर बजाया।
नारी बिना नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया ॥
—कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ ६०

इस तरह सूफ़ीमत में ईश्वर स्त्री और भक्त पुरुष है। पुरुष ही स्त्री से मिलने की चेष्टा करता है, जिस प्रकार जायसी के पद्मावत में रत्नसेन (साधक) सिंहलद्वीप जाकर पद्मावती (ईश्वर) से मिलने की चेष्टा करता है।

३. शैतान और पीर

सूफ़ीमत में माया के लिये तो कोई स्थान नहीं है, पर शैतान अवश्य है, जो साधक को उसके पथ से विचलित कर देता है। पद्मावत में रत्नसेन को विचलित करने वाला अलाउद्दीन है जो कवि के द्वारा शैतान के रूप में चित्रित किया गया है। इस शैतान से बचने के लिए पीर (गुरु) की बहुत आवश्यकता है। इसीलिये सूफ़ीमत में पीर का बड़ा सम्मान है। वही है जो साधक को शैतान से बचा सकता है। जलालुद्दीन रूमी ने अपनी मसनवी के प्रथम भाग में पीर की बहुत प्रशंसा लिखी है :—

ओ सत्य के वैभव, हुसामुद्दीन, कागज के कुछ पन्ने और ले और पीर के वर्णन में उन्हें कविता से जोड़ दे।

यद्यपि तेरे निर्बल शरीर में कुछ शक्ति नहीं है, तथापि तेरी शक्ति के सूर्य बिना हमारे पास प्रकाश नहीं है।

पीर (पथ-प्रदर्शक) ग्रीष्म (के समान) है, और (अन्य) व्यक्ति शरत्काल (के समान) हैं। (अन्य) व्यक्ति रात्रि के समान हैं, और पीर चन्द्रमा है।

मैंने (अपनी) छोटी निधि (हुसामुद्दीन) को पीर (वृद्ध) का नाम दिया है। क्योंकि वह सत्य से वृद्ध (बनाया गया) है। समय से वृद्ध नहीं (बनाया गया)।

वह इतना वृद्ध है कि उसका आदि नहीं है ऐसे अनोखे मोती का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है।

'विक्रम धँसा प्रेम के बारा।
सपनावति कहँ गयउ पतारा॥

प्रेम के साथ साथ उस सूफ़ीमत में प्रेम का नशा भी प्रधान है। उसमें नशे के ख़ुमार का और भी महत्वपूर्ण अंश है। इसी नशे के ख़ुमार की बदौलत ईश्वर की अनुभूति का अवसर मिलता है। फिर संसार की कोई स्मृति नहीं रहती, शरीर का कुछ ध्यान नहीं रहता। केवल परमात्मा की 'लौ' ही सब कुछ होती है।

एक बात और है। सूफ़ीमत में ईश्वर की भावना स्त्री-रूप में मानी गई है। वहाँ भक्त पुरुष बन कर उस स्त्री की प्रसन्नता के लिए सौ जान से निसार होता है, उसके हाथ की शराब पीने को तरसता है। उसके द्वार पर जाकर प्रेम की भीख माँगता है। ईश्वर एक दैवी स्त्री के रूप में उसके सामने उपस्थित होता है। उदाहरणार्थ रूमी की एक कविता का भावार्थ दिया जा सकता है :—

प्रियतमा के प्रति प्रेमी की पुकार

मेरे विचारों के संघर्ष से मेरी कमर टूट गई है।
ओ प्रियतमे, आओ और करुणा से मेरे सिर का स्पर्श करो।
मेरे सिर में तुम्हारी हथेली का स्पर्श मुझे शान्ति देता है।
तुम्हारा हाथ ही तुम्हारी उदारता का सूचक है।
मेरे सिर से अपनी छाया को दूर मत करो।
मैं सन्तप्त हूँ, सन्तप्त हूँ, सन्तप्त हूँ।

....

हे, मेरा जीवन ले लो.

तुम जीवन-स्रोत हो. क्योंकि तुम्हारे विरह में मैं अपने जीवन से श्रान्त हूँ। मैं वह प्रेमी हूँ जो प्रेम के पागलपन में निपुण है।

मैं विवेक और बुद्धि से हैरान हूँ।'[1]

---

1. कबीर का रहस्यवाद, पृष्ठ ??

शत्रु है. (वह) भोजन के प्रेम में पागल सा है। ओः! बहुत से हैं जिनका उसने सर्वनाश किया है।

यदि तू रास्ता नहीं जानता, तो जो कुछ गधा चाहता है, उसके विरुद्ध कर। वह अवश्य ही सच्चा रास्ता होगा।'[1]

सूफीमत के इन व्यापक सिद्धान्तों को लेकर ही प्रेम-काव्य चला है, उन्हीं सिद्धान्तों के अनुरूप ही कथा की सृष्टि हुई है। एक राजकुमार एक राजकुमारी से प्रेम करने लगता है, पर मार्ग में बहुत सी बाधाएँ हैं। प्रेमी प्रेमिका से नहीं मिल पाता। अनेक प्रयत्न विफल होते हैं। अन्त में किसी हितैपी या पथ-प्रदर्शक की सहायता पाकर दोनों का मिलाप होता है। यही परिस्थिति खुदा और उसके बन्दे में है। साधक ईश्वर की विभूति—उसका सौन्दर्य देख कर उस पर मोहित हो जाता है, पर दोनों में मिलाप नहीं होता। संसार की अनेक कठिनाइयाँ हैं। माया है, मोह है। अन्त में गुरु की सहायता पाकर दोनों मिल जाते हैं। इस प्रकार पार्थिव प्रेम में अपार्थिव प्रेम की ओर संकेत है, भौतिकता के पीछे रहस्यवाद की छाया है। कभी कभी कथा में इसका स्पष्टीकरण हो जाता है, जैसा जायसी के पद्मावत में है। प्रत्येक प्रेम-काव्य के लेखक का कथानक थोड़े-बहुत अन्तर से यही रहता है। कोई भी कहानी दुःखान्त नहीं है, क्योंकि मिलन ही सूफीमत की एक-मात्र चरम स्थिति है।

प्रेम-काव्य में सब से विचित्र बात यह है कि कथानक सम्पूर्ण रूप से भारतीय है। उसमें पात्रों के आदर्श भी एकान्त रूप से हिन्दूधर्म से पोषित हैं (आश्चर्य की बात तो यह है कि हिन्दू वातावरण रहते हुए भी निष्कर्ष मुसलमानी सिद्धान्तों से पूर्ण है। भारतीय काव्य-शैली से पूर्ण रहते हुए भी ये प्रेम-काव्य मसनवी के वर्णनात्मक रूप लिए हुए हैं। जहा एक ओर मसनवी के अनुसार विषय-निरूपण है, वहा दूसरी ओर

[1] कबीर का रहस्यवाद, पृष्ठ ६१

वस्तुतः पुरानी शराब अधिक शक्तिशालिनी है, निस्सन्देह पुराना सोना अधिक मूल्यवान है।

पीर चुनो, क्योंकि बिना पीर के यह यात्रा बहुत ही कष्टमय, भयानक और विपत्तिमय है।

बिना साथी के तुम सड़क पर भी उद्भ्रान्त हो जाओगे, जिस पर तुम अनेक बार चल चुके हो।

जिस रास्ते को तुमने बिलकुल भी नहीं देखा, उस पर अकेले मत चलो, अपने पथ-प्रदर्शक के पास से अपना सिर मत हटाओ।

मूर्ख, यदि उसकी छाया (रक्षा) तेरे ऊपर न हो तो शैतान की कर्कश ध्वनि तेरे सिर को चक्कर में डाल कर तुझे (यहाँ-वहाँ) घुमाती रहेगी। शैतान तुझे रास्ते से बहका ले जायगा (और) तुझे 'नाश' में डाल देगा। इस रास्ते में तुझसे भी चालाक हो गये हैं। (जो बुरी तरह से नष्ट किये गए हैं।)

सुन (सीख) कुरान से—यात्रियों का विनाश! नीच इबलिस ने उनसे क्या व्यवहार किया है!!

वह उन्हें रात्रि में अलग, बहुत दूर ले गया—सैकड़ों-हजारों वर्षों की यात्रा में—उन्हें दुराचारी (अच्छे कार्यों से रहित) नग्न कर दिया।

उनकी हड्डियाँ देख—उनके बाल देख! शिक्षा ले, और उनकी ओर अपने गधे को मत हाँक। अपने गधे (इन्द्रियों) की गर्दन पकड़ और उसे रास्ते की तरफ उनकी ओर ले जा, जो रास्ते को जानते हैं और उस पर अधिकार रखते हैं।

खबरदार! अपना गधा मत जाने दे, और अपने हाथ उस पर से मत हटा, क्योंकि उसका प्रेम उस स्थान से है जहाँ हरी पत्तियाँ बहुत होती हैं।

यदि तू एक क्षण के लिए भी असावधानी से उसे छोड़ दे तो वह इस हरे-मैदान की दिशा में अनेक मील चला जायगा। गधा रास्ते का

गए है। सूर्य सम्पूर्ण सृष्टि मे प्रकाश रूप से व्याप्त हैं, इसलिए सूर्य का रूप ही विष्णु है। उनका वर्णन विश्व के सात विभागो को केवल तीन पग ही मे पार कर लेने के रूप मे किया गया है। ये तीन पग या तो अग्नि, विद्युत या सूर्य के रूप है अथवा सूर्य के आकाश मार्ग की तीन स्थितियाँ, उदय, उत्कर्ष और अस्त है। वेद मे कभी कभी उनका साम्य इन्द्र से भी हुआ है। यद्यपि वेद के विष्णु महाकाव्यो के विष्णु नही है, तथापि विष्णु में संरक्षण और व्याप्त होने की भावना का जो प्राधान्य पहले था उसी का पल्लवित और विकसित रूप आगे चल कर हमारे आचार्यों और कवियो द्वारा प्रचारित हुआ। शाकपूणि के द्वारा विष्णु के तीन पैरों का रूपक पृथ्वी पर अग्नि, वायु-मण्डल मे इन्द्र अथवा वायु और आकाश मे सूर्य के आधार पर समझाया

विष्णु: कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।

इंद्रस्य युज्य: सखा ॥ १६ ॥

तद्विष्णो परमं पदं सदा पश्यंति सूरय:।

दिवी व चक्षु राततं ॥ २० ॥

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांस समिंधते।

विष्णोर्यत्परमं पदं ॥ २१ ॥

इति प्रथमस्य द्वितीय सप्तमो वर्ग

Rigveda Samhita ... entr... Sayanacharya
Edited by Dr Max Muller

७२

दोहा, चौपाई, छंद में समस्त कथा कही गई है। भाषा भी अवधी है। कथानक के अंतर्गत हिन्दू देवी-देवताओं के भी विवरण हैं। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि प्रेम-काव्य के कवियों ने हिन्दू शरीर में मुसलमानी प्राण डाल दिए हैं।

इस्लाम की प्रतिक्रिया के रूप में राम और कृष्ण काव्य का प्रादुर्भाव हुआ, जिसमें भक्ति की भावना अपनी चरम सीमा पर थी।

धार्मिक काल की यह भक्ति-भावना उत्तरी भारत में पल्लवित होने के पूर्व दक्षिण में अपना निर्माण कर चुकी थी। यह भावना वैष्णव धर्म से उद्भूत हुई थी, जिसका सम्बन्ध भागवत या पंचरात्र धर्म से है। वैष्णव धर्म का आदि रूप हमें विष्णु के देवत्व में और देवत्व की प्रधानता में मिलता है। विष्णु का निर्देश हमें सबसे पहले ऋग्वेद में मिलता है।[1] [विष्णु (विश धातु) व्याप्त होना] ऋग्वेद में विष्णु प्रथम श्रेणी के देवताओं में नहीं हैं। वे सौर शक्ति के रूप में माने

राम और कृष्ण काव्य

---

१ अतो देवा अवंतु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।

पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदं ।

समूलहमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्य ।

अतो धर्माणि धारयन ॥ १८ ॥

हुए ब्रह्म की संज्ञा नारायण दी है, किन्तु उससे विष्णु का बोध नहीं होता।

आपो नारा• इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनव•
ताः यद् अस्यायनम् पूर्व तेन नारायणः स्मृति (मनुस्मृति) १, (५)

[नर से उत्पन्न होने के कारण जल का नाम नारा• है। उसकी (ब्रह्म की) क्रीड़ा जल मे होने के कारण उसका नाम नारायण है]

रामायण मे भी विष्णु का कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

पुत्रेष्टि यज्ञ मे वे अन्य देवताओ के समान अपना भाग पाने के लिये ही आते है।

ब्रह्मा सुरेश्वरः स्थाणुस् तथा नारायणः प्रभु ।
इन्द्रश्च भगवान साक्षाद् मरुदम् वृतस् तथा ॥

किन्तु आगे चल कर ज्ञात होता है कि रामायण मे अनेक प्रक्षिप्त अंश आ गए[1] और उनके अनुसार विष्णु प्रधानतया सर्वश्रेष्ठ हो गए। ब्रह्म के स्थान पर विष्णु का स्थान हो जाता है।

ब्रह्मा स्वयंभूर्विष्णुरव्ययः (२) ११६।

उनके आयुध भी उनके हाथ मे आ जाते हैं।

शङ्ख चक्र[2] गदा पाणिः पीत वस्त्रः जगत्पति (१) १४, २

महाभारत और पुराणो मे त्रिदेवो मे विष्णु मध्य स्थान ग्रहण किए हुए हैं। वे सतोगुणी, दयालु, पोषक, स्वयंभू और व्यापक हैं। इसीलिए उनका सम्बन्ध जल से है, जो सृष्टि के पूर्व सर्वव्यापक था। इस कारण वे नारायण है—जल के निवासी है। वे शेषशायी होकर जल पर शयन कर रहे है।

१ [illegible]

२ चक्र की भावना सम्भव है [illegible] सूर्य के बिम्ब के आधार पर की गई हो

गया है। ओल्डनबर्ग ने सूर्य का उदय, मध्याह्न और अस्त ही विष्णु के तीन पैरों के रूप में समझाया है। विष्णु का महत्व इतना बढ़कर वर्णित किया गया है कि प्रशंसा की दृष्टि से इनका स्थान वैदिक देवताओं में सर्वश्रेष्ठ होता, किन्तु विष्णु को इन्द्र का सहयोगी और प्रशंसक तथा सोम से उत्पन्न भी कहा गया है। इस कारण उसका महत्व बहुत ही गिर गया है।[1]

ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु के रूप में परिवर्तन हुआ। यह रूप वेद और पुराणों के बीच का है। वेद से परिवर्द्धित होते हुए भी पुराणों में वर्णित रूप तक विष्णु का रूप अभी नहीं पहुँचा। शतपथ ब्राह्मण में विष्णु वामन रूप में चित्रित किये गये हैं। वे यज्ञ रूप होकर असुरों से सारी पृथ्वी प्राप्त कर लेते हैं :—

[देवास्च वा विष्णुम् पुरस्कृत्य ईयुः.........आदि।][2]

ऐतरेय ब्राह्मण में विष्णु सब से उच्च देवता माने गए हैं। अग्नि का स्थान निम्नतम है और अन्य देव इन दोनों के मध्य में हैं :—

[अग्निर्वै देवानाम् अवमो। विष्णुः परमम्। तदन्तरेण सर्वा अन्याः देवताः।][3]

[illegible] में केवल तीन देवता माने गए हैं। पृथ्वी के देवता हैं अग्नि, अन्तरिक्ष के देवता हैं वायु और इन्द्र तथा आकाश के देवता हैं सूर्य। विष्णु का केवल इन्द्र के साथ पूजित होने का निर्देश है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव के रूप में त्रिदेव अभी तक अज्ञात हैं। मनु ने वैदिक देवताओं के साथ विष्णु का उल्लेख अवश्य किया है पर उनमें अधिक [illegible] नहीं है। मनु ने सृष्टि की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते

[1] [illegible] J. Muir Vol IV, [illegible]

[2] [illegible]

[3] [illegible]

लक्ष्मी के साथ कमल पर बैठते है, कभी वे सर्पशेया पर विश्राम करते है और कभी वे गरुड़ पर भी गमन करते है। शैव और शाक्त मत से भिन्न और उनसे भी अधिक व्यापक यह वैष्णव धर्म केवल विष्णु को ही पर ब्रह्म के रूप मे मानता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश की त्रिमूर्ति से भी परे विष्णु ब्रह्म के आदि रूप हैं। यही वैष्णव धर्म की चरम भावना है।

बौद्ध मत और जैन मत के समान ही वैष्णव मत की भावना धार्मिक सुधार से ही सम्बन्ध रखती है जिसका उद्भव ईसा के पॉच सौ वर्ष पूर्व ही हो गया था।[1] इसी का परिवर्द्धित रूप पञ्चरात्र या भागवत धर्म है। नारायण की भावना के मिश्रण से यह धर्म और भी विस्तृत हो गया। ईसा के कुछ वर्ष बाद आभीरो ने इसमे श्रीकृष्ण की भावना सम्मिलित कर दी। ८वी शताब्दी मे यह धर्म शङ्कर के अद्वैतवाद के सम्पर्क मे आया। अपनी भक्ति के आदर्श के कारण इसे शङ्कर के मायावाद से सङ्घर्ष लेना पड़ा, जिसका विकसित रूप ग्यारहवी शताब्दी मे रामानुजाचार्य के श्री सम्प्रदाय मे प्रदर्शित हुआ। आगे चल कर निम्बार्क ने इस विष्णु रूप मे कृष्ण रूप की भावना को अधिक प्रश्रय दिया और उसमे 'राधा' के स्वरूप को भी जोड़ दिया। तेरहवी शताब्दी मे मध्वाचार्य ने इस विचार को और भी पल्लवित किया और द्वैतवाद का प्रचार कर विष्णु को और भी अधिक महानता दी। रामानन्द ने दूसरी ओर विष्णु के राम रूप का प्रचार किया और भक्ति को अधिक महत्व दिया। सोलहवी शताब्दी मे वल्लभ ने कृष्ण और राधा का प्रेमात्मक निरूपण किया और बङ्गाल मे महाप्रभु चैतन्य ने बालकृष्ण की भावना पर जोर दिया। चैतन्य ने बालकृष्ण और राधा को मिला कर वैष्णव धर्म मे प्रेम के मार्ग को बहुत प्रशस्त किया।

---

1 Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol. 12, Page 571

विष्णु का रूप महाभारत में ब्रह्मा के रूप में हो गया है। इसी-लिए वे प्रजापति के नाम से विभूषित हैं। वे ब्रह्म हैं, इस रूप में उनकी तीन स्थितियाँ हैं।

१. ब्रह्मा—जो उनके नाभि कमल से उत्पन्न हुआ है, जिसमें विष्णु उत्पन्न करने की शक्ति प्रस्फुटित है।

२. विष्णु—जिसमें वे संसार की रक्षा करते हैं। अवतार ही उनका साधन है।

३. रुद्र—जिसमें विष्णु सृष्टि का विनाश करते हैं। रुद्र विष्णु के मस्तक से उत्पन्न हुए हैं। किन्तु विष्णु सदैव ही सर्वश्रेष्ठ देवता नहीं हैं। कृष्ण विष्णु के अवतार अवश्य माने गए हैं, पर वे प्रधानतः दैवी शक्ति के बदले मानवीय शक्ति से काम करते हैं। द्रोणपर्व में तो वे महादेव को अपने से बड़ा मानते हैं—

वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा जगाम शिरसा क्षितिम् ....'द्रोणपर्व'

विष्णु पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण और भागवत पुराण में विष्णु को सर्वश्रेष्ठ स्थान मिला है। 'सर्व शक्तिमयो विष्णुः' की संज्ञा से वे विभूषित किए गए हैं। इस प्रकार वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु बहुत ही साधारण देवता हैं। परवर्ती साहित्य में वे अवतार के रूप में धीरे-धीरे श्रेष्ठ पद को पहुँचते हैं। वे संरक्षक के रूप में बहुत ही लोकप्रिय हैं। वे सहस्रनाम हैं और उनके नामों का भजन भक्ति का प्रधान अंग है। उनकी स्त्री का नाम श्री या लक्ष्मी है, जो संपत्ति और वैभव की स्वामिनी हैं। उनका स्थान वैकुंठ है और उनका वाहन गरुड़। वे श्याम वर्ण के सुन्दर और कोमल देवता हैं। वे चतुर्भुज हैं। उनके हाथों में पंचजन्य (शङ्ख), सुदर्शन (चक्र), कौमोदकी (गदा) और पद्म (कमल) है। उनके धनुष का नाम सारंग है और तलवार का नाम नन्दक। उनके वक्षस्थल पर कौस्तुभ मणि और श्रीवत्स (बालों का चक्र समूह) है। बाहु पर स्यमंतक मणि है। कभी वे

मध्वाचार्य—मध्व अथवा आनन्दतीर्थ का जन्म संवत् १३१४ (सन् १२५७) मे मङ्गलोर से ६० मील उत्तर उदीपी मे हुआ था। ये द्वैतवाद के प्रतिपादक थे। उन्होने अपने सिद्धान्त अधिकतर भागवत-पुराण से लिए।

सिद्धान्त—इनके अनुसार एक विष्णु ही अविनाशी ब्रह्म है। ब्रह्मा, शिव तथा अन्य देवता तो नाशवान है। जीव ब्रह्म से ही उत्पन्न है। किन्तु ब्रह्म स्वतन्त्र है और जीव परतन्त्र। दोनो मे स्वामी तथा सेवक अथवा राजा और प्रजा का सम्बन्ध है। ब्रह्म और जीव मे जो अन्तर है, वह एकान्त सत्य है, मिथ्या नही। ब्रह्म आराध्य है, जीव आराधक। दोनो मे समानता कैसी ? प्रजा राजा नही है और न राजा ही प्रजा है। शरीर और शक्ति मे जो अन्तर है वही जीव और ब्रह्म मे है। एक बार ब्रह्म से उत्पन्न होने पर जीव सदैव के लिए—अनन्त काल के लिए—स्वतन्त्र सत्ता है। जिस प्रकार कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है—(कारण ही कार्य नही है और न कार्य कारण ही) उसी प्रकार ब्रह्म जीव नही है और न जीव ब्रह्म ही।

कृष्ण ही ब्रह्म है और उनकी भक्ति ही ब्रह्म के पाने का एकमात्र साधन है। इस सम्प्रदाय मे राधा मान्य नही है। अपने सम्प्रदाय मे मध्व वायु के अवतार माने जाते है। इनके दो प्रधान ग्रन्थ वेदान्त सूत्र पर भाष्य और अनुभाष्य है।

विष्णु स्वामी—विष्णु स्वामी के विषय मे कुछ अधिक ज्ञात नही है। संभवतः वे भी दक्षिण निवासी थे। वे महाराष्ट्र भाषा ज्ञानेश्वरी के रचयिता ज्ञानेश्वर महाराज से तीन वर्ष बड़े थे।[1] ज्ञानेश्वर महाराज का आविर्भाव-काल सन् १२ माना जाता है।[2] ...

परब्रह्म के समान नहीं है। परब्रह्म ही कर्त्ता है और वही उपादान कारण भी। जीव परब्रह्म की क्रिया है, वह परब्रह्म पर सम्पूर्ण रूप से निर्भर है। इसीलिए जीव को परब्रह्म से सामीप्य प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। परब्रह्म के भाग होते हुए भी चित् और अचित् अपनी सत्ता में भिन्न और सत्य हैं। प्रलय होने पर चित् और अचित् ब्रह्म में लीन हो जाते हैं, किन्तु वे अभिन्न नहीं हो जाते। सृष्टि होने पर वे पुनः पृथक हो जाते हैं, अद्वैतवाद के समान वे अपना अस्तित्व नहीं खो देते। इतना होते हुए भी ब्रह्म और चित् समान नहीं हैं।

"जीव और ब्रह्म कैसे समान हो सकते हैं। मैं कभी सुखी हूँ, कभी दुःखी। [illegible] यही अन्तर है। वह अनन्त ज्योति है, पवित्र [illegible] है, और ऐसा नहीं है। मूर्ख, तू कैसे कह सकता है, मैं वह [illegible] हूँ। यदि वह अनन्त सत्य है तो वह झूठी माया का [illegible] कैसे हो सकता है? यदि वह ज्ञान कोष है तो अविद्या [illegible] कैसा?" यद्यपि ब्रह्म और चित् एक ही तत्त्व से निर्मित [illegible] तथापि इनका अन्तर माया जनित नहीं है। यही [illegible] रामानुज का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत कहा [illegible] है।

[illegible] अनुसार ब्रह्म की प्राप्ति पाँच प्रकार से होती है। [illegible] अन्तर्यामिन। साधक [illegible] (अन्तर्यामिन) को [illegible] चाहिए। [illegible]

इसलिए राधाकृष्ण के अतिरिक्त किसी देवी-देवता को नहीं मानते। इनके दो ग्रन्थ प्रधान हैं। वेदान्तसूत्र पर भाष्य वेदान्त, परिजात सौरभ और दशश्लोकी। सन् १५०० के लगभग इन चार सिद्धान्तों के फल-स्वरूप चार सम्प्रदाय के रूप उत्तर भारत मे निश्चित हुए। वे सम्प्रदाय इस भाँति थे :—

१—श्री सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के अनुयायी रामानन्दी वैष्णव थे।
२—ब्रह्म सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के अनुयायी माधव वैष्णव थे।
३—रुद्र सम्प्रदाय " " विष्णु स्वामी मत के थे।
४—सनकादि सम्प्रदाय " " निम्बार्क मत के थे।

रामानन्द—चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे **रामानन्द** ने रामानुजाचार्य के श्री सम्प्रदाय को बहुत ही व्यापक और लोकप्रिय रूप दिया। रामानन्द पुष्प सदन शर्मा के पुत्र थे। इनकी माता का नाम सुशीला था। इन्होंने अपना विद्याभ्यास काशी के स्वामी राघवानन्द के आश्रय मे किया। इनकी प्रतिभा देख कर राघवानन्द ने इन्हे अपना आचार्य-पद प्रदान किया। इन्होंने सारे भारतवर्ष का पर्य्यटन कर अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया।

सिद्धान्त—इन्होंने विष्णु अथवा नारायण के स्थान पर अवतार रूप राम की भक्ति पर जोर दिया। साथ ही साथ उन्होंने रामानुज के कर्म-काण्ड (समुच्चय) की उपेक्षा कर एकमात्र भक्ति को सर्व-श्रेष्ठ घोषित किया। भक्ति के क्षेत्र मे जाति-भेद का बहिष्कार एवं संस्कृत के स्थान पर भाषा मे अपनी भक्ति के प्रचार की नवीनता स्थापित कर उन्होंने अपने मत को बहुत लोकप्रिय बना दिया। रामानन्द ने राम सीता की मर्यादापूर्ण भक्ति का प्रचार कर वैष्णव धर्म की नींव उत्तर भारत मे पूर्णत. जमा दी। विष्णु अथवा नारायण का वास्तविक महत्व तो अवतारों के द्वारा ही प्रकट हुआ है, जिनम विष्णु का सम्पूर्ण और अधिकांश मनुष्य के रूप में अवतरित होकर 'धर्म की ग्लानि' हर

विष्णु स्वामी का समय (१२९०+३०) सन् १३२० माना जाना चाहिए। यह समय संवत् १३७७ होगा।

सिद्धान्त—ये मध्वाचार्य के मतानुयायी माने जाते हैं, पर कहा जाता है कि इन्होंने अद्वैतवाद को माया से रहित मान कर शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन किया जिसका अनुकरण आगे चल कर महाप्रभु वल्लभाचार्य ने किया। विष्णु स्वामी ने कृष्ण को अपना आराध्य माना है, पर साथ ही राधा को भी भक्ति मे प्रधान स्थान दिया है। इन्होंने गीता, वेदान्त सूत्र और भागवत पुराण पर भाष्य लिखे। कहा जाता है कि विष्णु स्वामी ज्ञानेश्वर महाराज के गुरु थे, किन्तु इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। भक्तमाल मे इसका निर्देश मात्र है।

निम्बार्क—निम्बार्क बारहवीं शताब्दी मे आविर्भूत हुए। ये तेलगू प्रदेश से आकर वृन्दावन मे बस गए थे। ये सूर्य के अवतार माने जाते हैं। गीत गोविन्द के रचयिता श्री जयदेव इनके शिष्य थे। कहा जाता है कि इन्होंने सूर्य की गति रोक कर उसे आकाश से हटाकर नीम वृक्ष के पीछे कुछ काल तक के लिए छिपा दिया था, क्योंकि सूर्यास्त के पूर्व उन्हें किसी संत को भोजन देना था। सूर्यास्त के बाद भोजन करना निम्बार्क की क्रिया के विरुद्ध था। वे राधाकृष्ण के उपासक और द्वैताद्वैत के प्रवर्त्तक कहे जाते हैं। वे रामानुज से विशेष प्रभावित थे।

सिद्धान्त—ब्रह्म से भिन्न होते हुए भी जीव उसमे अपना अस्तित्व खो देता है। फिर उसकी अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं रह जाती। जीव को इस चरम मिलन की साधना भक्ति से करनी चाहिए। कृष्ण के साथ राधा की महानता इस सम्प्रदाय की विशेषता है। राधा कृष्ण के साथ सब स्वर्गों से परे गोलोक मे निवास करती हैं। कृष्ण परब्रह्म हैं, उन्हीं से राधा और गोपिकाओं का आविर्भाव हुआ है। इस प्रकार राधा कृष्ण की उपासना ही प्रधान है। निंबार्क स्मार्त नहीं हैं।

५ माधुर्य—दाम्पत्य

इस प्रकार पूर्व बङ्गाल मे इन्होने वैष्णव धर्म का बड़ा आकर्षक रूप रक्खा।

वल्लभाचार्य— वल्लभाचार्य तैलिगू प्रदेश के विष्णुस्वामी मतावलम्बी भक्त के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १५३६ मे हुआ था। ये चैतन्य के समकालीन थे। इन्होने संस्कृत अध्ययन और अनेक विद्वानो को विवाद मे पराजित कर छोटी अवस्था ही मे यशार्जन किया। विजयनगर के कृष्णदेव की सभा मे तो ये महाप्रभु घोषित किए गए।

सिद्धान्त—वल्लभ ने अपने को अग्नि का अवतार कहा है। इन्होने यद्यपि विष्णुस्वामी के सिद्धान्तों का पालन किया, तथापि चैतन्य के समान इन्होंने भी निम्बार्क के मत का अवलम्बन किया। कृष्ण को ही इन्होने ब्रह्म माना है, राधा को उनकी स्त्री और उनके क्रीड़ा-स्थान को वैकुण्ठ। दार्शनिक दृष्टिकोण से इनका सिद्धान्त शुद्धाद्वैत का है, शङ्कर का अद्वैत जैसे शुद्ध बना दिया गया हो। शङ्कर की माया के लिए इसमे कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार माया से रहित अद्वैत ही शुद्धाद्वैत है। शङ्कर के अद्वैत मे भक्ति के लिए कोई स्थान नहीं था। इस शुद्धाद्वैत मे माया के बहिष्कार के साथ भक्ति के लिए विशेष विधान है। यह भक्ति ज्ञान से श्रेष्ठ है। ज्ञान से ब्रह्म केवल जाना जा सकता है, भक्ति से ब्रह्म की अनुभूति होती है। इस प्रकार भक्ति का स्थान सर्वोच्च है।

वल्लभाचार्य के अनुसार ब्रह्म जो सत् चित् और आनन्दमय है, स्वय तीन रूपो मे प्रकट हुआ सत् गुण के आविर्भाव और चित् तथा आनन्द गुण के तिरोभाव से वह प्रकृति रूप मे प्रकट हुआ तथा सत् और चित् के आविर्भाव तथा आनन्द के तिरोभाव से वह जीव के रूप मे प्रकट हुआ। सत् चित् और आनन्द के रूप मे वह सर्वव्यापक

करता है, दुष्टों का विनाश और साधुओं का परित्राण करता है और प्रत्येक युग मे उत्पन्न होता है। अवतारों की संख्या दस मानी गई है, पर भागवत पुराण के अनुसार यह संख्या २२ है। दशावतारों मे सभी मान्य हैं, पर सप्तम और अष्टम अवतार में राम और कृष्ण का महत्त्व अधिक है।

चैतन्य—चैतन्य का वास्तविक नाम विश्वम्भर मिश्र था। इनका जन्म नदिया (बङ्गाल) में संवत् १५४२ में हुआ था। प्रारम्भ से ही ये न्याय और व्याकरण में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने लगे। २२ वर्ष में ये मध्वाचार्य के ब्रह्म सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए, किन्तु इन्हें द्वैतवाद विशेष पसन्द नहीं आया, अतएव ये रुद्र और सनकादि सम्प्रदाय के प्रभाव से भी प्रभावित हुए।

सिद्धान्त—इन्होंने राधा को प्रमुख स्थान दिया और उनकी आराधना में जयदेव, चण्डीदास और विद्यापति के पदों का प्रयोग किया। इन्होंने गान और नृत्य के साथ अपने सम्प्रदाय में संकीर्तन को भी स्थान दिया। दार्शनिक दृष्टिकोण से इन्होंने मध्व के द्वैतवाद को उतना महत्त्व नहीं दिया जितना निम्बार्क के द्वैताद्वैत को। इन्होंने अपनी भक्ति का दृष्टिकोण अधिकतर भागवत पुराण से लिया है। इन्होंने जगन्नाथपुरी जाकर अपने सिद्धान्तों को बहुत लोकप्रिय रूप में रक्खा। वहीं संवत् १५९० मे ये जगन्नाथ जी में लीन हो गए।

चैतन्य ने राधा और कृष्ण को प्राधान्य देकर उन्हीं के चरित्रों में अपनी आत्मा को परिष्कृत करने का सिद्धान्त निर्धारित किया। इनके अनुसार भक्ति पाँच प्रकार की है :—

१. शान्ति—ब्रह्म पर मनन
२. दास्य—सेवा
३. सख्य—मैत्री
४. वात्सल्य—स्नेह
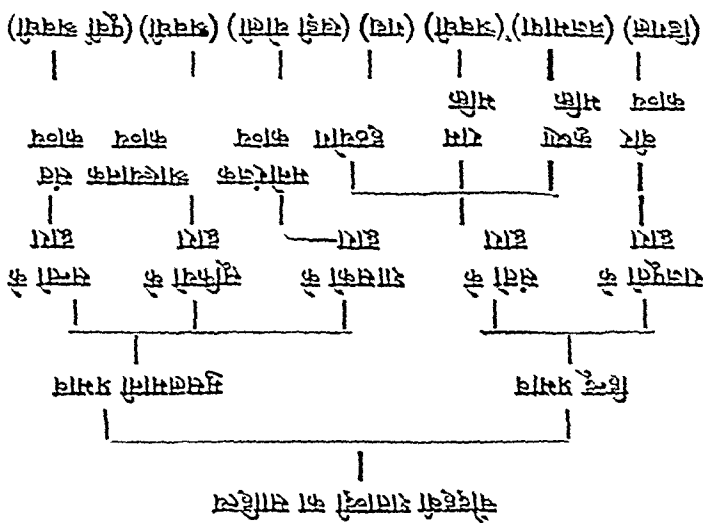
धार्मिक काल के प्रारम्भ में साहित्यिक वातावरण एक प्रकार से अस्त-व्यस्त था और उसमें विचार-साम्य का एकान्त अभाव था ; इतना अवश्य था कि भक्ति की धारा का रूप प्रधानता प्राप्त कर रहा था। भक्ति के प्राधान्य के कारण राम और कृष्ण के सम्बन्ध में जो रचनाएँ हुईं उनका निरूपण भक्तिकाल के अन्तर्गत इतिहास में किया जायगा, किन्तु इसका बीज चारण-काल के अवसान के बाद ही हो गया था। इस परिस्थिति का निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है :—

चौदहवीं शताब्दी का साहित्य

- हिन्दू प्रभाव
  - राजपूतों के द्वारा
    - वीर काव्य (डिंगल)
  - संतों के द्वारा
    - कृष्ण भक्ति (व्रजभाषा)
    - राम भक्ति (अवधी)
    - हठयोग (गद्य)
- मुसलमानी प्रभाव
  - शासकों के द्वारा
    - मनोरंजक काव्य (खड़ी बोली)
  - सूफियों के द्वारा
    - आख्यानक काव्य (अवधी)
  - सन्तों के द्वारा
    - संत काव्य (पूर्वी अवधी)

३	१३वीं श०	श्री विष्णु [illegible] स्वामी	[illegible] भाष्य	द्वैत (शुद्ध)	विष्णु स्वामी
४.	,,	श्रीनिम्बार्क	वेदान्त कौस्तुभ	द्वैताद्वैत	निम्बार्क
५.	१६वीं श०	श्री वल्लभाचार्य	अणुभाष्य	शुद्धाद्वैत (पुष्टि)	(वल्लभाचार्य)
६.	१८वीं	श्री बलदेव	गोविन्द भाष्य	अचिन्त्य भेदाभेद	चैतन्य

विविध आचार्यों द्वारा प्रतिपादित विष्णु के निम्नलिखित रूप हुए जिनसे वैष्णव-साहित्य निर्मित हुआ :—

विष्णु के रूप	भक्ति केन्द्र
१. राम	अयोध्या, चित्रकूट, नासिक।
२. कृष्ण	मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, नाथद्वारा, द्वारिका।
३. जगन्नाथ	पुरी, बद्रीनाथ।
४. विठ्ठोबा	पंढरपुर (शोलापुर), कञ्जीवरम।

इन धर्मों के प्रचार के सम्बन्ध मे एक बात और भी है। लोक रञ्जक विचारो की दृष्टि से धर्म का प्रचार तो किसी प्रकार किया ही जा रहा था, उसके साथ ही साथ जनता की भाषा का प्रयोग भी धर्म-प्रचार मे उपयुक्त समझा जाने लगा था। जो धार्मिक सिद्धान्त अभी तक संस्कृत मे बतलाये जाते थे वे अब जनता की बोली मे प्रचारित हो रहे थे जिससे धर्म की भावना अधिक से अधिक व्यापक हो जावे। भाषा के व्यवहार का दूसरा कारण यह भी था कि मुसलमानी शासन मे संस्कृत के अध्ययन के लिये कोई प्रोत्साहन नही रह गया था। ऐसी स्थिति मे संस्कृत अपना अस्तित्व स्थिर रखने मे असमर्थ हो रही थी। वह धीरे धीरे स्थानीय बोलियो मे अपना स्वरूप देख रही थी।

के नाम से पुकारा गया। हिन्दूधर्म की वे बातें जो इस्लाम को असह्य थी, संतमत मे नहीं हैं। मुसलमानी धर्म की वे बातें जो हिन्दू धर्म से मिलती-जुलती हैं, संतमत मे हैं। इस प्रकार संतमत के पल्लवित होने का बहुत कुछ श्रेय मुसलमानी धर्म को है।

संतमत मे भक्ति और साधना की चरम अभिव्यक्ति है। यद्यपि उसमे काव्य उच्च कोटि का नहीं है, तथापि हृदय की स्वाभाविक प्रेरणा की अच्छी झलक है। संतमत स्वच्छन्द और नैसर्गिक है, उसमे काव्य की कृत्रिमता नहीं है। काव्य की सरलता ही इसकी विशेषता है। कबीर के समान कुछ कवि ही उत्कृष्ट हुए हैं, पर उनमे भी सरलता है जो जनता के हृदय की वस्तु है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर इस मध्ययुग के साहित्य की विशेषता का वर्णन करते हुए लिखते हैं :—

"मध्ये युगेर साधक कविरा हिन्दी भाषाय जे भाव रसेर ऐश्वर्य विस्तार करियाछेन ताहार मध्ये असामान्य विशेषत्व आछे। सेइ विशेषत्व एइ जे ताहादेर रचनाय उच्च अङ्गेर साधक एवं उच्च अङ्गेर कवि एकत्र मिलित होइयाछेन एमन मिलन सर्वत्रइ दुर्लभ।" [1]

अर्थात् मध्ययुग के साधक और कवियो ने जो भाव और रस का विस्तार किया है उसमे असामान्य विशेषता है। वह विशेषता यह कि उस रचना मे उच्च श्रेणी के साधक और उच्च श्रेणी के कवि का सम्मिलन है। इस प्रकार का मिलन सर्वत्र ही दुर्लभ है।

इस साहित्य में विचारों की धाराएँ मुक्तक रूप मे हैं। गुरु, भक्ति, प्रेम, विरह, चेतावनी आदि भावनाएँ अलग-अलग समझाई गई हैं। उनका स्वरूप भी कहीं पदो मे, कहीं दोहो मे और कहीं कवित्त-सवैयो मे स्पष्ट किया गया है।

संत साहित्य मे जितने भी संत हुए हैं वे सब ईश्वर की भावना को

---

१. सुन्दर ग्रन्थावली (प्राक्कथन) संवत् १९९३.
सम्पादक पुरोहित श्री हरिनारायण शर्मा।

चौथा प्रकरण

भक्ति-काल

संवत् १३७५ से १७००

संत काव्य

मुसलमानी धर्म का प्रभाव सूफीमत द्वारा प्रचारित प्रेम काव्य के अतिरिक्त संत काव्य पर भी पड़ा जिसकी रूप-रेखा सूफीमत से बहुत कुछ मिलती है। मुसलमानों का शासन मूर्तिपूजा के लिए बिलकुल ही अनुकूल नहीं था। वे मूर्ति-विध्वंसक थे और वे काफिरों के समूल नाश करने वाले। अतएव हिन्दू धर्म की मूर्तिपूजा से सम्बन्ध रखने वाली प्रवृत्ति तो किसी प्रकार मुसलमानों को सह्य हो ही नहीं सकती थी। हिन्दू धर्म के उपासकों के सामने यह जटिल प्रश्न था, जिसका हल उन्होंने संत मत में पाया। इसके प्रवर्तक महात्मा कबीर थे। कबीर ने हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्तों को मुसलमानी धर्म के मूल सिद्धान्तों से मिला कर एक नये पंथ की कल्पना की थी जिसमें ईश्वर एक था। वह निर्गुण और सगुण से परे था। उसकी सत्ता प्रत्येक कण में थी। माया अद्वैतवाद की ही माया थी जिससे आत्मा और परमात्मा में भिन्नता का आभास होता है। गुरु की बड़ी शक्ति थी, वह गोविन्द से भी बड़ा था आदि। सूफीमत में भी खुदा या हक़ एक है। जीव उसका ही रूप है। वह निराकार है; उसकी व्याप्ति संसार के प्रत्येक भाग में है। साधक को साधना की अनेक स्थितियों को पार करना पड़ता है। इस तरह दोनों धर्मों के मेल से एक नवीन पंथ का प्रचार हुआ जो संतमत

संत साहित्य की विचार-धारा पर प्रकाश डालने मे सिक्खो का धार्मिक ग्रंथ 'श्री ग्रंथ साहब' महत्वपूर्ण है। वह सिक्खो के पाँचवें गुरु अर्जुन के द्वारा सम्पादित किया गया था। उसमे नानक के पूर्व अन्य संतो के वचन भी संग्रहीत है, जो धार्मिक परिष्करण मे प्रमुख स्थान प्राप्त किए हुए थे। श्री ग्रन्थसाहब मे नानक की कविता के अतिरिक्त निम्न-लिखित भक्तो की कविता भी संग्रहीत है :—

१ जयदेव (गीत गोविन्द के रचयिता)
२ नामदेव
३ त्रिलोचन
४ परमानन्द
५ सदना
६ वेनी
७ रामानन्द
८ धन्ना
९ पीपा
१० सेन
११ कबीर
१२ रैदास
१३ सूरदास
१४ फरीद
१५ भीखन
१६ मीरा (ग्रन्थ का बन्नो संस्करण)

संत साहित्य के उद्गम के पूर्व जिन भक्तों का नाम इतिहास मे आता है उन पर यहाँ विचार कर लेना आवश्यक है। वे चार भक्त उपासना के महत्व की दृष्टि से है—नामदेव, त्रिलोचन, सदन और वेनी।

हृदयङ्गम कर सके हों, इसमें सन्देह है। वे तो केवल भावना के आवेश मे ईश्वर की गुणावली का ही वर्णन करते हैं। वे उसे मनुष्य से ऊपर होने की ही कल्पना कर सके, [१] उसके समस्त रूप की व्याख्या नहीं। यदि उसकी व्याख्या का प्रयत्न भी है तो वह 'नीति' के रूप में। ईश्वर और जीव के पारस्परिक सम्बन्ध को सुलझाने मे वे असमर्थ थे।

ईश्वरवाद के प्रतिष्ठित लेखक डेविडसन का कथन है कि यह (श्रेष्ठता की भावना) केवल सभ्य और संस्कृत जातियों मे ही नहीं, वरन् निकृष्ट जातियों मे भी पाई जाती है, यद्यपि वह भावना असम्बद्ध और भ्रान्त है। ये निकृष्ट जातियाँ यद्यपि उस शासनकारिणी शक्ति की कल्पना, अर्चना और साधना के दृष्टिकोण से गलत करते हैं तथापि वे उसके द्वारा अपने से उत्कृष्ट शक्ति की खोज मे ही शान्ति प्राप्त करते हैं, जिसकी कृपा से उन्हे शान्ति, शक्ति और कार्यशीलता मिलती है।[२]

---

१. It is conceived as something greater than the individual super eminent, drawing forth his emotions and demanding his loyalty and active obedience.—

Recent Theistic Discussion Page 3.—William L. Davidson.

२. *This holds markedly of religion* among the higher or advanced races of mankind, but also (confusedly, no doubt, and haltingly) of religion among the lower races, who, although imagining the controlling power or powers erroneously so far as concerns propitiation and the modes of religious ceremonial and ritual are nevertheless groping their way towards satisfaction in something other and higher n themselves, whose favourable regard brings peace, invigorates *life, and stimulates to action*

Recent Theistic Discussion, Page 3.

William L. Davidson.

ने स्वयं त्रिलोचन के प्रति अनेक पद कहे हैं। इनका नाम त्रिलोचन इसलिये पड़ा कि ये भूत, वर्तमान और भविष्य के जानकार थे। ये अतिथियों का सत्कार करने मे सिद्धहस्त थे। जब अनेक संत इनके यहाँ आने लगे तो इन्होंने एक सेवक की खोज की। कहते है ईश्वर ने अन्तर्यामी नाम से सेवक बन कर इनकी सहायता की। इनके पद भी ग्रन्थ साहब मे पाये जाते है। भक्तमाल में त्रिलोचन को भी नामदेव के साथ ज्ञानदेव का शिष्य कहा गया है।[1]

सदन

सदन का जन्म सेहवान (सिंध) में हुआ था। ये नामदेव के सम-कालीन थे। अतः इनका समय विक्रम की चौदहवीं शताब्दी का मध्य भाग ही मानना चाहिए। ये जाति के कसाई थे। ये शालग्राम पत्थर की मूर्ति पूजते थे और उसी से मांस तौल कर बेचते थे। बाद में इन्हे सांसारिक जीवन से घृणा हो गई। ये घर से भाग गए। जीवन की

---

the Granth, but his Marathi hymns, and even his memory seem to be lost in his native land

An Outline of the Religious Literature of India Page 290-300

J. N. Farquhar.

१. विष्णु स्वामी सम्प्रदाय दृढ़ ज्ञानदेव गंभीर मति ॥
'नामदेव' 'त्रिलोचन' शिष्य सूर शशि सदृश उजागर।
गिरा गंग उनहारि, काव्य रचना प्रेमाकर ॥
आचारज हरिदास अतुल बल आनँद दायन।
तेहि मारग वल्लभ विदित पृथुपधति परायन ॥
नवधा प्रधान सेवा सुदृढ़ मन वच क्रम हरि चरन रति।
विष्णु स्वामी सम्प्रदाय दृढ ज्ञानदेव गंभीर मति

भक्तमाल (नाभादास) पृष्ठ ३६३

तोड़ने का निर्देश अपने किसी पद में किया है और मुसलमानों का दक्षिण में पहला हमला ईसा की चौदहवीं शताब्दी में हुआ। अतः नामदेव चौदहवीं शताब्दी के बाद हुए। किन्तु यहाँ एक बात विचारणीय है। महमूद गजनवी ने सोमनाथ की मूर्ति तो बारहवीं शताब्दी ही में तोड़ डाली थी। इसके बाद उत्तर में मूर्ति तोड़ने की अनेक घटनाएँ हुईं। नामदेव केवल पंढरपुर में ही नहीं रहे, वरन् उनकी यात्राएँ उत्तर में हस्तिनापुर और बद्रिकाश्रम तक हुईं।[1] अतः उत्तर में मुसलमानों की मूर्ति तोड़ने की प्रवृत्ति देख कर इन्होंने उसका वर्णन यदि अपने किसी अभङ्ग में कर दिया तो इससे उनके आविर्भाव काल में कोई अन्तर नहीं आता। फिर नामदेव को ज्ञानेश्वरी के रचयिता ज्ञानदेव का भी शिष्य कहा गया है।[2] ज्ञानदेव का समय सं० १३३२ माना गया है।[3] अतः नामदेव ज्ञानदेव के समकालीन अवश्य रहे होंगे।

त्रिलोचन

त्रिलोचन का जन्म वैश्य वंश में संवत् १३२४ (सन् १२६७) में हुआ था। ये पंढरपुर के निवासी और नामदेव के समकालीन थे।[4] नामदेव

---

1. Selections from Hindi Literature Book IV Page 112
Lala Sita Ram B. A.

२. भक्तमाल हरिभक्त प्रकाशिका, पृष्ठ २६४.
—ज्वालाप्रसाद मिश्र
(गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास बम्बई सं० १६८१)

३. श्री ज्ञानेश्वर चरित, पृष्ठ ३१
लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर

४. Another Maratha saint, Trilochan by ... seems to have been a contemporary of Namdev, but very little is known about him. Three of his Hindi hymns appear in

जैसा श्री सम्प्रदाय का आदेश था। उन्होंने इतना अवश्य किया कि भक्ति के लिए अनेक जाति के जिज्ञासुओं को एक ही पंक्ति में बिठला दिया।

(२) उन्होंने धर्म-प्रचार के लिए संस्कृत की उपेक्षा कर जनता की भाषा को ही प्रश्रय दिया। यद्यपि रामानन्द की हिन्दी रचना बहुत ही कम है, तथापि उन्होंने अपने शिष्यों को भाषा में धर्म-प्रचार की आज्ञा दे दी थी। रामानन्द का एक ही पद हमें ग्रन्थ साहब में प्राप्त है।

(३) रामानन्द ने ईश्वर के वर्णन में अद्वैतवाद में प्रयुक्त ईश्वर के नामों का उपयोग किया है। उन्होंने राम की साकार उपासना को सुरक्षित रखते हुए भी अद्वैतवाद की ईश-नामावली को स्वीकार किया है। जहाँ एक ओर वे रामानुजाचार्य के श्रीभाष्य का आधार लेते हैं, वहाँ दूसरी ओर वे अद्वैतवाद के आधार पर लिखी हुई अध्यात्म रामायण का भी सहारा लेते हैं।[1] यही कारण है कि आगे चल कर तुलसीदास ने भी साकार ब्रह्म राम को अद्वैतवाद के अनेक ईश्वर-सम्बन्धी नामों से पुकारा है।

(४) शङ्कराचार्य के सन्यासियों से रामानन्द के अवधूतों को आचारात्मक स्वतंत्रता बहुत अधिक है। (रामानन्द के वैरागियों का नाम अवधूत है।)

---

only certain of the rel ... relaxed

An Outline of the Re... J. N. Farquhar

[1] Ibid, page ...

अनेक परिस्थितियों से होते हुए इन्हें अनेक कष्ट भोगने पड़े, किन्तु इन्होंने न तो ईश्वर का नाम ही छोड़ा और न सत्यमार्ग से अपना मुख ही मोड़ा। इनकी कविता थोड़ी होते हुए भी भक्ति का महत्व रखती है।

वेनी

वेनी का विशेष विवरण ज्ञात नहीं। इनकी रचना की भाषा प्राचीन और असंस्कृत है। अतः ज्ञात होता है कि सम्भवतः इनका आविर्भाव काल नामदेव से भी पहले हो। इनकी रचनाओं में हठयोग के साधन से अध्यात्म की शिक्षा दी गई है।

संत साहित्य के विकास में मुसलमानी प्रभाव का जितना बड़ा हाथ है उससे किसी प्रकार भी कम वैष्णव धर्म का नहीं। रामानन्द ने ही अपनी स्वतंत्र भक्ति से कबीर आदि महात्माओं को जन्म दिया जिन्होंने संत साहित्य की स्थापना की। रामानन्द से पहले दक्षिण में नामदेव और त्रिलोचन और उत्तर में सदन और वेनी की रचनाओं ने भी भक्ति का बड़ा परिष्कृत रूप रक्खा, जिसमें ईश्वर केवल मूर्ति में ही सीमित न होकर विश्व मे व्यापक हो गया। रामानन्द ने संत साहित्य के विकास मे जो सहायता पहुँचाई उसके कारण हैं :—

(१) रामानन्द ने जाति-बन्धन ढीला कर दिया था। इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने वर्णाश्रम का मूलोच्छेद कर दिया था। उन्होंने केवल खान-पान के विषय में स्वाधीनता दी थी, जाति की अवहेलना नहीं की थी।[1] उन्होंने उसे वैसा ही रक्खा

---

1. But there is no evidence that he relaxed the rule that restricts priestly functions to the Brahman, and he made no attempt to overturn caste as a social institution : it was

सं० विषय ग्रन्थ	लेखक	संवत्
मत चन्द्रिका	फतेहसिंह	१८०७
भाषा ज्योतिष	शंकर	अज्ञात
कर्म विवाक	श्रीसूर्य	"
२ वैद्यक		
रामविनोद	रामचन्द्र मिश्र	१५०६
वैद्य मनोत्सव	नैनसुख	१६४९
सार संग्रह	गङ्गाराम	१७१४
भिषज प्रिया	सुदर्शन वैद्य	१७७९
हिम्मत प्रकाश	श्रीपति भट्ट	१ ३१
आयुर्वेद विलास	देविसिंह राजा	१८२७
दयाविलास	दयाराम	१७७९
सारङ्गधर संहिता	नेतसिंह	१८०८
चिकित्सा सार	धीरजराम	१८१०
वैद्यविनोद	हरिवंश राय	१८२२
औषधि-विधि	धनन्तर	१८३६
औषधि सार	छत्रसाल मिश्र	१८४२
वैद्य मनोहर } संजीवन सार }	नोनेशाह	१८५१
वैद्यक ग्रन्थ की भाषा	अनन्तराम	८७५
वैद्यप्रिया	खेतसिंह	१८५५
नामचक्र	लछमन प्रसाद	१९००
शिवप्रकाश	शिवदयाल	१९१०
निघंट भाषा	मदनपाल	अज्ञात
माधव निदान	चन्द्रसेन	
ज्वर चिकित्सा प्रकाश	राजा साहेब	
अमृत संजीवन		

संख्या	कवि	ग्रन्थ	संवत
२४	सूदन	[illegible]	[illegible]
२५	पद्माकर	[illegible] विरुदावली [illegible]	[illegible]
२६	,,	[illegible] विरुदावली [illegible]	[illegible]
२७	गोपाल	[illegible] की विरुदावली	[illegible]
२८	जोधराज	हम्मीर रासो	[illegible]
२९	प्रताप साहि	[illegible]	[illegible]

सूदन का सुजान चरित और पद्माकर की [illegible] विरुदा-वली एवं जगतसिंह विरुदावली[1] आदि [illegible] की अनेक घट-नाओ पर यथेष्ट प्रकाश डालते है। [illegible] का ठीक ठीक परिचय नहीं मिलता, [illegible] हमारे साहित्य के इन ऐतिहासिक ग्रन्थों से बड़ी सहायता मिली है। [illegible] का यथार्थ परिचय हमे इतिहास से नहीं, केशवदास के वीरसिंहदेव चरित मे मिलता है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य मे अनेक विषय की पुस्तके भी लिखी गई हैं। जिनसे साहित्य के व्यापक और विस्तृत दृष्टिकोण का भी परिचय मिलता है। यद्यपि उन पुस्तकों की रचना अधिकतर पद्य मे ही हुई, तथापि काव्य के अतिरिक्त अन्य विषयो पर की हुई रच-नाओ मे हमारे साहित्य की बहुमुखी प्रवृत्ति लक्षित होती है। अतः जो लोग हिन्दी-साहित्य को केवल नवरसमय काव्य समझे हुए हैं, उन्हे साहित्य की अन्य विषयक रचनाओं पर भी दृष्टि डालनी चाहिए। संक्षेप मे काव्य के अतिरिक्त अन्य जिन विषयो पर रचनाएँ हुई हैं, उनमे मुख्य-मुख्य रचनाओं का विवरण इस प्रकार है :—

सं० विषय	ग्रन्थ	लेखक	संवत
१ ज्योतिष			
	तत्त्व मुक्तावली	सितकंठ	१३२७
	समय बोध	कृपाराम	१३७२

[1] ना० प्र० सभा की खोज रिपोर्ट (१९०६, १९०७ और १९०८) पृष्ठ २

८ उपवन विज्ञान

बाग विलास	शिवकवि	१८५७
उपवन विनोद	भोज	१८९७

९ विविध

दस्तूर चिन्तामणि (क्षेत्रमिति)	धीरजसिंह	१८९९
भोजन विलास (पाकशास्त्र)	प्रयागदास	१८७७
जुद्ध जोत्सव (सेना विज्ञान)	जगन्नाथ	१८८७
सिद्धसागर तंत्र (तंत्रविद्या)	शिवदयाल	१८९३
सार संग्रह (विविध)	दाराशाह	१७०७
धनुर्वेद	यशवंतसिंह	अज्ञात

यदि साधारणतया देखा जाय तो वैद्यक विषय विशेष विस्तार से लिखा गया। उसके बाद क्रमशः ज्योतिष, राजनीति, संगीत, कोष, गणित, सामुद्रिक आदि आते हैं।

इतिहास-लेखन में कठिनाइयाँ

हिन्दी-साहित्य मे अभी तक ऐसे बहुत से स्थल हैं, जिनके निर्धारण मे शङ्का की जाती है। गोरखनाथ का समय, जटमल का गद्य, सूरदास जी की जन्मतिथि, कबीर का चरित्र आदि विषयो पर अभी तक मत निश्चित नही हो पाया। इसके दो कारण है। एक तो हमारे यहा इतिहास-लेखन की प्रथा ही नही थी। यदि घटनाओ और व्यक्तियो पर कुछ लिखा भी गया तो उनकी तिथि आदि के विषय मे कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। भक्तमाल, वार्ता आदि मे यद्यपि भक्तो और कवियो के चरित्र वर्णित है, पर उनमे तिथियो का किंचित निर्देश नही है। दूसरे, कवियो ने स्वय अपने विषय मे भी कुछ नही लिखा। वे या तो आवश्यकता से अधिक नम्र थे, या अपने सासारिक जीवन को तुच्छ समझ कर पारलौकिक सत्ता पर दृष्टि गड़ाए हुये थे। 'कवित विवेक एक नहि मोरे' अथवा 'मो सम कौन पातकी' [illegible] टीको कह कर वे अपनी हीनता वर्णन करते थे [illegible]

सं०	विषय	ग्रन्थ	लेखक	संवत
३	गणित			
		गुण प्रकाश	फतेहसिंह	१८०१
		गणित सार	भीमजू	१८३३
		गणित चंद्रिका	धीरजसिंह	१८९१
		भाषा लीलावती	भोलानाथ	अज्ञात
४	राजनीति			
		राजभूखन	कोविद	१७५१
		सभा प्रकाश	बुद्धिसिंह	१८२७
		नृपनीतिशतक	राजा लक्ष्मणसिंह	१९००
		राजनीति के दोहे	देवीदास	अज्ञात
		राजनीति के भाव	देवमणि	,,
५	सामुद्रिक			
		सामुद्रिक	रतनभट्ट	१७४५
		,,	यदुनाथ शास्त्री	१८२७
		,,	दयाराम	अज्ञात
६	संगीत			
		सभा भूषण	गङ्गाराम	१७४४
		राग रत्नाकर	राधाकृष्ण	१७६९
		रागमाला	रामसखे	१८०४
		रागमाला	यशोदानन्द	१८१५
७	कोष			
		नाममाला, नाम मञ्जरी नाममाला, अनेकार्थ मञ्जरी	नन्ददास	१६२५
		अमरकोष भाषा	हरिजू मिश्र	१९९२
		शब्द रत्नावली	प्रयागदास	१८६९

भाषा के विकास के सहारे[1] उससे परिचय प्राप्त करते हैं। किन्तु ऐसे आधार का आश्रय लेने पर हमे कवि विशेष के जीवन की एक-दो घटनाएँ ही मिलती हैं। उनमे भी कुछ न कुछ सन्देह बना ही रहता है। तिथियो को निश्चयात्मक रूप से न जान सकने के कारण हमे साहित्य के काल-विभाजन मे भी कठिनाई पड़ती है। ऐसी परिस्थिति मे भाषा तथा शैली मे परिवर्तन, धार्मिक दृष्टिकोण से भेद अथवा राजनीतिक परिस्थितियो के आधार पर ही काल-विभाजन की रेखा खीचनी पड़ती है। कवियो का अपना परिचय देने का संकोच हमारे सामने उनका अक्षम्य अपराध समझा जाना चाहिये।

राजनीतिक परिस्थितियो ने हमारे साहित्य की गति-विधि पर विशेष प्रभाव डाला है। ग्यारहवीं शताब्दी मे राजनीतिक वातावरण अत्यन्त अस्तव्यस्त था। संस्कृति का केन्द्र राजस्थान था। वहीं राजपूत वीरो के उत्कर्ष और अपकर्ष का अभिनय हुआ था। यह पारस्परिक द्वेष की आग १४वीं शताब्दी तक नहीं बुझ सकी।

काल विभाग

गृहकलह और मुसलमानो का प्रारम्भिक आतंक राजपूती शौर्य से संघर्ष लेता रहा। चौदहवीं शताब्दी के बाद मुसलमानो ने भारत मे अपना राज्य स्थापित कर अपने धर्म के प्रचार का प्रयत्न किया। अब संस्कृति का केन्द्र राजस्थान से हट कर मध्यदेश हो गया। हिन्दू धर्म की प्रतिद्वन्द्विता मे जब इस्लाम खड़ा हुआ तो जनता के हृदय मे अशान्ति के साथ-साथ क्रान्ति भी जागृत हुई। इस धार्मिक अव्यवस्था के फलस्वरूप धर्म की तेजस्वी भावना चारो ओर विरोध के रूप मे उठी और धर्म की मर्यादा मे—धर्म की रक्षा मे अनेको सन्देश कवियो की लेखनी से निकल पड़े। यह क्रान्ति सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक आतंक के साथ गूँजती रही। इस समय तक मुसलमान भी यहाँ के वातावरण से परिचित हो गए थे। हिन्दू भी मुसलमानो को देश

[1] नरपति नाल्ह

की भावना अथवा सम्मिलित संगठन का दृष्टिकोण तो हमारे कवियों के सामने था ही नहीं। प्रत्येक कवि व्यक्तित्व की परिधि में सीमित होकर परमात्मा की प्रार्थना में ही अपने को भुला देना चाहता था। इसीलिए केशवदास के पूर्व तक किसी कवि ने अपना यथेष्ट परिचय ही नहीं दिया। यह बात दूसरी है कि कवि ने ग्लानि अथवा अपनी हीनता के प्रदर्शन में अज्ञात रूप से अपने जीवन की घटनाओं का निर्देश कर दिया हो। तुलसीदास ने ही अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन अपनी आत्मग्लानि के वशीभूत होकर किया है। रीतिकाल में न तो कार्य की भावना ही प्रवल रह गई थी और न आत्मग्लानि से व्यक्तित्व ही क्षुद्र रह गया था। शृङ्गार और शृङ्गार-जनित जागृति ने प्रत्येक कवि को विलासी नहीं तो भावुक तो अवश्य बना दिया था। इसी कारण रीतिकाल में हमें कवियों का यथेष्ट परिचय मिलता है। केशवदास जो धार्मिक काल की संध्या में देदीप्यमान नक्षत्र की भाँति उदित होते हैं, अपना परिचय देते हैं।[1] भिखारीदास तो अपने काव्य-निर्णय में काव्य-कौशल के द्वारा चमत्कारपूर्ण परिचय देने में व्यग्र जान पड़ते हैं। कवियों का पूर्ण परिचय न पाने के कारण हमें इतिहास में कहीं 'लगभग'[2] का सहारा लेना पड़ता है, कभी वहिर्साक्ष्य का[3]। कहीं हम किसी ऐतिहासिक घटना के आधार पर कवि का जीवन जानने की चेष्टा करते हैं।[4] कहीं उसकी कविता के उद्धरण अथवा

---

१ कविप्रिया—कविवंश वर्णन के २१ दोहे—प्रियाप्रकाश टी० ला० भगवानदीन १६८२, पृष्ठ २१, २२।

२ नन्ददास के सम्बन्ध में।

३ मीरा के सम्बन्ध में।

४ शाहजहाँ के इतिहास के आधार पर रहीम के जीवन का विवरण।

५ सूरदास की साहित्य-लहरी का उद्धरण।

सं०	काल विभाग	विस्तार	संस्कृति का स्थान	विचार धारा	विशेष
					व्यक्तिगत वीरत्व, राष्ट्र-भावना का अभाव।
२	भक्तिकाल	सं० १३७५ –१७००	राजस्थान और मध्य देश	पारलौकिक	भाव और भाषा दोनों का उत्कर्ष। वर्णनात्मक काव्य के साथ रीतिकाव्य की प्रधानता। कविता के क्षेत्र में शृङ्गार और शान्त रस की प्रधानता। धार्मिक भावना का उत्कर्ष। राष्ट्र भावना का अभाव। क्रियात्मक [illegible] साहित्य का प्रणयन।
३	रीति काल	सं० १७०० —१९००	राजस्थान मध्य देश और दक्षिण	पारलौकिक के रूप में लौकिक	भाषा का उत्कर्ष। भावों की पुरानी परम्परा का [illegible]। कला का अधिक प्रदर्शन। वर्णनात्मक कविता का प्राधान्य। भावों का [illegible] में अधिक विस्तार। कविता के [illegible] रस का प्राधान्य। [illegible]

का निवासी मानने लगे थे। अतएव दोनों में भेद की भावना उत्पन्न हुई और प्रतिक्रिया के रूप में शान्ति, आनन्द और विलास की प्रवृत्तियाँ उठीं। शृंगार-रस से सारा समाज ओतप्रोत हो गया। यद्यपि वीरत्व के चिह्न कभी-कभी रस-भेद के लिए दीख पड़ते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक शृङ्गार की यह प्रधान धारा देश को विलास की गोद में सुलाए रही। इस समय तक संस्कृति का केन्द्र मध्यदेश के साथ दक्षिण में भी हो गया था और साहित्य, कला-कौशल, शिल्प आदि का उत्कर्ष स्पष्ट रूप में सामने आ रहा था। विक्रम की बीसवीं सदी के प्रारम्भ में अङ्गरेज़ों का प्रभाव विशेष रूप से सामने आया। यद्यपि अङ्गरेज़ों का प्रवेश भारत में तो विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी से ही हो गया था, पर साहित्य और संस्कृति के निर्माण मे उनका कोई हाथ नहीं था। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ मे ही उन्होंने अपनी सभ्यता का भारत में विस्तार किया। अब संस्कृति का केन्द्र समस्त भारत हो गया और साहित्य का प्रभाव जीवन के प्रत्येक भाग मे होने लगा। विविध विषयों पर पुस्तकें लिखी जाने लगीं और जीवन की यथार्थ समालोचना की ओर साहित्यिकों का ध्यान आकर्षित हुआ।

इस प्रकार हम राजनीतिक पट-परिवर्तन के साथ साहित्य को निम्नलिखित चार भागों मे विभाजित करते हैं।

सं०	काल विभाग	विस्तार	संस्कृति का स्थान	विचार धारा	विशेष
१	चारण काल	सं० १०००-१३७५	राजस्थान	लौकिक	पुरानी हिन्दी का जन्म, काव्य की अपेक्षा भाषा का उत्कर्ष, अधिकतर वर्णनात्मक काव्य, कविता के क्षेत्र मे वीररस का अधिक महत्व

मे बोली जाती है। पूरब मे अयोध्या की बोली अवधी है और दक्षिण मे बुन्देली और बाघेली है। सुदूर पूरब मे भोजपुरी और विहार और बङ्गाल की सीमा पर प्रचलित मैथिली तथा अन्य बोलियाँ है।[1] डिंगल [राजस्थानी], पिङ्गल [ब्रजभाषा], अवधी, मैथिली और खड़ी बोली मे साहित्य की रचना हुई। वस्तुतः इस साहित्य का नाम हिन्दी-साहित्य दिया जाना चाहिए। हिन्दी की भिन्न-भिन्न बोलियो मे साहित्य का निर्माण होने तथा जन-समाज की व्यापक और शतरूपा वृत्ति का प्रदर्शन होने के कारण हिन्दी साहित्य का दृष्टिकोण विस्तृत है, इसमे कोई सन्देह नहीं। जीवन को सबसे अधिक स्पर्श करने वाले शृंगार और शान्त रस का परमोत्कृष्ट और विस्तृत निरूपण होने के कारण भी हिन्दी साहित्य विश्वजनीन भावनाओं को लिए हुए हैं।

इन बोलियो के आधार पर जिस प्रकार साहित्य-रचना हुई है, उस पर संक्षेप मे विचार करना उचित होगा।

सिद्ध युग का साहित्य

त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन के अनुसार हिन्दी का प्रारम्भ मगही भाषा मे सिद्धो की कविता मे हुआ, जिन्होने बौद्ध धर्म के 'वज्रयान' सिद्धान्त का प्रचार आठवीं शताब्दी से करना प्रारम्भ किया। ये सिद्ध संख्या मे चौरासी माने गए हैं। इन्होंने किसी साहित्यिक भाषा को न लेकर जन-साधारण की भाषा ही में अपने सिद्धान्तो का प्रचार किया। अतएव इस भाषा के नमूने साहित्य मे सुरक्षित नहीं हैं। इनका अनुवाद भोटिया मे हुआ है और ये कविताएँ तिब्बत के सस्क्य विहार के पॉच प्रधान गुरुओ की ग्रन्थावली 'स स्क्य-ब्कं -बुम्' मे है। इन सिद्धो मे सरहपा, शवरि, लूहि, दारिक, वज्रघंटा, जालंधर, करहपा और शान्तिपा

---

1. Wilson Philological Lectures Sanskrit and the Derived Languages delivered in 1877 by Bhandarkar (1914.) Page 121.

सं०	काल विभाग	विस्तार	संस्कृति का स्थान	विचार धारा	विशेष
४	आधुनिक काल	सं० १९०२—अब तक	सम्पूर्ण भारत	लौकिक, पारलौकिक	गद्य का विकास और विस्तार। भावों का नवीन स्वरूप, धार्मिक भावनाओं का आधुनिक दृष्टिकोण। जीवन के सभी विभागों पर दृष्टिपात। वर्णनात्मक और नीति काव्य की प्रधानता। राष्ट्र भावना का सूत्रपात। क्रियात्मक साहित्य का प्रणयन।

हिन्दी-साहित्य का विस्तार अनेक बोलियों में पाया जाता है। उन बोलियों में साहित्य का निर्माण होने के कारण उनके रूप अभी तक वर्तमान है और साहित्य के साथ जीवित है। भण्डारकर के अनुसार हिन्दी की अनेक बोलियाँ हैं। राजस्थान में प्रयुक्त बहुत सी बोलियों में दो प्रधान हैं। मेवाड़ और उसके समीपवर्ती भागों में बोली जाने वाली मारवाड़ी। इन दोनों बोलियों की भौगोलिक स्थिति से यह तो जाना

साहित्य का विस्तार

जा सकता है कि वे गुजराती और व्रजभाषा के बीच की बोलियाँ है जिस में दोनों भाषाओं की विशेषताएँ हैं। उत्तर में व्रजभाषा है जो मथुरा के समीप बोली जाती है। पूर्व में कनौजी है। दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। चौरासी वैष्णवन की वार्ता और वल्लभी सम्प्रदाय के अन्य ग्रन्थों की भाषा जो व्रज मानी जाती है, उसमे कनौजी व्याकरण के रूप है। सुदूर उत्तर में गढ़वाली और कुमायूँनी है जो गढ़वाल और कुमायूँ

'डिंगल' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसमें वीसलदेव रासो सब से प्रथम गीति ग्रन्थ है जो नरपति के द्वारा सं० १२१२ में लिखा गया[1]। इसके बाद तो बहुत से प्रबन्ध काव्य और गीति काव्य लिखे गए जिनमें पृथ्वीराज रासो का भी नाम लिया जाता है। यद्यपि इसके प्रामाणिक होने में अभी हिन्दी के विद्वानों को सन्देह है। इस साहित्य में पृथ्वीराज राठौर का भी नाम सम्मान-सहित है, जिन्होंने 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' की रचना की है। इस साहित्य की रचना अधिकतर चारणों द्वारा हुई। अतएव इसमें वीर और रौद्र रसों की प्रधानता है। यद्यपि इस साहित्य में भाषा का अधिक सौन्दर्य नहीं है, पर भावों का वर्णन स्वाभाविक और उत्कृष्ट है। इस साहित्य से हमारे देश के इतिहास की भी यथेष्ट रक्षा हुई है। जहाँ ब्रजभाषा में साहित्य की रचना अधिकतर पद्य में हुई वहाँ इस भाषा में साहित्य की रचना गद्य और पद्य दोनों में हुई है। हमें 'रासो' के साथ-साथ 'बात' और 'ख्यात' की रचना भी मिलती है। इस भाषा के साहित्य का महत्व इसलिये भी है कि इसीके द्वारा हमारे साहित्य का क्रम-विकास हुआ है।

राजस्थानी का साहित्य (डिंगल)

शौरसेनी अथवा नागर अपभ्रंश से उत्पन्न इस बोली में साहित्य की रचना विक्रम की बारहवीं शताब्दी से होना प्रारम्भ हुआ। उस समय इसका नाम 'पिंगल' था। यह राजस्थानी साहित्य डिङ्गल के समान मध्यदेश की साहित्यिक रचना का नाम था। इस साहित्य का विस्तार हिन्दी के अन्य किसी भाग के विस्तार से अधिक रहा है। सोलहवीं शताब्दी में कृष्ण-पूजा का आश्रय पाकर इस साहित्य ने बहुत उन्नति की। सूरदास, नन्ददास अष्टछाप के अन्य कवि सेनापति, बिहारी, मतिराम, चिन्तामणि, रसखान, देव, घनानन्द, पद्माकर तथा रीतिकाल के समस्त कवि इसी

ब्रज भाषा का साहित्य (पिंगल)

[1] इसकी रचना सं० १०७३ में भी मानी गई है ना० प्र० पत्रिका भा० १४ अ० १ पृ० ६६।

मुख्य माने गए हैं। सरहपा का समय राहुल जी द्वारा सं० [illegible] माना गया है और डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्य के अनुसार सं० [illegible]। अतः सातवीं शताब्दी में ही हम सिद्धों की रचनाओं में हिन्दी भाषा के प्रारम्भिक रूप में पाते हैं। इन रचनाओं का मुख्य विषय हठयोग, मन्त्र, मद्य और स्त्री है, जो वज्रयान के मुख्य अंग हैं। भाषा अपभ्रंश मिश्रित है, जिसमें सिद्धान्तों के प्राधान्य के कारण काव्योत्कर्ष हो नहीं सकता।

पुरानी हिन्दी का साहित्य

अपभ्रंश की विकसित अवस्था जब हिन्दी का रूप ले रही थी उस समय जैन आचार्यों ने अपने धार्मिक सिद्धान्त इस अपभ्रंश से निकलती हुई भाषा में प्रारम्भ कर दिये थे। यद्यपि इस भाषा में जैन धर्म के सिद्धान्त ही लिखे गये हैं पर भाषा-विज्ञान की दृष्टि से हमें इसमें अपनी भाषा के विकास की सामग्री पर्याप्त मात्रा में मिल सकती है। जैन धर्म के दिगम्बर सम्प्रदाय ने हिन्दी में अपने धर्म के प्रचार की चेष्टा भी की है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने तो अधिकतर गुजराती भाषा का ही आश्रय ग्रहण किया है। जैन धर्म के प्रचार पर अधिक ध्यान रहने के कारण कोई भी जैनी उत्कृष्ट कवि नहीं हुआ। उसे अपने सिद्धान्तों को दुहराने से अवकाश ही नहीं मिलता था जिससे वह काव्य के अङ्ग पर विचार करे। सारे जैन-साहित्य में एक भी रस-निरूपण सम्बन्धी ग्रन्थ नहीं है। इसमें हेमचन्द्र के कुमार पाल चरित से प्रारम्भ होकर धर्म सूरि का जम्बू स्वामी रासा, विजयसेन का रेवंतगिरि रासा, विजयचन्द्र का नेमिनाथ चउपई आदि की रचना हुई। इन ग्रन्थों में जैन धर्म के सिद्धान्तों की चर्चा के साथ ही इतिहास की प्रसिद्ध घटनाओं की भी रक्षा की गई है। बनारसीदास (सं० १६४३ जन्म) अवश्य कवि थे, पर उनकी प्रतिभा भी अधिकतर अपने जैन आदर्शों के लिखने में समाप्त हुई।

नागर अपभ्रंश से प्रभावित राजस्थान की बोली साहित्यिक रूप में

कता अवधी मे दिखलाई। अवधी को ब्रजभाषा के समान साहित्यिक रूप देने का श्रेय तुलसीदास जी ही को है। अलंकारो से परिपूर्ण, रसोद्रेक से ओत-प्रोत, गुणो की गरिमा से विभूषित, तुलसी की अवधी कविता मानव जीवन की व्यापक विवेचना करने मे समर्थ हुई है। तुलसी ने राम-काव्य मे अवधी के सहारे इतनी सफलता प्राप्त की कि फिर किसी कवि का अवधी मे राम साहित्य लिखने का साहस नहीं हुआ। ब्रजभाषा मे तो कृष्ण-साहित्य सूर के बाद भी अनेको के द्वारा लिखा गया। तुलसी द्वारा रचित यह अवधी कविता संसार के साहित्य मे अपना सफलता-पूर्ण महत्व सदैव रख सकेगी।

बुन्देलखंडी का साहित्य

ब्रजभाषा के साहित्यिक महत्व के कारण यद्यपि अन्य बोलियो का विकास साहित्य रचना के लिये रुक सा गया, तथापि बुन्देलखंडी भाषा ने कुछ अंशो मे अपने अस्तित्व की रक्षा अवश्य की। सबसे प्रथम रचना जगनिक के द्वारा आल्हखंड की हुई। आल्हखंड का साहित्यिक रूप अप्राप्य है, वह जनता के कंठ की वस्तु है। यही कारण है कि अभी तक उसका प्रामाणिक पाठ नहीं मिल सका। भाषा के क्रमिक विकास और परिवर्तन के कारण उसमे भी परिवर्तन होता रहा। उसका मूलरूप क्या था, यह जानना भी अब कठिन है। आल्हखंड मे ब्रजभाषा के कलेवर मे बुंदेलखंडी भाषा बैठी हुई है। अनेक बुंदेली क्रियाऍ और शब्द जैसे मेम्होटा (कमरा), खों (को), लाने (लिये), आउन लागे (आने लगे) उसमे पाये जाते है। स्वतन्त्र रूप से बुंदेली बानी का कोई ग्रन्थ नहीं प्राप्त है। संवत् १६१? मे ओरछा के व्यास स्वामी ने कुछ पदों की रचना की। [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

खड़ी बोली दिल्ली, मेरठ आदि स्थानों की जन-समुदाय की बोली रही है जो समय-समय पर साहित्य में प्रयुक्त हुई। खड़ी बोली में प्रथम लिखने वाले अमीर ख़ुसरो हुए, जिन्होंने अपनी पहेलियों, मुकरियों आदि में इस भाषा का प्रयोग किया। यद्यपि ब्रजभाषा को भी उन्होंने विशेष रूप से प्रश्रय दिया, पर उन्होंने खड़ी बोली की भी उपेक्षा नहीं की। 'एक नार ने अचरज किया' कह कर वे उस समय की बोली में कविता कर हमें भी 'अचरज' में डाल देते हैं। कबीर ने भी फारसी शब्दों के मेल से अपने समय की खड़ी बोली में कविता की—'हमारा यार है हममें हमन को इन्तजारी क्या' लिखकर वे जन-समुदाय की भाषा के बहुत निकट हो गए हैं। यद्यपि ब्रजभाषा के महत्त्व के कारण खड़ी बोली का प्रचार न हो सका, तथापि समय समय पर साहित्य में उसके चिह्न अवश्य मिलते रहे। मुसलमानों ने भी इस बोली का आधार लेकर उसमें फारसी शब्द मिला कर अपने 'उर्दू' साहित्य की सृष्टि की। आश्चर्य तो इस बात का है कि यह बोली उत्तर की होती हुई भी दक्षिण में पल्लवित हुई और वहाँ से भारत के अन्य स्थानों में फैली। ब्रजभाषा के क्षेत्र से निकल कर लल्लूलाल आदि ने पहले गद्य रूप में इस खड़ी बोली का प्रचार किया। बाद में हरिश्चन्द्र ने इसकी बहुत उन्नति की। यद्यपि उन्होंने भी इसे पद्य का रूप नहीं दिया, पर उनकी कविता में इसका प्रभाव दीख पड़ने लगा था। महावीरप्रसाद द्विवेदी के समय में इसने विशेष उन्नति की तथा श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय और मैथिलीशरण गुप्त जैसे उत्कृष्ट कवि इस भाषा में हुए। अब तो खड़ी बोली ही गद्य और पद्य की भाषा है। अनेक विषयों पर गद्य में ग्रन्थ-रचना आधुनिक खड़ी बोली साहित्य की विशेषता है। हिन्दी कविता का नवीनतर स्वरूप छायावाद भी इसी में [illegible] हुआ है।

खड़ी बोली का साहित्य

साहित्य के [illegible] से [illegible] प्रकाशित हु[illegible]

सुजानसिंह के भतीजे अर्जुनसिंह के आज्ञानुसार मेघराज प्रधान ने एक प्रेम-कहानी 'मृगावती की कथा' लिखी। गोरेलाल 'लालकवि' ने राजा छत्रसाल की प्रशंसा में छत्र-प्रकाश ग्रन्थ लिखा। उसमें भी बुंदेली प्रभाव लक्षित है।

मैथिली का साहित्य

पंद्रहवीं शताब्दी में विद्यापति ठाकुर ने मैथिली साहित्य में अपनी पदावली की रचना की। बिहारी भाषा के अन्तर्गत मैथिली बोली ही है जिसमें साहित्य-रचना हुई है। यद्यपि मैथिली को मागधी अपभ्रंश से निकलने के कारण हिन्दी के अन्तर्गत मानने में आपत्ति हो सकती है, पर शब्द-भाण्डार की व्यापकता और हिन्दी से मैथिली का अधिक साम्य होने के कारण वह हिन्दी की एक शाखा ही मान ली गई है। इसीलिए विद्यापति की कविता हिन्दी-साहित्य के अंतर्गत मानी जाती है। विद्या-पति ने राधाकृष्ण के सौन्दर्य और शृङ्गार पर अनेक पद लिखे हैं, जो चैतन्य महाप्रभु के द्वारा बहुत प्रचार पाते रहे। अब भी विद्यापति की रचना लोकप्रिय है, यद्यपि वासना का रङ्ग प्रखर होने से वह भक्त जनों को कुछ कम भाती है। "सरस वसंत समय भल पावलि दछिन पवन वह धीरे" में साहित्यिक सौन्दर्य अवश्य है, पर 'सूनि सेज पिय सालइ रे' में भक्ति नहीं मानी जा सकती।

मैथिली में विद्यापति के बाद कोई महान कवि उत्पन्न नहीं हुआ। साधारण कवि बहुत से हुए—उमापति, मोद नारायण, चतुर्भुज, चक्र-पाणि इत्यादि। मनबोध (मृत्यु १८४५ सं०) ने हरिवंश नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें कृष्ण का जीवन-वृत्त है। चन्द्र झा ने 'मिथिला भाषा रामायण' की रचना की है जो अधिक लोकप्रिय है। प्रयाग-विश्वविद्या-लय के भूतपूर्व वाइस चान्सलर महामहोपाध्याय डॉ० गङ्गानाथ झा मैथिली साहित्य के बड़े विद्वान हैं। उनके द्वारा मैथिली साहित्य पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। डॉ० उमेश मिश्र ने भी विद्यापति पर विशेष आलोचना लिखी है।

सामग्री अभी तक संदिग्ध है। नागरी-प्रचारिणी सभा के परिश्रम से जो ग्रन्थ सुचारु रूप से सम्पादित हुए हैं, उनकी पाठ्य-सामग्री तो किसी प्रकार निश्चित सी है, किन्तु अन्य ग्रन्थों के पाठ कहीं-कहीं बहुत भ्रमपूर्ण हैं। सूरसागर जैसे महान ग्रन्थ का पाठ अभी तक बहुत संदिग्ध है। कबीर और मीरा के पाठ्य-भाग तो प्रामाणिक कहे भी नहीं जा सकते। जगनिक का आल्हखण्ड भी बहुत रूपान्तरित है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि हमारे साहित्य के ये ग्रन्थ बहुत काल तक मौखिक रूप में रहे। अतएव समयानुसार भाषा में परिवर्तन होने के कारण इन ग्रन्थों के पाठ में भी परिवर्तन हो गया। आल्ह खण्ड अभी तक लोगों के मुख का निवासी है। उसका प्रामाणिक संस्करण अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। मीरा और कबीर के पद भी बहुत लोकप्रिय होने के कारण जनता में गाए गए। इसीलिये उनके पदों में महान परिवर्तन हो गया। हम तो अनेक पदों को आधुनिक भाषा में कबीर और मीरा के नाम से लिखे हुए देखते हैं। ये प्रक्षिप्त पद कवि की रचनाओं का महत्त्व कितना घटा देते हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं। भाषा के विकास की दृष्टि से इन भ्रमात्मक पाठों का संशोधन होना चाहिये। दूसरा कारण यह है कि हमें अभी प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थ मिले भी नहीं हैं, जिनके आधार पर पुराने ग्रन्थों का प्रकाशन हो। नागरी प्रचारिणी सभा ने इस क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया है। उसके फलस्वरूप कई सुन्दर और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जो अभी तक अन्धकार में थे प्रकाश में लाए गए हैं। किन्तु यह कार्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता। अन्वेषण की अभी बहुत आवश्यकता है। खोज में मिले हुए ग्रन्थों का प्रकाशन भी किसी सम्माननीय संस्था द्वारा होना चाहिए। अभी तक प्राचीन हिन्दी ग्रन्थों का प्रकाशन चार प्रेसों में हुआ है। वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर और इण्डियन प्रेस इलाहाबाद।

साहित्य की पाठ्य सामग्री

का समूह है। इसलिए उनकी भाषा में साम्य होते हुए भी भिन्नता के चिह्न पाये जा सकते है। जो अधिक परिष्कृत मस्तिष्क वाले हैं उनकी भाषा अन्य साधारण जनो की भाषा से अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत होगी। यही परिष्करण की भावना भाषा मे भिन्नता का सूत्रपात करती है और यह भिन्नता अन्त मे भाषा का स्वरूप ही बदल देती है। उसका कारण यह है कि साहित्य के कठिन नियमो मे पड़ कर भाषा का रूप कठिन अवश्य हो जाता है, जिसे जनसाधारण अपने व्यवहार में नहीं ला सकते। अतएव साहित्य के अतिरिक्त जनसाधारण की भाषा भिन्नता लिए हुए प्रवाहित होती रहती है। जब यह जनसाधारण की भाषा भी साहित्य का निर्माण करती है तो जनता को अपनी भाषा मे स्वाभाविकता लाने के लिए फिर किसी सरल भाषा का आविष्कार करना पड़ता है। जब उसमे भी साहित्य-रचना होने लगती है तो जन-साधारण फिर एक नवीन भाषा का प्रयोग करते है। साहित्य-रचना और जन-साधारण की भाषा का यही पारस्परिक वैषम्य भाषा के परिवर्तित होने का रहस्य है।

हमारे देश के प्राचीन आर्यों की भाषा का क्या रूप था, यह हमें प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद से ज्ञात हो सकता है। पर ऋग्वेद की भाषा साहित्यिक भाषा का एक रूप मात्र है। साधारण जनो की भाषा इससे अवश्य ही कुछ न कुछ भिन्न रही होगी, जिसका स्वरूप हमारे सामने नहीं है। ऋग्वेद की भाषा, जिसने जन-समाज की भाषा से रूप लेकर अपना परिष्करण किया था, स्थिरता का प्रमाण नहीं दे रही है। कारण यह है कि ऋग्वेद की रचना एक ही समय मे और एक ही स्थान पर नहीं हुई। आर्यों ने भारत मे अपना नया निवास बनाने के लिए जैसे-जैसे पूर्व की ओर प्रस्थान किया, वैसे-वैसे उन्होने स्थान विशेष अथवा परिस्थिति विशेष से प्रभावित होकर समय-समय पर साहित्य-रचना की। सम्पूर्ण ग्रन्थ के निर्माण मे आर्यों ने स्थान और समय का न जाने कितना प्रवाह अपने ऊपर से निकल जाने

हिन्दी साहित्य की भाषा का विकास

भाषा का सम्बन्ध मानव-समाज से है, तदनुसार मानव समाज के विकास से भाषा में भी विकास होता है। इस विकास की गति अविदित रूप से चलती है। कालान्तर ही में परिवर्तन के चिह्न दृष्टिगत होते हैं। भाषा-परिवर्तन के अनेक कारण हैं। वे दो भागों में विभाजित किए गए हैं। अन्तरंग और बहिरंग। परिवर्तन होने का मुख्य अंतरंग कारण यही है कि भाषा प्रथमतः मुख की निवासिनी है। इसका उच्चारण सदैव एक सा नहीं होता। उच्चारण की भिन्नता इतनी सूक्ष्म होती है कि इसका परिचय हमें सौ दो सौ वर्ष बाद ही मिलता है और कुछ शताब्दियाँ बाद तो भाषा बिल्कुल ही बदल जाती है; उसकी अवस्थाएँ तक बदल जाती हैं। विच्छेदावस्था (Isolating Stage) संयोगावस्था (Agglutinative Stage) विकृतावस्था (Inflectional Stage) और वियोगावस्था (Analytic Stage) की श्रेणी में भाषा एक अवस्था से दूसरी अवस्था में भी पहुँच जाती है। इस प्रकार भाषा का एक इतिहास हो जाता है, जिसमें भाषा के परिवर्तन की परिस्थितियों के सहारे हम अपने समाज की परिवर्तनशील प्रवृत्ति ही का नहीं, अपनी संस्कृति का भी परिचय पाते हैं। हिन्दी भाषा का इतिहास कुछ कम मनोरञ्जक नहीं है। भाषा-विकास के नियमानुसार वह हमें अपनी भाषा की विभिन्न रूपावली के साथ अपनी संस्कृति के इतिहास की सामग्री के चयन में सहायक है।

किसी भी भू-भाग में भाषा के दो रूप आप से आप हो जाते हैं। कारण यह है कि जन-समाज एक ही प्रकार के व्यक्तियों का समुच्चय न होकर भिन्न-भिन्न बुद्धि और ज्ञान स्तर (Standard) के व्यक्तियों

निर्माण किया। अतएव कई बोलियाँ जो परिष्कृत होकर वेदकालीन भाषा का रूप बनी होंगी, जनसाधारण मे कुछ काल तक तो अवश्य प्रचलित रही होंगी, किन्तु संस्कृत भाषा कभी बोलचाल की भाषा रही होगी, इसमे सन्देह है। नियमो से उसका रूप इतना क्लिष्ट और अग्राह्य बना दिया गया था कि उसका प्रयोग साहित्य ही के लिए उपयुक्त था, बोलचाल के लिए नहीं। धातुओ के अनेक प्रत्यय और उपसर्ग के द्वारा बने हुए अपरिमित अप्रचलित शब्दो का प्रयोग जनसाधारण की बुद्धि के परे था। यास्क और पाणिनि पूर्व और उत्तर मे बोली जाने वाली संस्कृत का निर्देश अवश्य करते हैं। पतञ्जलि भी संस्कृत के प्रान्तीय विभेदो का वर्णन करते है, पर संस्कृत के व्यावहारिक रूप का प्रचलन यदि कहीं होगा तो वह साहित्यिक और शिष्ट समुदाय मे ही होगा, क्योकि उसका रूप कात्यायन और पतञ्जलि ने इतना व्यवस्थित कर दिया था कि जन-समुदाय उसके प्रयोग मे थोड़ी भी स्वतंत्रता न ले सकता होगा। भाषा के विकास का यह काल ई० पू० १५०० से लेकर ई० पू० ५०० तक है।

संस्कृत का रूप स्थिर हो जाने पर उसकी कठिनता के कारण जन-समाज की भाषा अपने ही क्षेत्र मे उन्नति करती गई। संस्कृत के बाद उसका सर्वप्रथम रूप हमे अशोक के शिला-लेखो और बौद्ध और जैन-धर्म-ग्रन्थो मे मिलता है (५०० ई० पू० के बाद)। प्राचीन प्राकृत को पाली नाम भी दिया गया है। पाली मे भी साहित्यिक गांभीर्य आने के कारण उसी के साहचर्य से निकली हुई साधारण भाषा हमारे सामने मध्यकालीन प्राकृत के विशिष्ट रूप मे आती है। प्राकृत के इस विकास को तीन भागो मे विभाजित किया गया है। प्राचीन (Primary) मध्य-कालीन (Se[illegible]) और उत्तर-कालीन (Tertiary) प्राकृत उसके नाम है। ([illegible])। इसे साहित्यिक प्राकृत भी कहा गया है। इस साहित्यिक प्राकृत के चार मुख्य रूप है—महाराष्ट्री, सौरसेनी, मागधी और अर्ध मागधी। इन्हे बररुचि ने

दिया । कंधार, सिन्धु नदी और यमुना नदी के [illegible] साहित्य में स्थान के आस-पास । [illegible] तीन स्थानों और तीन कालों में [illegible] साहित्य [illegible] भाषा समयानुसार परिवर्तित होती गई है, [illegible] । यही कारण है कि ऋग्वेद की ऋचाओं में भाषा [illegible] नहीं है । दशम मण्डल के मन्त्रों की भाषा [illegible] मण्डलों के प्राचीन मन्त्रों की भाषा से [illegible] भिन्न है । [illegible] भाषा के साथ ही साथ जनसाधारण की भाषा भी रही होगी, जो साहित्य के पाश से मुक्त होगी । वेद की भाषा भी जनसाधारण की अन्य भाषाओं में से एक भाषा रही होगी, जिसके [illegible] वेद का सम्पादन हुआ होगा ।

इसी वेदकालीन भाषा का अधिक परिमार्जित [illegible] संस्कृत भाषा के रूप में स्थिर हुआ । आर्यों को भय था कि उनकी पवित्र भाषा में कहीं दूसरी देशज भाषाओं के 'असंस्कृत' शब्द न घुस आवें, इसीलिए उन्होंने अपनी भाषा का संस्कार कर उसे 'संस्कृत' नाम से विभूषित किया । यद्यपि उन्होंने अपनी भाषा की पवित्रता की रक्षा तो कर ली, तथापि वह भाषा देव-मन्दिर में अधिष्ठित मूर्ति की भाँति ही जड़ होकर रह गई । जनसाधारण की भाषा अपने व्यावहारिक रूप में तरंगिणी की भाँति आगे प्रवाहित होती गई और उसमें भिन्न-भिन्न देशज शब्द भी मिलते गये । स्वाभाविक रूप से अथवा प्रकृति के अनुसार बोली जाने वाली यही 'प्राकृत' भाषा अपना विकास करती गई और आगे चल कर यही हमारी हिन्दी के निर्माण में सहायक हुई ।

अतएव यह स्पष्ट है कि जनसाधारण में स्वाभाविक रूप से बोली जाने वाली प्राकृत ने ही क्रमशः वेदकालीन और संस्कृत भाषा को जन्म दिया । वेदकालीन भाषा किसी अंश तक बोलचाल की भाषा रह सकती है, क्योंकि हम वेदकालीन भाषा का वेद में बहुत व्यापक रूप पाते हैं । कई वर्षों की बोलियों ने क्रमशः परिष्कृत होकर वेद के स्वरूप को

इनका निवास पंजाब और राजपूताने में था। इन विदेशियों में "आभीरी"[1] नामक एक समुदाय था जिसने सिंध पर विजय प्राप्त की, बाद में गुजरात और राजपूताना भी इनके अधिकार में चला आया। सातवीं शताब्दी में इन लोगों का अधिकार पांचाल तक हो गया। फलस्वरूप इन लोगों की भाषा जो अपभ्रंश के नाम से प्रसिद्ध है, राज-भाषा हुई और उसका प्रचार इनके विजित प्रदेश में ही नहीं वरन् उसके बाहर भी स्थान-विशेष की भाषा के आधार पर होने लगा। इसी वंश के राजा भोज (सं० ९००—९३८)[2] ने अपने राज्य की सीमा और भी बढ़ाई और विहार प्रान्त भी इन आभीरों के राज्य के अन्तर्गत आ गया। इस समय समस्त उत्तर भारत में अपभ्रंश का प्रचार केवल जन-साधारण की भाषा के रूप में ही नहीं वरन् साहित्य में भी होने लगा। दसवीं शताब्दी में यह भाषा अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँची और इसका प्रचार पश्चिम में सिंध से लेकर पूर्व में मगध तक और दक्षिण में सौराष्ट्र तक हो गया। इतना अवश्य है कि कुछ शिष्ट लोगों में अभी भी संस्कृत और प्राकृत के प्रति आकर्षण रह गया था। जब जन-साधारण की बोली प्राकृत के साहित्यिक कारागार से निकलने का प्रयत्न करने लगी तो प्राकृत के वैयाकरणों ने उसे हीन दृष्टि से देखते हुए, 'अपभ्रंश' नाम दे दिया। आभीरों की भाषा के रूप में ऐसी भ्रष्ट हुई प्राकृत का कोई अच्छा नाम नहीं हो सकता था।

वैयाकरणों ने तो अपने व्याकरण के सिद्धान्त से इसे भ्रष्ट हुई साबित किया है, पर वस्तुतः यह अपभ्रंश प्राकृत की विकसित अवस्था का ही नाम है।

यों तो प्रत्येक साहित्यिक प्राकृत का समानान्तर अपभ्रंश रूप होना चाहिए, जैसे शौरसेनी प्राकृत का शौरसेनी अपभ्रंश, महाराष्ट्री प्राकृत

1 V. A. Smith—E[illegible] H[illegible] I[illegible] 242
2 V. A. Sm[illegible]—E[illegible] H[illegible] [illegible]

गुजरात था। प्रसिद्ध जैन आचार्य हेमचन्द्र ने नागर अपभ्रंश ही में अपने ग्रंथो की रचना की है। हेमचन्द्र की रचना संस्कृत से वहुत प्रभावित है, क्योकि नागर अपभ्रंश का आधार शौरसेनी प्राकृत ही था। शौरसेनी प्राकृत का जन्म मध्यदेश मे होने के कारण वह संस्कृत के प्रभाव से वंचित नहीं रह सकती थी।

व्राचड सिंध मे बोली जाती थी और उपनागर गुजरात और सिंध के बीच के प्रदेश मे अर्थात् पश्चिम राजस्थान और दक्षिण पञ्जाब मे। हम इन अपभ्रंशो के विषय मे नागर अपभ्रंश के अतिरिक्त अन्य किसी अपभ्रंश के विषय मे पूर्ण ज्ञान नहीं रखते, क्योकि हेमचन्द्र ने केवल नागर अपभ्रंश का ही वर्णन किया है। मार्कण्डेय ने भी अन्य अपभ्रंशो के विषय मे कोई विशेष वात नहीं लिखी। जव प्राकृत साहित्य की शृंखला मे 'मृत' भाषा मानी जाने लगी तो अपभ्रंश मे साहित्य-निर्माण होना प्रारम्भ हुआ। छठवीं शताब्दी में अपभ्रंश का स्वर्णकाल प्रारम्भ हुआ, जब उसमे उच्च साहित्य की रचना होनी प्रारम्भ हुई। सुदूर दक्षिण और पूर्व तक मे इसका प्रचार हो गया और यह शिष्ट संप्रदाय की भाषा हो गई। अपभ्रंश भाषा दसवीं शताब्दी तक प्रचलित रही. उसके वाद उसे भी 'साहित्य-मरण' के लिये वाध्य होना पड़ा और दसवीं शताब्दी मे अपभ्रंश भाषा ने अनेक शाखाओ मे विभाजित होकर नवीन नाम धारण किये। फलतः हिन्दी आदि भाषाओं का सूत्रपात हुआ। इतना ध्यान मे रखना आवश्यक है कि हमारी भाषा का विकास दिष्टावस्था (Inflectional) से वियोगावस्था (Analytic) मे हुआ है। हिन्दी आदि भाषाएं जो अपभ्रंश से विकसित हुईं, वियोगावस्था की भाषाएं हैं।

अपभ्रंश के 'जड' हो जाने की अवस्था का ठीक ठीक समय निर्धारित नहीं किया जा सकता। अनुमानतः यह समय [illegible] के [illegible] का ही है। अनेक स्थानो मे बोले जाने वाले अपभ्रंश [illegible] भाषाओ मे परिवर्तित हो गए। प्रान्त [illegible] के अनुसार [illegible] मे [illegible]

का महाराष्ट्री अपभ्रंश आदि, क्योंकि अनेक प्राकृत की निम्
अवस्था ही अपभ्रंश के रूप में है। किन्तु केवल तीन अपभ्रंश
माने गये हैं। नागर, व्राचड और उपनागर। मार्कण्डेय अ
प्राकृत-सर्वस्व में अनेक प्रकार के अपभ्रंशों का निर्देश करते
व्याख्या करते हुए वे एक अज्ञात लेखक के मतानुसार २७ अपभ्र
की सूचना देते हैं। पर स्वयं मार्कण्डेय के विचार में केवल
अपभ्रंश भाषाएँ हैं :—नागर, व्राचड और उपनागर। अन्य अपभ्र
को वे इसलिए भिन्न भाषा नहीं मानते, क्योंकि उनमें पारस्परि
भिन्नता इतनी कम है कि वे स्वयं स्वतंत्र भाषाओं के अन्तर्गत
आ सकतीं।

"अपभ्रंशाः परे सूक्ष्मभेदत्वान् न पृथङ् मताः।"

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि उन्होंने २७ अपभ्रंश भा
मानी अवश्य हैं, तथापि वे उनके स्वतंत्र नामकरण के पक्षपाती
हैं। इन भाषाओं में मार्कण्डेय ने पाण्ड्य, कालिङ्ग्य, कारण
काञ्च्य, द्राविड़ आदि को भी सम्मिलित कर दिया है। इसी के आ
पर पिशेल का कथन है कि मार्कण्डेय ने अपभ्रंश के अन्त
आर्य और अनार्य दोनों प्रकार की भाषाओं का वर्गीकरण किया
यद्यपि यह कठिनता से माना जा सकता है कि आर्य अ
अनार्य भाषाओं में सूक्ष्म भेद ही है और वे स्वतंत्र भाषाओं की सं
से विभूषित नहीं की जा सकतीं। जिस प्रकार प्राकृतों में महार
प्राकृत मान्य है उसी प्रकार अपभ्रंशों में नागर अपभ्रंश भाषा
स्थान महत्वपूर्ण है, यह मुख्यतः गुजरात में बोली जाती थी। ना
का अर्थ यह भी है कि जो नागर देश में बोली जाती हो। गुजरात
पण्डित नागर पण्डित कहे जाते थे, अतएव नागर अपभ्रंश का स्थ

1 Apabhraṃśa according to Mā[illegible] — G. A. Grie-
son J R A S (1913) [illegible]

का महाराष्ट्री अपभ्रंश आदि, क्योंकि प्रत्येक प्राकृत की विकसित अवस्था ही अपभ्रंश के रूप में है। किन्तु केवल तीन अपभ्रंश ही माने गये हैं। नागर, व्राचड और उपनागर। मार्कण्डेय अपने प्राकृत-सर्वस्व में अनेक प्रकार के अपभ्रंशों का निर्देश करते हैं। व्याख्या करते हुए वे एक अज्ञात लेखक के मतानुसार २७ अपभ्रंशों की सूचना देते हैं। पर स्वयं मार्कण्डेय के विचार में केवल तीन अपभ्रंश भाषाएँ हैं :—नागर, व्राचड और उपनागर। अन्य अपभ्रंशों को वे इसलिए भिन्न भाषा नहीं मानते, क्योंकि उनमें पारस्परिक भिन्नता इतनी कम है कि वे स्वयं स्वतंत्र भाषाओं के अन्तर्गत नहीं आ सकतीं।

"अपभ्रंशाः परे सूक्ष्मभेदत्वान् न पृथङ् मताः।"

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि उन्होंने २७ अपभ्रंश भाषाएँ मानी अवश्य हैं, तथापि वे उनके स्वतंत्र नामकरण के पक्षपाती नहीं हैं। इन भाषाओं में मार्कण्डेय ने पाण्ड्य, कालिङ्ग्य, कारणाट, काञ्च्य, द्राविड़ आदि को भी सम्मिलित कर दिया है। इसी के आधार पर पिशेल का कथन है कि मार्कण्डेय ने अपभ्रंश के अन्तर्गत आर्य और अनार्य दोनों प्रकार की भाषाओं का वर्गीकरण किया है[1] यद्यपि यह कठिनता से माना जा सकता है कि आर्य और अनार्य भाषाओं में सूक्ष्म भेद ही है और वे स्वतंत्र भाषाओं की संज्ञा से विभूषित नहीं की जा सकतीं। जिस प्रकार प्राकृतों में महाराष्ट्री प्राकृत मान्य है उसी प्रकार अपभ्रंशों में नागर अपभ्रंश भाषा का स्थान महत्वपूर्ण है, यह मुख्यतः गुजरात में बोली जाती थी। नागर का अर्थ यह भी है कि जो नागर देश में बोली जाती हो। गुजरात के पण्डित नागर पण्डित कहे जाते थे, अतएव नागर अपभ्रंश का स्थान

---

1 Apabhramsa according to Markandeya—by G. A. Grierson. J R A S (1913) page 815.

पहला प्रकरण

चारण काल की अनुक्रमणिका

सिद्ध साहित्य : जैन साहित्य

हिन्दी साहित्य की भापा कब अपभ्रंश के प्रभाव से स्वतंत्र हुई, इसकी कोई निश्चित तिथि नहीं दी जा सकती।

त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन ने हिन्दी की इस अनिश्चित परिस्थिति से साहित्य के इतिहास का आदि रूप स्थिर करने की चेष्टा की है। उन्होंने गौतम बुद्ध के सिद्धान्तो के आधार पर उपदेश देने वाले कुछ सिद्ध कवियों के विषय मे कुछ बातें खोज निकाली है। ये सिद्ध कवि संवत् ७५० वि० मे वर्तमान थे और उनकी परम्परा सं० १२०० तक चलती रही।

(अ) सिद्ध साहित्य (सं० ७५०—१२००)

हिन्दी कविता का आदि रूप नालन्दा और विक्रमशिला के सिद्धो द्वारा बौद्धधर्म के वज्रयान तत्व के प्रचार की भापा मे मिलता है।[1] इन सिद्धों की संख्या ८४ थी और वे जनता मे अपने धर्म के प्रचार के लिए किसी सुसंस्कृत भापा का प्रयोग न कर जनता की भापा का ही प्रयोग करते थे। यह भापा मागधी अपभ्रंश—से निकली हुई मगही है। इसका प्रथम कवि सरहपाद या सरहा है। मागधी से निकलने के कारण डा० बी० भट्टाचार्य सरहा को बंगाली का प्रथम कवि मानते हैं[2] किन्तु नालन्द और विक्रमशिला की भापा स्पष्टतः बिहारी है। फिर उप-

1 हिन्दी के प्राचीनतम कवि और उनकी कविताएँ

त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन (गङ्गा-पुरातत्वांक)

जनवरी १९३३

2 J. B. & R. S. LX—XXLI 1 page 47.

भाषा का जन्म हुआ। नागर या शौरसेनी अपभ्रंश में हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी और पञ्जाबी का विकास हुआ, मागधी अपभ्रंश से बङ्गला, बिहारी, आसामी और उड़िया, अर्धमागधी अपभ्रंश से पूर्वी हिन्दी तथा महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी का विकास हुआ।

हमारा उद्देश्य यहाँ केवल हिन्दी के विकास से है। अपभ्रंश से किस प्रकार हिन्दी का सूत्रपात हुआ, यही हमें देखना है।

प्रांत-भेद से तो नागर या शौरसेनी अपभ्रंश अनेक भाषाओं में रूपान्तरित हुई, किन्तु काव्य अथवा रीति-भेद से वह दो भागों में विभाजित हुई। पहली का नाम डिंगल है और दूसरी का पिंगल। डिंगल राजस्थान की साहित्यिक भाषा का नाम पड़ा और पिंगल ब्रज-प्रदेश की साहित्यिक भाषा का नाम। यहीं से हमारी हिन्दी की उत्पत्ति होती है। किस समय अपभ्रंश ने हिन्दी में परिवर्तित होना प्रारम्भ किया, यह तो अनिश्चित है। अभी तक के इतिहासकारों ने उसकी उत्पत्ति विक्रम सं ७०० से मानी है।

मिश्रबन्धुओं के अनुसार "हिन्दी की उत्पत्ति संवत् ७०० के आस-पास मानी गई है, क्योंकि पुंड अथवा पुष्य नामक हिन्दी का पहला कवि सं० ७७० में हुआ।" उसकी कविता का क्या रूप है, और उसके कितने उदाहरण प्राप्त हुए हैं, इस विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं। साहित्य में केवल पुष्य कवि का नामोल्लेख ही है। पुष्य के परिवर्ती कवियों का विवरण भी विवादग्रस्त है और उनकी रचनायें भी अभी तक प्रामाणिक नहीं मानी गईं। अतएव हिन्दी का प्रारम्भिक काल पुष्य से मानना, जिसके सम्बन्ध में अभी तक कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, किसी प्रकार भी प्रामाणिक न होगा।

थी ही, क्योंकि उन्होंने न जाने कितनी बार कुण्डलिनी, इडा, पिंगला, सुषुम्णा आदि के सहारे 'अनहद' नाद सुनने की रीति बतलाई है।

सिद्धो की कविता जनता की भाषा से सम्बन्ध रखती थी, अतएव साहित्य क्षेत्र मे वह उपेक्षा की दृष्टि से देखी गई। इसीलिये उसके अवतरण कही देखने मे नही आते। सिद्धो की परम्परा का विस्तार ७०० वर्षों तक होने के कारण भाषा मे भी अन्तर होना स्वाभाविक है। अतः इस सिद्ध युग की भाषा अनेक रूपों मे होकर विकसित हुई है।

सिद्धो का विवरण राहुल जी ने तिब्बत के 'स-स्क्य-विहार' के पॉच प्रधान गुरुओ की ग्रन्थावली 'स-स्क्य-ब्कं-बुम्' के सहारे बताया है, जो चीन की सीमा के पास 'तेर-गॉ' मठ मे छपी है।[1] उसके अनुसार सरहपा आदिम सिद्ध है, जिनका समय सं० ६९० माना गया है।[2] अतएव यह कहा जा सकता है कि वज्रयान का प्रचार सातवीं शताब्दी मे ही प्रारम्भ हो गया था। इन सिद्धो मे सरह, शबरि, लूहि, दारिक, वज्रघंटा, जालंधर, कण्हपा और शान्तिपा मुख्य थे। राहुल जी सरहपा का समय सं० ८२६ मानते है, क्योंकि वे महाराज धर्मपाल (सं० ८२६—८६६) के समकालीन थे। जो भी समय निश्चित हो, यह तो अवश्य कहा जा सकता है कि वज्रयान के प्रचारक सिद्धो ने नियमित रूप से सबसे प्रथम हिन्दी मे रचना प्रारम्भ कर दी थी। ये रचनाएँ मगही हिन्दी मे हुईं और हमे भोटिया में अनुवादित ग्रन्थावली से प्राप्त हुईं जो भोटिया ग्रन्थ संग्रह तन्-जूर मे सुरक्षित है। उस समय के सिद्धो की भाषा के नमूने के लिये सरहपा की कविता का उद्धरण देना अप्रासङ्गिक न होगा :—

[1] गङ्गा—पुरातत्वाङ्क (१९३३) पृ० २२०

[2] डा० विनयतोष भट्टाचार्य के मतानुसार

बिहार-उड़ीसा रिसर्च, सोसाइटी जर्नल खंड १४, भाग ०, पृ० ३४०

युक्त दोनों स्थान भी बंगाल में नहीं हैं। अतएव भट्टाचार्य का कथन भ्रमपूर्ण है। यह भाषा मध्या भाषा के नाम से प्रचलित थी।[1]

चौरासी सिद्धों का समय सं० ७०० से १२५७ तक माना गया है, यद्यपि सिद्धों की परम्परा इसके बाद भी अनेक वर्षों तक चलती रही। इस परम्परा को 'नागपन्थ' का नाम देना उचित है, जो मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ द्वारा चलाया गया था।[2] यह नागपन्थ बारहवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक अपने चरमोत्कर्ष पर था और इसी ने हमारे साहित्य में संत साहित्य की नींव डाली, जिसके सर्वप्रथम कवि कबीर (सं० १४५६—१५७५) थे। अतः संत साहित्य का आदि इन्हीं सिद्धों को[3], मध्य नागपन्थियों को और पूर्ण विकास कबीर से प्रारम्भ होने वाली संत-परम्परा में नानक, दादू, मलूक, सुन्दरदास आदि को मानना चाहिए। इस प्रकार संत साहित्य अपने आदि रूप से विकसित होकर शृंखला-बद्ध और नियमित रूप से हमारे सामने अपने सम्पूर्ण इतिहास को लेकर आता है। कबीर ने यद्यपि स्थान-स्थान पर चौरासी सिद्धों की सिद्धि में शङ्का की है, तथापि इससे उनकी विचार-परम्परा में अन्तर ही ज्ञात होता है, विरोध नहीं। नागपन्थ के हठयोग आदि पर तो कबीर की आस्था

---

१ काशीप्रसाद जायसवाल का भाषण

२ नागपन्थ चौरासी सिद्धों से निकला है। गोरख सिद्धान्त संग्रह में 'चतुर शीति सिद्ध" शब्द के साथ चौरासी सिद्धों में से आदि नाथ (जलन्धर पा) तथा अन्य ६ सिद्धों के नाम मिलते हैं।

राहुल सांकृत्यायन (वही)

३ धरती अरु असमान बिचि, दोई तू बड़ा अबध।
षट दर्शन संसै पड़्या, अरु चौरासी सिद्ध ॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ४८

या पुरानी हिन्दी का। अतएव दव्व सहाव पयास पहले पुरानी हिन्दी मे था। बाद मे धार्मिक ग्रन्थ होने के कारण जैन आचार्य माइल्ल धवल द्वारा अधिक गंभीर प्राकृत मे कर दिया गया।

[सुणि ऊण दोहरत्थं सिग्घं हसिऊण सुहंकरो भणइ।
एत्थ ण सोहइ अत्थो गाहावंधेन तं भणइ]

इसलिए यह सरलता से जाना जा सकता है कि यदि इस काल मे प्राकृत रचना का आधार पुरानी हिन्दी का रूप अथवा अपभ्रंश का परिवर्तित होता हुआ रूप होगा तो पुरानी हिन्दी इस समय तक यथेष्ट उन्नति कर चुकी होगी, जिससे कि उसमे ग्रन्थ-रचना हो सके। और यदि पुरानी हिन्दी मे ग्रन्थ-रचना होने की परिस्थिति आ गई होगी तो वह जनसाधारण मे इससे भी पहले—कम से कम १०० वर्ष पहले तो अवश्य बोली जाती होगी। अतएव जैन ग्रन्थो के आधार पर हिन्दी का उत्पत्ति-काल आठवीं शताब्दी से आरम्भ हो गया होगा।

वास्तव मे हिन्दी साहित्य की उत्पत्ति और विकास मे जैन धर्म का बहुत बड़ा हाथ रहा है। अपभ्रंश मे ही जैनियो के मूल सिद्धान्तो की रचना हुई। अपभ्रंश का विकास हिन्दी मे होने के कारण हिन्दी की प्रथमावस्था मे भी इन सिद्धान्तो पर रचनाएँ हुई। अतएव भाषा-विज्ञान की दृष्टि से ही नहीं, वरन् हिन्दी के प्रारम्भिक रूप का सूत्र-पात करने मे भी जैन साहित्य का महत्त्व है।

हिन्दी का जैन साहित्य दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम दिगम्बर और द्वितीय श्वेताम्बर। दिगम्बर सम्प्रदाय पर ग्रन्थ-रचना हिन्दी मे हुई और श्वेताम्बर सम्प्रदाय पर गुजराती[1] मे, जो हिन्दी के साथ ही अपभ्रंश से उत्पन्न हुई थी। सम्भव है श्वेताम्बरो का साहित्य किसी अंश तक हिन्दी मे भी लिखा गया हो, पर अभी तक उसकी खोज नहीं हुई। दिगम्बर सम्प्रदाय के अन्तर्गत जिन

[1] हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, नाथूराम प्रेमी पृ० ...)

युक्त दोनों स्थान भी बंगाल में नहीं हैं। अतएव भट्टाचार्य का कथन भ्रमपूर्ण है। यह भाषा मध्या भाषा के नाम से प्रचलित थी।[1]

चौरासी सिद्धों का समय सं० ७०० से १२५७ तक माना गया है, यद्यपि सिद्धों की परम्परा इसके बाद भी अनेक वर्षों तक चलती रही। इस परम्परा को 'नाथपन्थ' का नाम देना उचित है, जो मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ द्वारा चलाया गया था।[2] यह नाथपन्थ बारहवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक अपने चरमोत्कर्ष पर था और इसी ने हमारे साहित्य में संत साहित्य की नींव डाली, जिसके सर्वप्रथम कवि कबीर (सं० १४५६—१५७५) थे। अतः संत साहित्य का आदि इन्हीं सिद्धों को[3], मध्य नाथपन्थियों को और पूर्ण विकास कबीर से प्रारम्भ होने वाली संत-परम्परा में नानक, दादू, मलूक, सुन्दरदास आदि को मानना चाहिए। इस प्रकार संत साहित्य अपने आदि रूप से विकसित होकर शृंखला-बद्ध और नियमित रूप से हमारे सामने अपने सम्पूर्ण इतिहास को लेकर आता है। कबीर ने यद्यपि स्थान-स्थान पर चौरासी सिद्धों की सिद्धि में शङ्का की है, तथापि इससे उनकी विचार-परम्परा में अन्तर ही ज्ञात होता है, विरोध नहीं। नाथपन्थ के हठयोग आदि पर तो कबीर की आस्था

---

1 काशीप्रसाद जायसवाल का भाषण

2. नाथपन्थ चौरासी सिद्धों से निकला है। गोरख सिद्धान्त संग्रह में "चतुर शीति सिद्ध" शब्द के साथ चौरासी सिद्धों में से आदि नाथ (जलन्धर पा) तथा अन्य ६ सिद्धों के नाम मिलते हैं।

राहुल सांकृत्यायन (वही)

3 धरती अरु असमान बिचि, दोइ तू बड़ा अबध
षट दर्शन संसै पड़या, अरु चौरासी सिद्ध ॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ५८

या पुरानी हिन्दी का। अतएव दव्व सहाव पयास पहले पुरानी हिन्दी में था। बाद मे धार्मिक ग्रन्थ होने के कारण जैन आचार्य माइल्ल धवल द्वारा अधिक गंभीर प्राकृत मे कर दिया गया।

[सुणि ऊण दोहरत्थं सिग्घं हसिऊण सुहंकरो भणइ।

एत्थ ण सोहइ अत्थो गाहाबंधेन तं भणइ]

इसलिए यह सरलता से जाना जा सकता है कि यदि इस काल मे प्राकृत रचना का आधार पुरानी हिन्दी का रूप अथवा अपभ्रंश का परिवर्तित होता हुआ रूप होगा तो पुरानी हिन्दी इस समय तक यथेष्ट उन्नति कर चुकी होगी, जिससे कि उसमे ग्रन्थ-रचना हो सके। और यदि पुरानी हिन्दी मे ग्रन्थ-रचना होने की परिस्थिति आ गई होगी तो वह जनसाधारण मे इससे भी पहले—कम से कम १०० वर्ष पहले तो अवश्य बोली जाती होगी। अतएव जैन ग्रन्थो के आधार पर हिन्दी का उत्पत्ति-काल आठवी शताब्दी से आरम्भ हो गया होगा।

वास्तव मे हिन्दी साहित्य की उत्पत्ति और विकास मे जैन धर्म का बहुत बड़ा हाथ रहा है। अपभ्रंश मे ही जैनियो के मूल सिद्धान्तो की रचना हुई। अपभ्रंश का विकास हिन्दी मे होने के कारण हिन्दी की प्रथमावस्था मे भी इन सिद्धान्तो पर रचनाएँ हुईं। अतएव भाषा-विज्ञान की दृष्टि से ही नही, वरन् हिन्दी के प्रारम्भिक रूप का सूत्र-पात करने मे भी जैन साहित्य का महत्त्व है।

हिन्दी का जैन साहित्य दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम दिगम्बर और द्वितीय श्वेताम्बर। दिगम्बर सम्प्रदाय पर ग्रन्थ-रचना हिन्दी मे हुई और श्वेताम्बर सम्प्रदाय पर गुजराती[1] मे, जो हिन्दी के साथ ही अपभ्रंश से उत्पन्न हुई थी। सम्भव है श्वेताम्बरो का साहित्य किसी अंश तक हिन्दी मे भी लिखा गया हो, पर अभी तक उसकी खोज नहीं हुई। दिगम्बर सम्प्रदाय के अन्तर्गत जिन

[1] हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, नाथूराम प्रेमी पृष्ठ ३ (... ६ .)

४

"जइ मन पवन न सञ्चरइ रवि शशि नाह पवेश।
तहि वट चित्त विसाम करु सरहे कहिअ उवेश॥
पण्डिअ सअल सत्त वक्खाणइ
देहहि बुद्ध वसन्त न जाणइ॥ आदि

श्री काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार हिन्दी संवत् ७०० के लगभग मिथिला के आसपास '[illegible]' भाषा के नाम से प्रचलित थी और उसका साहित्यिक रूप सं० ८०० के लगभग प्रयुक्त होने लगा था। इसके अनुसार भी हिन्दी के प्रथम लेखक का नाम सरहा था।

(आ) जैन साहित्य (सं० १०००—१२००)

श्री हीरालाल जैन ने बरार प्रदेश के कारंजा नामक स्थान के दो बड़े और प्राचीन शास्त्र भण्डारों को देखकर कोई २०, २१ ऐसे ग्रन्थों की खोज की है, जिसमें अपभ्रंश भाषा से निकली हुई प्राचीन हिन्दी के रूप जैन आचार्यों के ग्रन्थों में मिलते हैं। ये ग्रन्थ दसवीं शताब्दी के लगभग लिखे गये हैं, जिनमें श्रावकाचार प्रथम ग्रन्थ है। इसके लेखक देवसेन आचार्य हैं [1]। देवसेन आचार्य के शिष्य माइल्ल धवल ने इसी समय 'दव्व सहाव पयास' (द्रव्य स्वभाव प्रकाश) नामक ग्रन्थ की रचना की।[2] पहले यह रचना 'दोहा बन्ध' में देखी जाती थी, पीछे से माइल्ल धवल द्वारा गाथा में कही गई। वह स्वयं लिखता है—"दव्व सहाव पयासं दोहा बंधेन आसि जं दिट्ठं। तं गाहा बंधेण य रइयं माइल्ल धवलेण"। यहाँ यह जान लेना चाहिये कि गाथा प्राकृत का परिचायक है और दोहा अथवा दोहा-विद्या [3] अपभ्रंश

---

१. मनोरमा जुलाई १६२४, भाग १, संख्या ४, पृष्ठ ३०२ (जैन साहित्य में हिन्दी की जड़)

२ जैन हितैषी, भाग १८, अङ्क १०, ११ (नाथूराम प्रेमी)

३ दोहा विद्यया स्पर्धमानो (प्रबन्ध चिन्तामणि)

श्रावकाचार का मंगलाचरण देवसेन आचार्य द्वारा इस प्रकार हुआ है :—

णमक्कारे पिणु पंच गुरु दूरि दलिय दुह कम्मु ।
संखेवे पयडक्खरहिं अक्खमि सावय धम्मु ॥

(नमस्कार करके पाँच गुरुओं को जो दुष्कर्मों का विनाश करते है, संक्षेप मे पद और अक्षरो द्वारा श्रावक धर्म वर्णन करता हूँ।)

२. महाकवि धवल—ये १८००० श्लोको से रचित हरिवंश पुराण के ग्रन्थकर्त्ता है। इन्होने जैन धर्म के चरित-नायको का वर्णन किया है।

३. महाकवि पुष्पदन्त—ये (वंभणाइ कासव रिस गोत्तइ) कश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे। इन्होने भी १२ हज़ार श्लोको मे एक 'महा-पुराण' की रचना की। इसमे तीर्थङ्करो की जीवनियो का वर्णन है। इनका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'नाग कुमार चरित' भी है।

४. धनपाल कवि—ये 'भविष्य वत्त चरित्र' के लेखक थे। धर्माचार पर इन्होने यथेष्ट प्रकाश डाला है।

५. श्री चन्द्रमुनि—ये जैन साहित्य के सब से उत्कृष्ट कलाकार थे। इनमे काव्य-प्रतिभा भी प्रखर थी। कथा-लेखन की प्रणाली बौद्ध जातको मे तो बहुत प्रचलित हो गई थी। श्री चन्द्र मुनि ने संभवतः उसी का अनुसरण अपनी जैन धर्म की कथाओ मे किया।

६. श्री जिन वल्लभ सूरि—ये विद्वान और बहुत प्रभावशाली थे। इनके संस्कृत मे तो 'संघपट्टक' आदि अनेक ग्रन्थ हैं, पर हिन्दी मे एक ही ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। उसका नाम है 'वृद्धनवकार'।

७. योग चन्द्र मुनि—ये प्रसिद्ध दोहाकार थे। इनके ग्रन्थ का नाम 'योगसार' है, जिसमे आध्यात्मिक विचारो का प्रतिपादन किया गया है। इनकी भाषा बहुत साफ़ सुथरी है। इस भाषा मे

मुख्य आचार्यों ने प्रारम्भिक ग्रन्थ-रचना की, उनका [illegible] इस प्रकार है :—

१. देवसेन आचार्य –(दसवीं शताब्दी)
२ महाकवि धवल ,,
३ महाकवि पुष्पदंत (ग्यारहवीं शताब्दी)
४ धनपाल कवि ,,
५. श्री चन्द्र मुनि ,,
६ श्री जिन वल्लभ सूरि ,,
७ योगचन्द्र मुनि (बारहवीं शताब्दी)

१. देवसेन आचार्य -- इनका निर्देश श्री चन्द्रधर गुलेरी जी ने भी अपने 'पुरानी हिन्दी' लेख में किया है। गुलेरी जी ने इनके ग्रन्थ का नाम 'लघु नयचक्र' दिया है। बृहत् नयचक्र जो जैन साहित्य में इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है, वास्तव में उनके शिष्य माइल्ल धवल का लिखा हुआ है। ग्रन्थ का वास्तविक नाम 'दव्व सहाव पयास' (द्रव्य स्वभाव प्रकाश) है। पहले यह ग्रन्थ दोहाबंध में था, किन्तु पीछे से किसी शुभंकर के कहने से प्राकृत में गाथाबंध कर दिया गया।[1] आचार्य देवसेन ने २५० दोहों में गृहस्थ धर्म का निरूपण करते हुए श्रावकाचार नामक जो ग्रंथ लिखा है वह भी हिन्दी से बहुत साम्य रखता है। इसी समय 'दर्शन-सार' नामक ग्रन्थ की भी रचना हुई। यह स्थिति दसवीं शताब्दी की है। देवसेन स्वयं दर्शनसार की रचना-तिथि सं० ९९० देते हैं : -

रइ श्रो दंसण सारो हारो भव्वाण णवसए णवए।
सिरि पास णाह गेहे सुविसुद्धे माह सुद्ध दसमीए ॥

(यह दर्शन सार ९९० में श्री पार्श्वनाथ गेह में माघ सुदी १० को समाप्त हुआ।)

1 पुरानी हिन्दी— गुलेरी, ना० प्र० पत्रिका भाग २, संवत् १९७८ पृष्ठ २४१

धर्म, जैन धर्म आदि का वर्णन किया है। इस प्रकार उन्होंने जीवन के भिन्न-भिन्न विभागों का बड़ा सजीव वर्णन किया है। संस्कृत और प्राकृत के व्याकरण में उन्होंने उदाहरण स्वरूप केवल वाक्य या पद ही दिए हैं, किन्तु अपभ्रंश के उदाहरण में उन्होंने सम्पूर्ण गाथा एवं छंद दे दिए हैं। कारण यह था कि संस्कृत और प्राकृत का साहित्य जिज्ञासुओं के सामने था, उसके समझने के लिए वाक्य या पद यथेष्ट थे, पर अपभ्रंश शिष्ट समाज में अधिक प्रचलित न होने के कारण सीमित सा था, इसलिए उसके सम्पूर्ण उदाहरण देने की आवश्यकता पड़ी। इस प्रकार उन्होंने अपभ्रंश एवं प्राचीन हिन्दी के जीवित उदाहरण सुरक्षित कर साहित्य का बहुत बड़ा उपकार किया। ये उदाहरण हेमचन्द्र ने अपने पूर्ववर्ती कवियों के दिए हैं, जिससे हमें हेमचन्द्र के पूर्व की भाषा का भी ज्ञान होता है। यह अनुमानतः सम्वत् १०२९ का समय माना गया है, अतएव हेमचन्द्र की कविता में दो शताब्दियों की भाषा के नमूने हैं। इसीलिए उनका 'सिद्ध हैम' या सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन और कुमारपाल चरित्र (जिसमें कुमारपाल का आठ सर्गों में जीवन चरित्र वर्णित है) प्राकृत व्याकरण और भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण समझे गए हैं। इनमें अपभ्रंश के भी उदाहरण हैं। गुजरात में होने के कारण इनकी भाषा का 'नागर' अपभ्रंश रूप अधिक स्पष्ट है।[1]

१ A great deal of Hema Chandra's Ap[illegible] well known, only old Gujrati and th[illegible] kand[illegible]) Sauraseni or standard [illegible] ture of several dialects) was spoken, [illegible] was spoken in Gujrat ... [illegible] Apabhramsa as described in his G[illegible] much of Hema Chandra's — G[illegible] R[illegible] ८८१-८८२.

हिन्दी अपने स्पष्ट रूप में आने को [illegible] आ [illegible] है। उदाहरण स्वरूप एक सोरठा इस प्रकार है :--

जीवाजीवह भेउ जो जाणइ जो जाणियउ
मोक्खह कारण भेउ भणइ जोइ जो इउ भणिउ

(जीव और अजीव का भेद जो जानता है [illegible] में जानकार है। जो उसे मोक्ष का कारण कहता है, [illegible] में कथनकार है।)

८. हेमचन्द्र—इन सन्तों में सबसे अधिक प्रसिद्ध और साहित्यकार श्री हेमचन्द्र हैं। भाषा के प्रयोग और साहित्य के दृष्टिकोण से हेमचन्द्र सबसे महत्त्वपूर्ण माने जाने चाहिए। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश का एक साथ प्रयोग उनके भाषा-ज्ञान का यथेष्ट परिचायक है। उनका जन्म संवत् ११४५ में हुआ था। उनके जन्म का नाम चंगदेव था, पीछे हेमचन्द्र हुआ। गुजरात के सोलंकी सिद्धराज जयसिंह ने उनका बड़ा सम्मान किया। इन्हीं के लिए हेमचन्द्र ने अपना व्याकरण बनाया, जो सिद्ध-हैम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सिद्धराज के बाद जब उसका भतीजा कुमारपाल राजा हुआ तो हेमचन्द्र की प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई; क्योंकि कुमारपाल के राजा होने की भविष्यवाणी उन्होंने पहले ही कर दी थी। सम्वत् १२१६ में हेमचन्द्र ने जैनधर्म स्वीकार किया। उसी के बाद हेमचन्द्र ने कुमारपाल के द्वारा जैन-सिद्धान्तों का अत्यधिक प्रचार कराया। कुमारपाल पर तो उनका इतना प्रभाव पड़ा था कि उन्होंने जैन धर्म ग्रहण करने पर हेमचन्द्र के उपदेशानुसार शिकार खेलना, मांस खाना इत्यादि अपने राज्य में बन्द करा दिया था।[1] हेमचन्द्र ने अपनी रचना के अवतरणों में कृष्ण कथा, राम कथा, वीर, शृंगार, हिन्दू

[1] हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता—(डा० बेनीप्रसाद) पृष्ठ ५८५

कुछ दोहे धाराधिपति राजा भोज के चाचा मुञ्ज के नाम पर हैं। अतएव ये उद्धृत दोहे मेरुतुङ्ग के पूर्व की भाषा का भी परोक्ष रूप से परिचय देते है। मेरुतुङ्ग के अतिरिक्त चौदहवीं शताब्दी मे अन्य आचार्य भी हुए, जिन्होने अपभ्रंश अथवा पुरानी हिन्दी मे रचनाएँ कीं। इनमे संघपति समरा रासा के लेखक अंबदेव अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्होने अपनी भाषा मे राजस्थानी के प्रयोग अधिक किए है।[1]

बाद की शताब्दियो मे भी जैन आचार्यों द्वारा ग्रन्थ लिखे गए, किन्तु उनका महत्त्व भाषा-विज्ञान की दृष्टि न होकर केवल धार्मिक ही रह जाता है। अतएव जैन साहित्य की परिवर्ती शृङ्खला पर यहाँ विचार न कर, उसके पूर्ववर्ती भाग की विशेषताओं पर विचार करना ही अधिक उचित होगा।

१. वर्ण्य विषय—जैन धर्म के सिद्धान्तो का निरूपण। इसके अन्तर्गत जैन साहित्य के चारो भागो का सम्यक् विवेचन है :—

(अ) प्रथमानुयोग—(तीर्थङ्करो की जीवनियाँ)

(आ) करणानुयोग (विश्व वर्णन)

(इ) चरणानुयोग (आचरो का चित्रण)

(ई) द्रव्यानुयोग (सांसारिक वर्णन)

इन सिद्धान्तो के निरूपण मे कथाओं का भी प्रयोग किया गया है। इस प्रकार इस काल मे हमे कथा साहित्य के भी दर्शन होते है। बौद्ध जातको के समान छोटी-छोटी मनोरञ्जक घटनाओ मे [illegible] नीरस सिद्धान्त छिपे हुए है। ऐसी कथाओ मे [illegible], [illegible] आदि का विशेष निरूपण है। किन्तु ये कथाएँ [illegible] घटनाओं के चित्र मात्र है, और वे गद्य मे न होकर पद्य मे है। [illegible] उदाहरणार्थ किसी नगर मे [illegible] की [illegible] [illegible] वाला था। तब देवता [illegible] —

[1] [illegible]

सोम प्रभाचार्य—(आविर्भाव सं० १२४०) ये बहुत बड़े पण्डित थे। सोमशतक नामक पुस्तक में इन्होंने केवल एक श्लोक लिख कर उसके सौ अर्थ किए हैं।

सोम प्रभ सूरि—जैन धर्म सम्बन्धी जो उपदेश हेमचन्द्र ने कुमार-पाल को दिए थे, उन्हीं का इन्होंने निरूपण किया है। इनके ग्रन्थ का नाम है "कुमारपाल प्रतिबोध।" इसमें पाँच प्रस्ताव हैं। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का उपयोग किया गया है, किन्तु बीच बीच में अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी के उदाहरण भी मिल जाते हैं। जहाँ वे कुमारपाल का कर्तव्य और इतिहास वर्णन करते हैं वहाँ तो वे अपभ्रंश का प्रयोग नहीं करते, किन्तु जहाँ कथाओं को रोचक बनाने की आवश्यकता पड़ती है वहाँ वे जनसाधारण में प्रचलित अपभ्रंश में लिखे गए अज्ञात कवियों के दोहे रख देते हैं, जिनमें उक्तियाँ वियोग-वर्णन, ऋतु-वर्णन और कहावतें हैं।

इनके अतिरिक्त तेरहवीं शताब्दी में निम्नलिखित ग्रन्थों का उल्लेख और मिलता है[1] :—

धर्म सूरि कृत—जम्बू स्वामी रासा (सं० १२६६)
विजयसेन सूरि—रेवंतगिरि रासा (सं० १२८८)
विनयचंद सूरि—नेमिनाथ चउपई (,,)

मेरुतुंग (आ० सं० १३६०) इन्होंने 'प्रबन्ध चिन्तामणि' की रचना कर प्राचीन ऐतिहासिक व्यक्तियों और राजाओं के चरित्रों का कथा-रूप में सङ्कलन किया। सिद्धराज, जयसिंह, कुमारपाल, हेमचन्द्र, वस्तु-पाल, तेजपाल आदि के वृत्त मेरुतुङ्ग ने बड़ी सावधानी से लिखे हैं, जिससे बहुत कुछ ऐतिहासिक सामग्री की रक्षा हो गई है। इसकी रचना सं० १३६१ में हुई। इस ग्रन्थ में अपभ्रंश के जो नमूने मिलते हैं वे अधिकतर उद्धृत ही किए गए हैं, मौलिक रूप से नहीं लिखे गए।

1—हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, नाथूराम प्रेमी, पृष्ठ २७, २८

निरूपण अथवा नायिका-भेद वर्णन हो। संस्कृत अथवा प्राकृत मे जैन विद्वानो के बनाये हुए शृङ्गार-रस पूर्ण ग्रन्थ अवश्य है, पर अपभ्रंश अथवा पुरानी हिन्दी मे एक भी नहीं। उसका कारण यही था कि अपभ्रंश अथवा पुरानी हिन्दी मे ग्रन्थ लिखते समय उन आचार्यों के हृदय मे धर्म-प्रचार की भावना प्रधान रूप से रही होगी। वे साहित्य की अपेक्षा धर्म को अधिक प्रधान मानते थे। इसीलिए नीरस सिद्धान्तो मे ही उनके धर्म का निरूपण हुआ है। जयपुर के एक पुस्तक-भण्डार की सूची मे दीवान लालमणि के रस-प्रकाश अलंकार का उल्लेख है। सेवाराम द्वारा भी एक 'रसग्रन्थ' की रचना बतलाई जाती है, पर इन दोनो मे से एक भी ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हो सका।[१]

४. छन्द—जैन साहित्य मे अनेक प्रकार के छन्दो का उपयोग किया गया है। चरित्र, रास, चतुष्पदी, चौढालिया, ढाल, सिज्झाय, कवित्त, छन्द, दोहा आदि। किन्तु इस काल की कविता मे दोहे की ही प्रधानता है। इस प्रकार की रचना (प्रवन्ध चिन्तामणि मे) दोहा-विद्या के नाम से कही गई है। रड्डा का प्रयोग भी यथेष्ट किया गया है।

५. विशेष

१—जैन साहित्य द्वारा इतिहास की विशेष रक्षा हुई है। पौराणिक चरित्र के अतिरिक्त ऐतिहासिक व्यक्तियो के चरित्र भी लिखे गए हैं। हेमचन्द्र का कुमारपाल चरित, सोमप्रभु सूरि का कुमारपाल प्रतिबोध, धर्मसूरि का जम्बू स्वामी रासा, विजयसेन सूरि का रेवंतगिरि रासा, अंबदेव का संघपति समरा रासा, मेरुतुंग का प्रबन्ध चिन्तामणि, विजयभद्र का गौतम रासा, ईश्वरसूरि का ललितांग चरित्र आदि इतिहास की प्रधान घटनाओं और व्यक्तियों के सम्बन्ध में यथेष्ट

[१] हिन्दी जै० सा० का इतिहास— [illegible]) पृ० [illegible]

निरूपण अथवा नायिका-भेद वर्णन हो। संस्कृत अथवा प्राकृत मे जैन विद्वानो के बनाये हुए शृङ्गार-रस पूर्ण ग्रन्थ अवश्य हैं, पर अपभ्रंश अथवा पुरानी हिन्दी मे एक भी नहीं। उसका कारण यही था कि अपभ्रंश अथवा पुरानी हिन्दी मे ग्रन्थ लिखते समय उन आचार्यों के हृदय मे धर्म-प्रचार की भावना प्रधान रूप से रही होगी। वे साहित्य की अपेक्षा धर्म को अधिक प्रधान मानते थे। इसीलिए नीरस सिद्धान्तो मे ही उनके धर्म का निरूपण हुआ है। जयपुर के एक पुस्तक-भण्डार की सूची मे दीवान लालमणि के रस-प्रकाश अलंकार का उल्लेख है। सेवाराम द्वारा भी एक 'रसग्रन्थ' की रचना बतलाई जाती है, पर इन दोनो मे से एक भी ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हो सका।[१]

४. छन्द—जैन साहित्य मे अनेक प्रकार के छन्दो का उपयोग किया गया है। चरित्र, रास, चतुष्पदी, चौढालिया, ढाल, सिज्झाय, कवित्त, छन्द, दोहा आदि। किन्तु इस काल की कविता मे दोहे की ही प्रधानता है। इस प्रकार की रचना (प्रबन्ध चिन्तामणि मे) दोहा-विद्या के नाम से कही गई है। रड्डा का प्रयोग भी यथेष्ट किया गया है।

५. विशेष

१—जैन साहित्य द्वारा इतिहास की विशेष रक्षा हुई है। पौराणिक चरित्र के अतिरिक्त ऐतिहासिक व्यक्तियो के चरित्र भी लिखे गए हैं। हेमचन्द्र का कुमारपाल चरित, सोमप्रभु सूरि का कुमारपाल प्रतिबोध, धर्मसूरि का जम्बू स्वामी रासा, विजयसेन सूरि का रेवंतगिरि रासा, अंबदेव का संघपति समरा रासा, मेरुतुंग का प्रबन्ध चिन्तामणि, विजयभद्र का गौतम रासा ईश्वरसूरि का ललितांग चरित्र आदि इतिहास की प्रधान घटनाओं और व्यक्तियों के सम्बन्ध में यथेष्ट

१ हिन्दी जै० सा० का इतिहास— ना (न प्र०) पृ ४

वसइ कमलि कलहंसि जिम्वं जीव दया जसु चित्ति।
तसु पय पक्खालण जलिण, होयइ अशिव निवित्ति॥

(जिस प्रकार कमल में कलहंसिनी निवास करती है, उसी प्रकार जिसके चित्त में जीवों के प्रति दया निवास करती है उसके पैरों के प्रक्षालित जल से अशुभ की निवृत्ति होगी।)

२. भाषा—अपभ्रंश से निकलती हुई हिन्दी के प्राचीन रूप हमें इस समय की भाषा में मिलते हैं। इसमें विशेष कर नागर अपभ्रंश का अधिक प्रभाव है और व्याकरण के अनुसार शब्द-योजना है। यह भाषा अधिकतर पद्य रूप में ही है, गद्य रूप में नहीं। आगे चल कर सत्रहवीं और अट्ठारहवीं शताब्दी में जैन आचार्यों ने अवश्य गद्य में रचना की है। इस समय यदि हमें कहीं गद्य के दर्शन होते हैं तो वे केवल टिप्पणियों के रूप ही में। जैन साहित्य में उनका नाम 'टब्बा' है।

३. रस—जैन साहित्य सम्पूर्ण रूप से शान्त रस में लिखा गया है। शृङ्गार रस का प्रायः अभाव है। दो-एक स्थलों पर उदाहरण स्वरूप ही कभी शृङ्गार के दर्शन होते हैं। जैसे मेरुतुङ्ग का यह दोहा :—

एऊ जम्मु नग्गुहं गिउ भडसिरि खग्गु न भग्गु।
तिक्खा तुरिय न माणिर्आ गोरी गली न लग्गु॥

(यह जन्म व्यर्थ ही गया। भटों की शीश पर खड्ग भङ्ग नहीं हुआ। न तेज घोड़े ही दौड़ाये और न गोरी (सुन्दर स्त्री) ही गले से लगी।)

किन्तु इस प्रकार के उदाहरण भी उसी स्थल पर पाए जा सकते हैं, जहाँ किसी ऐतिहासिक पुरुष का चरित्राङ्कण हो अथवा इतिहास की किसी घटना का वर्णन हो। साधारणतया जैन साहित्य में तो जैन धर्म ही का शान्त वातावरण व्याप्त है। सन्त के हृदय में शृङ्गार कैसा? फलतः इतने बड़े साहित्य में एक भी ग्रन्थ ऐसा नहीं है जिसमें अलङ्कार-

दूसरा प्रकरण

चारण काल

डिंगल साहित्य; विविध साहित्य

(अ) डिंगल साहित्य (सं० ११००—१३७५)

यह कहा जा चुका है कि अपभ्रंश के अन्तिम काल में जब हिन्दी का प्रारम्भ हुआ तो काव्य परम्परा के आधार पर हिन्दी दो भागों में विभाजित हुई—डिंगल और पिंगल। डिंगल राजस्थान में नागर अपभ्रंश से प्रभावित हिन्दी की साहित्यिक भाषा का नाम है और पिंगल मध्यदेश की भाषा का। हमें यहाँ पर डिंगल भाषा पर विचार करना है।

टेसीटरी डिंगल पर अपना मत प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं :—

डिंगल का न तो 'डगर' से कोई सम्बन्ध है और न राजपूताना के चारण और पंडितों द्वारा बतलाए हुए किसी विचित्र और अद्भुत शब्द रूपावली से ही है। वह केवल एक विशेषण रूप है, जिसका अर्थ है "गड़बड़" (अनियमित) अर्थात् जो ऊँचे कवित्व के अनुसार नहीं। सम्भवतः जो 'असंस्कृत' है।[1]

---

1. The term Dingala which has nothing to do with 'Dagar', nor with any other of the fantastic etymologies proposed by the bards and Pandits of Rajputana, but is a mere adjective, meaning probably, 'Irregular', i.e., "not in accordance with the standard poetry", or probably Vulgar —Journal of the Asiatic Society of B... No 10 1914 Page 376

प्रकाश डालते हैं। अतएव इस साहित्य का महत्व भाषा विज्ञान सम्बन्धी होते हुए भी इतिहास सम्बन्धी भी है।

२—जैन साहित्य में अनुवादित ग्रन्थों की अधिकता है। स्वतंत्र ग्रन्थ बहुत ही कम हैं। पूर्ववर्ती कवियों के ग्रन्थों अथवा ग्रन्थों के उद्धरण ही साहित्य का कलेवर बढ़ाने में सहायक हुए हैं। कारण यह है कि हिन्दी जैन साहित्य अधिकतर गृहस्थ या श्रावकों द्वारा लिखा गया है। गृहस्थ या श्रावकों को भय था कि स्वतंत्र ग्रन्थ-रचना करते समय कहीं धर्म के विरुद्ध वे कोई अनुचित बात न कह दें। अतएव उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के सिद्धान्तों का ही अनुसरण किया और उन्हीं के ग्रन्थों को अनुवादित किया।

३—जैन साहित्य में कोई बड़ा कवि नहीं हुआ। उसका कारण यह था कि प्रत्येक आचार्य का आदर्श धर्म की व्याख्या करना था, काव्य का शृङ्गार नहीं। इसीलिए काव्य पर किसी का ध्यान भी नहीं गया। केवल सिद्धान्तों के प्रतिपादन में अच्छी कविता नहीं हो सकती। प्रसिद्ध जैन कवि बनारसी दास (जन्म सं० १६४३) ने शृङ्गार रस की रचनाओं का एक संग्रह किया था। पर जैन होने के कारण उन्हें बाद में इस विषय से इतनी घृणा हो गई कि उन्होंने उसे यमुना में बहा दिया, जिससे उसका अस्तित्व ही न रहे।[1]

१—हिन्दी जै० सा० का इतिहास—(नाथूराम प्रेमी) पृष्ठ ४३

डिङ्गल साहित्य के इतिहास जानने के पूर्व यह अधिक युक्तिसंगत होगा, यदि हम उस समय की राजनीतिक परिस्थिति पर भी थोड़ा विचार कर लें, क्योंकि राजनीतिक परिस्थितियों ने डिङ्गल साहित्य पर यथेष्ट प्रभाव डाला है।

सातवीं सदी के उत्तरार्द्ध से हिन्दू राज्य की केन्द्रीभूत सत्ता का विनाश होना प्रारम्भ हुआ। विभाजक शक्तियों का इतना अधिक प्रावल्य हुआ कि साधारण घटनाओं ने ही राज्यों के उत्थान और पतन का बीज बोना प्रारम्भ किया। उत्तर-पश्चिम से आने वाले मुसलमानों ने इस अवसर से पूरा लाभ उठाया और बारहवीं शताब्दी में उत्तर भारत का अधिकांश भाग मुसलमानों के अधिकार में आ गया। यह काल भारत के प्राचीन इतिहास की वृद्धावस्था का ही है, जिसमें शक्ति का अभाव है, विवशता का अवलम्ब है। इस काल का इतिहास अनेक छोटे-छोटे राज्यों के उत्थान और पतन की कहानी मात्र है, किसी एक महान् राज्य अथवा राजनीतिक केन्द्र का इतिवृत्त नहीं। ये छोटे छोटे राज्य शिशुओं की भाँति छोटी-छोटी बात पर झगड़ना भी खूब जानते थे।[१] आठवीं सदी में कश्मीर और कन्नौज में यथेष्ट संघर्ष हुआ, यद्यपि कश्मीर नरेश ललितादित्य ने कन्नौज को कश्मीर में नहीं मिलाया : शायद यह संभव भी न था। कन्नौज का संघर्ष मगध से भी हुआ, फिर गुर्जर राज्य से भी; और कन्नौज गुर्जर राज्य में मिला लिया गया। किन्तु कन्नौज की प्रधानता बनी ही रही। देवपाल और विजयपाल के समय में कन्नौज

1 ... the land became a prey to famine and anarchy and I dia relapsed into its normal ... of petty states engaged in unceasing ...

—V ...
...

कुछ लोगों का कथन है कि मध्यदेश के पिङ्गल नाम से प्रसिद्ध हिन्दी के समानान्तर ही डिंगल शब्द की सृष्टि हुई है।[1] तीसरा मत यह है कि डिंगल शब्द की उत्पत्ति डिम् (डम् ?) गल से हुई है[2]। डिम् (डम् ?) का तात्पर्य डमरू ध्वनि से है और गल का तात्पर्य है गले से; गले से डमरू की ध्वनि के समान गुञ्जित होने वाली। ताण्डव नृत्य करने वाले प्रलयङ्कर महादेव के हाथ में डमरू बाजे से वीर और रौद्र रस की जागृति होती है। इसी प्रकार डमरू के समान ध्वनि करने वाली कविता जो वीरों के हृदय में उत्साह और क्रोध की जागृति कर दे, वही डिंगल कविता है।

डिंगल काव्य पिंगल से अपेक्षाकृत प्राचीन है। जब ब्रजभाषा की उत्पत्ति हुई और उसमें काव्य-रचना की जाने लगी, तब दोनों में अन्तर बतलाने के लिए दोनों का नामकरण हुआ। इतना तो निश्चय है कि ब्रजभाषा में काव्य-रचना के पूर्व से ही राजस्थान में काव्य-रचना होने लगी थी। अतएव पिङ्गल के आधार पर डिङ्गल नाम होने की अपेक्षा यही उचित ज्ञात होता है कि डिङ्गल के आधार पर 'पिङ्गल' शब्द का उपयोग किया गया होगा। इस कथन की सार्थकता इससे भी ज्ञात होती है कि पिङ्गल का तात्पर्य छन्दशास्त्र से है। ब्रजभाषा न तो छन्दशास्त्र ही है और न उसमें रचित काव्य छन्दशास्त्र के नियमों के निरूपण के लिए ही है। अतएव पिङ्गल शब्द ब्रजभाषा काव्य के लिये एक प्रकार से अनुपयुक्त ही माना जाना चाहिए। हाँ, यह अवश्य है कि ब्रजभाषा काव्य में छन्दशास्त्र पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया गया है और सम्भवतः यही कारण है कि उसका नाम पिङ्गल रखा गया है।

नष्ट हुआ। गुजरात के शासक सोलंकी के नाम से इतिहास मे प्रसिद्ध हैं।

मालवा मे पॅवारो का राज्य था। इन्हीं पॅवारो के वंश मे राजा भोज हुए (संवत् १०६७—११०८) जो योद्धा, कवि और साहित्य के संरक्षक थे। इनके समय मे मालवा की बहुत उन्नति हुई थी। बारहवी शताब्दी मे सोलङ्कियो ने पॅवारो को बुरी तरह पराजित किया और मालवा को छोटे-छोटे भागो मे विभक्त कर दिया। बारहवीं शताब्दी मे अन्त मे सोलङ्कियो की एक शाखा बघेल ने ही रीवॉ राज्य स्थापित किया।

कछवाहा ग्वालियर के अधिपति थे और बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक ग्वालियर और नरवर पर शासन करते रहे। संवत् ११८६ मे यह शासन परिहार वंश के हाथो मे चला गया।

नवमी शताब्दी मे चन्देलो ने महोबा (हमीरपुर) पर विजय प्राप्त की। लगभग एक शताब्दी बाद उन्होंने कालिंजर के सुदृढ़ किले पर भी अधिकार प्राप्त किया। ये वीर ही नहीं थे, वरन् कलाप्रिय भी थे। इन्होंने खजुराहो मे अनेक सुन्दर मन्दिरो का निर्माण किया। चन्देलों के वैभव का सूर्य संवत् १२२९ मे अस्त हुआ जब पृथ्वीराज चौहान ने उन पर विजय प्राप्त की। संवत् १२५० मे वे मुसलमानो के हाथ कालिंजर भी खो बैठे।

तोमर हिसार और दिल्ली के निकटवर्ती स्थानो मे राज्य करते थे। कहते है, तोमर वंश ने ही दिल्ली की नीव डाली, पर दिल्ली का महत्त्व अनङ्गपाल द्वितीय (संवत् ११०९) के बाद ही प्रकट हुआ। तोमर और चौहान सदैव परस्पर के शत्रु थे। अन्त मे चौहान ने दिल्ली को संवत् १२१० मे विजय कर ही लिया। रुहेलखण्ड और उत्तरी प्रवध भाग आर अहीर वंश के अनेक राजाओ के अधिकार मे था। दसवीं शताब्दी के अन्त मे राजपूत के वाल्ल वंश ने उस प्रान्त मे अपना शासन स्थापित किया।

की अवनति होनी प्रारम्भ हो गई। जयपाल (संवत् [illegible]) के समय में तो चन्देल और कछवाहों ने इसे और भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अन्त में राठौर जयचन्द (संवत् १०९१) के समय में इसकी दशा ठीक हुई। जयचन्द ने कन्नौज को समृद्धिशाली बनाने में अथक परिश्रम किया और उसे वैभव से पूर्ण किया। कन्नौज का मुसलमानों के द्वारा पतन होना स्वतंत्र हिन्दू राज्यों के अस्तित्व की अन्तिम स्थिति थी। वास्तव में मुसलमानों के अन्तिम आक्रमणों के पहले कन्नौज सुसंगठित और शक्तिशाली राज्य हो गया था। गुजरात भी एक शक्तिशाली राज्य था। समुद्र के किनारे होने के कारण उसकी व्यापारिक स्थिति बहुत दृढ़ थी और उसमें धन और वैभव की राशि बिखरी हुई थी। इसके चार महान शासक हुए। उन्हीं के कारण गुजरात पूर्ण रूप से सुसंगठित और शक्तिशाली हो गया था। प्रथम शासक मूलराज था, जिसने संवत् ९९८ से १०५० तक शासन किया। इसी ने तलवार की नोंक से अपने राज्य की विस्तार-सीमा खींची। जीवन भर वह युद्ध में लगा रहा और रणभूमि की विजय-राशि से उसने अपने राज्य के आकार की वृद्धि की। अन्त में अपने वृद्ध शरीर को उसने रणभूमि के ही समर्पित कर दिया। दूसरा महान शासक भीम था, जिसने संवत् १०७९ से ११२० तक राज्य किया। इसीके समय में सोमनाथ के मन्दिर की पवित्रता, धन के साथ महमूद के हाथों ने लूट ली और पँवार इसकी राजधानी तक बढ़ आए, पर उसने अपनी मृत्यु के समय अपने राज्य की सीमा का विस्तार किसी भाँति भी कम नहीं होने दिया। तीसरे शासक सिद्धराज ने सं० ११५० से १२०० तक राज्य किया और उसने बारह वर्षों तक पँवारों के साथ युद्ध कर उन्हें पराजित किया। कुमारपाल (सं० १२००—१२२९) ने तो मालवा की विजय का श्रेय स्वयं ही प्राप्त किया। इस प्रकार गुजरात एक बहुत शक्तिशाली राज्य हो गया था, जो मुसलमानों के आक्रमणों का प्रतिकार करता हुआ कहीं अलाउद्दीन खिलजी के शासन (संवत् १३५५) में

केया। (गूर्ज़रेन्द्रो जयसिहस्तस्मै यां दत्तवान्सा काञ्चनदेवी रात्रौ ा दिने च सोमं सोमेश्वर संज्ञमजनयत्।) इस प्रकार वह गुजरात के ाजा जिन्होंने सन् १०९४ से ११४३ (सं० ११५०-११९९) तक राज्य केया, के परिवर्ती भाग में समकालीन थे।

गुजरात के इतिहास में हेमचन्द्र के द्वयाश्रय कोष तथा अन्य ‌इतिहास जयसिंह के उत्तराधिकारी कुमारपाल का अर्णोराज के विरुद्ध तफल युद्ध करने का वर्णन करते है। चित्तौरगढ़ शिलालेख सिद्ध करता ‌है कि इस युद्ध की समाप्ति सं० १२०७ (सन् ११४ -१०) या उसके ‌कुछ ही पूर्व हुई। अर्णोराज के द्वितीय पुत्र विग्रहराज चतुर्थ या ‌वीसलदेव के अजमेर शिलालेख (सं० १२१०) से ज्ञात होता है कि उसकी (अर्णोराज) की मृत्यु सं० १२०७ और १२१० के बीच में अवश्य हुई होगी।[१]

इन तिथियो से यह ज्ञात होता है कि अर्णोराज ने विक्रम की १२वीं शताब्दी के चतुर्थांश मे राज्य किया और उसके पिता ने सं० ११००— ‌११२५ के बीच मे या उसी के आस-पास। अजयमेर नगर भी उसी समय बना होगा।[२] पृथ्वीराज-विजय का महत्व आधुनिक इतिहास या हम्मीर महाकाव्य या फिरिश्ता से अधिक है, क्योकि पृथ्वीराजविजय की रचना पृथ्वीराज द्वितीय के समय मे अथवा १२वीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश मे हुई थी। हम्मीर महाकाव्य १४वीं शताब्दी के अन्त की रचना है और फ़िरिश्ता ने २०० वर्ष बाद सोलहवीं शताब्दी के अन्त मे लिखा। फिर

---

१. पृथ्वीराज विजय सप्तम सर्ग—

प्रथमं सुधवासुतस्तदानीं परिचर्यां जनकस्य तामकार्षीत्।

प्रतिपाद्य जलाञ्जलिं घृणार्यै विदधे या भगुनन्दनो जनन्य॥

२ [illegible]

मेवाड़ में गहलोत वंश शासन करता था। उनका प्रथम मरदार वप्पा था, जिसने भीलों की सहायता से मेवाड़ में राज्य स्थापित किया था। उसके पुत्र गुहिल ने चित्तौड़ पर अधिकार प्राप्त कर लिया, जो गहलोत वंश के हाथों में ८०० वर्ष तक रहा। यही गहलोत वंश आगे चल कर सीसोदिया वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तेरहवीं शताब्दी के वाद तो इस वंश की मर्यादा समस्त राजस्थान में स्थापित हो गई।

सबसे बड़ा और शक्तिशाली वंश चौहानों का था, जो एक बड़े क्षे में बिखरा हुआ था। आबू पर्वत से लेकर हिसार तक और अरवल से लेकर हमीरपुर की सीमा तक इनका प्रभुत्व था। ये अपने-अप राज्यों में नाममात्र की स्वतन्त्रता के साथ विभाजित थे। सब शक्तिशाली शाखा साँभर झील के आसपास थी। यह शाखा ग्यारहवें और वारहवीं शताब्दी में वढ़कर समस्त चौहानों की अधिपति ब वैठी, साँभर नरेश ही सब से बड़े राजा हो गए। इनकी राजधा अजमेर थी।

अजमेर की प्राचीनता और उसके नाम के सम्बन्ध में पृथ्वीरा विजय के पाँचवें सर्ग के लम्बे अवतरण से डा० मारिसन एक ले लिखते हैं। ७७ वें पद्य से अजयराज का वर्णन प्रारम्भ होता है औ ४० पद्यों से अधिक में लिखा जाकर सर्ग के अन्त तक चलता है। ९९वं पद में लिखा है कि अजयराज ने एक नगर का निर्माण किया ((रा) जा नगरं कृतवान्) उसके वाद उसके वैभव और उत्कर्ष का वर्णन है। अन्तिम पद्य में लिखा है कि उसके पुत्र का नाम अर्णोराज था, जिसे उसने अपने राज्य का उत्तराधिकारी वनाया था। उसके राज्य का वर्णन छठें और सातवें सर्ग के प्रारम्भिक भाग में है। इसके समय का निर्धारण पृथ्वीराज-विजय, गुजरात के इतिहास और कुमारपाल के चित्तौडगढ़ शिलालेखों के विवरणों से ज्ञात हो सकता है। पृथ्वीराज-विजय के सप्तम सर्ग से ज्ञात होता है कि अर्णोराज ने गुजरात के जयसिंह सिद्धराज की कन्या कांचन देवी से दूसरा विवाह

अपभ्रंश भाषा भी उस समय पुराने संस्कारों को छोड़ कर नवीन रूप धारण करने का प्रयत्न कर रही थी। उसी अपभ्रंश की डिंगल भाषा में उनकी कविता प्रवाहित हो उठी। इसके साथ ही देश के किसी कोने में बैठ कर कविगण मुसलमानी आतङ्क भुलाने के लिए धर्म की कविता भी कर देते थे।

हिन्दी साहित्य के प्रभात काल में सात कवियों का उल्लेख हमारे इतिहासकार करते चले आए हैं, यद्यपि उन सात कवियों की एक पंक्ति भी अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी।

पुंड या पुष्य

प्रथम हिन्दी कवि पुंड या पुष्य कहा जाता है जिसका आविर्भाव-काल सं० ७७० माना गया है।

दूसरे अज्ञात कवि का ग्रन्थ जो प्राप्त हो सका है वह खुमान रासो है। एक स्थान पर इस कवि का नाम दलपत विजय मिलता है।

दलपत विजय

इसमें चित्तौराधिपति रावल खुमान द्वितीय का वृत्तान्त लिखा गया है। यह प्रति अपूर्ण है। इसमें चित्तौर के महाराणा प्रतापसिंह तक का हाल दिया गया है जिससे यह ज्ञात होता है कि यह प्रति समय-समय पर कवियों के हाथों से नई सामग्री प्राप्त करती रही और अपने पूर्व रूप की केवल एक अस्पष्ट छाया ही रख सकी। अतएव खुमान रासो अपने वास्तविक रूप में अब नहीं है। खुमान का समय सम्वत् ८८७ माना गया है और महाराणा प्रताप का विक्रम की १७ वीं शताब्दी। इस प्रकार खुमान रासो लगभग ८०० वर्ष के परिमार्जन का ग्रन्थ है। इसके बाद मसूद, कुतुबअली, साईंदान और अकरम फैज के नाम आते हैं। इनकी रचनाएँ भी अप्राप्य हैं। इनका आविर्भाव-काल सम्वत् ११८० से १२०५ तक माना गया है। इसके बाद चन्दबरदाई का नाम आता है, जिनका समय सम्वत् १२४८, सन् ११९१ है। अभी तक के इतिहास की यही स्थिति है। चन्दबरदाई के पूर्व दो कवियों का नाम और लिया जाता है

पृथ्वीराज विजय अपेक्षाकृत [illegible] है, जिसके [illegible]
उनके शिलालेखों से मिलता है। [illegible]
तथा परिणाम परस्पर [illegible] है।

इन सब बातों से पता [illegible] है कि पृथ्वीराजविजय [illegible]
ही स्पष्ट और ठीक है कि [illegible] ([illegible]) [illegible]
का निर्माता था।[1] उसकी परम्परा में [illegible]
पृथ्वीराज था, जिसका शासन समय सं० [illegible] (सन् [illegible]) से
सं० १२४९ (सन् ११९२) तक है।

संक्षेप में यदि चारणकाल की राजनीतिक परिस्थितियों पर विचार किया जावे तो ज्ञात होगा कि राठौर, सोलंकी, पवार, कछवाहा, परिहार, चंदेल, तोमर, भाट, अहीर, गहलोत और चौहान वंश राजस्थान राजनीति का शासन कर रहे थे। राजनीतिक परिस्थिति बहुत अनिश्चित थी। परस्पर युद्ध करने में ये राजे महाराजे गौरव का अनुभव करते थे और अपने राज्य को अपनी मर्यादा के सामने तुच्छ समझते थे। कोई ऐसा वर्ष नहीं था जब कि इन राजाओं में से किसी में पारस्परिक विग्रह न होता हो। इन सब राजाओं के सामने मुसलमानों का आतंक अपनी निर्दयता और उच्छृंखलता के साथ अनेक रूप रखा करता था। अपनी मर्यादा और गौरव की रक्षा करने के लिए युद्धवीर राजपूत युद्धदान के लिए सदैव प्रस्तुत रहा करते थे। देश की शान्ति रक्तधारा में बही जा रही थी।

इस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में विप्लव होने के कारण साहित्यिक क्षेत्र में भी शान्ति नहीं रही। राजस्थान राजनीति का प्रधान क्षेत्र होने के कारण अपने यहाँ के चारणों और भाटों को मौन नहीं रख सका।

वर्णन है। इस ग्रंथ का समय सम्वत् १२४७ दिया गया है। इसके प्रमाण मे कवि की यह पंक्ति दी जाती है :—

सुनी कहै यह संवत् जानी।
बारह सानी सैता लानी॥

इसका तात्पर्य संवत् १२४७ लिया जाता है। किन्तु भापा इतनी आधुनिक है तथा उसमे जुहार, जलेबी, रकेबी आदि शब्दो तथा 'पचि-पचि रची सुधारि' आदि वाक्यांशो का इतना प्राचुर्य है कि भापा १२ वीं शताब्दी की नहीं कही जा सकती। दूसरी बात यह है कि मोहनलाल ने अपना मङ्गलाचरण केशवदास के ही शब्दो मे किया है।[1] केशवदास का पांडित्य उन्हे मोहनलाल जैसे साधारण कवि की चोरी करने से रोकता है, अतः मोहनलाल ने ही केशवदास के शब्दो मे वंदना की है। इस प्रकार मोहनलाल का समय केशव के बाद ही का समझा जाना चाहिए। डा० हीरालाल के अनुसार 'बारह सानो' शुद्ध पाठ न होकर 'ठारह सानों' शुद्ध पाठ है। अतः मोहनलाल का समय १८ वीं शताब्दी है।

वीसलदेव रासो

नरपति नाल्ह

चारण काल के इन अनिश्चित कवियों के बाद जो निश्चित कवि मिलता है वह नरपति नाल्ह है उसका ग्रंथ गीतात्मक है और नाम वीसलदेव रासो है। ग्रियर्सन ने न जाने क्यो इसका वर्णन नहीं किया। गीतात्मक रहने के कारण इसकी भापा मे भी अनेक परिवर्तन हुए, पर वे परिवर्तन अभी तक सम्पूर्णतः प्राचीन भापा का स्वरूप

१ केशवदास—एक रदन गजबदन, सदन बुधि मदन कदन सुत।
गवरिनंद आनन्द कन्द जगवन्द चन्द युत
मोहनलाल—एक रदन वारन वदन सदन बुद्धि गुण गेह।
गवरिनन्द आनन्द दे मोहन प्रणति करेह

प्रथम कवि हैं सुवाल, जिन्होंने दोहा-चौपाई में भगवद्गीता का अनुवाद किया है। इनका समय विक्रम की दसवीं शताब्दी माना गया है। इसका आधार सुवाल का वह दोहा है, जिसमें वे अपने ग्रन्थ-रचना की तिथि देते हैं। वह दोहा इस प्रकार है :—

सुवाल

संवत कर अब करौं बखाना।
सहस्र सो संपूरन जाना॥
माघ मास कृष्ण पच्छ भनऊ।
दुतिया रवि तृतिया जो गनऊ॥

अर्थात् ग्रन्थ की रचना संवत् १००० में माघ कृष्ण पक्ष की द्वितीया और तृतीया तिथि, रविवार को हुई। किन्तु गणना के अनुसार यह तिथि संवत् १००० में रविवार को नहीं पड़ती। यह समय सम्वत् १७०० माघ कृष्ण रविवार को आता है जब द्वितीया के बाद उसी दिन तृतीया लग जाती है। इस प्रकार ग्रन्थ की रचना संवत् १००० में न होकर १७०० में की गई ज्ञात पड़ती है; अर्थात् दी हुई तिथि के ७०० वर्ष बाद। संभव है "सहस्र सो सम्पूरन जाना" के बदले "सहस्र सो सत (१७००) पूरन जाना" हो[1]। लिपिकार की साधारण गलती से ७०० वर्ष का अन्तर पड़ गया। अतः सुवाल कवि दसवीं शताब्दी के कवि न माने जाकर सत्रहवीं शताब्दी के कवि माने जावेंगे। उनकी भाषा भी दसवीं शताब्दी की प्राचीन हिन्दी नहीं मानी जा सकती। छंद भी सत्रहवीं शताब्दी ही का है, जो रामचरित-मानस के प्रचार से बड़ा लोकप्रिय हो गया था। संभव है तुलसीदास का रामचरित मानस दोहा, चौपाई में देखकर सुवाल कवि ने कृष्ण-चरित भी दोहा, चौपाई में लिखने का विचार किया हो।

द्वितीय कवि मोहनलाल द्विज हैं, जिन्होंने पत्तलि नाम का एक ग्रन्थ लिखा है जिसमें श्रीकृष्ण की बारात के भोजन की पत्तलि की विविध भोजन-सामग्री का

मोहनलाल द्विज

---

१. खोज रिपोर्ट १९१७,१८,१९, पृष्ठ ५

ग्यारहवी शताब्दी है। नाल्ह ने अपने रासो को भी उसी समय लिखा क्योंकि ग्रंथ मे जहाँ क्रिया का प्रयोग वर्तमान-काल मे किया गया है वहाँ 'कहइ', 'वसइ' इत्यादि क्रियाओ के रूप समय की घटनाओं के अनुसार ही घटित होते है।

इन सब बातो को दृष्टि मे रखते हुए एक कठिनाई सामने आती है। नाल्ह अपनी पुस्तक-रचना की तिथि इस प्रकार देता है :—

"बारह सै बरहोत्तरा (बहोत्तरां ?) मँझार।
माघ सुदी नवमी बुधवार।

मिश्रबन्धुओ ने इसे सं० १२२०, लाला सीताराम ने १२७२, तथा सत्य-जीवन वर्मा ने १२१२ माना है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसे सं० १२१२ माना है। यदि गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा के अनुसार वीसलदेव का काल सम्वत् १०३० से १०५६ मान लिया जाय तो वीसलदेव रासो की रचना १५६ वर्ष बाद होती है। ऐसी स्थिति मे लेखक का वर्तमान काल में लिखना समीचीन नहीं जान पड़ता। अतएव या तो वीसलदेव का काल जो विनसेण्ट स्मिथ और गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा द्वारा निर्धारित किया गया है, उसे अशुद्ध मानना चाहिए अथवा वीसलदेव रासो मे वर्णित इस 'बारह सो बरहोत्तरा मंझार' वाली तिथि को। श्री गजराज ओझा, बी० ए० बीकानेर ने लिखा है कि "बड़ा उपाश्रय, बीकानेर मे इसकी एक प्राचीन हस्त-लिखित प्रति मिली है, जिसमे इसका रचना-काल १०७३ वि० लिखा है।"[1] उसमे 'बारह से बरहोत्तरा मँझार' के स्थान पर "संवत् सहस तिहत्तर जाणि, नाल्ह कवीसर रसीय वखाणि" मिलता है; जिसके अनुसार 'रासो' की रचना सं० १०७३ मे मानी गई है। यदि हम इसी तिथि को ठीक माने तो भी ग्रन्थ की रचना वीसलदेव-काल से १७ वर्ष बाद ठहरती है। उस समय भी कवि वर्तमान काल मे लिख सकता है।

जो हो, १०७३ इतिहास के अधिक समीप है। यदि रासो के एक

सिद्ध नहीं कर सके। इसकी [illegible]
का, अपभ्रंश की [illegible]
यद्यपि इसमें [illegible]
पाये जाते हैं[1] किन्तु इसमें प्राचीन [illegible]
व्याकरण अपभ्रंश के नियमों [illegible]
और संज्ञाओं के रूप [illegible]
इन शब्दों को अपभ्रंश भाषा के [illegible]
से किसी प्रकार की आपत्ति [illegible] होनी चाहिए।

बीसलदेव का काल निर्णय हमें इतिहास से इस प्रकार मिलता है— जैपाल जो नवम्बर १००१ में पुनः सुल्तान महमूद से पराजित हुआ था आत्मघात कर मर गया। उसका पुत्र अनंगपाल उत्तराधिकारी हुआ, जो अपने पिता की भाँति अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव के नेतृत्व में हिन्दू शक्तियों के संघ में सम्मिलित हुआ।[2] अतएव बीसलदेव का समय सन् १००१ (सं० १०५८) माना जाना चाहिए। बीसलदेव रासो में वर्णित धार के राजा भोज जिन्होंने अपनी पुत्री राजमती का विवाह बीसलदेव के साथ किया था, उनके भी इसी समय में होने का प्रमाण मिलता है।

मुञ्ज का भतीजा यशस्वी भोज तत्कालीन मालवा की राजधानी धार के राज्यासन पर लगभग सम्वत् १०७० में आसीन हुआ और उसने चालीस वर्ष से अधिक प्रतापशाली राज्य किया। गौरीशंकर हीराचंद जी ओझा के अनुसार बीसलदेव का समय सम्वत् १०३० से १०५६ माना गया है।[3] ओझा जी के अनुसार राजा भोज का राजसिंहासनासीन होना सं० १०५४ में है। अतएव यह निश्चित होता है कि बीसलदेव का समय विक्रम की

१ बेटी राजा भोज की—

२. Vincent Smith

३ हिन्दी टाड राजस्थान प्रथम खंड पृष्ठ ३५८

कहा जा सकता है कि जन-साधारण की भाषा में भी रचना होने लगी थी और उसमें उस समय के प्रचलित सभी प्रकार के शब्द कविता में रखे जा सकते थे। इतिहास की घटनाओं का वर्णन भी साहित्य के अन्तर्गत आ गया था, क्योंकि साहित्य इस समय 'वीर-पूजा' अथवा धर्म और राजनीति के नेता के गौरव का गीत था। सत्य और धर्म के किसी भी अग्रणी का जीवन-चरित उस समय साहित्य था। राजनीति और साहित्य का इतने समीप आ जाना हिन्दी-साहित्य के इतिहास में प्रथम काल की विशेषता है।

पृथ्वीराज रासो

चन्द

पृथ्वीराज रासो डिंगल साहित्य का सर्व-प्रथम प्रबन्धात्मक काव्य माना गया है। उसका रचयिता चन्द भी हमारे साहित्य का प्रथम महाकवि है। इसने पृथ्वीराज चौहान की कीर्ति-गाथा ६९ समयों (अध्याय) में वर्णित की है। स्वयं तो वह लाहौर का निवासी था, किन्तु अपने जीवन का सबसे महत्वपूर्ण भाग उसने दिल्ली और अजमेर के सम्राट पृथ्वीराज के साहचर्य में व्यतीत किया था। वह बहुत पण्डित और विद्वान था, क्योंकि 'रासो' में उसने काव्य की अनेक रीतियाँ प्रदर्शित की हैं।

पृथ्वीराज रासो एक महान ग्रन्थ है। ढाई हज़ार पृष्ठों से अधिक का ग्रन्थ होने के कारण उसका प्रकाशन बहुत दिनों तक नहीं हुआ। रायल एशियाटिक सोसाइटी ने उसके प्रकाशन का विचार किया था, पर अन्त में कई विद्वानों ने उस ग्रन्थ की प्रामाणिकता में अविश्वास कर उसे छपने से रोक दिया। अन्त में उसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा से हुआ। अभी तक पृथ्वीराज रासो की निम्नलिखित प्रतियाँ प्राप्त हो सकी हैं—

१ वेदल [illegible]

२ रायल एशियाटिक सोसाइटी में सुरक्षित कर्नल टाड की प्रति

यदि हमें यही सम्मत होती है और इतिहास बीसलदेव के समय को भी लगभग यही मानता है तो हमें बीसलदेव की रचना १०७३ मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। फिर राजेन्द्रलाल मित्र के अनुसार भोज का समय संवत् १०७६ से १०८३ माना गया है। इससे भी उपर्युक्त विचार की पुष्टि होती है।

इस ग्रन्थ का विस्तार २००० चरणों में है। इसमें चार खण्ड हैं। पहले खण्ड में मालवा के अधिपति श्री भोज परमार की लड़की राजमती का बीसलदेव सांभर के साथ विवाह। दूसरे खण्ड में बीसलदेव की उड़ीसा की ओर यात्रा। तीसरे खण्ड में राजमती का वियोग-वर्णन और बीसलदेव का चित्तौड़ागमन। चौथे खण्ड में भोजराज का आकर अपनी कन्या को ले जाना और बीसलदेव का पुनः राजमती को चित्तौड़ ले आने का वर्णन है।

कथावस्तु पर विचार करने से ज्ञात होता है कि कथा गीतिरूप में होते हुए भी प्रबन्धात्मकता लिए हुए है। कथावस्तु अनेक प्रकार की घटनाओं से निर्मित है, जिसमें वीररस के अतिरिक्त शृङ्गार रस ने प्रधान स्थान ग्रहण कर लिया है। इस समय के वीर-काव्य में शृङ्गार की इतनी मात्रा अवश्य साहित्य की बहुमुखी प्रवृत्ति की परिचायिका है। भाषा यद्यपि अपने असंस्कृत रूप में है तथापि उसमें साहित्यिक सौन्दर्य की भी यत्र-तत्र छटा है। गीति-काव्य होने के कारण उसकी भाषा का रूप बहुत कुछ परिवर्तित हो गया है, पर डिंगल की छाप उसमें सम्पूर्णतया है। साथ ही उसमें [illegible] और फ़ारसी के शब्द भी यत्र-तत्र पाये जाते हैं [illegible] कि उस समय मुसलमानों का प्रभुत्व भारत में [illegible] के द्वारा ग्रहण [illegible]।

[illegible] रूप में [illegible] भाषा [illegible] अवश्य

९ ,, हुसेन कथा (शहाबुद्दीन से हुसेन के पीछे युद्ध, जिसने पृथ्वीराज की शरण ली थी)

१० ,, आखेट चूक (शहाबुद्दीन के द्वारा आखेट मे पृथ्वीराज पर आक्रमण, पर उसकी पराजय)

११ ,, चित्ररेखा (गक्कर कुमारी जो शहाबुद्दीन की प्रियतमा थी और जिसे लेकर हुसेन पृथ्वीराज के समीप भाग आया था)

१२ ,, भोलाराय (गुजरात के भोला राव से युद्ध)

१३ ,, सलख जुद्ध (सलख के द्वारा सुलतान का फिर बन्दी होना पर उसका उद्धार)

१४ ,, इंछिनी व्याह (पृथ्वीराज का इंछिनी से विवाह)

१५ ,, मुगल जुद्ध (मुगलो से युद्ध)

१६ ,, दाहिमी व्याह (दाहिमी से व्याह)

१७ ,, भूमि स्वप्न

१८ ,, दिल्ली दान (अनङ्गपाल के द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली का उपहार)

१९ ,, माधो भाट (माधो भाट का आगमन शहाबुद्दीन का पुनः आक्रमण पर पराजय)

२० ,, पद्मावती व्याह (पद्मावती से व्याह)

२१ ,, आल्हा-ऊदल (महोबा के चंदेल राजा परमाल से युद्ध जिसमे परमाल की सहायता आल्हा-ऊदल ने की थी)

२२ ,, पृथा व्याह (चित्रकोट के राजा समरसी के साथ पृथ्वीराज की बहन पृथा का व्याह)

२३ होली कथा (होलिकोत्सव का वर्णन)

२४ दीपमाल कथा (दीपमालिकोत्सव का वर्णन)

२५ धन कथा ([illegible])

३. कर्नल कालफील्ड की प्रति

४. बोदलियन प्रति

५. आगरा कॉलेज की प्रति

यही पाँचों प्रतियाँ प्रामाणिक मानी गई हैं।[1] इनके अतिरिक्त बीकानेर राज्य में 'प्रिथीराज रासो' की दो हस्त-लिखित प्रतियाँ और मिली हैं। १. प्रिथीराज रासो कवि चन्द विरचित (हस्तलिखित प्रति नं० ३१) और २. प्रिथीराज रासो कवि चन्द विरचित (हस्तलिखित प्रति नं० ३२)[2]

इस प्रकार रासो की सात प्रतियाँ उपलब्ध हैं। यदि कहीं अन्तर है तो वह नगण्य ही है। इन सातों प्रतियों के आधार पर रासो की कथा का संक्षेप इस प्रकार दिया जा सकता है :—

१ समयो—आदि पर्व (मङ्गलाचरण, चौहान वंश की उत्पत्ति आदि, पृथ्वीराज का जन्म)
२ ,, दासम (विष्णु के दशावतार)
३ ,, दिल्ली किल्ली कथा
४ ,, अजान बाहु
५ ,, कन्हपट्टी (मूँछ ऐंठने पर प्रतापसिंह चालुक्य को कन्ह चौहान भरे दरबार में मार डालता है। पृथ्वीराज उसे दरबार में अपनी आँखों में पट्टी बाँधने के लिये बाध्य करता है)
६ ,, आखेटक वीर (मृगया वर्णन)
७ ,, नाहर राय (नाहर राय से युद्ध)
८ ,, मेवाती मुगल (मेवातियों से युद्ध)

---

1 L[illegible] Books Conta[illegible]d in Cha[illegible] Poe[illegible], the Prithi[illegible]raja Raso—[illegible] Beames J R A S 1872 Page 204.

2 [illegible] Bardic and Historical Ma[illegible] [illegible] Part I Page 73 and 83.

अर्णोराज अजमेर के राजा थे। वे चौहान-वंशीय थे। उनके पुत्र का नाम सोमेश्वर था। सोमेश्वर का विवाह दिल्ली के तोमरवंशी राजा अनङ्गपाल की कन्या कमला से हुआ था। पृथ्वीराज सोमेश्वर और कमला के ही पुत्र थे। कमला की एक बहिन और थी। उसका नाम था सुन्दरी। उसका विवाह कन्नौज के राजा विजयपाल से हुआ था। इनके पुत्र का नाम जयचन्द राठौर था। दिल्ली के राजा अनङ्गपाल ने जब पृथ्वीराज को गोद लिया तो इससे दिल्ली और अजमेर एक ही राज्य के अन्तर्गत हो गये। यह बात कन्नौज के राठौर जयचन्द को बहुत बुरी लगी। उसने अपना महत्व प्रदर्शित करने के लिए एक राजसूय यज्ञ का विधान किया, जिसमे अनेक राजा सम्मिलित हुए। पृथ्वीराज ने इसे अपने आत्म-सम्मान के विरुद्ध समझ कर वहाँ जाना अस्वीकार किया। इस पर क्रुद्ध होकर जयचन्द ने पृथ्वीराज की स्वर्ण-निर्मित प्रतिमा द्वारपाल के रूप मे दरवाजे पर रखवा दी। उसी अवसर पर जयचन्द ने अपनी पुत्री संयोगिता का स्वयंवर भी किया। संयोगिता पहले से ही पृथ्वीराज पर अनुरक्त थी। उसने जयमाला पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा के गले मे डाल दी। पृथ्वीराज ने आकर संयोगिता से गान्धर्व विवाह किया और उसे हरण कर दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। रास्ते मे जयचन्द की सेना से बहुत युद्ध हुआ पर पृथ्वीराज ही अन्त मे विजयी हुए। दिल्ली आकर पृथ्वीराज ने विलास की सेज सजाई। राज्य-प्रबन्ध मे वह सतर्कता नहीं रही।

इसी समय शहाबुद्दीन गोरी अपने यहाँ के एक पठान-सरदार की प्रेमिका चित्ररेखा पर मुग्ध हुआ। वह पठान-सरदार भाग कर पृथ्वीराज की शरण मे आया। शरणागत वत्सल पृथ्वीराज ने उसे आश्रय दिया। गोरी ने उसे लौटा देने के लिए कहला भेजा पर पृथ्वीराज ने अपनी धर्मवीरता का आदर्श सामने रख कर ऐसा करना अस्वीकार किया। गोरी ने अनेक बार पृथ्वीराज से लोहा लिया पर

६५ ,, बड़ी लड़ाई (पृथ्वीराज का [illegible]) [illegible]
और [illegible]।

६६ ,, बान बेध (गुरु के [illegible]। [illegible]) [illegible]
का [illegible]।

६७ ,, रैनसी (पृथ्वीराज के पुत्र [illegible]) [illegible]
[illegible]।

६८ ,, रासो के सम्बन्ध में [illegible]।

६९ ,, [illegible]—(उपसंहार)।

यदि रासो की कथावस्तु पर दृष्टि डाली जाये तो ज्ञात होगा कि निम्नलिखित घटनाओं पर [illegible] से बहुत विस्तारपूर्वक लिखा है :—

१. पृथ्वीराज का शौर्य

(अ) शहाबुद्दीन गोरी से युद्ध करना। उसे अनेक बार पराजित कर अपनी उदारता और शौर्य का आदर्श स्थापित करना।

(आ) अनेक प्रदेशों पर चढ़ाई कर उनके राजाओं को पराजित करना।

(इ) अपने आत्मसम्मान के लिए शरणागत (हुसेन) की रक्षा के लिए अपनी दृढ़ता का परिचय देना।

२. पृथ्वीराज के विवाह

इंछिनी, दाहिमी, पद्मावती, पृथा, शशिव्रता, इन्द्रावती, हंसावती, संयोगिता आदि से विवाह। इन्हें समयों (विवाह समयो) में इनकी सूची तक बनाई गई है।

३. पृथ्वीराज के आखेट

४. पृथ्वीराज के विलास—होली तथा दीपमालिका के उत्सव।

इस प्रकार प्रत्येक परिस्थिति में पृथ्वीराज की गुणगाथा और उसके शौर्य का प्रदर्शन है। संक्षेप में रासो की कथा इस प्रकार है :—

१२२५ के शिलालेखो से मिलता है। पृथ्वीराज का वंश-वर्णन उसी प्रकार है जैसा हम इन शिलालेखो मे पाते है। अन्य बहुत से विवरण जो 'विजय' से मिलते हैं अन्य साक्ष्यो से भी मिलते है, (जैसे मालवा और गुजरात के शिलालेख।)

पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर अर्णोराज के पुत्र थे और उनकी चालुक्य स्त्री कांचनदेवी गुजरात के महाराज जयसिंह सिंहराज की लड़की थीं। अर्णोराज की प्रथम स्त्री मारवाड़ की राजकन्या सधवा थीं जिनके दो पुत्र हुए। एक का नाम न तो विजय मे दिया हुआ है और न शिलालेखो मे। दूसरा था विग्रहराज वीसलदेव।

अविदित नाम वाले ज्येष्ठ लड़के ने अपने पिता की हत्या कर दी, जैसा कवि कहता है :—"उसने वैसा ही व्यवहार किया जैसा भृगु के पुत्र (परशुराम) ने अपनी माता के साथ किया। और एक दुर्गन्धि छोड़ कर बत्ती के समान बुझ गया। विग्रहराज पिता के बाद सिंहासनासीन हुआ। उसके बाद उसका पुत्र राजा हुआ और तब पितृघाती का पुत्र पृथ्वीभट्ट या पृथ्वीराज सिंहासन पर बैठा।

उसके बाद मंत्रियो द्वारा सोमेश्वर गद्दी पर बिठाया गया। इस लम्बे समय तक वह विदेशो मे था। उसके नाना जयसिंह ने उसे शिक्षा दी थी। इसके बाद वह चेदि की राजधानी त्रिपुर गया और उसने चेदि राजा की कन्या कर्पूर देवी से विवाह किया। उससे पृथ्वीराज (कथा का नायक) और हरिराज उत्पन्न हुए। अजयमेरु की गद्दी पर बैठने के उपरान्त ही सोमेश्वर मर गया। कर्पूर देवी ने अपने पुत्र की छोटी अवस्था मे राज्य का शासन कादम्बवास मंत्री की सहायता से किया।

इस कथन का पता भी नहीं है कि पृथ्वीराज दिल्ली के राजा अनङ्गपाल की लडकी के पुत्र थे या वे उसके दत्तक पुत्र थे। और विशेष बात यह है कि प्राचीन मुसलमान इतिहासकार पृथ्वीराज का दिल्ली पर शासन करना लिखते भी नहीं है। उनके अनुसार वे केवल अजमेर के राजा

प्रत्येक समय पराजित हुआ। इस बीच में पृथ्वीराज ने अनेक विवाह किए और अनेक राजाओं से लड़ाइयाँ लड़ीं। अन्त में बारहवीं बार उसने पृथ्वीराज को हरा कर कैद किया और उसे गजनी भेज दिया। वहाँ उसकी आँखें निकलवा ली गईं। कुछ दिनों बाद चन्द भी रासो को अपने पुत्र जल्हन के हाथ में देकर गजनी पहुँचा और अपने स्वामी पृथ्वीराज से मिला। चन्द के सङ्केत से पृथ्वीराज ने शब्दवेधी बाण से गोरी को मारा। तत्पश्चात् चंद और पृथ्वीराज एक दूसरे को मार कर मर गए।

रासो की इस कथा ने तथा इसमें लिखित संवतों ने इस ग्रंथ को बहुत अप्रामाणिक बना दिया है। अब तो बहुत से विद्वान पृथ्वीराज-विजय नामक एक नये ग्रंथ के प्रकाश में इसे जाली समझते हैं। प्रोफेसर बुलर ने रायल एशियाटिक सोसाइटी को लिखे गए अप्रैल सन १८९३ के अपने पत्र में[1] इस विषय में अपनी निश्चित धारणा प्रकट करते हुए लिखा है :—

"—पृथ्वीराज रासो के सम्बन्ध में

मैं एकेडेमी के लिये एक 'नोट' तैयार कर रहा हूँ और जो इसे जाली मानते हैं, मैं उन्हीं के पक्ष में अपना मत दूँगा। मेरे एक शिष्य मि० जेम्स मारीसन ने संस्कृत पृथ्वीराज विजय का अध्ययन कर लिया है जिसे मैंने जोनराज की टीका के साथ जो सन १४४०-५० के बीच लिखी गई थी सन १८७५ में काश्मीर में प्राप्त किया था। ग्रन्थकार निश्चय रूप से पृथ्वीराज का समकालीन था और उसके सभा-पंडितों में एक था। वह सम्भवतः काश्मीरी था और अच्छा कवि और पंडित भी था। उसके द्वारा वर्णित चौहानों का वर्णन चन्द के रासो के [illegible] विवरण से भिन्न है और वह वि० सं० १०३० और